प्रकाशकीय

संस्कृत महाकाव्यो मे शिशुपालवध का विशेष महत्त्व है। संस्कृत के श्रेष्ठ ग्रन्थो और पुराणो के हिन्दी अनुवाद की ओर सम्मेलन का ध्यान बहुत पहले से ही रहा है। सुप्रसिद्ध माघ कवि के शिशुपालवध महाकाव्य का भाषानुवाद पहले प्रकाशित हो चुका था, किन्तु कुछ त्रुटियो से देश के संस्कृत विद्वानो ने उसे विशेष पसन्द नही किया—इसी बात को ध्यान में रख कर पुन इस काव्य के भाषानुवाद का कार्य सम्मेलन की साहित्य-समिति ने प्रसिद्ध मत्स्यमहापुराण और वायुपुराण के सफल अनुवादक श्री रामप्रतापजी त्रिपाठी शास्त्री को सौंपा। तदनुसार त्रिपाठीजी ने बडे परिश्रम से यह अनवद्य अनुवाद प्रस्तुत किया है।

भाषानुवाद के साथ मूल श्लोक, सरल अर्थ एव अलकार और छन्दो का भी निर्देश विद्यार्थियो तथा संस्कृत के जिज्ञासु हिन्दी प्रेमियों की सुविधा के लिए यथास्थान किया गया है। प्रबुद्ध शैली के इस भाव प्रवण अनुवाद से शिशुपाल वध जैसा आकर महाकाव्य सर्वसाधारण के लिए सुबोध बन गया है।

इसी प्रकार मम्मट के 'काव्यप्रकाश' का भी पूर्वापेक्षा सुन्दर भाषानुवाद भी सम्मेलन पुन प्रकाशित करने की व्यवस्था कर रहा है। आशा है, हिन्दी जगत् संस्कृत के उच्चकोटि के ग्रन्थो का भी रसास्वादन कर अपनी ज्ञान पिपासा की तृप्ति कर सकेगा।

श्रीरामनाथ 'सुमन'
साहित्य मन्त्री

मकर सक्रान्ति, २००९

कविवर माघ और उनका कृतित्व

मध्यकालीन संस्कृत काव्य

विशाल संस्कृत साहित्य में जिन काव्यरत्नों की गणना सर्वोपरि की जाती है, वे केवल छः हैं, इनमें से तीन लघुत्रयी तथा तीन बृहत्त्रयी के नाम से विख्यात हैं। कविकुलगुरु कालिदास के तीनों काव्य रघुवंश, कुमारसंभव तथा मेघदूत—ये तीन लघुत्रयी तथा भारविकृत किरातार्जुनीय, माघकृत शिशुपालवध तथा श्रीहर्षकृत नैषधीयचरित—ये तीन बृहत्त्रयी के नाम से विख्यात हैं। यद्यपि इन छहों काव्य-ग्रन्थों के अतिरिक्त अश्वघोष के सौन्दरानन्द तथा बुद्धचरित, भट्टि स्वामी के रावणवध अथवा भट्टिकाव्य, कुमारदास के जानकीहरण तथा रत्नाकर कवि के विशालकाय महाकाव्य हरविजय आदि की गणना भी संस्कृत के विख्यात काव्यों में की जाती है, किन्तु संस्कृत-साहित्य में इन काव्यों को उतनी लोकप्रियता प्राप्त नहीं हो सकी, जो ऊपर के छहों काव्यों को प्राप्त हुई है। इसका जो कुछ भी कारण रहा हो, किन्तु इतना तो निर्विवाद सिद्ध है कि ये सब काव्य काव्यगुणों में उन छहों काव्यों की कोटि के नहीं हैं। किसी में दुरूहता तथा वाग्जाल अधिक है तो किसी में भारतीय आर्यमर्यादा का सर्वथा प्रतिपालन नहीं है। बौद्ध तथा जैन सम्प्रदाय के धार्मिक ग्रन्थों के समान बौद्ध तथा जैन महाकवियों द्वारा रचित उनके काव्यों का भी उचित सम्मान नहीं हुआ। इसका मुख्य कारण यही रहा कि संस्कृत समाज में सदा से ब्राह्मणों का बाहुल्य रहा, चाहे किसी प्रतिक्रियावश ही क्यों न रहा हो, ब्राह्मणों ने इन काव्यों के पठन-पाठन की परम्परा में कोई सहयोग नहीं किया होगा। यही कारण है कि इन अन्यान्य महाकाव्यों का उचित मूल्यांकन नहीं किया जा सका, वे सदा उपेक्षित ही रहे और आज भी उपेक्षित-से ही हैं। आज भी संस्कृत की परीक्षा-पाठ्य-प्रणालियों में बहुत कम इन्हें स्थान दिया गया है और संस्कृत के पंडित-समाज में भी इनके पठन-पाठन की कोई सुचारु व्यवस्था नहीं है।

उपर्युक्त छहों काव्यों में सबसे दुरूह, जटिल तथा कवि-कल्पना की ऊँची उड़ानों से व्याप्त श्री हर्षकृत नैषधीयचरित तथा उसके बाद माघकृत शिशुपालवध है। भारवि के किरातार्जुनीय तथा कालिदास के तीनों काव्यों जैसी लोकप्रियता यद्यपि इन दोनों को भी नहीं प्राप्त है किन्तु विद्वत्समाज में इन दोनों महाकाव्यों की सर्वमान्य प्रतिष्ठा है।

माघेन विघ्नितोत्साहा नोत्सहन्ते पदक्रमे।
स्मरन्तो भारवेरेव कवय: कपयो यथा॥२॥

[धनपाल]

"सूर्य की किरणो की भाँति जहाँ कविवर भारवि की कविता समग्र ज्ञान को प्रकाशित करने वाली है, वहीं माघ मास के समान माघ का नाम सुनकर किस (कवि) को कँपकँपी नही आ जाती।" तथा "जिस प्रकार माघ महीने के ठिठुरते हुए जाडे में बन्दर लोग सूर्य का स्मरण करते है और चुपचाप रहकर इधर उधर उछल-कूद नही मचाते, उसी प्रकार माघ कवि की रचना का स्मरण करके बडे-बडे कवियो का उत्साह पद-योजना करने मे ठण्डा पड जाता है, चाहे वह भारवि के पदो का कितना ही स्मरण क्यो न करें।"

इन दोनो सूक्तियो मे यद्यपि इनके कर्ताओं का हृदय भारवि की ओर भुका हुआ है, किंतु उनके मस्तिष्क म माघ की धाक धँसी हुई है। इसी प्रकार एक स्थान पर माघ और कालिदास की चर्चा इस प्रकार की गई है—

"पुष्पेषु जाती, नगरीषु काञ्ची, नारीषु रम्भा, पुरुषेषु विष्णु ।
नदीषु गगा नृपतौ च राम काव्येषु माघ कवि कालिदास ॥"

प्रसिद्धि है कि यह श्लोक विक्रम के नवरत्न घटखर्पर का है। जो हो, माघ की इस एक अद्वितीय रचना शिशुपालवध के प्रति सूक्तिकार का आग्रह स्पष्ट है। कविरूप मे कालिदास की समानता करनेवाले माघ कैसे हो सकते थे, जिनकी केवल एक ही रचना सामने आती है, जब कि दूसरी ओर कालिदास ने अपनी रससिद्ध लेखनी जहाँ लगा दी, वह सब का सब काव्य बन गया है। किन्तु इतना तो इससे भी स्पष्ट होता है कि सस्कृत काव्या मे शिशुपालवध का स्थान अद्वितीय है।

शिशुपालवध माघ कवि की एकमात्र रचना है। यद्यपि कुछ स्फुट श्लोकों क रचनाकार के रूप में भी माघ का नाम लिया जाता है, किन्तु शिशुपालवध के अतिरिक्त उनकी अन्य किसी रचना का नाम सामने नही आता। इस एक ही ग्रन्थ के कारण उन्होंने सस्कृत-साहित्य में अपना शीर्षण्य स्थान बना लिया है। यद्यपि माघ के शिशुपालवध की प्रमुख विशेषताओ की सख्या एक-दो नहीं है और सभी प्रकार के काव्य गुणो की अपूर्व छटा इस अनुपम कृति में स्थान-स्थान पर छहरी दिखाई पडती है, किन्तु उनकी एक विशेषता की ओर सबका ध्यान बरबस ही चला जाता है। वह है उसकी शब्दयोजना तथा पदयोजना। न केवल शब्दो तथा पदो के ललित-विन्यास में ही माघ निपुण थे, प्रत्युत नवीन-नूतन श्रुतिमधुर शब्दावली के तो वह मानो शिल्पी ही थे। भट्टि की भाँति व्याकरण के सूत्रो का उदाहरण

बनाने के लिए वे नहीं बैठे थे और न श्रीहर्ष की भाँति जटिल शब्दों को ढूंढ-ढूंढकर पदों में पच्चीकारी करने का ही उन्हें व्यसन था, किन्तु कहा यह जाता है कि कविता के क्षेत्र में माघ ने जितने नूतन शब्दों का प्रयोग किया है, उतना किसी अन्य कवि से अकेले नहीं बन पड़ा है। उनके महाकाव्य शिशुपालवध के संबंध में यह सूक्ति संस्कृत समाज में अति प्रचलित है—

नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते।

—माघकृत शिशुपालवध महाकाव्य का नवसर्ग समाप्त होने पर कोई ऐसा नया शब्द नहीं रह जाता, जिसका प्रयोग कविता के क्षेत्र में कहीं अन्यत्र हुआ हो। इसी प्रकार पद-माधुर्य की निपुणता तो कोई माघ से ही आकर सीख सकता है। उनके पदों में श्रुतिमधुर शब्दों की संगीतात्मक एकरसता, वीणा के तारों की झनकार की भाँति अर्थावबोध की प्रतीक्षा बिना किए ही हृदय को रसाप्लुत बनाती है।

नवपलाशपलाशवनं ततः स्फुटपरागपरागतपङ्कजम्।
मृदुलतान्तलतान्तमलोकयत्स सुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः॥सर्ग ६, २॥
वदनसौरभलोभपरिभ्रमद्भ्रमरसम्भ्रमसम्भृतशोभया।
चलितया विदधे कलमेखलाकलकलोऽलकलोलदृशान्यया॥सर्ग ६, १४॥
मधुरया मधुबोधितमाधवीमधुसमृद्धिसमेधितमेधया।
मधुकराङ्गनया मुहुरुन्मदध्वनिभृता निभृताक्षरमुज्जगे॥सर्ग ६, २०॥
विकचकमलगन्धैरन्धयन् भृंगमालाः सुरभितमकरन्दं मन्दमायाति वायुः
स नवमदनमाद्यद्यौवनोद्दामरामारमणरभसखेदस्वेदविच्छेददक्षः॥सर्ग ११, १९

इन पदों के अनवद्य लालित्य का अनुभव सहृदय पाठक सहज ही कर सकते हैं। अनुप्रास और यमक की छटा छोड़ भी दी जाय तो भी कर्ण-कुहरों में अमृत रस घोलने वाली मधुर शब्दावली ही पर्याप्त काव्यानन्द दे जाती है। श्लेष, यमक और अनुप्रास की रचना में संभवतः माघ के समान सफलता किसी अन्य संस्कृत कवि को नहीं मिली है। उसका कारण यह था कि वे एक प्रकाण्ड महावैयाकरण[1] थे। शब्दों की निरुक्ति और व्युत्पत्ति की अपार क्षमता उनमें थी और जब जैसा प्रयोग उन्हें भाता था, वैसा ही अनायास वे करते भी

---

[1] जैसा कि शिशुपालवध की अनेक हस्तलिखित प्रतियों की पुष्पिका में इस प्रकार लिखा गया है—इति श्रीभिन्नमालवास्तव्य दत्तकसूनोर्महावैयाकरणस्य माघस्य कृतौ शिशुपालवधे ...... इत्यादि।

थे। ऐसा लगता है, जैसे अपने एक एक छन्द को उन्होंने काव्य गुणो के एक-एक ढाँचे में ढाल कर निकाला हो। क्या रस, क्या अलकार, क्या शब्दयोजना और क्या वर्ण्य विषय की अन्विति—किसी भी वस्तु में यही से कोई त्रुटि नही परिलक्षित होती। कविता-कामिनी के सर्वविधि शृगारो को उन्होंने हस्तगत किया था। ध्वनि को ही काव्य का सर्वस्व माननेवालो से लेकर अलकारप्रेमी अथवा शब्दवैचित्र्य या विकट बन्धो (अनुलोम, प्रतिलोम, एकाक्षर, सर्वतोभद्र, गामूत्रिका आदि) के निर्माण में पाडित्य प्रदर्शन करनेवालो तक को सतुष्ट करने की माघ ने अपने काव्य में पूरी सामग्री प्रस्तुत की है। किन्तु क्या मजाल है कि अर्थ, भाव तथा वर्ण्य विषय की अन्विति में कोई बाधा उपस्थित हुई हो। भावो की नवनता, मनोज्ञता तथा रचनाचातुरी की अनुपम छटा उनके महाकाव्य में सर्वत्र दिखायी पडती है।

माघ एक उत्कृष्ट रससिद्ध कवीश्वर थे। यह सत्य है कि कविकुलगुरु कालिदास की भाँति उनकी कविता सर्वसाधारण जनो की मनोभावनी नही हो सकी, किन्तु यह भी स्वीकार करना पडेगा कि समीक्षको की दृष्टि में माघ की महत्ता कालिदास से कम नही है। कालिदास का काव्य यदि स्वच्छ मानसरोवर है, जिसमें

कवि थे तो माघ कवियो के कवि तथा पण्डितो के पथ प्रदर्शक थे। उनकी रचना की छटा निहारने की शक्ति अथवा उससे काव्यानन्द प्राप्त करने की क्षमता साधारण काव्यप्रेमियो से ऊपरी वर्ग के काव्य रसिको में होती है। सचमुच वे माघ महीने की भाँति पण्डितम्मन्य नवयुवकों को भी कँपा देने वाले थे। यही कारण था

[illegible] एकमात्र अनूठी कृति के अनुशीलन [illegible] थे। सस्कृत-समाज में यह किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि—

"मेघे माघे गत वय"

—'कालिदास कृत मेघदूत तथा माघकृत माघकाव्य अथवा शिशुपालवध के अध्ययन एव परिशीलन में ही पूर्ण आयु चली गयी।' ऐसे अगाध रत्नाकर के गुण-दोषो की समीक्षा करना बडे साहस, समय और परिचयचातुरी का काम है।

यह हमारा दुर्भाग्य है कि विदेशी शिक्षापद्धति के कारण विदेशी महाकवियो तथा उनकी कृतियों के सम्बन्ध में तो अथ से लेकर इति तक सब कुछ बता दा

वाले विश्वविद्यालय के विद्यार्थी, विद्वान प्राध्यापक, कवि तथा लेखक अवश्य ही अधिक मिलेंगे किन्तु हिन्दी की जननी सुरभारती के वरद पुत्र संस्कृत के अमर कवियों की कृतियों का नाम तो दूर रहा, स्वयं उन्हीं के नाम से परिचित होने की बात भी हमारे कितने ही कालेज के विद्यार्थी, विद्वान् प्राध्यापक, ख्यातनामा कवि तथा लेखक नहीं बता सकेंगे। हिन्दी के लेखकों, कवियों तथा समालोचकों में बहुधा ऐसे कम लोग मिलेंगे, जो विदेशों के प्राचीन कवियों तथा उनकी कृतियों को चाट न गए हों, किन्तु यदि उनसे पूछा जाय कि अश्वघोष की प्रमुख कृति क्या है तथा माघ के अद्वितीय महाकाव्य का क्या नाम है तो संभवत उनमें से बहुत कम लोग इस बात का उत्तर दे सकेंगे। किन्तु हिन्दी की समृद्धि के लिए अब अधिक दिनों तक यह प्रवृत्ति नहीं चल सकेगी। हिन्दी के साधकों को संस्कृत के इन महान सिद्धों का परिचय लाभ करना ही होगा। और इस प्रकार थोड़ा रुक कर, श्रमपूर्वक उन्हें इस अपनी पुरानी अमूल्य सम्पत्ति का लेखा-जोखा लगा लेने में लाभ ही लाभ होगा।

कथावस्तु

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, शिशुपालवध माघ कवि की एकमात्र रचना है इस विस्तृत महाकाव्य में कवि की महान कवित्व शक्ति तथा अगाध पाण्डित्य का पदे-पदे प्रदर्शन है। यह महाकाव्य बीस सर्गों का है। और इसके छन्दों की संख्या कुल मिला कर १६५० है। इसमें अनेक प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया गया है। वस्तुत यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो संस्कृत का ऐसा एक भी प्रचलित छंद न मिलेगा जिसका प्रयोग माघ ने अपने इस महाकाव्य में न किया हो। संक्षेप में इसकी कथा इस प्रकार है—

भगवान् श्रीकृष्ण द्वारकापुरी में वसुदेव के सदन में विराजमान हैं, वहीं देवर्षि नारद पहुँचते हैं और बातचीत के प्रसंग में वे जन्म-जन्मान्तर से देवताओं के परम विरोधी चेदिनरेश शिशुपाल का नाश करने की प्रेरणा देते हैं। शिशुपाल भगवान श्रीकृष्ण की फुआ का लड़का अर्थात् उनका फुफेरा भाई था। भाई के ऊपर चढ़ाई कर के उसका सत्यानाश करने की बात कुछ अटपटी अवश्य थी किन्तु लोकोत्तर पुरुष श्रीकृष्ण को पूरे भूमण्डल की सुव्यवस्था और शान्ति की चिन्ता थी। बलराम की सम्मति में शिशुपाल पर तुरन्त ही चढ़ाई कर देना उचित था किन्तु मनीषी और राजनीति में निष्णात उद्धव उन्हें कुछ दिन रुक कर किसी अन्य बहाने से शिशुपाल पर चढ़ाई करने की सलाह देते हैं। उद्धव की बात इसलिए और उचित ठहरती है कि ठीक उसी अवसर पर पाण्डुपुत्र धर्मराज युधिष्ठिर

राजसूय यज्ञ का आयोजन कर रहे थे, जिसमें भूमण्डल भर के नरेशों की उपस्थिति समाविष्ट थी और शिशुपाल का आगमन भी उस अवसर पर अवश्यम्भावी था। उद्धव की बात मान ली जाती है और भगवान् श्रीकृष्ण अपनी सेना, सम्मानित पुरजन और परिजनों के साथ इन्द्रप्रस्थ को प्रस्थान करते हैं। मार्ग में उनका सारथी दारुक रैवतक पर्वत का बड़ा मनोहारि वर्णन करता है। रात्रि हो जाने पर सेना उसी पर्वत पर पड़ाव डाल देती है और यदुवंशी लोग प्रकृति सुन्दरी के उस मनोहर प्रांगण में मुक्त विहार करने लगते हैं। सरोवरों में जलक्रीड़ा तथा वन्यभूमि पर वन विहार करने के उपरान्त सूर्योदय होने पर भगवान् श्रीकृष्ण यमुना पार कर सब के साथ इन्द्रप्रस्थ पहुँच जाते हैं। युधिष्ठिर उनकी अग्रिम पूजा कर के उन्हें सम्मानित करते हैं। चेदिनरेश अभिमानी शिशुपाल को श्रीकृष्ण का यह सम्मान सहन नहीं होता और वह इसका प्रत्यक्ष विरोध करता है। इतना ही नहीं, वह श्रीकृष्ण और उनके भक्त पाण्डवों को अपमानित करने के लिए तुरन्त ही अपनी सेना को युद्धार्थ सुसज्जित होने का आदेश देता है और अपने विशेष दूत द्वारा गर्वोक्ति से भरा सदेश भेज कर युद्ध को अनिवार्य बना देता है। फिर तो श्रीकृष्ण और शिशुपाल की विशाल सेना में तुमुल युद्ध छिड़ जाता है और अन्त में भगवान् श्रीकृष्ण अपने सुदर्शन चक्र से शिशुपाल का काम तमाम कर देते हैं और उसका शरीरस्थ तेज उन्हीं में आ कर विलीन हो जाता है।"

काव्य सौष्ठव

बस यही छोटी-सी कथा है, जिसकी घटना पुराणों में अति प्रसिद्ध है। किन्तु इसी छोटी-सी घटना का कवि ने इतना विशद वर्णन किया है कि एक बड़ा विशाल महाकाव्य तैयार हो गया है। इसमें कोई भी बात सीधे-सादे शब्दों में नहीं कही गयी है। कथा के प्रवाह को इस मनोहारी मोड़ों पर ला कर रोका गया है कि पाठक को पता भी नहीं चलता कि वह कहाँ खड़ा है और क्या देख रहा है। जिधर भी उसकी दृष्टि जाती है वह चकित हो जाता है। कोई वर्णन, कोई प्रसंग अथवा कोई भाव साधारण ढंग से नहीं प्रस्तुत किया गया है, यहाँ तक कि कथा का प्रवाह भी जहाँ कहीं आगे बढ़ाया गया है, वहाँ भी अन्योक्ति, व्यंग अथवा किसी अलंकार की मनोहारि छटा है। यही कारण है कि समूचा महाकाव्य आदि से ले कर अन्त तक अत्यन्त प्रभावोत्पादक बन गया है। माघ की भाषा-शैली तथा भाव-व्यंजना की प्रणाली—दोनों ही असाधारण हैं। अन्य कवियों ने जिन प्रसंगों को अछूता छोड़ दिया है, माघ ने उन्हें अपनी प्रतिभा से पर्याप्त सरस किया है। उनकी वर्णन चातुरी, भाव-गम्भीरता, विचारों की गम्भीरता सर्वत्र विद्यमान है। कोई ऐसा स्थल नहीं है जिसमें सुरसता, मार्मिकता तथा आकर्षण का अभाव हो। प्रकृति-

पर्यवेक्षण एव उसके चित्रण की माघ की अपनी शैली है। उनके प्राकृतिक चित्रो में एव विचित्र ढग की माहिनी है, जिसमें प्रकृति सुन्दरी के सहज शृंगारो का भरपूर प्रयोग किया गया है। यद्यपि उन्होंने प्रकृति के सभी उपादानो को अधिकाशत उद्दीपन विभाव के रूप म ही ग्रहण किया है किन्तु घन, पर्वत, नदी, वृक्ष, लता, सध्या, उषा, सूर्योदय, सूर्यास्त, चन्द्रोदय, चन्द्रास्त, सरोवर, कुज, उपवन, हरीतिमा, प्रकाश, अन्धकार आदि की विशेषताओ तथा भिन्न भिन्न ऋतुओ में फूलने वाले पुष्पो का इतना सूक्ष्म चित्रण किया है कि पाठक उनके वर्णनों में चित्र देखने जैसा आनन्द प्राप्त करता है। साथ ही उनके ऐसे वर्णनो में भिन्न भिन्न अलकारो की ऐसी सजीवता पाई जाती है जो अन्यत्र दूसरे काव्यो में बहुत कम मिलती है।

माघ का कोई भी वर्णन अलकारविहीन नही है। अलकारो के बिना तो वे जैसे चल ही नही पाते। इस कथन का तात्पर्य यह नही है कि उन्होने हिन्दी के आचार्य कवि केशवदास की भाँति अलकारो को ठूस-ठूस कर छन्दो के मत्थे मढा है और वर्ण्य विषय को उससे मन्थर तथा अशोभन बना दिया है, प्रत्युत इसके विपरीत उनके अलकारो की मनोहारी छटा वर्ण्य विषय को जीवन्त करने के साथ-साथ कविता-कामिनी के सौन्दर्य को कई गुना बढा देती है—

नवकुकुमारुणपयोधरया स्वकरावसक्तरुचिराम्बरया।
अतिसक्तिमेत्य वरुणस्य दिशा भृशमन्वरज्यदतुषारकर ॥
गतवत्यराजत जपाकुसुमस्तबकद्युतौ दिनकरेऽवनतिम्।
बहलानुरागकुरुविन्ददलप्रतिबद्धमध्यमिव दिग्वलयम् ॥
द्रुतशातकुम्भनिभमशुमतो वपुरर्धमग्नवपुष पयसि।
रुरुचे विरिञ्चिनखभिन्नबृहज्जगदण्डकैकतरखण्डमिव ॥सर्ग ९, ७-९॥

—सन्ध्या हो जाने पर पश्चिम दिशा नवीन कुकुम के समान लाल-लाल बादलो से व्याप्त हो गयी और उधर आकाश भी सूर्य की किरणो से व्याप्त हो कर अत्यन्त सुन्दर हो गया।[1] सूर्य भी उस दिशा में जा कर अत्यन्त लाल (अनुरक्त) हो गये और उनकी शोभा जवाकुसुम के पुष्पो के गुच्छो की कान्ति के समान हो गयी। इस प्रकार सूर्य के अस्तोन्मुख हो जाने पर समस्त दिङ्मण्डल ऐसा सुशोभित

---

१ यह तो एक अर्थ हुआ, समासोक्ति का चमत्कार लीजिए—उष्णरश्मि भास्कर नूतन कुकुम से अनुरजित लाल वर्ण के पयोधरोंवाली, अपने हाथ से पकडे हुए वस्त्र से सुशोभित, वरुण की दिशा अर्थात् (पर स्त्री) पश्चिम दिशा के साथ अत्यत आसक्त होकर अनुरक्त हो गया।

। क्षगमयमुपविष्ट' क्ष्मातलन्यस्तपादः प्रणतिपरमवेक्ष्य प्रीतिमह्राय लोकम्।
भुवनतलमशेष प्रत्यवेक्षिव्यमाण क्षितिघरतटपीठादुत्थितः सप्तसप्तिः॥
सर्ग ११ श्लोक ४८।

"लोगो के देखते-देखते ही सूर्य की किरणें धरती पर छा गयी। ऐसा लगता। मानो, सूर्य भगवान् कुछ देर के लिए पृथ्वी पर पैर लटका कर उदयाचल रूपी सिंहासन पर विराजमान है। इधर ससार के जीव उनका ऐसा भव्य दर्शन पाकर प्रसन्न हो उठे हैं और उन्हें प्रणाम करने लगे है, यह देख कर उन्हे सम्पूर्ण धरतीतल को एक बार घूम कर देख आने की लालसा हो गयी है। मानो इसी कारण से वे अपने उदयाचल रूपी सिंहासन से उठ खडे हुए हैं।" प्रजाहितैषी राजा महाराज लोग ठीक इसी प्रकार करते ही है। थोड़ी देर तक प्रजाजन को दर्शन देने के लिए सिंहासन पर नीचे की ओर पैर रख कर विराजमान होते हैं और फिर थोड़ी देर तक प्रजा का प्रणाम ग्रहण कर अपने सम्पूर्ण राज्य का दौडा करने के लिए उठ खड़े होते है।

इसी प्रकार माघ का प्रकृति वर्णन सर्वत्र अलकारो से विभूषित है। कोई भी दृश्य बिना किसी नवीनता के नहीं चित्रित किया गया है। वृक्षो, लताओं, पर्वतो और नदियो के वर्णनो में उन्होंने उद्दीपन विभाव की चरम अभिव्यक्ति की है। शृगार रस के तो वे सिद्धहस्त कवि थे। उनका वन विहार तथा जल क्रीडा वर्णन अपने ढग का अनूठा है। यद्यपि ये स्थल अश्लीलता के दोष से सर्वथा मुक्त नही है किन्तु यह अश्लीलता कही भी रोगग्रस्त नही है। कवि सर्वत्र उससे मुक्त दिखायी पड़ता है और पाठक भी मुक्त दृष्टि से ही उसे ग्रहण करते है।

माघ के मानवीय आचार-विचार शास्त्रानुमोदित तथा भारतीय परम्परा से अनुप्राणित थे। कहीं भी उन्होंने शिष्टाचरण का अतिक्रमण नही किया है और न उनके किसी पात्र में ही इसका दुर्लक्षण है। उनके चरित्र सजीव तथा स्वाभाविक है। अतिमानवता के दुराग्रह में फँस कर उन्होने अपने आदर्श चरित्रों को आकाश में नही उडाया है और न किसी कल्पना के द्वारा उन्हे धरती के पुतलो से दूर करने का यत्न किया है। यह सत्य है कि उनके 'महाकाव्य' के नायक भगवान् श्रीकृष्ण है, जिन्हें उन्होंने लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु का सोलह कलाओं से पूर्ण अवतार माना है, किन्तु सुप्रसिद्ध पौराणिक दन्तकथाओं अथवा दैवी सम्पदाओ से समृद्ध कर के उन्हें मानव कोटि से उन्होंने अत्यन्त ऊपर नही बैठाया है।

माघ केवल एक सिद्धहस्त कवि ही नही थे, प्रत्युत वे एक सर्वशास्त्रतत्त्वज्ञ प्रकाण्ड पण्डित भी थे। उनकी जैसी बहुज्ञता तथा बहुश्रुतता अन्य सस्कृत कवियों में कम मिलती है। भिन्न भिन्न शास्त्रो की छोटी-से-छोटी बातों का जिस निपुणता एवं

सुन्दरता के साथ उन्होंने वर्णन किया है, उससे ज्ञात होता है कि उन सब पर उनका असाधारण अधिकार था। संस्कृत साहित्य के किसी अन्य काव्यग्रन्थ में विविध शास्त्रीय एवं लौकिक विषयों पर इस प्रकार साधिकार रचना करने की सफलता अकेले माघ को ही मिली थी। दर्शन, राजनीति, कूटनीति, सामाजिक जीवन, धर्मशास्त्र, आयुर्वेद, ज्योतिष, संगीत, गज एवं अश्व शास्त्र तथा युद्धविज्ञान, मंत्र, पुराण, गाथा, वर्णाश्रममर्यादा, अलंकार एवं छन्दशास्त्र—इन सब पर उनका यथेष्ट अधिकार था। यद्यपि वे सनातन धर्मानुयायी थे किन्तु नास्तिक दर्शनों की सूक्ष्म-से-सूक्ष्म बातों की भी उन्हें अच्छी जानकारी थी और उन सब पर पूर्ण सहानुभूति भी थी। वेदों से लेकर पुराणों एवं स्मृतियों तक पर उनका पूर्ण अधिकार था, साथ ही व्याकरण के तो वे प्रकाण्ड पण्डित ही थे। पुरोहित-कर्म एवं यज्ञ-दीक्षा आदि कर्मकाण्डों के सम्बन्ध में भी उनकी जानकारी एक अधिकारी जैसी थी।

माघ की मान्यताएँ

आस्तिक दर्शनों में से यथावसर उन्होंने जो प्रसंग लिए हैं, उन्हें अच्छी तरह पल्लवित भी किया है। विशेषकर सांख्य के तत्त्वों की चर्चा तो उन्होंने अनेक स्थलों पर की है। इसी प्रकार बौद्ध दर्शन की कुछ बातों की भी अनेक स्थलों पर चर्चा की गयी है। प्रथम सर्ग में देवर्षि नारद ने भगवान् श्रीकृष्ण की जो प्रार्थना की है वह सांख्य शास्त्र के अनुसार है। इसी प्रकार चौदहवें सर्ग में राजसूय यज्ञ के प्रकरण में सांख्य मत की उपमा देते हुए युधिष्ठिर के लिए बताया है कि वे स्वयं कुछ कार्य नहीं कर रहे थे—पुरोहित ही उनका सब कार्य कर रहे थे।

उदासितारं निगृहीतमानसैर्गृहीतमध्यात्मदृशा कथञ्चन।
बहिर्विकारं प्रकृतेः पृथग्विदुः पुरातनं त्वां पुरुषं पुराविदः[1] ॥१।३३।
तस्य सांख्यपुरुषेण तुल्यतां बिभ्रतः स्वयमकुर्वतः क्रियाः।
कर्तृता तदुपलम्भतोऽभवद् वृत्तिभाजि करणे यथर्त्विजि[2] ॥१४।१९॥

१—देवर्षि नारद कहते हैं—योगी लोग अपनी चित्तवृत्तियों को अन्तर्मुखी कर के अध्यात्मवृष्टि से किसी प्रकार आपका दर्शन करते हैं। ये आपको संसार से उदासीन, महद् आदि विकारों से पृथक्, सत्त्व, रजस्—इन तीनों गुणों से लिप्त त्रिगुणात्मिका प्रकृति से भिन्न विज्ञानघन अनादि पुरुष के रूप में जानते हैं। इस प्रकार का मत कपिल आदि ऋषियों का है।

२—जिस प्रकार सांख्य के मत में पुरुष अपने आप पुण्य-पाप आदि कोई काम नहीं करता, बुद्धि ही सब कार्य करती है, तब भी पुरुष उन सब कार्यों का साक्षी

मीमासा और वैशेषिक दर्शन की चर्चा भी इसी राजसूय यज्ञ के प्रसग में की गयी है और उनके सिद्धान्तो का विश्लेषण भी हुआ है। चौदहवें सर्ग में राजसूय यज्ञ के प्रकरण में व्याकरण, वेद, कर्मकाण्ड एव दान की छोटी-छोटी बातो की चर्चा की गयी है। उनसे मालूम पड़ता है कि कवि ने अपने जीवन में किसी विशाल यज्ञ का समारम्भ एव समावर्तन समारोह सम्पन्न किया था। राजसूय यज्ञ में दान के मार्मिक प्रसगो को स्वय माघ ने अपनी सहृदयता से अत्यन्त उज्ज्वल तो बना ही दिया है, साथ ही युधिष्ठिर के पावन चरित में भी चार चाँद लगा दिये है—

निर्गुणोऽपि विमुखो न भूपतेर्दानशौण्डमनस पुराभवत्[1]।
वर्षुकस्य किमप कृतोन्नतेरम्बुदस्य परिहार्यमूषरम् ॥
प्रेम तस्य न गुणेषु नाधिक न स्म वेद न गुणान्तर च स ।
दित्सया तदपि पार्थिवोऽर्थिन गुण्यगुण्य इति न व्यजीगणत्[2] ॥

सर्ग १४।४६, ४७॥

इसी प्रकार योगशास्त्र विषयक प्रवीणता के लिए कवि के निम्नलिखित दो श्लोक पर्याप्त है।

मैत्र्यादिचित्तपरिकर्मविदो विधाय क्लेशप्रहाणमिह लब्ध सबीज योगा ।
ख्याति च सत्त्वपुरुषान्यतयाऽधिगम्य वाञ्छन्ति तामपि समाधिभृतो निरोद्धुम्[2] ॥

सर्ग ४।५४।

होता है और यही कर्त्ता कहलाता है, उसी प्रकार महाराज युधिष्ठिर उस राजसूय यज्ञ में यद्यपि कोई कार्य नहीं कर रहे थे, पुरोहित लोग सब कार्य कर रहे थे, और युधिष्ठिर उन सब का देख भाल रहे थे, अत यही उस यज्ञ के कर्त्ता थे।

१—दानशूर युधिष्ठिर ने विद्या, तप आदि से शून्य निर्गुण याचकों को भी खाली हाथ नहीं जाने दिया, क्योंकि जल बरसाने वाला मेघ क्या कभी ऊसर को छोड कर वृष्टि करता है? इस बात से यह नहीं समझना चाहिए कि महाराज युधिष्ठिर गुणग्राही नहीं थे अथवा उन्हें गुणों का पारस्परिक अन्तर नहीं ज्ञात था—यह बात नहीं थी, बल्कि बात यह थी कि निरन्तर दानशीलता में लगे रहने के कारण उन्हें इस बात का भी ध्यान नहीं था कि प्रार्थियों में कौन गुणी है और कौन निर्गुण।

२—यह प्रसग रैवतक वर्णन का है। इस रैवतक गिरि पर समाधि धारण करने वाले योगी जन मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा—इन चारो चित्त की

सर्वं वेदिनमनादिमास्थित देहिनामनुजिघृक्षया वपु'।
क्लेशकर्मफलभोगवर्जितपुंविशेषममुमीश्वर विदु ।।सर्ग १४।६२

प्रथम श्लोक में प्रयुक्त 'मैत्र्यादि' 'चित्त परिकर्म', 'सबीजयोग', सत्त्वपुरुषान्यतास्याति', 'क्लेश' आदि योगशास्त्र की पारिभाषिक शब्दावली है तथा द्वितीय श्लोक में योगशास्त्र के सिद्धान्तो की दृष्टि से परमात्मा की विशिष्ट सज्ञाओ अथवा विशेषणो की चर्चा की गयी है। यहाँ ज्ञानी पुरुष से कवि का तात्पर्य योगी पुरुष से है।

अद्वैत वेदान्त के तत्त्वो का प्रतिपादन तो अनेक स्थलो पर है। ससार को मिथ्या माया मान कर ब्रह्म अथवा परमात्मा को ही एकमात्र सत्य मानने की चर्चा तथा केवल ब्रह्म-ज्ञान प्राप्ति की साधना एव मोक्ष प्राप्ति की आकाक्षा को कवि ने अनेक स्थलो पर प्रकट किया है। वेदान्त की कुछ अन्यान्य सिद्धान्त-परक बातो की भी उन-उन अवसरो पर चर्चा आयी है। इस सम्बन्ध में एक ही प्रसग उद्धृत कर देना पर्याप्त है।

ग्राम्यभावमपहातुमिच्छवो योगमार्गपतितेन चेतसा।
दुर्गमेकमपुनर्निवृत्तये य विशन्ति वशिन मुमुक्षव ॥ १४ सर्ग ६४॥

नास्तिक दर्शनों में बौद्धमत की चर्चा अनेक अवसरो पर की गयी है तथा जैन मत के आदि प्रवर्तक महावीर स्वामी के प्रति भी एक स्थान पर आदर व्यक्त किया गया है। यहाँ यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि कवि ने पुराणवादियो की भाँति महावीर स्वामी को भी भगवान् विष्णु का एक अवतार स्वीकार किया है।

शोधक वृत्तियो को भली भाँति जान कर एव अविद्या, अस्मिता, राग-द्वेष और अभिनिवेश—इन पाँचों क्लेशो को दूर कर, बीज युक्त योग को प्राप्त कर एव प्रकृति तथा पुरुष की ख्याति अर्थात् ज्ञान को पृथक्-पृथक् रूप में जान कर उस 'ख्याति' को भी दूर करने की अभिलाषा करते हैं।

१—यह प्रसग उस समय का है, जब राजसूय यज्ञ में भीष्म भगवान् श्रीकृष्ण की प्रथम पूज्यता के संबध में युधिष्ठिर का समाधान करते हैं—'ये भगवान् श्रीकृष्ण सवज्ञ, अनादि, अनन्त, ससार के प्राणियों पर अनुग्रह करने की भावना से शरीर धारण करने वाले, अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश-क्लेशों से रहित, पाप और पुण्य के फल भोग से रहित, ईश्वर और परम पुरुष हैं। इन्हें इन्हीं रूपों में ज्ञानी पुरुष जानते हैं।'

२—मोक्ष की आकाक्षा करने वाले अपने अज्ञान को नष्ट करने की इच्छा से, योगाराधन में चित्त लगा कर दुर्जेय और अद्वितीय परमेश्वर में प्रवेश कर जाते है।

सर्वकार्यशरीरेषु मुक्त्वाऽङ्गस्कन्धपञ्चकम् ।
सौगतानामिवात्माऽन्यो नास्ति मन्त्रो महीभृताम्[1] ॥सर्ग २।२६॥

इस एक ही श्लोक में कवि ने बौद्ध दर्शन की स्थूल बातों के साथ राजनीति की सूक्ष्म बातों की सुन्दर चर्चा कर दी है। मीमांसा शास्त्र की निपुणता निम्नलिखित दो श्लोकों से ज्ञात होती है।

प्रतिशरणमशीर्णज्योतिरग्न्याहितानां विधिविहितविरिब्धं सामिधेनीरधीत्य
कृतगुरुदुरितौघध्वंसमध्वर्युवर्यैर्हुतमयमुपलीढे साधु सान्नाय्यमग्निः[2]॥
सर्ग ११।४१॥

शब्दितामनपशब्दमुच्चकैर्वाक्यलक्षणविदोऽनुवाक्यया ।
याज्यया यजनकर्मिणोऽत्यजन् द्रव्यजातमपदिश्य देवताम्[3] ॥
सर्ग १४।२०॥

परिचयचारुता

संगीत एवं अन्यान्य उपयोगी ललित कलाओं की सूक्ष्म बातों की चर्चा अनेक जगह की है। गायन, वाद्य, स्वर, ताल, लय आदि के सम्बन्ध में कवि की अधिकारपूर्ण उपमाएं एवं उक्तियाँ सिद्ध करती हैं कि संगीत शास्त्र पर उसका साहित्य शास्त्र के समान ही असाधारण अधिकार था। इसी प्रकार नृत्यकला तथा नाट्यकला पर—

१—बौद्ध मत के अनुयायी आत्मा नाम की कोई वस्तु नहीं मानते। वे शरीर को पांच स्कन्धों से युक्त मानते हैं—रूप, वेदना, विज्ञान, संज्ञा और संस्कार। इन पांच स्कन्धों के अतिरिक्त जिस प्रकार शरीर में आत्मा नाम की कोई वस्तु नहीं है उसी प्रकार राजाओं के लिए अंग-पंचक युक्त मंत्र के अतिरिक्त किसी भी कार्य में कोई अन्य मंत्र नहीं है। वे पांचों अंग ये हैं—सहाय, साधनोपाय, देशकाल-विभाग, विपत्ति प्रतीकार तथा सिद्धि। तात्पर्य यह है कि राजा को बौद्धों के पांचों स्कन्धों की भांति केवल इन अंग-पंचकों की ही चिन्ता रखनी चाहिए।

२—वह अग्नि अग्निहोत्र करने वाले प्रत्येक द्विज के घर में जल रही थी। उसमें श्रेष्ठ पुरोहित लोग शास्त्रीय रीति से उदात्त, अनुदात्त और स्वरित स्वरों का ध्यान रख कर अग्नि प्रज्वलित करने वाले मंत्रों का पाठ करते हुए सम्यक् प्रकार से आहुति डाल रहे थे और अग्नि उसका आस्वादन कर रही थी। अग्नि का यह आस्वादन गुरुतर पाप-समूहों को नष्ट कर रहा था।

३—मीमांसा शास्त्र के पारंगत पुरोहित गण अपभ्रंश शब्दों को त्याग कर आवाहनमंत्रों के द्वारा उच्च स्वर से इन्द्र आदि देवताओं को आवाहित कर उनके उद्देश्य से याज्या-मंत्रों द्वारा हवन करने योग्य सभी द्रव्यों की आहुति देने लगे।

भी उसने अधिकार प्राप्त किया था। कवि की संगीत की निपुणता निम्नलिखित दोनो श्लोको से प्रकट होती है —

> रणद्भिराघट्टनया नभस्वतः पृथग्विभिन्नश्रुतिमण्डलैः स्वरैः ।
> स्फुटीभवद्ग्रामविशेषमूर्च्छनामवेक्षमाणं महतीं मुहुर्मुहुः[1] ॥सर्ग १।१०॥
> श्रुतिसमधिकमुच्चैः पञ्चमं पीडयन्तः सततमृषभहीनं भिन्नकीकृत्य षड्जम्।
> प्रणिजगदुरकाकुश्रावकस्निग्धकण्ठाः परिणतिमिति रात्रेर्मागधा माधवाय[2] ।
> सर्ग ११।१॥

नीचे के श्लोको में श्लेष की सुंदर छटा के साथ साथ कवि ने अपने नाट्य शास्त्रीय ज्ञान का जो परिचय दिया है वह उच्चकोटि का है —

> यमतस्तनिमानमानुपूर्व्या बभुरक्षिश्रवसो मुखे विशालाः ।
> भरतज्ञकविप्रणीतकाव्यग्रथिताङ्का इव नाटकप्रपञ्चाः ॥[3]सर्ग २०।४४॥

१—नारद जी अपनी उस महती नामक वीणा को बार बार देखते हुए आ रहे थे, जिसमें से वायु के आघात से पृथक्-पृथक् निकलने वाले स्वरो से तथा उनके अनुरणन अर्थात् गुंजार से निकलने वाली श्रुतियों के समूह एवं सा रे ग म प ध नी आदि सातो स्वरों के तीनों ग्राम तथा उनकी विशेष प्रकार की इक्कीस मूर्छनाएं अपने आप प्रकट हो रही थीं।

२—श्रुतियो का पाठ करने वाले मागध गण अनेक श्रुतियों से युक्त षड्ज स्वर को छोड कर तथा पंचम स्वर एवं ऋषभ स्वर को त्याग कर उच्च स्वर में गाते हुए रात्रि के बीतने की सूचना भगवान् श्रीकृष्ण को देने लगे। उस समय उनका वह मधुर स्वर दूर दूर तक सुनाई पडता था और उसमें कोई भी विकार नहीं था। उनके उस गान के साथ वीणा आदि वाद्य भी बज रहे थे। आचार्य भरत के मतानुसार प्रभात-काल के गीत की जैसी विशेषताएं होनी चाहिए, कवि ने उन सब की ओर इन में संकेत किया है।

३—भरत मुनि प्रणीत नाट्यशास्त्र को भली भांति अधिगत करने वाले कवि लोग जिस प्रकार किसी उपाख्यान को ले कर नाट्य की रचना करते हैं और उसके अंशों को मुख की ओर विस्तार युक्त तथा पीछे की ओर क्रमशः संक्षिप्त रखते जाते हैं उसी प्रकार युद्धभूमि में छोड़े गये वे सब बाण मुख की ओर मोटे तथा पीछे की ओर क्रमशः सूक्ष्म दिखायी पड रहे थे।

तथा स्वादयन रसमनेकसंस्कृतप्राकृतैरकृतपात्रसंकरं ।
भावशुद्धिविहितैर्मुदं जनो नाटकैरिव बभार भोजनैः¹॥ सर्ग १४।४०

कवि की राजनीतिज्ञता के सम्बन्ध में तो उसके अपने महाकाव्य के उद्धरणों से एक छोटी-मोटी पुस्तिका प्रस्तुत की जा सकती थी। राजा के छोटे-मोटे कर्तव्यों से लेकर उसकी सेना की छोटी-छोटी बातों तक का उसे पूरा पता था। सन्धि-विग्रहादि गुणों के प्रयोगों के अवसरों पर उसने अपनी युक्तियों तथा परस्पर विरोधी तर्कों से उन्हें इतना सुगम बना दिया है कि उसकी सूझ-बूझ पर विस्मित होना पड़ता है। उद्धव और बलराम के मुख से तथा युधिष्ठिर और भीष्म के मुख से भी उसने राजनीति की जटिल से जटिल समस्याओं पर ऐसे उपादेय हल प्रस्तुत किये हैं जो आज प्रजातन्त्र के युग में उसी प्रकार से प्रयोग में लाये जा सकते हैं। प्रजा की सर्वविध हित रक्षा और राजा के विशद व्यापक अधिकारों को ध्यान में रखते हुए उसने जिस राजतन्त्र की समर्थिका राजनीति की चर्चा अपने महाकाव्य में की है वह भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति की परम्परा के सर्वथा अनुकूल ही है। राजनीति की जटिल गुत्थियों पर उसने जो प्रसंगगत विचार प्रकट किए हैं उससे ज्ञात होता है कि उसका यह ज्ञान कोरा किताबी ज्ञान नहीं था। शिशुपालवध का द्वितीय सर्ग कवि की राजनीतिज्ञता का अच्छा निदर्शक है। राजनीतिक दाव-पेचों की ऐसी कोई चाल उसमें नहीं छूटने पायी है जिसकी कमी की ओर हमारा ध्यान जा सके। परस्पर विरोधी विचारों को आमने-सामने रख कर उसने उचित पक्ष के निर्णय का जो प्रसंग उपस्थित किया है उसमें पाठकों को भी दैनिक कार्यों में आवश्यक राजनीति का अपेक्षित ज्ञान हो जाता है।

१—जिस प्रकार दर्शक लोग नाटकों को देखते समय शृंगार आदि नवों रसों का अनुभव करते हुए आनन्द प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में आये हुए लोग भोजन करते समय मधुर अम्ल आदि छहों रसों के व्यञ्जनों का आस्वादन कर आनन्द प्राप्त कर रहे थे। नाटकों में जिस प्रकार संस्कृत, प्राकृत अनेक भाषाओं का व्यवहार होता है, उसी प्रकार उस यज्ञ के भोज्य पदार्थों में भी बहुत से पदार्थ संस्कृत अर्थात् पकाये गये थे और कुछ प्राकृत अर्थात् वैसे ही कच्चे खाये जा रहे थे। जिस प्रकार नाटक में एक पात्र का अभिनय कोई दूसरा पात्र नहीं करता उसी प्रकार भोजन में एक पात्र से दूसरा पात्र नहीं मिलता था। नाटक में जैसे शुद्ध स्थायी भाव रहता है, उसी प्रकार उस यज्ञ के भोज्य पदार्थों में भी स्वाभाविक शुद्धि थी।

सम्पदा सुस्थि
कृतकृत्यो विधि तस्य ताम् ॥[1] २।३३॥
विपक्षमखिलीकृत्य लु दुलभा।
अनीत्वा पकतां धूलि यतिष्ठते ॥[2] २।३४॥
विधाय वैरं सामर्षे न उदासते।
प्रक्षिप्योदर्चिषं कक्षे समारुतम् ॥[3] २।४२॥
पादाहतं यदुत्थाय मूर्द्धा ति।
स्वस्थादेवापमानेऽपि देहि रज[4] ॥२।४६॥

राजनीति के पारिभाषिक शब्दो का ने अनेक अवसरों पर प्रयोग किया है छ गुण, तीन शक्ति, तीन उदय आदि पारिभाषिक शब्दों की चर्चा इन श्लोकों में देखिए —

षड्गुणा शक्तयस्तिस्र सिद्ध य । सर्ग २।२६॥
सर्वकार्यशरीरेषु मुक्तवागस्क ॥ सर्ग २।२८॥

कुछ दूसरे पारिभाषिक शब्दों को

उदेतुमत्यजन्नीहां राजसु ।
जिगीषुरेको दिनकृदादित्येषि न ॥[5] २।८१॥

१—जो मनुष्य थोडी-सी सम्पत्ति पा अपने को सुस्थिर या निश्चिन्त मान लेता है, उसकी उस स्वल्प सम्पत्ति को भी नहीं बढाता है—ऐसा मैं मानता हूँ।

२—शत्रु का समूल नाश किये बिना प्रति दुर्लभ है। जल धूल को कीचड़ बनाये बिना नहीं रुक सकता।

३—जो मनुष्य पहले ही से रुष्ट हुए शत्रु के कर उसकी उपेक्षा करता है अथवा उसकी ओर से उदासीन हो जाता के सम्मुख तिनकों के समूह में आग लगा कर सोता है।

४—जो धूल पैर से आहत होने पर उड़ कर वाले के सिर पर चढ़ जाती है, वह अपमान होने पर भी चकित मनुष्य से अच्छी ही है।

५—बारह प्रकार के राजाओं के मध्य में विज राजा अकेला होने पर भी बारहों आदित्यों के मध्य में दिनकर सूर्य को म को न छोड़ने

| चारेक्षणो -

सेना के विभागो तथा ~
युद्धक्ला अथवा शस्त्रास्त्रो की
ज्ञात थ । अठारहवें उन्नीसवें
इस विषय के परिपक्व ज्ञान
के लक्षणो से लवर उनके
भी हैं। युद्धस्थल का ऐसा
दुर्लभ है। खच्चरो और ऊँ ।
की भी चर्चा की गयी है।
तथा उपयोगी औषधियो ७
गुण दोषो की भी उसे ~
अश्वों के सम्बन्ध में जो
होने का पर्याप्त प्रमाण

आरट्टजश्चट्टुर्ल ९९

पर्यन्य ॥।'२१८२॥

साथ-साथ दुर्गरचना, अभियान,
अच्छे अच्छे गुण कवि को बखूबी
सर्ग के २७९ श्लोको में कवि के
८ मिलता है। गजा और अश्वो
छोटी-से-छोटी बातो की चर्चा कवि ने
विपुल वणन सस्कृत काव्यो में अन्यत्र
। और भैसो के स्वभावो तथा कार्यों
~ के लिए इन सब के खाद्य पदार्थों
चर्चा है। अश्वा तथा गजा के भेदो तथा
न५।८। रही। नीचे के दो श्लोका में उसने
उसके शालिहोत्री (अश्वशास्त्रनिष्णात)

नविध। । नियुक्त ।
~ सहार पदमधपलायितेन' ॥५ सर्ग १०॥

हुए अपनी उन्नति में सहर्ष तत्पर । बारह प्रकार के आदित्यों की भाँति बारह राजा ये होने हैं—श[illegible] का मित्र, मित्र का मित्र, शत्रु के मित्र का मित्र पार्ष्णिग्राह (अपने पीछे [illegible] पहुँचाने के लिए स्वय आने वाला), पार्ष्णिग्राहासार (अपने पक्ष में सहायत[illegible] लाया हुआ राजा), आक्रन्दासार (शत्रु के पक्ष में सहायतार्थ बुलाया [illegible] विजिगीषु अर्थात विजयाभिलाषी, मध्यम तथा उदासीन। इन बार[illegible] में विजयाभिलाषी ही अपनी उत्साह-शक्ति से उदय प्राप्त करता है[illegible] बारहो में से पाँच प्रथम सम्मुख या पुरस्सर तथा चार पृष्ठगामी एव मध्य[illegible] उदासीन—ये स्वतत्र रहते हैं ।

१—जिसका [illegible] है, जिसके अग स्वामी एव अमात्य आदि राज्याग है, जिसका कवच [illegible] की सुरक्षा है, जिसके नेत्र गुप्तचर है, जिसका मुख सदेशग्राहक दूत है [illegible] जा कोई अलौकिक पुरुष ही है' अर्थात् इस लोक में रहते हुए भी इ[illegible] से [illegible] वन यह अलौकिक पुरुष है।

२—'तीव्र [illegible] नेवाली लगाम को थामने में सावधान एव उत्तम, मध्यम और [illegible] तीनो प्रकार की चाबुका के प्रयोगो को जाननेवाले

तथा—

अव्याकुलं प्रकृतिमुत्तरधेयकर्मधाराः प्रसाधयितुमव्यतिकीर्णरूपा ।
सिद्धं मुखे नवसु वीथिषु कश्चिदश्वं वल्गाविभागकुशलो गमयाम्बभूव ॥

सर्ग ५।६०॥

इसी प्रकार हाथियो के सम्बन्ध म निम्नलिखित तीन श्लोक उसके गज-सम्बन्धी गहरे ज्ञान का विशेष परिचय देते हैं—

गण्डूषमुज्झितवता पयसः सरोषं नागेन लब्धपरवारणमारुतेन ।
अम्भोनिधौ (?) पृथुप्रतिमानभागरुद्धोरुदन्तमुसलप्रसरं निपेते ॥

सर्ग ५।३६॥

स्तम्भं महान्तमुचितं सहसामुमोच दानं ददावतितरां सरसाग्रहस्तः ।
बद्धापराणि परितो निगडान्यलावीत् स्वातन्त्र्यमुज्ज्वलमवाप करेणुराजः ॥

घुडसवारों से भलीभाँति हाँके गये ऊँचे, आरट्ट अर्थात अरब देश में उत्पन्न घोडे अपने विचित्र पाद विक्षेप द्वारा कभी अत्यन्त चचल और कभी कठोर भाव से मण्डलाकार गति विशेष से चल रहे थे।' इसमें घोडे की गति एव चाबुक के लक्षणों की शास्त्रीय बातो की चर्चा की गयी है।

१—लगाम के नियत्रण में कुशल एक घुडसवार अव्यग्र अर्थात् शान्त स्वभाववाले भली भाँति सुसज्जित एव मुखकर्म अर्थात् छहो दिशाओ मे मुख करने में प्रवीण एक अश्व को युद्धादि के उत्तर काल में करने योग्य कार्यों के लिए असकीर्णरूपा अर्थात् सरपट नामक विशेष गति को सिखाने के लिए नयो प्रकार की वीथियों का अभ्यास कराने लगा।

२—दूसरे गजराज के मद की सुगन्ध पाकर एक गजराज क्रोध के साथ अपने मुखस्थ जल को बाहर फेंक कर समुद्र तट पर मसल के समान दोनों विशाल दांतों के प्रहार करने के वेग को निरुद्ध करते हुए कोई अवरोधक न होने के कारण स्वय गिर पडा।

३—एक गजराज ने अनियत्रित स्वच्छन्दता प्राप्त की। उसने अपने चिर परिचित महान् स्तभ को एकाएक तोड दिया। हस्त (शुण्ड) के अग्रभाग को आर्द्र (गीला) करके प्रचुर मात्रा में दान दिया अर्थात् मद जल गिराया, तथा चारो ओर से पिछले पैरो को बांधने वाली बेडियो को तोड डाला। गजराज की भाँति राजा भी इसी प्रकार की उज्ज्वल स्वतत्रता प्राप्त करता है। वह भी अपने बधनों को तोडता है, हाथ में जल लेकर ब्राह्मणों को दान करता है तथा कारागार में पडे हुए शत्रुओं की बेडिया काट देता है।

जन्ने जनैर्मुकुलिताक्षमनादवाई सरक्तहस्तिपकनिष्ठुरचोदनाभि ।
गम्भीरवेदिनि पुर कवल करेन्द्रे मन्कृपि नाम न महानवगृह्य साध्य ॥[1]
सर्ग ५।४८-४९॥

ऊँटा तथा जगली साँड और बैलो की प्रकृति का कवि न इतना स्वाभाविक और सुन्दर वर्णन किया है कि उसमें रखाचित्र प्रस्तुत करन की पूर्ण क्षमता है। दूध दुहते हुए गोपो, खत की रखवाली करनवाली गृहस्थ रमणियो, हाथी, घोडा, ऊँट और खच्चर हाँकनवाले राजकर्मचारियो क चित्रण में एव उनकी विभिन्न चेष्टाओ के वर्णन में कवि ने चित्रकार का भी चुनौती दे दी है। सचमुच कवि है। इन बाता से यह भी पता लगता है कि उसका चित्रकला पर भी अच्छा अधिकार था। एकाध स्थल पर चित्रकला सम्बन्धी स्फुट प्रसगो की चर्चा करके कवि ने अपन इस विषय के ज्ञान का भी परिचय दिया है।

और कवि के साहित्य के विभिन्न अगा—रस सिद्धान्त, छन्द और अलकारा की सिद्धहस्तता का कहना ही क्या है? यह सब तो कवि का अपना अधिकृत क्षेत्र है। जिधर से उसकी इच्छा हुई है, प्रसग आरम्भ कर दिया और जिधर से चाहा है, समाप्त किया है। राजनीति और कूटनीति जैसे नीरस विषया में भी उसन साहित्यिक पदार्थों की चर्चा कर क उन्हे हृदयगम करन योग्य और अधिकाधिक उपादय बना दिया है। नीचे के दो श्लोका म कवि ने अपन इस विषय के हस्तलाघव का अनुकरणीय प्रदर्शन किया है—

तेज क्षमा वा नैकान्त कालज्ञस्य महीपते।
नैकमोज प्रसादो वा रसभावविद कवे ॥२ ८३॥

१—एक हठीला गजराज कुपित महावत द्वारा अत्यन्त निष्ठुरता पूर्वक अकुश लगाये जाने पर भी आखें मूद कर जब खडा हो रह गया और अपना ग्रास भी नहीं ग्रहण किया तब लोगों ने जान लिया कि हा सचमुच महान् होते हुं ये क्षीणशक्ति होने पर भी बलपूर्वक वश में नहीं लाये जा सकते। यहाँ गम्भीरवेदी शब्द पारिभाषिक है जिसका लक्षण है कि जो हाथी अकुश द्वारा चमडी काट देने पर, रक्त बहा देने पर तथा मास काट देने पर भी अपने होश में नहीं आता वह गभीर वदी कहलाता है।

२—समय को पहचानने वाले राजा क लिए केवल सात्र तेज दिखलाना अथवा केवल क्षमा दिखलाना—इसका कोई एकान्त नियम नहीं रहता। वह समय देख कर जहाँ जिसकी आवश्यकता होती है, उसका प्रयोग उसी प्रकार करता है, जस

नालम्बते दैष्टिकतां न निषीदति पौरुषे।
शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वयं विद्वानपेक्षते[1] ॥२।८६॥
स्थायिनोऽर्थे प्रवर्तन्ते भावा सञ्चारिणो यथा।
रसस्यैकस्य भूयांसस्तथा नेतुर्महीभृत ॥सर्ग[2] ।८७॥

आयुर्वेद अथवा वैद्यक शास्त्र की सिद्धान्त सम्बन्धी छोटी-मोटी बातों की चर्चा कवि ने अनेक अवसरों पर की है। उन सब के परिशीलन से ज्ञात होता है कि आयुर्वेद की रोग एवं औषधियों-सम्बन्धी अनेक बातों का उसे ज्ञान[3] था और कतिपय रसायनों तथा औपचारिक प्रयोगों की भी उसे पूरी जानकारी थी।

माघ के परम वैयाकरण होने की चर्चा पहले की जा चुकी है। अपने महा वैयाकरण के रूप को उन्होंने प्रायः प्रत्येक सर्ग में प्रकट किया है और नूतन प्रयोगों तथा सिद्धान्तों की चर्चा से यह सिद्ध कर दिया है कि साहित्य के समान ही व्याकरण भी उनका प्रिय विषय था। व्याकरण की नीरस परिभाषाओं का उन्होंने अपनी मनोहर उपमाओं में सुन्दर प्रयोग किया है और मनोहर संयोग बैठाया है। संस्कृत व्याकरण के सूक्ष्म से सूक्ष्म नियमों का भी उन्होंने एकाध स्थलों को छोड़कर कहीं भी उल्लंघन नहीं किया है और ऐसे ऐसे शब्दों को गढ़ कर प्रयोग किया है कि छन्दों की श्रुतिमधुरता बहुत बढ़ गई है।

कवि के व्याकरण-सम्बन्धी पाण्डित्य के प्रदर्शन के लिये उद्धरणों की कोई आवश्यकता नहीं है। कदाचित् ही ऐसा कोई श्लोक हो जिसमें उसने किसी सुन्दर, सुघड किन्तु नूतन (कवियों के प्रयोग में नूतन) शब्द का प्रयोग न किया

रसों और भावों के मर्म को जाननेवाले कवि के लिए केवल ओज गुण अथवा केवल प्रसाद गुण ही अनुसरणीय नहीं होता। वे दोनों ही का यथा प्रसंग अनुसरण करते हैं।

१—विद्वान् पुरुष न तो दैव के भरोसे रहता है और न केवल पुरुषार्थ पर ही आश्रित रहता है, किन्तु वह तो शब्द और अर्थ—दोनों की अपेक्षा करनेवाले सुकवि की भाँति, दैव और पुरुषार्थ—दोनों की अपेक्षा करता है। उत्तम काव्य का लक्षण है—"तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृती पुनः क्वापि।" काव्य प्रकाश।

२—जिस प्रकार रस की अवस्था प्राप्त करनेवाले एक ही स्थायी भाव के अनेक संचारी भाव स्वयं आकर सहायक हो जाते हैं उसी प्रकार क्षमापूर्वक उपयुक्त काल की प्रतीक्षा करनेवाले एक ही विजिगीषु राजा की सिद्धि में दूसरे राजा लोग स्वयमेव आकर सहायक हो जाते हैं।

३—देखिए शिशुपालवध सर्ग २, ५४, ९३, ९४, ९६।

हो। व्याकरण सम्बन्धी प्रसगो एव सिद्धान्तो के लिए द्वितीय सर्ग के ४७, ११२ तथा १९ वें सर्ग के ७५ वें श्लोक को देख लना ही पर्याप्त है।

माघ और भारवि

माघ में पाण्डित्य प्रदर्शन का शौक अत्यन्त दुर्निवार था। कवित्व की सहज शक्ति के साथ ही उनमें पाण्डित्य का स्वाभिमान एव दूसरा को स्तम्भित करने की इच्छा भी पूर्णत जागरूक थी। अपने अकेले महाकाव्य को उन्होंने सव-साधन-सम्पन्न सम्राट् के लाडल किन्तु दुराराध्य एकलौते बेटे की भाँति, अपनी समस्त समृद्धियो एव शक्तियो से लालित-पालित किया है। अपने पूर्ववर्ती कवियो एव उनकी कृतियो की समस्त विशषताओ को आक्रान्त करने की उनमें प्रबल स्पर्धा पाई जाती है। सस्कृत के सुप्रसिद्ध कवि भारवि की अमर रचना 'किरातार्जुनीय' की बहुत-सी वस्तुओ एव विशषताओ को उन्होने अपने महाकाव्य में भी प्रयुक्त किया है, किन्तु उनसे बीस कर के, उन्नीस कर के नही। कही पर उसी रूप और प्रकार का अनुसरण कर के उन्होंने रख दिया है तो कही पर बिल्कुल नय ढग और नयी रीति से उसका मुकाबला किया है। दोना महाकाव्या में बहुत-सी बातो की समानता पाई जाती है। कुछ समान वस्तुए इस प्रकार हैं। दोना ही ने अपने ग्रन्थ के आरम्भ म 'श्री' शब्द स वस्तुनिर्देशात्मक मगलाचरण किया है। प्रत्यक सर्ग के अन्तिम श्लोक में यदि भारवि न 'लक्ष्मी' शब्द का प्रयोग किया है तो माघ ने यहाँ भी आरम्भ की तरह 'श्री' शब्द ही प्रयुक्त किया है। भारवि न किरातार्जुनीय के द्वितीय सग में यदि भीमसन से सवाद में कुछ राजनीतिक चर्चा की है तो माघ न ,उसस कही बढ कर बलराम और उद्धव के द्वारा राजनीति की बातें कहलायी हैं। भारवि ने अपन महाकाव्य के तृतीय सग में अर्जुन क गमन का वणन किया है तो माघ न उसी सर्ग में भगवान् श्रीकृष्ण के गमन का वर्णन किया है। इस प्रसग पर दोना ही कवियो न पुरनिवासियो की मार्मिक व्यथाओ का बडा मनोहर एव आकर्षक चित्र प्रस्तुत किया है। भारवि ने चतुर्थ और पचम सर्गों में नगाधिराज हिमालय एव ऋतुओ का वर्णन अनेक प्रकार के छन्दा में सुन्दर ढग से किया है तो माघ न भी उन्हीं सर्गों में रैवतक के प्राकृतिक दृश्यो का मनोहर वणन प्रस्तुत किया है। दोना कवियो न बडी विचित्र समानता के साथ ऋतु वर्णन के प्रसगो पर तत्तद् वस्तुओ एव उपादानो को ग्रहण किया है। दोनो ने अपने-अपने महाकाव्यो के आठवें सर्गों में सुन्दरियो की जल क्रीडा का वणन तथा नव और दसवें सर्गों में सायकाल, चन्द्रोदय मधुपान, रतिकेलि, प्रणयालाप आदि का शृगारपूर्ण एक-सा वणन किया है। एक में यदि अप्सरा का प्रसग है तो दूसरे में भी यादव रमणियाँ हैं। दोनो कवियो के प्रभात-वर्णन एक ही परम्परा के अनुयायी हैं। एक में यदि

अर्जुन की कठोर तपस्या का हृदय ग्राही वर्णन है तो दूसरे में युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ का सविधि सविस्तार आवर्षक वर्णन है। दोनो ही महाकाव्यो में युद्धस्थल एव युद्ध के विविध प्रकारा का रोमाचकारी वर्णन है। युद्धस्थल के प्रसगो पर दोनो ही कवियो ने विविध प्रकार के विकट चित्रबन्धों द्वारा अपनी प्रचण्ड कवित्व-शक्ति एव प्रखर प्रतिभा का पूर्ण परिचय दिया है। किन्तु इस दिशा में माघ के प्रयोग भारवि की अपेक्षा बहुत सफल हुए है। विविध चित्रबन्धों की विकट कल्पना में एक निपुण वैयाकरण के नाते जो कृतकार्यता माघ को मिली है, वह भारवि को नहीं मिल सकी है।

शिल्प

माघ के कुछ विकट बन्धों के नमूने ऐसे हैं जिन्हें देखकर पाठको को दातों तले अँगुली दबानी पडती है—

एकाक्षर पाद

जजौजोजाऽऽजिजिज्जाजी त ततोऽतितताऽतितुत्।
भाऽऽभोऽभीभाऽभिभूभाभूरारारिर रिरीरर ॥[1] सर्ग १९।३ ॥

इस श्लोक के एक चरण में केवल एक अक्षर का प्रयोग कवि ने किया है इस प्रकार छन्द के चारो चरणो में केवल चार अक्षरो—ज, त, भ, र—का प्रयोग हुआ है। नीचे के श्लोक में केवल दो अक्षरो का प्रयोग हुआ है—

भूरिभिर्भारिभिर्भीरा भूभारैरभिरेभिरे।
भेरीरेभिभिरभ्राऽऽभैरभीरुभिरिभैरिभा ॥[2] सर्ग १९।६६ ॥

अब आगे इससे भी बढ कर विस्मयकारी बन्ध देखिए, जिसमें कवि ने केवल एक ही अक्षर का प्रयोग किया है—

दाददो दुद्ददुद्दादी दादादो दूददीददो।
दुद्दाद दददे दुद्दे ददाऽददददोऽदद ॥ सर्ग १९।११४ ॥

१—तदनन्तर योद्धाओं के तेज एव पराक्रम से होनेवाले युद्ध के विशेषज्ञ, सुन्दर युद्ध करने में निपुण, उद्धत वीरों को व्यथित करनेवाले, नक्षत्र के समान कान्तिमान, निर्भीक गजराजो को भी पराजित करनेवाले बलराम रथ पर आरूढ हो कर उस वेणुधारी के सम्मुख युद्धार्थ दौड पडे।

२—अत्यन्त भार से युक्त, भयानक, पृथ्वी के भार स्वरूप, भेरी की भाँति भयानक शब्द करने वाले, बादलो के समान काले एव निर्भय गजराज अपने प्रति द्वन्द्वी गजराजों से भिड गये।

। 'यह तो हुई अक्षरों की करामात, अब देखिए श्लोक की पहली पूरी पंक्ति ही दूसरी पंक्ति बन गयी है—

सदैव सम्पन्नवपूरणेषु महोदधेस्तारि महानितान्तम्।
स दैवसम्पन्नवपूरणेषु महोदधेस्तारिमहानितान्तम्॥' सर्ग १९।११८॥

चरणों या पादों के अनुलोम प्रतिलोम के तो बीसों उदाहरण कवि ने प्रस्तुत किए हैं। सर्वतोभद्र, गोमूत्रिका, अर्धभ्रमक, अमयोग, समुद्गयमक, मुरज-बन्ध, प्रतिलोमानुलोम, गूढ़ चतुर्थ, तीन अर्थवाची, चार अर्थवाची आदि क्लिष्टातिक्लिष्ट बन्धों की रचना कर कवि ने अपने प्रकाण्ड पाण्डित्य एवं अद्भुत कवित्व-शक्ति का जो प्रदर्शन किया है, उसका लोहा संस्कृत-समाज में सदा माना जाता रहेगा। यद्यपि इन बन्धों में सर्वत्र कवित्व-रस का मुक्त प्रवाह दूषित हो गया है, और क्लिष्ट कल्पनाओं एवं बलपूर्वक ग्रहण की जाने वाली अर्थशक्ति का सौन्दर्य घटिया कोटि का हो गया है किन्तु कवि ने जिस दृष्टिकोण से यह 'कठिन कार्य' किया है, उसमें तो वह पर्याप्त सफल माना ही जायगा। - –

जीवन सूत्र

शिशुपाल वध को समाप्त करते हुए महाकवि माघ ने अपना जो संक्षिप्त वंश-परिचय दिया है, उसके अनुसार उनके 'पिता दत्तक' सर्वाश्रय थे जो प्रगल्भ विद्वान् होने के साथ ही उदारचेता अमितदानी थे। माघके पितामह सुप्रभदेव, महाराज-वर्मल के महामात्य थे।

माघ कथित इस स्वल्प जीवन-सूत्र के आधार पर उनका जीवन-परिचय प्राप्त करना बहुत कष्ट साध्य है, यही कारण है, कि अबतक उनके उत्पत्तिकाल-जीवन की घटनाओं, उनके स्वभाव, और चरित्र के संबंध में असंदिग्ध निर्णय नहीं किया जा सकता है।

३—दानशील, दुष्टों को दुःख देने वाले, संसार को पवित्र करने वाले, दुष्टों का विनाश करने वाले भुजाओं को धारण करनेवाले, स्वतः तथा, अदाता—दोनों ही को देनेवाले तथा बकासुर एवं पूतना आदि आततायियों को नष्ट करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण ने शत्रुओं पर भीषण अस्त्र चलाना शुरू किया।

१—सर्वदा सम्पूर्ण शुभ लक्षणों से युक्त शरीरधारी एवं शत्रु-तेज का हरन करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण ने उस दैवी सहायता से युक्त युद्ध में, वह प्रचण्ड तेज धारण किया जो कि महासमुद्र के पार तक पहुँच गया था।

काल-निर्णय

वसन्तगढ (राजस्थान) में प्राप्त एक शिलालेख के आधार पर गुजरात के महाराज वमल (वमलात) का समय विक्रमी संवत ६८२ निश्चित होता है। इन्ही वमल राजा के यहा माघ के पितामह सुप्रभदव सर्वाधिकार प्राप्त महामात्य थ। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि माघ ईस्वी सातवी शताब्दी के उत्तराध और ईस्वी आठवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध म अवश्य विद्यमान रह हे।

सोमदेव न अपन 'यशस्तिलकचम्पू' (९५९ई०) म माघ का उल्लेख किया है और आनन्दवद्धन (८५०ई०) के अपन ध्वन्यालोक में माघकृत शिशुपालवध के दो श्लोका (३।५३ ५।२६) को उदधृत किया है। कन्नड भाषा के सुप्रसिद्ध अलकार ग्रथ कविराजमाग (८१४ई०) में माघ को कालिदास का समकक्ष स्वीकार किया गया है। इससे ज्ञात होता है कि आठवी शताब्दी के उत्तराध और नवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध म माघ अपनी विद्वत्ता और परिचय क्षमता क कारण विख्यात हो चुके थ।

सस्कृत में महाकाव्य लिखकर ख्याति प्राप्त करन वाले दस महाकवि प्रसिद्ध हैं। इन दस महाकवियो क नाम कालक्रम के अनुसार निम्नाकित श्लोक द्वारा परम्परागत प्रसिद्ध है—

> आदौ कालिदास स्यादश्वघोषस्तत परम्।
> भारविश्च तथा भट्टि कुमारश्चापि पञ्चम ॥
> माघरत्नाकरौ पश्चाद हरिश्चन्द्रस्तथैव च।
> कविराजश्च श्रीहर्ष प्रख्यात कवयो दश॥

इन परम्परागत जनश्रुति के आधार पर भी माघ कवि ईसवी सातवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध म सिद्ध होते ह।

शिशुपालवध के ११व सग के ६४ वें श्लोक का उल्लेख भोज प्रबध में है। इस श्लोक क आधार पर भोज और माघ कवि की दानशीलता की एक कहानी भी भोजप्रबध म लिखी होन के कारण कुछ लोग माघको भोजराज का बाद का मानकर उन्हें ई० ११वी शती का मानते ह।

धाराधीश भोजराज का समय ईस्वी १०९२ माना जाता ह। भोज प्रबध में माघ की ही भांति कालिदास की अनेक कहानियाँ सन्निविष्ट ह। भोजप्रबध एक ऐसा ग्रथ है जिसमें सम्भवनीय मिथ्या प्रामाण्योग की स्पष्ट

छाप हैं। भोजराज विद्याव्यसनी अवश्य थे किन्तु साथ ही उनमें यशोलिप्सा भी इतनी अधिक रही कि उनमें अन्वीक्षणशक्ति एव सत्यासत्य विवेक तिरोहित हो गए थे। भोजप्रबध की भी वही स्थिति हुई जो भविष्य पुराण या अन्य पुराणो की हुई। जिसकी तबीयत में आया वही व्यास बन कर पुराणा में समाता गया। यहाँ तक कि वेंक्टेश्वर प्रेस बम्बई से मुद्रित भविष्य पुराण में उसके सम्पादक, अनुवादक ने अपने स्वामी को प्रसन्न करने के लिए—'ग्रन्थाना समुद्धर्ता क्षेमराजो भविष्यत्' जोड दिया। इसी प्रकार भोजप्रबध में भी मनमानी कल्पनायें जोडी और तोडी गई हैं। यही कारण है कि कालिदास और माघ का समय निर्धारण करना एक समस्या बन गई है।

भोज प्रबध में उल्लिखित माघ की जीवन घटनायें कल्पित हैं। यह ठीक है कि माघ उदार, दानी थे। यह गुण उन्हें पैतृक उत्तराधिकार के रूप में मिला था। माघ की दानशीलता की अनेक कहानियाँ प्रचलित हैं। कहा जाता है कि उन्हें राजदरबारो से जो पुरस्कार मिलता था उसे वह घर आते समय रास्ते में ही अपने प्रशसको तथा निर्धनो को बाट देते थे। एक बार उनकी स्त्री ने उनकी इस आदत पर एतराज किया तो माघ ने एक श्लोक बना कर उसे अपनी स्त्री के हाथ राजदरबार भेजा, स्वय न गए। कविपत्नी का सम्मान राजा ने द्विगुण भावसे किया और पुरस्कार भी अत्यधिक दिया, लेकिन जब कविपत्नी की शिबिका राजपथ पर पहुँचती है तो दोनो ओर खडे हुए याचक माघ कवि और उनकी पत्नी की मुक्त कण्ठ से प्रशसा करने लगे। पति के वैभव और यशोगान को सुन कर कवि पत्नी आत्मविभोर हो गई, उसने जो कुछ पुरस्कार पाया उसे तो दे ही दिया किन्तु इतने में उसे सन्तोष न हुआ तो अपने सारे आभूषण भी लुटा दिए।

ऐसी ही कहानियो को लेकर भोज प्रबध में जोड मोड कर के राजाभोज की दानशीलता का प्रचार किया गया है जो अप्रामाणिक है। किसी कवि या लेखक के अज्ञात जीवन के परिचय-सूत्र उसकी कृति के अन्तर्गत अवश्य निहित रहते हैं। माघ के जीवन परिचय, शील-स्वभाव और गुण की खोज शिशुपालवध से की जा सकती है।

माघ ने शिशुपालवध के दूसरे अध्याय के बारहवें श्लोक में काशिका और 'न्यास' इन दो व्याकरण ग्रन्थो की ओर सकेत किया है। काशिकावृत्ति

का रचना काल ६५० ई० माना जाता है और व्यास ग्रन्थ इससे भी प्राचीन इसलिए कहा जा सकता है कि बाण ने (६२० ई०) अपने हर्ष चरित में व्यास ग्रन्थ का उल्लेख किया है। इससे स्पष्ट विदित होता है कि माघ की स्थिति ७ वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध और आठवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में निश्चित है।

जन्म-स्थान

शिशुपालवध की प्राचीन हस्तलिखित कुछ प्रतियो में प्रत्येक सर्ग के अन्त में' इतिश्री भिन्नमालव वास्तव्य दत्तक सूनोर्महावैयाकरणस्य माघस्य कृतौ शिशुपाल वधे महाकाव्ये " यह लिखा हुआ मिला है। कदाचित् शिशुपालवध की पुष्पिका के आधार पर ही श्री प्रभाचन्द्र ने अपने प्रभावकचरित म लिखा है —

> अस्ति गुर्जर देशोऽय सज्जरागन्य दुर्जर ।
> तत्र श्रीमालमित्यस्ति पुर मुखमिवक्षिते ॥
> तत्रास्ति हास्तिकश्वीयापहस्तित रिपुव्रज ।
> नृप श्रीवर्मलातारय शत्रुमर्मभिदाक्षम ॥

इस श्लोक में भिन्न मालव' को श्रीमाल लिखा गया है, सम्भव है बाद में भिन्नमाल नगर श्रीमाल के नाम से विख्यात हुआ हो, क्याकि माघ से लभभग पाँच सौ वर्ष बाद प्रभावक चरित लिखा गया है । श्रीमाल क निवासी ब्राह्मण आजकल श्रीमाली कहलात है जो गुजरात और राजस्थान में रहत है। यह श्रीमाल नगर आजकल राजस्थान और गुजरात की सीमा पर स्थित है। इसमें सन्देह नही कि यही भिन्नमाल (श्रीमाल) नगर माघ कवि की जन्मभूमि है। शिशुपालवध में कवि न रैवतक पर्वत के वणन में जो आत्मीयता दिखायी है उसस सिद्ध हाता है कि कवि को अपन प्रदश स अत्यधिक स्नेह था। रैवतक गुजर प्रदेश का पर्वत है। आजकल उदयपुर (राजस्थान) म गिरनार (गुजरात) तक जो पवत श्रेणी स्थित है वही रैवतक कहलाती रही है।

स्वभाव और चरित्र

यदि हम शिशुपालवध का अध्ययन अन्तःसाक्ष्य शैली द्वारा करते है तो हम उसके वर्णना से कवि माघ क स्वभाव और चरित्र का यत्किचित परिचय मिल जाता है।

सर्ग ११ श्लोक ४७ के अनुसार माघ कवि को माता की ममता प्रचुर मात्रा में मिली हुई जान पडती है। शिशुपाल वध क सर्ग ४२ श्लोक ४८ जान पडता है

कि उनका विवाह गिरनार पर्वत के आसपास ही कही हुआ था । रैवतक पर्वत के वर्णन में कवि ने सर्ग-के-सर्ग लिख डाले। साथ ही कृष्ण को अतिथि बना कर रैवतक द्वारा उनका जो स्वागत कराया जाता है वह किसी ससुराल द्वारा ही सभव हो सकता है। शिशुपालवध को प्रथम सर्ग से चतुर्थ सर्ग तक पढ जानेके बाद यह सहज प्रतीत होता है कि महाकवि माघ उस समय के प्रचलित तथा प्राचीन सभी प्रकार के व्याकरणो के पूर्णज्ञाता होने के साथ ही साख्य, न्याय, मीमासा आदि दर्शनो तथा आगम, तन्त्रो के विशेषज्ञ और राजनीति, समाजशास्त्र एव ज्योतिष के प्रकाण्ड पडित थे। उन्होंने जो व्यापक परिचयचारुता और विद्वत्ता प्राप्त की थी वह केवल पूर्वजन्म के सस्कारो के कारण नही वल्कि निजी अध्यवसाय भी उसमें सम्मिलित है । शिशुपालवध के ग्यारहवें सर्ग के छठें श्लोक में कवि ने अपनी जिस दिनचर्या का सकेत किया है, नि सन्देह वह हर किसी व्यक्ति को यशस्वी विद्वान् बना सकती है।

माघ के बनाए हुए कई एक फुटकर श्लोक भी मिलते है । जिनसे उनके जीवन-सूत्रो के स्रोत ढूंढने में सहायता मिलती है—

बुभुक्षितैः व्याकरण न भुज्यते,
पिपासितैः काव्यरसो न पीयते।
न विद्यया केनचिदुद्धृतं कुल,
हिरण्यमेवार्जय निष्फलाः कलाः ॥

इस श्लोक में माघ कवि के वैयाकरण, कवि, कुलीन और वैभव-सम्पन्न होने के साथ ही एक ऐसी घटना का सकेत मिलता है, जो शायद भुखमरी के रूप में उनके जीवन में घटी हो । बहुत सभव है भोजप्रबधकार ने इन्ही सूत्रो या जनश्रुतियो के आधार पर अपना मतलब हल करने के लिए माघ और भोज को एक में मिला दिया हो।

शिशुपालवध के तीसरे सर्ग से लेकर १३ सर्ग तक माघ ने भगवान् श्रीकृष्ण का अतुल वैभव एव वन-विहार, जलक्रीडा, मधुपान, प्राकृतिक छटा आदि का जो वर्णन किया है उससे उनकी प्रवृत्ति का पूरा परिचय मिलता है। कवि इन विषयोंके वर्णन में अपने प्रस्तुत विषय को भूल-सा जाता है और चौदहवें सर्ग में जा कर उसे सुधि आती है तब भगवान् कृष्ण को युधिष्ठिर के राजसूयज्ञ में सम्मिलित होने के लिए इन्द्रप्रस्थ पहुँचा देता है।

इन वर्णनो से माघ विलासी, वैभवशाली और विनोदप्रिय सिद्ध होता है।

व्यक्तित्व और जीवनचर्या

समस्त अलौकिक अलकारो से अलकृत शिशुपालवध के छन्दोमय शरीर पर नौरसो की अमृत वर्षा कर उसे प्राणवान और अमर बनाने वाले, माघ कवि का व्यक्तित्व अहता, ऋजुता और उदारता का विचित्र सघात था। शिशुपालवध जहाँ उनका यशःशरीर माना जाता है वही वह उनके शारीरिक, मनोवैज्ञानिक और व्यावहारिक जीवन की व्याख्या भी है। समस्त ग्रथ का सम्यक् अनुशीलन करने पर यह स्पष्ट बोध होता है कि यह महाकाव्य कविवर माघ का प्रतिविम्ब और उस युग का प्रतिनिधि ग्रन्थ है।

ऐसा जान पडता है कि कवि में एक ऐसा दुर्निवार अह था, जिससे विवश हो कर उसे अपने बहुश्रुतत्व, पाण्डित्य और चमत्कारी प्रतिभा का परिचय हठात् देना पडा। इसी अह के वशीभूत होकर उन्होने किरातार्जुनीयम् की शैली, वृत्ति और शब्दावली का अनुसरण भी सम्भवत किया है। निसन्देह कवि के हृदय में यह प्रतिक्रिया जगी हुई थी कि किरातार्जुनीयम् की ख्याति और लोकप्रियता को दबाकर शिशुपाल वध अपनी प्रतिष्ठा प्राप्त करे। इसीलिए उन्होने सादृश्यवाद को अपनाया। कहना न होगा कि कुशल शिल्पी ने भारवि के वस्तु और शिल्प का सादृश्य स्वीकार कर उसमें अपनी मौलिकता और अगाध परिचयचारुता की अमिट छाप लगा दी है।

कवि को सहज उदारता कि वृत्ति विरासत के रूप में अवश्य मिली थी, किन्तु वह रजोगुणी प्रधान प्रवृत्ति थी। यश, प्रतिष्ठा और प्रशस्ति का भूखा कवि जो भी दान देता था उसमें उसकी यशोलिप्सा लिपटी रहती थी। उसमें उतना ही स्वाभिमान, औदार्य रहा जितना मध्यकालीन दरबारी कवि में होना चाहिए। कवि, विद्वान्, वैभवशाली और विशाल परिचयचारुता सम्पन्न होते हुए भी वह जीवन और यश की सीमाओ से बँधा हुआ जान पडता है। उसमें भवभूति की सी गर्वोक्ति, कालिदास की सी कमनीय स्वच्छन्दता और बाण की निश्छल आत्माभिव्यक्ति का अभाव-सा मिलता है। उसने अपनी धार्मिक, शास्त्रीय और सामाजिक मान्यताओं को समन्वयवाद की भीनी चादर से लपेटने का भी कहीं कहीं प्रयत्न किया है। यह निश्चित है कि माघ विशुद्ध वैदिक सनातनधर्मी परम्परा में पैदा हुआ और उसी परम्परा का पोषक और अनुगामी रहा फिर भी उसने जैन, बौद्ध मान्यताओं का सरक्षण इसलिए स्वीकार किया कि उन दिनो गुजरात प्रदेश मे

अर्हत अनुयायी सामन्त और श्रेष्ठियों का प्राधान्य या बाहुल्य रहा। यशोलिप्सु कवि ने बुद्धि कौशल द्वारा धार्मिक समन्वय स्थापित करने में वही चातुर्य किया जो भारवि के किरातार्जुनीयम् के प्रति किया था।

"ऐसा अनुमान होता है कि माघ का सुन्दर, स्वस्थ और आकर्षक शरीर रहा है, सिर पर मोटी शिखा और बेशकीमती आभूषण और वस्त्रों का वह शौकीन रहा। उसके बोलने में वैचित्र्य, शब्दों में वक्रोक्ति, मुस्कराहट में व्यंजना और व्यवहार में कोमलता तथा उदारता रही होगी। शिशुपालवध के आधार पर यह कल्पना सत्य हो सकती है कि माघ का निवासस्थान राजप्रासाद की भाँति सुसज्जित रहा होगा। सभी ऋतुओं में फलने फूलने वाले वृक्षों, लताओं से समन्वित एक वाटिका रही होगी। कवि के पास राजसी वाहन होने के साथ ही उसके क्रीड़ागृह में आमोद-प्रमोद करने वाले सुन्दर पंछी भी पिंजर बद्ध रहे होंगे।"

शिशुपालवध पढ़ने से यह अनुमित होता है कि माघ की जीवनचर्या बहुत ही संयत और नियमबद्ध रही होगी। वह प्रातः ब्राह्ममुहूर्त में काव्य रचना करता रहा होगा, सूर्योदय में स्नान, सन्ध्या पूजन तदनन्तर शास्त्राभ्यास, मध्याह्न में भोजन फिर शयन और तीसरे पहर परिमित काव्यगोष्ठी और चौथे पहर अपनी रचनाओं का परिमार्जन कर सायंसन्ध्या पूजन के पश्चात भोजन और फिर अन्तःपुर में विनोद, घरेलू व्यवस्था करकराकर वह सो जाता रहा होगा।

सामाजिक चेतना

माघ के जीवन काल में हमारे देश की सामाजिक चेतना का स्पष्ट आभास शिशुपालवध से मिलता है। उस समय वर्ण व्यवस्था और वैदिक धर्म का ही प्राधान्य रहा। माण्डलीक और गणतंत्र राज्य थे। कृषि, गोपालन और, वाणिज्य व्यवस्था उन्नत दशा पर थे। सैन्य सञ्चालन, कूटनीति और राजनैतिक मतभेद भी रहे। सती प्रथा और यज्ञानुष्ठानों की प्रतिष्ठा रही। धार्मिक क्षेत्र में समन्वय स्थापित हो रहा था। देश की जनता सुखी और सम्पन्न थी। परम्पराओं की उपेक्षा की जाती रही। इस युग के समाज में 'अलंकृत शैली' का प्रादुर्भाव भारवि ने इसलिए किया कि जनता की अभिरुचि लम्बे चौड़े उपाख्यानों, आख्यानों और कथाओं से हट गई थी, वह 'दिमागी ऐयाशी' की

ओर उन्मुख हो रही थी। भारवि की ही भांति माघ ने भी युग का प्रतिनिधित्व करते हुए शिशुपालवध में कथा वस्तु को सक्षिप्त कर प्राकृतिक वर्णन ही अधिक किया है। इस शैली मे कविता अलकारो के भार से लदी हुई है। श्लोक के प्रयोग और चित्रकाव्य के प्रदर्शन पाठको को बौद्धिक श्रम करने के लिए बाध्य करते है। माघ ने इस अलकृत शैली को जितना उत्कृष्ट बनाया है उतना अन्य किसी कवि ने नही बनाया।

माघ का महाकाव्य भारतीय साहित्य की धरती मे उगा हुआ ऐसा वट वृक्ष है जिसकी शीतलछाया में काव्य के सभी अग हरे भरे रस स्निग्ध बने रहकर और भारतीय जनता को रस-सिक्त करते रहेंगे।

अपने अनुवाद के सम्बन्ध मे :—

राष्ट्रभाषा हिन्दी में शिशुपाल वध जैसे महाकाव्य के अनुवाद का कार्य कितना श्रमसाध्य था, इसका अनुभव मुझे कार्यारम्भ के अनन्तर हुआ। सस्कृत की दो-चार पुस्तको का अनुवाद कर मुझमें जो उत्साह सचित हुआ था, यदि उसकी पूजी न होती तो यह कार्य इतनी शीघ्रता मे समाप्त न होता। फिर भी इसके अनुवाद में लगभग एक वर्ष का समय लगा ही। कवि के भावो तथा काव्य-प्रसाधनो की रक्षा में ऐंडी चोटी का पसीना एक करना पडा है। अतएव त्रुटियाँ होना सभव है, जिन्हें अगले सस्करण में दूर करने का यत्न करूँगा।

शिशुपाल वध सस्कृत-साहित्य-रसिको की पाठ्य-सामग्री है, अत उनकी सुविधा के लिए मैंने टिप्पणी लगा दी है, आशा है, वह उन्हें पसन्द आएगी। और मेरा यह अनुवाद मूलानुगामी है। पाठको को, सम्भव है, कही कही, कुछ खटके हो किन्तु इसके लिए मैं विवशतया क्षन्तव्य हूँ। इस अनुवाद कार्य में मुझे अपने पूर्व पथिक श्री विद्याधरजी विद्यालकार के अनुवाद से भी सहायता मिली है,किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि मैंने उनके अर्थ को अगीकार किया है। अनुवाद की शैली के सम्बन्ध में मेरा उनसे मतभेद है। उन्होंने जिस प्रकार का अर्थ किया था, उससे हिन्दी अथवा सस्कृत भाषी समाज वालो का अपेक्षित लाभ सम्भव नहीं था। अनेक स्थलो पर उनके अनुवाद में भूल भी थी, जिनसे बचने के लिए मैंने भरसक यत्न किया है। फिर भी मैं हृदय से अपने पूर्व पथगामी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

भाई श्री दवदत्त शास्त्री को मैं क्या धन्यवाद दू जो चुपचाप मेर कार्यो को सवार दने में कभी चूक नहीं करत।

अन्त में मैं अपन पाठको स विनम्र प्राथना करता हूँ कि वे इस अनुवाद में जहाँ कहीं कोई त्रुटि दखें निःसकोच कृपाभाव स सूचित करन का कष्ट करें। माघ जैस महाकाव्य क अनुवाद काय में त्रुटि का हो जाना सवथा सभव है, कोई त्रुटि न हो यही असमव था।

मकर सक्राति २००९ रामप्रताप त्रिपाठी
प्रयाग

विषय-सूची

दसवाँ सर्ग

१. मधुपान का वर्णन। २. सुरत-वर्णन।

ग्यारहवाँ सर्ग

१ प्रभात वर्णन। २ प्रातःकाल आये हुए अपराधी नायक के प्रति खण्डिता नायिका की उक्ति का वर्णन। ३ विलासी जनों की उक्ति का वर्णन। ४ यज्ञ-वर्णन। ५ जप-वर्णन। ६ सूर्योदय-वर्णन।

बारहवाँ सर्ग

१ प्रातःकालीन अभियान का वर्णन। २ जलाशयों का वर्णन। ३ यमुना के निकट पहुँचने का वर्णन।

तेरहवाँ सर्ग

१ यादवों और पाण्डवों के मिलन का वर्णन। २ महिलाओं से श्रीकृष्ण दर्शन का वर्णन। ३ श्रीकृष्ण के सभा में पहुँचने का वर्णन। ४ सभा का वर्णन। ५ श्रीकृष्ण का सभास्थल में प्रवेश।

चौदहवाँ सर्ग

१ कृष्ण और युधिष्ठिर की उक्ति प्रत्युक्ति का वर्णन। २ यज्ञ-वर्णन। ३ युधिष्ठिर के दान का वर्णन। ४ भीष्म के कथन का वर्णन।

पन्द्रहवाँ सर्ग

१ कृष्ण की पूजा के समय शिशुपाल द्वारा प्रगट किये गये रोष का वर्णन। २ शिशुपाल द्वारा युधिष्ठिर आदि के प्रति किये गये आक्षेप का वर्णन। ३ राजाओं के प्रति शिशुपाल का अभिभाषण। ४ पुनः शिशुपाल के आक्षेपों का सिंहावलोकन। ५ भीष्म का प्रतिवाद। ६ शिशुपाल-पक्षीय राजाओं के कोप का वर्णन। ७ शिशुपाल की उक्ति का वर्णन। ८ प्रयाण-वर्णन।

सोलहवाँ सर्ग

१ शिशुपाल के दूत की उक्ति का वर्णन। २ सात्यकि के वचनों का वर्णन। ३ शिशुपाल के दूत की प्रत्युक्ति का वर्णन।

सत्रहवाँ सर्ग

१ सभासदों के क्षोभ का वर्णन। २ युद्ध के लिए कवच पहन कर तैयार होने का वर्णन।

अठारहवाँ सर्ग

१ दोनों तरफ की सेनाओं के मिलने का वर्णन। २ युद्ध-वर्णन।

उन्नीसवाँ सर्ग

१ द्वन्द्व-युद्ध का वर्णन। २ शिशुपाल की सेना का वर्णन। ३ यादव सेना के प्रतिपक्षी सेना के साथ मुकाबला करने का वर्णन।

बीसवाँ सर्ग

१ श्रीकृष्ण और शिशुपाल के युद्ध का वर्णन।

श्रीगणेशाय नमः

श्री माघकविकृत शिशुपालवध महाकाव्य

प्रथम सर्ग

श्रियः पतिः श्रीमति शासितुं जगज्जगन्निवासो वसुदेवसद्मनि ।
वसन्ददर्शावतरन्तमम्बराद्धिरण्यगर्भाङ्गभुवं मुनिं हरिः ॥ १ ॥

अर्थ—लक्ष्मी (रुक्मिणी) के पति, समस्त जगत् के निवास (आधार) भगवान विष्णु (श्रीकृष्ण, जिस समय) जगत् का नियन्त्रण करने के लिए श्रीसम्पन्न वसुदेव के घर निवास कर रहे थे, (उसी समय) एक बार आकाश से नीचे उतरते हुए उन्होंने हिरण्य गर्भ (ब्रह्माण्ड से उत्पन्न होने वाले भगवान् ब्रह्मा) के पुत्र नारद मुनि को देखा।

टिप्पणी—इस पूरे सर्ग में वंशस्थ वृत्त है, जिसका लक्षण है—"जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ।" अर्थात् जगण, तगण, जगण और रगण के क्रम से वंशस्थ वृत्त होता है। भगवती रुक्मिणी लक्ष्मी की तथा भगवान् श्रीकृष्ण विष्णु के अवतार थे। विष्णु पुराण में कहा गया है—"राघवत्वे भवेत्सीता रुक्मिणी कृष्णजन्मनि।" अर्थात् स्वयं लक्ष्मी जी ही राम के अवतार में सीता और कृष्ण के अवतार में रुक्मिणी होती हैं। इस छन्द में अधिक और विरोध नामक अर्थालंकार तथा वृत्त्यनुप्रास और छेकानुप्रास नामक शब्दालंकार हैं। महाकवि ने मांगलिक 'श्री' शब्द से अपने ग्रन्थ का आरम्भ कर के वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण किया है।

[नारद जी आकाश से धरती पर उतरते हुए किस प्रकार दिखाई पड़ते हैं—]

गतं तिरश्चीनमनूरुसारथेः प्रसिद्धमूर्ध्वज्वलनं हविर्भुजः ।
पतत्यधो धाम विसारि सर्वतः किमेतदित्याकुलमीक्षितं जनैः ॥२॥

अर्थ—सूर्य की गति (सदा तिरछी होती है, और अग्नि की गति (सदा से) नीचे से ऊपर जाने वाली प्रसिद्ध है। यह चारों ओर फैला

हुआ तेज क्या है जो (ऊपर आकाश से) नीचे की ओर गिरता चला आरहा है—इस प्रकार के विस्मय से भरे हुए लोगो ने (नारद जी को) देखा। (अर्थात् नगरवासी लोग टकटकी लगाकर ऊपर से उतरनेवाले नारद जी को देखने लगे।)

टिप्पणी—पूर्व में उदित हो कर पश्चिम में अस्त होने वाले सूर्य की गति सदा तिरछी ही रहती है, अग्नि की ज्वाला सदा नीचे से ऊपर की ओर जाती है—यही दो ऐसे तेजस्वी थे, जिनकी ऊपर आकाश में स्थिति हो सकती थी। नारद जी अपनी वीणा के सहारे सभी भुवनों में घूमा करते थे। मुनिवर नारद जी का तेज सूर्य और अग्नि के तेज से व्यतिरिक्त है—इस प्रकार इस छन्द में व्यतिरेक अलंकार है।

[फिर भगवान् श्रीकृष्ण ने ऊपर से उतरने वाले नारद जी को कैसे पहचाना —]

चयस्त्विषामित्यवधारितं पुरा ततः शरीरीति विभाविताकृतिम्।
विभुर्विभक्तावयवं पुमानिति क्रमादमुं नारद इत्यबोधि सः ॥३॥

अर्थ—(संसार के) सब कुछ जानने वाले भगवान् श्रीकृष्ण ने पहले उसे (आकाश से नीचे उतरती हुई वस्तु को) कोई 'तेज पुञ्ज' समझा। इसके बाद कुछ और समीप आजाने पर (हाथ पैर आदि की धुधली) आकृति देखकर (कोई) शरीरधारी (है—ऐसा) समझा। फिर बाद में (एकदम समीप आ जाने पर) स्पष्ट रूप से (शिर, हाथ पैर आदि) अंगों के अलग-अलग दिखाई पड जाने से 'पुरुष' समझा—इस क्रम से भगवान ने उसको (उस तेजस्वी वस्तु को) नारद जी (आ रहे) हैं—यह जाना।

टिप्पणी—इस छन्द में पदार्थहेतुक काव्यलिंग अलंकार है।

[नीचे के सात श्लोकों द्वारा मुनि का वर्णन किया गया है —]

नवानधोऽधो बृहतः पयोधरान्समूढकर्पूरपरागपाण्डुरम्।
क्षणं क्षणोत्क्षिप्तगजेन्द्रकृत्तिना स्फुटोपमं भूतिसितेन शंभुना ॥४॥

अर्थ—(कैसे थे, वह नारद जी) नवीन और विस्तृत काले-काले बादलों के नीचे से कपूर के चूर्ण की ढेर की भांति अत्यन्त गौर वर्ण के दिखाई पड रहे थे। उस समय (काले-काले बादलों के अत्यन्त समीप होने

के समय) क्षण भर के लिए उनकी शोभा ताण्डव नृत्य के समय हाथी का काला चमडा पीठ पर ओढ़े हुए एव शरीर पर श्वेत भस्म लपेटे हुए शकर जी के समान स्पष्ट दिखाई पड रही थी।

टिप्पणी—ताण्डव नृत्य के समय शकर जी हाथी का चमडा धारण किए रहते हैं और श्वेत शरीर पर श्वेत भस्म लगाना तो उनका सदा का काम ही है। नृत्य के समय उनका वह हाथी का काला चमडा ऊपर की ओर उठा करता है ठीक उसी प्रकार काले-काले विस्तृत बादलों के अति समीप में गौर वर्ण के नारद जी भी दिखाई पड रहे थे।

दधानमम्भोरुहकेसरद्युतीर्जटाः शरच्चन्द्रमरीचिरोचिषम्।
विपाकपिङ्गास्तुहिनस्थलीरुहो धराधरेन्द्रं व्रततीततीरिव॥ ५ ॥

अर्थ—(और कैसे थे, नारद जी) कमल की केसर के समान भूरे रग की जटा को धारण किये हुए (और स्वय) शरद् ऋतु के चन्द्रमा की किरणों के समान गौर वर्ण के (वे उस समय) बर्फीले स्थानों पर उगी हुई और पुरानी हो जाने के कारण पीली लताओं के गुल्मों को धारण करने वाले हिमालय पर्वत के समान (दिखाई पड रहे) थे।

पिशङ्गमौञ्जीयुजमर्जुनच्छविं वसानमेणाजिनमञ्जनद्युति।
सुवर्णसूत्राकलिताधराम्बरां विडम्बयन्तं शितिवाससस्तनुम्॥ ६ ॥

अर्थ—(फिर कैसे थे, नारद जी) पीली मूज की मेखला (करधनी) धारण किए हुए, धवल कान्ति युक्त वह (नारदजी) काजल के समान काले मृग चर्म को ओढे हुए थे। (इस प्रकार उस समय वह) सुवर्ण की मेखला से अपने नीले वस्त्र (धोती) को बाधे हुए बलराम के शरीर का अनुकरण कर रहे थे।

टिप्पणी—पुराणों में बलरामजी को नीलाम्बरधारी बताया गया है। ब्रह्मचारी लोग मूज की करधनी पहनते हैं। प्राचीनकाल में करधनी पहनने की यह प्रथा बहुत प्रचलित थी आज भी कहीं-कहीं इसका चलन है। उपमा।

विहङ्गराजाङ्गरुहैरिवायतैर्हिरण्मयोर्वीरुहवल्लितन्तुभिः।
कृतोपवीतं हिमशुभ्रमुच्चकैर्घनं घनान्ते तडितां गणैरिव॥ ७ ॥

अर्थ—गरुड के रोमों की भाँति छोटे छोटे और सुनहली भूमि में उत्पन्न वल्लरियों के सूत्रों के बने हुए सूक्ष्म सुनहले रग के यज्ञोपवीत

से सुशोभित और स्वयं हिम के समान गौर वर्ण नारद जी (उस समय) विजली की चमक से युक्त शरद् ऋतु के विशाल (श्वेत) बादल की भाँति (दिखाई पड़ रहे) थे।

टिप्पणी—नारदजी का यज्ञोपवीत सुनहले रंग की मूंज की रस्सियों से बटा हुआ था, उनके धागों के रेशे गरुड़ पक्षी के रोए की भाँति सुनहले भूरे रंग के स्पष्ट हो रहे थे।

निसर्गचित्रोज्ज्वलसूक्ष्मपक्ष्मणा लसद्विसच्छेदसिताङ्गसङ्गिना।
चकासतं चारुचमूरुचर्मणा कुथेन नागेन्द्रमिवेन्द्रवाहनम् ॥ ८ ॥

अर्थ—सुशोभित कमल दण्ड के खण्ड की भाँति गौर शरीर पर स्वभाव से ही चितकबरे और उज्ज्वल सूक्ष्म रोमावलि से युक्त एक सुन्दर मृगचर्म ओढ़े हुए नारद जी पीठपर पड़ी हुई (चितकबरी और श्वेत रंग की) झूल से सुशोभित इन्द्र वाहन नागराज ऐरावत की भाँति शोभा पा रहे थे।

अजस्रमास्फालितवल्लकीगुणक्षतोज्ज्वलाङ्गुष्ठनखांशुभिन्नया।
पुरः प्रवालैरिव पूरितार्धया विभान्तमच्छस्फटिकाक्षमालया ॥९॥

अर्थ—बार-बार वीणा के तारों को बजाने के कारण (लाल) अंगूठे के उज्ज्वल नख की किरणों से मिश्रित होने के कारण आधे अग्रभाग में लगे हुए प्रवाल की तरह स्वच्छ स्फटिक की जपमाला से युक्त नारद जी सुशोभित हो रहे थे।

टिप्पणी—मोक्ष के इच्छुक देवर्षि नारदजी स्फटिक की जपमाला अपने हाथ में लिए हुए थे। 'स्फटिकं मोक्षदं परम्'। वीणा के अधिक बजाने के कारण उसके तारों से उनकी उंगलियां विशेषकर अंगूठे का उज्ज्वल नख रक्तमिश्रित हो रहा था, उसकी रक्तिम किरणें स्वच्छ स्फटिक की माला पर पड़ रही थीं। अतः माला का ओर आधा अग्रभाग ऐसा मालूम पड़ रहा था मानो वह प्रवालों से बनी हुई है। स्फटिक की माला ने अपने श्वेत गुण का त्याग कर नख की रक्त किरणों के रक्त गुण को स्वीकार करने के कारण इस छन्द में 'तद्गुण' अलंकार है।

रणद्भिराघट्टनया नभस्वतः पृथग्विभिन्नश्रुतिमण्डलैः स्वरैः।
स्फुटीभवद्ग्रामविशेषमूर्च्छनामवेक्षमाणं महतीं मुहुर्मुहुः ॥१०॥

अर्थ—वायु के आघात से पृथक्-पृथक् निकलने वाले स्वरों से तथा उनके अनुरणन से निकलने वाले श्रुतियों के समूहों एवं षड्ज आदि

स्वरों से ग्राम (स्वर समूहों से बने हुए षड्ज, मध्यम एवं गान्धार) तथा विशेष प्रकार की मूर्च्छनाएँ जिससे स्वत. स्पष्ट हो रही थीं ऐसी अपनी महती नामक वीणा को नारद जी बार-बार देख रहे थे।

टिप्पणी—नारद जी की वीणा का नाम महती था। ऊपर आकाश से नग से उतरने के कारण वीणा के छिद्रों में वायु के झोंका व लगने से विविध स्वर निकल रहा था। स्वर सात हैं —षड्ज, ऋषभ, गान्धार मध्यम,पञ्चम, धैवत और निषाद। उनका प्रचलित सांकेतिक रूप स रि ग म प ध नी है। यहाँ स्वरों के ग्राम का अर्थ है स्वरों का समूह। संगीत शास्त्र में कहा गया है —यथा कुटुम्बिन सर्वेऽप्येकीभूता भवन्ति हि। तथा स्वराणा सन्दोहो ग्राम इत्यभिधीयते। ये ग्राम तीन होते हैं। मूर्च्छनाओं की संख्या इक्कीस होती है। स्वरों के उतार चढाव तथा आरोह-अवरोह को मूर्च्छना कहते हैं। एक-एक ग्राम की सात-सात मूर्च्छनाएं कुल मिलाकर इक्कीस होती हैं। सप्तस्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्च्छनास्त्वेकविंशति।

निवर्त्य सोऽनुव्रजतः कृतानतीनतीन्द्रियज्ञाननिधिर्नभःसद।
समासदत्सादितदैत्यसंपदः पदं महेन्द्रालयचारु चक्रिण ॥११॥

अर्थ—इन्द्रियों से न जानने योग्य ज्ञान के निधान नारद जी, अपने पीछे-पीछे (द्वारकापुरी के ऊपर तक) आने वाले उन आकाशगामी देवताओं (देवों) को, जो प्रणाम कर चुके थे, वापस कर दैत्यों की समृद्धि को विध्वंस करने वाले सुदर्शनचक्र धारी भगवान (कृष्णचन्द्र) के, देवराज इन्द्र के भवन के समान सुन्दर निवास-स्थान पर आ पहुँचे।

टिप्पणी—देवता लोग द्वारकापुरी के ऊपर तक नारद जी को पहुचाने आये थे। नारद जी ने उन्हें द्वारकापुरी के ऊपर पहुच जाने पर वापस कर दिया। उस समय वापस लौटते हुए देवताओं ने उन्हें प्रणाम किया। तदनन्तर देवर्षि भगवान् कृष्ण चन्द्र के स्थान पर आ पहुचे।

इस श्लोक के पूर्वार्द्ध में 'नती' 'नती तथा उत्तरार्द्ध में पद पदम इन दो व्यंजनों की अनेक बार आवृत्ति होने से छेकानुप्रास तथा अन्यत्र वृत्त्यनुप्रास है। इस प्रकार इन दोनों की संसृष्टि है।

पतत्पतङ्गप्रतिमस्तपोनिधिः पुरोऽस्य यावन्न भुवि व्यलीयत।
गिरेस्तडित्वानिव तावदुच्चकैर्जवेन पीठादुदतिष्ठदच्युतः ॥१२॥

अर्थ—नीचे गिरते हुए सूर्य के समान (परम तेजस्वी) नारद जी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के सम्मुख जब तक (ऊपर आकाश से) पूरी

तरह उतर भी नहीं पाये थे कि तब तक श्रीकृष्णचन्द्र अपने ऊचे आसन से वेगपूर्वक इस प्रकार उठकर खडे हो गए मानों ऊचे पर्वत शिखर से बिजली युक्त मेघ।

टिप्पणी—यद्यपि नारद जी के पैरो के भूमिपर पडने से पहले ही भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपने आसन से उठकर खडे हो गए। अपने से बडे पुरुष के आ जाने पर उठकर खडा हो जाना शिष्टाचार है। आचार शास्त्र में कहा गया है— ऊर्ध्वं प्राणाह्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आयति। प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान् प्रतिपद्यते। अर्थात् वृद्ध के सम्मुख आने पर युवक के प्राण ऊपर उठ जाते हैं, पहले ही उठकर अगवानी करने तथा विनयपूर्वक प्रणाम करने से वे पुन यथास्थित होते हैं।

भगवान् श्री कृष्ण पीताम्बर ओढे हुए थे, इसीलिए पर्वत से उठनेवाले उस श्याम घन की उत्प्रेक्षा कवि ने की है, जिसमें बिजलियां कौंध रही हों। इस श्लोक में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

अथ प्रयत्नोन्नमितानमत्फणैर्धृते कथंचित्फणिनां गणैरधः।
न्यधायिषातामभिदेवकीसुतं सुतेन धातुश्चरणौ भुवस्तले ॥१३॥

अथ—तदनन्तर (भगवान् श्रीकृष्ण के वेगपूर्वक उठकर खडे हो जाने के अनन्तर) ब्रह्मा के पुत्र देवर्षि नारद जी ने भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र के सम्मुख उस भूतल पर अपने दोनों पैर रखे, जिसे पाताल में प्रयत्नपूर्वक ऊपर उठाये हुए फिर भी नीचे की ओर नम्र होते हुए फणों पर किसी प्रकार नागों के समूह धारण किए हुए थे।

टिप्पणी—ब्रह्मा के पुत्र देवर्षि नारद जी के शरीर का भार इतना अधिक था कि उनके धरती पर पैर रखते ही नागों के फण नीचे की ओर झुकने लगे यद्यपि वे प्रयत्न करके उन्हें ऊपर ही उठाये रखना चाहते थे। तात्पर्य यह कि नारद जी के भूतल पर आ जाने से धरती इतनी भारी हो गई कि नागों को लोहे के चने चबाने पडे। अतिशयोक्ति अलंकार।

तमर्घ्यमर्घ्यादिकयादिपूरुषः सपर्यया साधु स पर्यपूपुजत्।
गृहानुपैतुं प्रणयादभीप्सवो भवन्ति नापुण्यकृतां मनीषिणः ॥१४॥

अथ—आदिपुरुष भगवान् श्रीकृष्ण ने पूजा के योग्य देवर्षि नारद जी की अर्घ्य, पाद्य आदि पूजा की सामग्रियों से विधिवत् पूजा की।

(यही चाहिए भी था क्योंकि) मनीषी सन्त लोग पुण्य न करने वालों के घर प्रेम के साथ पहुँचने की इच्छा करते ही नहीं। (अर्थात् सन्त लोग भी पुण्यात्माओं के घर ही पहुँचते हैं पापियों के नहीं अतः बड़ी कठिनाई से मिलने पर सन्तों की पूजा तो उन्हें करनी ही चाहिए।

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलंकार।

न यावदेतावुदपश्यदुत्थितौ जनस्तुषाराञ्जनपर्वताविव।
स्वहस्तदत्ते मुनिमासने मुनिश्चिरंतनस्तावदभिन्यवीविशत् ॥१५॥

अर्थ—जब तक खड़े हुए हिम तथा कज्जल के पर्वत के समान इन दोनों महापुरुषों को (समीपवर्ती) लोगों ने देखा भी नहीं था कि तब तक पुराण मुनि भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने हाथ से समर्पित किए हुए आसन पर देवर्षि नारद जी को अपने सम्मुख (आदरपूर्वक) बिठा लिया।

टिप्पणी—नारदजी गौर वर्ण के थे तथा श्रीकृष्ण जी श्यामल वर्ण के। कवि ने एक को हिम तथा दूसरे को कज्जल का पर्वत उत्प्रेक्षित किया है। बड़ों को अपने हाथ से आसन देकर बिठाना शिष्टाचार है।

महामहानीलशिलारुचः पुरो निषेदिवान्कंसकृपः स विष्टरे।
श्रितोदयाद्रेरभिसायमुच्चकैरचूचुरच्चन्द्रमसोऽभिरामताम् ॥१६॥

अर्थ—बहुत बड़ी महानील मणि के समान शोभासम्पन्न कंस रिपु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के सम्मुख ऊंचे आसन पर विराजमान नारद जी सायंकाल में उदयाचल पर आश्रित चन्द्रमा की सुन्दरता को चुरा रहे थे।

टिप्पणी—सायंकाल में उदयाचल पर आश्रित चन्द्रमा की शोभा को चुराने का तात्पर्य यह था कि श्यामल वर्ण के श्रीकृष्ण भगवान् के सम्मुख देवर्षि नारद जी का गौर शरीर विचित्र शोभा पा रहा था। निदर्शना अलंकार।

विधाय तस्यापचितिं प्रसेदुषः प्रकाममप्रीयत यज्वनां प्रियः।
ग्रहीतुमार्यान्परिचर्यया मुहुर्महानुभावा हि नितान्तमर्थिनः ॥१७॥

अर्थ—यज्ञकर्त्ताओं के प्रिय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र प्रसन्न चित्त देवर्षि नारद जी की (विधिवत्) पूजा कर अत्यन्त प्रसन्न हुए (क्यों न हों) महानुभाव लोग श्रेष्ठ पुरुषों को अपनी सेवा द्वारा बार-बार वश में करने की विशेष अभिलाषा करते ही हैं।

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलंकार।

अशेषतीर्थोपहृताः कमण्डलोर्निधाय पाणावृषिणाभ्युदीरिताः ।
अघौघविध्वंसविधौ पटीयसीर्नतेन मूर्ध्ना हरिरग्रहीदपः ॥१८॥

टिप्पणी (भूमण्डल के) समस्त तीर्थों से लाये गए, कमण्डलु से अपने हाथ में लेकर देवर्षि द्वारा छिड़के गये, पाप के समूहों को नाश करने में अति समर्थ जल बिन्दुओं को भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने नत-मस्तक होकर ग्रहण किया।

टिप्पणी—नारद जी के कमण्डलु में भूमण्डल के समस्त तीर्थों का जो जल था, उसे अपनी हथेली पर रख कर वे मन्त्र से भगवान् को अभिषिक्त करने लगे।

स काञ्चने यत्र मुनेरनुज्ञया नवाम्बुदश्यामवपुर्न्यविक्षत ।
जिगाय जम्बूजनितश्रियः श्रियं सुमेरुशृङ्गस्य तदा तदासनम् ॥१९॥

अर्थ—नूतन मेघ के समान श्यामल वर्ण श्रीकृष्ण भगवान् देवर्षि नारद जी की अनुमति से जिस सुनहले आसन पर बैठे, उस आसन ने उस समय जामुन के फलों से सुशोभित सुमेरु के शिखर की शोभा को जीत लिया।

टिप्पणी—इस श्लोक में उपमा तथा अन्तिम चरण में अनुप्रास अलङ्कार है। इस प्रकार इन दोनों अलङ्कारों की संसृष्टि है।

स तप्तकार्तस्वरभास्वराम्बरः कठोरताराधिपलाञ्छनच्छविः ।
विदिद्युते वाडवजातवेदसः शिखाभिराश्लिष्ट इवाम्भसां निधिः ॥२०॥

अर्थ—तपाये हुए सुवर्ण के समान दीप्तिमान वस्त्र (पीताम्बर) से अलङ्कृत तथा पूर्णिमा के चन्द्रमा के कलङ्क के समान श्यामल-वर्णवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र (उस समय) वाडवाग्नि की ज्वालाओं से व्याप्त समुद्र की भाँति सुशोभित हुए।

रथाङ्गपाणेः पटलेन रोचिषामृषित्विषः संवलिता विरेजिरे ।
चलत्पलाशान्तरगोचरास्तरोस्तुषारमूर्तेरिव नक्तमंशवः ॥२१॥

अर्थ—चक्रपाणि भगवान् श्रीकृष्ण के शरीर की कान्ति से मिली हुई देवर्षि नारद के शरीर की कान्ति, रात्रि में वृक्षों के हिलते-डुलते पत्तों के भीतर से दिखाई पड़ती चन्द्रमा की किरणों की भाँति सुशोभित हुई।

प्रफुल्लतापिञ्छनिभैरभीषुभिः शुभैश्च सप्तच्छदपांशुपाण्डुभिः।
परस्परेण च्छुरितामलच्छवी तदैकवर्णाविव तौ बभूवतुः ॥२२॥

अर्थ—खिले हुए तमाल के फूलों के समान श्यामल वर्ण तथा सप्तपर्ण के फूलों के पराग के समान शुभ्र (पीत) वर्ण के मांगलिक शरीर की किरणों से परस्पर रञ्जित कान्ति वाले भगवान् श्रीकृष्ण तथा देवर्षि नारद जी मानो उस समय एक वर्ण के हो गये।

टिप्पणी—भगवान् श्रीकृष्ण के शरीर की कान्ति तमाल (आबनूस) के फूल के समान श्यामल वर्ण की थी तथा देवर्षि नारद जी सप्तपर्ण (छितवन) के पुष्प-पराग की भाँति पीले (गोरे) वर्ण के थे। आमने-सामने बैठे हुए उन दोनों के शरीर की आभा एक दूसरे में इस प्रकार मिल गयी कि वे एक वर्ण के से हो गए। उत्प्रेक्षा अलंकार।

युगान्तकालप्रतिसंहृतात्मनो जगन्ति यस्यां सविकासमासत।
तनौ ममुस्तत्र न कैटभद्विषस्तपोधनाभ्यागमसंभवा मुदः ॥२३॥

अर्थ—प्रलय काल में समस्त जीव-समूहों को अपने में समेट लेने वाले कैटभशत्रु भगवान श्रीकृष्ण के जिस शरीर में निखिल संसार विस्तारपूर्वक स्थित रहता है उनके उसी शरीर में तपोधन देवर्षि नारद के आगमन से उत्पन्न आनन्द नहीं समा सका।

टिप्पणी—तात्पर्य यह कि देवर्षि नारद के आगमन से भगवान् श्रीकृष्ण को इतनी प्रसन्नता हुई कि वे हर्ष से फूल उठे। प्रलयकाल में समस्त संसार एवं उसके जीव निकाय परमात्मा के शरीर में स्थित हो जाते हैं। इस प्रकार चौदहो भुवनों की स्थिति जिस शरीर में हो जाती है उसमें देवर्षि के आगमन का आनन्द नहीं समा सका। अतिशयोक्ति अलंकार।

निदाघधामानमिवाधिदीधितिं मुदा विकासं मुनिमभ्युपेयुषी।
विलोचने बिभ्रदधिश्रितश्रिणी स पुण्डरीकाक्ष इति स्फुटोऽभवत् ॥२४

अर्थ—सूर्य के समान परम तेजस्वी देवर्षि नारद के सम्मुख आनन्द से प्रफुल्ल एवं अधिक शोभायमान दोनों नेत्रों को धारण करने वाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र स्पष्ट ही 'पुण्डरीकाक्ष' (कमल के समान नेत्र वाले) बने हुए थे।

टिप्पणी—सूर्य के सम्मुख कमल का प्रफुल्ल एवं शोभा सम्पन्न होना स्वाभाविक ही है। भगवान का एक नाम पुण्डरीकाक्ष भी है। उस समय वह

स्पष्ट ही पुण्डरीकाभ हो रहे थे। पदार्थहेतुक काव्यलिंग तथा उपमा के अंगांगिभाव का संकर।

सितं सितिम्ना सुतरां मुनेर्वपुर्विसारिभिः सौधमिवाथ लम्भयन्।
द्विजावलिव्याजनिशाकरांशुभिः शुचिस्मितां वाचमवोचदच्युतः २५

अर्थ—तदनन्तर (दोनों महापुरुषों के अपने-अपने आसनों पर विराजमान हो जाने के अनन्तर) अच्युत भगवान् श्रीकृष्ण चारों ओर प्रकाश बिखरनेवाली, अपने दाँतों की पंक्तियों के बहाने (रूपी) चन्द्रमा की किरणों से, देवर्षि नारद के (उज्ज्वल) राजमहल के समान अत्यन्त गोरे शरीर को और अधिक धवल करते हुए, निर्मल मुसकराहट से युक्त वचन इस प्रकार बोले।

टिप्पणी—देवर्षि नारद का भव्य गोरा शरीर भव्य प्रासाद था तथा भगवान् श्रीकृष्ण की दन्तपंक्तियाँ चन्द्रमा की किरणें थीं। तात्पर्य यह कि हँसते हुए भगवान श्रीकृष्ण के दाँतों की किरणों से नारदजी का गोरा शरीर और भी दीप्त हो गया। उपमा और अतिशयोक्ति अलंकार की संसृष्टि।

हरत्यघं संप्रति हेतुरेष्यतः शुभस्य पूर्वाचरितैः कृतं शुभैः।
शरीरभाजां भवदीयदर्शनं व्यनक्ति कालत्रितयेऽपि योग्यताम् ॥२६

अर्थ—(भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—हे देवर्षि!) आपका दर्शन शरीरधारियों के तीनों कालों (भूत, वर्तमान और भविष्य) की पवित्रता की सूचना देता है। क्योंकि सम्प्रति (दर्शन काल) में तो वह पापों को नष्ट करता है, भविष्य के कल्याण का कारण होता है तथा पूर्वकाल में किए गए सुकृतों का परिणाम होता है।

टिप्पणी—अर्थात् बिना सुकृत किए पुण्यात्माओं का दर्शन मिलता नहीं है, वर्तमान में पापों का नाश करता है तथा भविष्य में मंगल का सूचक होता है। इस प्रकार आपका दर्शन तीनों कालों में [illegible] और [illegible] किया है। [illegible] काव्यलिंग अलंकार।

जगत्यपर्याप्तसहस्रभानुना न यन्नियन्तुं समभावि भानुना।
प्रसह्य तेजोभिरसंख्यतां गतैरदस्त्वया नुन्नमनुत्तमं तमः ॥२७॥

अर्थ—संसार में जिसकी सहस्रों किरणों को नापा नहीं जा सकता—उस सूर्य से भी जो अन्धकार (अज्ञान) दूर नहीं किया जा सका,

आपने उसी सबसे अधिक बलवान अन्धकार (अज्ञानान्धकार) का अपने असख्य तेजों से बलपूर्वक नाश कर दिया है।

टिप्पणी—सूर्य केवल भौमिक अंधकार को दूर कर सकता है, अज्ञान को दूर करने की क्षमता तो देवर्षि के तेज में ही है। व्यतिरेक अलंकार।

कृतः प्रजाक्षेमकृता प्रजासृजा सुपात्रनिक्षेपनिराकुलात्मना।
सदोपयोगेऽपि गुरुस्त्वमक्षयो निधिः श्रुतीनां धनसंपदामिव ॥२८॥

अर्थ—प्रजा वर्ग (पुत्र) के कल्याण करने वाले एव सुयोग्य पात्र (लोहे के बने हुए कड़ाह आदि) में रखने से निश्चिन्त प्रजापति (पुत्रवान) द्वारा तुम धन सम्पत्तियों की भाँति, सर्वदा उपयोग करते रहने पर भी श्रुतियों के अक्षय निधि (धरोहर अथवा भण्डार) बनाये गये हो।

टिप्पणी—जिस प्रकार अपनी सन्तति का शुभचिन्तक पिता उनके भविष्य के उपयोग के लिए बहुत-सी धन सम्पत्ति एकत्र करके लोहे की तिजारियों अथवा कड़ाहों में रखकर निश्चिन्त रहता है और अधिकाधिक मात्रा में उस धन के रहने के कारण सर्वदा उचित व्यय (उपयोग) करने पर भी जैसे वह धन नहीं चुकता, उसी प्रकार निखिल विश्व की प्रजा के मंगलकारी भगवान् ब्रह्मा ने आपको (नारद जी को) श्रुतियों का निधि बनाया है। आप जैसे सुयोग्य पात्र में वेदों की अमूल्य निधि को सौंप कर वे बिल्कुल निश्चिन्त हो गये हैं। इस प्रकार आप श्रुतियों के अक्षय निधि हैं, और सर्वदा घूम घूम कर उपदेश देने पर भी आपकी यह ज्ञाननिधि समाप्त नहीं होती। ऐसे वेदनिधि देवर्षि का दर्शन किसके लिए मंगलकारी न होगा? श्लेष अलंकार।

विलोकनेनैव तवामुना मुने कृतः कृतार्थोऽस्मि निबर्हितांहसा।
तथापि शुश्रूषुरहं गरीयसीर्गिरोऽथवा श्रेयसि केन तृप्यते ॥२९॥

अर्थ—हे मुनि! यद्यपि पाप को दूर करने वाले आपके इस दर्शन से ही मैं कृतकृत्य हो गया हूँ, तथापि मैं आपकी प्रयोजनवती वाणी सुनने का (बहुत ही) इच्छुक हूँ, क्योंकि अपने कल्याण से कौन तृप्त होता है?

टिप्पणी—अपने कल्याण से कभी कोई सन्तुष्ट नहीं होता। अधिक से अधिक कल्याण प्राप्ति की सदा इच्छा बनी रहती है। दर्शन लाभ से कृतार्थ होने पर भी मैं आपकी प्रयोजनवती वाणी सुनकर और भी कल्याणभाजन बनूँगा।

[इस प्रकार का प्रिय बातों के कहने के बाद भगवान् श्रीकृष्ण अब देवर्षि नारद के आगमन के सम्बन्ध में सविनय पूछते हैं—]

गतस्पृहोऽप्यागमनप्रयोजनं वदेति वक्तुं व्यवसीयते यया ।
तनोति नस्तामुदितात्मगौरवो गुरुस्तवैवागम एष धृष्टताम् ॥३०॥

अर्थ—आप ससार से विरक्त हैं, तब भी अपने (यहाँ) आगमन का कारण बतायें—यह कहने के लिए मुझे जो धृष्टता उद्यत कर रही है उस धृष्टता को हमारे गौरव को प्रकट करने वाला आपका यह प्रशसनीय शुभागमन ही और विस्तृत कर रहा है।

टिप्पणी—कितनी वाक्चातुरी तथा शिष्टता इस छन्द म भरी हुई है। विरक्त नारद जी के द्वारा आगमन का प्रयोजन पूछना धृष्टता है, किन्तु उस धृष्टता को प्रोत्साहन देने वाला स्वय उन्ही का आगमन ही है।

इति ब्रुवन्तं तमुवाच स व्रती न वाच्यमित्थं पुरुषोत्तम त्वया ।
त्वमेव साक्षात्करणीय इत्यतः किमस्ति कार्यं गुरु योगिनामपि ॥३१॥

अर्थ—इस प्रकार की बाते करते हुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र से देवर्षि नारद जी ने कहा—हे पुरुषोत्तम ! आपको यह नहीं कहना चाहिए (कि मै ससार से विरक्त हूँ तो फिर यहाँ कैसे आया ? क्योकि विरक्तो को भी यहाँ आने का प्रयोजन तो पडता ही है।) क्योकि योगियों के भी तो आपही ध्येय अथवा साक्षात्करणीय है। इससे बढ़कर उन्हे भी कौन महान् कार्य है ? (अर्थात् कोई नहीं)

टिप्पणी—भगवान श्रीकृष्ण के प्रश्न का समुचित उत्तर नारद जी ने दिया। योगी ससार से विरक्त भले ही हो किन्तु अपने परलोक की चिन्ता उन्हें भी रहती ही है, और उस चिन्ता में निरत योगियों के ध्यानास्पद आप ही (भगवान् ही) हैं, अत इससे बड़ा मेरे लिए (नारद के लिए) कोई दूसरा महान् कार्य नहीं है जिसके लिए मै यहाँ आया हुआ हूँ।

[योगियो के तुम्हीं ध्येय हो इसका समर्थन करते है—]

उदीर्णरागप्रतिरोधकं जनैरभीक्ष्णमक्षुण्णतयातिदुर्गमम् ।
उपेयुषो मोक्षपथं मनस्विनस्त्वमग्रभूमिर्निरपायसंश्रया ॥३२॥

अर्थ—सांसारिक विषय-भोगों के प्रति बढ़ा हुआ अनुराग जिसमे बाधक होता है, जिसे लोग निरन्तर अनभ्यस्त होने के कारण अत्यन्त दुर्गम समझते हैं—ऐसे मुक्तिमार्ग को प्राप्त करने वाले मनस्वी पुरुषो

के लिए आप ही वह गन्तव्य स्थान हैं, जहाँ पहुँच कर पुनरागमन की प्राप्ति नहीं होती।

टिप्पणी—तात्पर्य यह कि मोक्ष के इच्छुकों को भी आप ही की शरण में जाना पड़ता है। श्रुति का वचन है—"तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्थाः विद्यतेऽयनाय।" तथा "न स पुनरावर्तते।" अर्थात् उसी परम पुरुष को प्राप्त कर के ही मृत्यु से छुटकारा मिलता है, इसके सिवा कोई दूसरा मार्ग नहीं है। और वहाँ पहुँच कर फिर संसार-सागर में लौटना नहीं पड़ता।

उदासितारं निगृहीतमानसैर्गृहीतमध्यात्मदृशा कथंचन।
बहिर्विकारं प्रकृतेः पृथग्विदुः पुरातनं त्वां पुरुषं पुराविदः ॥३३॥

अर्थ—योगी लोग चित्तवृत्तियों को अन्तर्मुखी करके अध्यात्म दृष्टि से किसी प्रकार आपका साक्षात्कार करते हैं। वे आपको (संसार से) उदासीन, महदादि विकारों से पृथक्, त्रिगुणात्मिका (सत्व, रजस् एवं तमस् गुणों से लिप्त) प्रकृति से भिन्न, विज्ञानघन अनादि पुरुष के रूप में जानते हैं। ऐसा पूर्वज कपिल आदि का कथन है।

[ऊपर के दो श्लोकों में निर्गुण रूप का प्रतिपादन कर प्रस्तुत कार्य में उपयोगी सगुण रूप की प्रशंसा में नीचे के ६ श्लोक कहे गये हैं:—]

निवेशयामासिथ हेलयोद्धृतं फणाभृतां छादनमेकमोकसः।
जगत्त्रयैकस्थपतिस्त्वमुच्चकैरहीश्वरस्तम्भशिरःसु भूतलम् ॥३४॥

अर्थ—तीनों लोकों की रचना करने वाले शिल्पी (स्वामी) आपही ने (वाराहावतार में) खिलवाड़ ही खिलवाड़ में, नागों के लोक के एकमात्र आवरण इस भूमण्डल को शेषनाग रूपी स्तम्भ के ऊँचे शिरों पर (सहस्रों फणों पर) टिकाया था।

टिप्पणी—इस श्लोक में वराहावतार की चर्चा कर संसार की विपदा को दूर करने की स्मृति नारदजी दिला रहे हैं। बढ़ई आवरण को ऊंचे खम्भों पर टिका देता है, उसी प्रकार तीनों लोकों के निर्माता भगवान् ने इस भूतल को पाताल के ऊपर आवरण बनाकर शेषनाग के सहस्रों फणों के ऊपर टिका दिया है। श्लिष्ट परम्परित रूपक।

अनन्यगुर्वास्तव केन केवलः पुराणमूर्तेर्महिमावगम्यते।
मनुष्यजन्मापि सुरासुरान्गुणैर्भवान्भवच्छेदकरैः करोत्यधः ॥३५॥

अर्थ—जिसका कोई भी गुरु नहीं है, अर्थात् सर्वश्रेष्ठ ऐसे पुराण पुरुष आपकी सम्पूर्ण महिमा को कौन जान सकता है ? (अर्थात् कोई नहीं क्योंकि) मनुष्य योनि में भी जन्म लेकर आप सांसारिक दुःख द्वन्द्वों को दूर करने वाले अपने (अलौकिक ज्ञान आदि) गुणों से देवताओं और असुरों को अपने से नीचा किये रहते हैं।

टिप्पणी—जब मानव होकर भी आप देवताओं तथा असुरों को नीचा किये रहते हैं तो पुराण पुरुष रूप में आपकी सम्पूर्ण महिमा का पार कौन पा सकता है ? छेकानुप्रास अलंकार।

लघूकरिष्यन्नतिभारभङ्गुरामर्मू किल त्वं त्रिदिवादवातरः ।
उदूढलोकत्रितयेन सांप्रतं गुरुर्धरित्री क्रियतेतरां त्वया ॥३६॥

अर्थ—(हे भगवन्!) निश्चय ही अत्यन्त बोझ से स्वयं टूटती हुई इस धरती के भार को हल्का करने के लिए आप स्वर्ग से (इस धरती पर) अवतीर्ण हुए हैं। किन्तु सम्प्रति तो आप (अपनी कुक्षि में जो) तीनों लोकों को धारण किए हुए हैं—इससे उस (धरती) को और भी अधिक गुरु (भारी अथवा पूज्य) बना रहे हैं।

टिप्पणी—अवतार तो धारण किया था धरती के भार को हल्का करने के लिए किन्तु अब उसे और भी भारी बना रहे हो। विरोधाभास अलंकार।

निजौजसोज्जासयितुं जगद्द्रुहामुपाजिहीथा न महीतलं यदि ।
समाहितैरप्यनिरूपितस्ततः पदं दृशः स्याः कथमीश मादृशाम् ॥३७

अर्थ—अपने तेज से जगत् द्रोही कंसादि को मारने के लिए यदि आप इस धरती पर न अवतीर्ण हुए होते तो हे ईश्वर ! समाधि लगाने वालों के लिए भी अत्यन्त दुर्गम आप हम जैसे चर्मचक्षुओं के दृष्टिगोचर क्योंकर होते ? (अर्थात् कभी न होते।)

टिप्पणी—नारद जी के इस कथन का तात्पर्य यह है कि मैं केवल आपके दर्शन के लिए ही यहाँ आया हुआ हूँ।

उपप्लुतं पातुमदो मदोद्धतैस्त्वमेव विश्वम्भर विश्वमीशिषे ।
ऋते रवेः क्षालयितुं क्षमेत कः क्षपातमस्काण्डमलीमसं नभः ॥३८

अर्थ—हे विश्व के रक्षक ! मदोन्मत्त कंसादि से पीड़ित इस विश्व की रक्षा करने की सामर्थ्य केवल आपमें है। (क्योंकि) रात्रि के घने

अन्धकार से मलिन आकाश को स्वच्छ करने मे समर्थ सूर्य के सिवा (दूसरा) कौन है ? (अर्थात् कोई नहीं ।)

टिप्पणी—प्रतिवस्तूपमा अलंकार ।

करोति कंसादिमहीभृतां वधाज्जनो मृगाणामिव यत्तव स्तवम् ।
हरे हिरण्याक्षपुरःसरासुरद्विपद्विपः प्रत्युत सा तिरस्क्रिया ॥३६॥

अर्थ—हे हरि (सिंह) ! लोग साधारण पशुओं के समान कस आदि राजाओं के मारने से जो आपकी प्रशसा करते है, यह प्रशंसा हिरण्याक्ष प्रभृति महाबलवान असुर रूपी हाथियों के नाश करने वाले आपका अपमान है ।

टिप्पणी—जिस प्रकार हाथियों का संहार करने वाले सिंह की साधारण पशुओं के मारने की चर्चा मे प्रशंसा करना उसका अपमान करना है उसी प्रकार हिरण्याक्ष प्रभृति महान् दुर्दान्त असुरों के मारने वाले भगवान की यदि कंसादि क्षुद्र राजाओं के वध की चर्चा से प्रशंसा की जाय तो उनका भी अपमान है । श्लिष्ट परम्परित रूपक तथा उपमा का अंगांगिभाव संकर ।

[इस प्रकार प्रसंग की चर्चा पर नारद जी पहुँच जाते है ।]

प्रवृत्त एव स्वयमुज्झितश्रमः क्रमेण पेष्टुं भुवनद्विषामसि ।
तथापि वाचालतया युनक्ति मां मिथस्त्वदाभाषणलोलुपं मनः ॥४०

अर्थ—(हे भगवन ! यद्यपि) परिश्रम को त्याग कर (परिश्रम की कोई चिन्ता न कर) आप क्रम से इन लोकद्रोहियों को पीसने के लिए स्वयमेव प्रवृत्त हैं, किन्तु फिर भी एकान्त मे आपके साथ वार्तालाप करने का लोभी मेरा मन मुझे वाचाल बना रहा है । (अधिक से अधिक बातें करने की प्रेरणा दे रहा है ।)

तदिन्द्रसंदिष्टमुपेन्द्र यद्वचः क्षणं मया विश्वजनीनमुच्यते ।
समस्तकार्येषु गतेन धुर्यतामहिद्विषस्तद्भवता निशम्यताम् ॥४१॥

अर्थ—अतएव हे उपेन्द्र ! निखिल विश्व के कल्याण के लिए देवराज इन्द्र के संदेश की बातें, क्षण भर मे जो मैं सुना रहा हूँ, उसे इन्द्र के समस्त कार्यों मे अग्रणी होने वाले आप कृपाकर सुनने का कष्ट करें ।

टिप्पणी—पदार्थहेतुक काव्यलिंग अलंकार ।

अभूदभूमिः प्रतिपक्षजन्मनां भियां तनूजस्तपनद्युतिर्दितेः ।
यमिन्द्रशब्दार्थनिषूदनं हरेर्हिरण्यपूर्वं कशिपुं प्रचक्षते ॥४२॥

अर्थ—शत्रुओं से उत्पन्न होने वाले भय से सर्वदा मुक्त (परम निर्भीक) सूर्य के समान परम तेजस्वी दिति का पुत्र था, जिसको लोग हरि के 'इन्द्र' इस शब्द तथा नाम को नष्ट करने वाला (अर्थात् हरि के समस्त ऐश्वर्य को नष्ट करने वाला) हिरण्यकशिपु कहते थे ।

समत्सरेणासुर इत्युपेयुषा चिराय नाम्नः प्रथमाभिधेयताम् ।
भयस्य पूर्वावतरस्तरस्विना मनस्सु येन द्युसदां न्यधीयत ॥४३

अर्थ—दूसरो के कल्याण से द्वेष रखने वाला वह बलवान् हिरण्यकशिपु सर्वप्रथम 'असुर' इस नाम को चिरकाल तक सार्थक करता हुआ देवताओं के चित्त मे 'भय' का प्रथम प्रवेश कराने वाला था। (अर्थात् सर्वप्रथम इसी हिरण्यकशिपु को 'असुर' मानकर देवताओं के मन मे भय का सचार हुआ था, इसके पूर्व तो वे पूर्ण निर्भय थे ।

दिशामधीशांश्चतुरो यतः सुरानपास्य तं रागहृताः सिषेविरे ।
अवापुरारभ्य ततश्चला इति प्रवादमुच्चैरयशस्करं श्रियः ॥४४॥

अर्थ—लक्ष्मी जब (चारों) से दिशाओं के स्वामी चारों देवताओं (इन्द्र, वरुण, यम और कुबेर) को छोडकर उसी हिरण्यकशिपु की सेवा मे अनुरक्त होकर रहने लगीं (क्योंकि लक्ष्मी तो वीरों की प्रियतमा हैं) तभी से अपकीर्तिकारी 'चचला' नाम से ससार में उनकी बहुत ही बदनामी हुई ।

टिप्पणी—तात्पर्य यह कि हिरण्यकशिपु ने चारो दिशाओं के दिक्पालों की सारी सम्पत्ति अपने अधीन कर ली थी और वह स्वभाव का बहुत ही उद्धत था ।

पुराणि दुर्गाणि निशातमायुधं बलानि शूराणि घनाश्च कञ्चुकाः ।
स्वरूपशोभैकफलानि नाकिनां गणैर्यमाशङ्क्य तदादि चक्रिरे ॥४५

अर्थ—देवताओं ने इसी हिरण्यकशिपु की आशंका से उसी के समय से अपने दिखावटी रण साधनों को सुसम्पन्न किया (इसके पूर्व किसी असाध्य शत्रु के न रहने के कारण वे केवल शोभामात्र के लिए थे । किन-किन साधनों को कैसा बनाया, उन्होंने अपने

पुरों को (चहारदीवारी और खाईं से सुसज्जित कर) दुर्ग बनाया, हथियारों को तेज किया, सेना को शूरवीरों से समन्वित किया तथा कवचों को सुदृढ तथा सघन बनाया। (इस प्रकार सर्वप्रथम इसी हिरण्यकशिपु के कारण उन्हें सजग होना पड़ा था।)

स संचरिष्णुर्भुवनान्तरेषु यां यदृच्छयाशिश्रियदाश्रयः श्रियः ।
अकारि तस्यै मुकुटोपलस्खलत्करैस्त्रिसंध्यं त्रिदशैर्दिशे नमः ॥४६॥

अर्थ—लक्ष्मी का आश्रय वह हिरण्यकशिपु दूसरे-दूसरे भुवनों में घूमते हुए अपनी इच्छानुसार जिस (किसी) दिशा में जाता था, उसी दिशा को अपने (शिर पर रखे हुए) मुकुट के रत्नों पर हाथ जोड़ते हुए देवगण भी तीनों सन्ध्याओं में नमस्कार करने लगते थे।

टिप्पणी—तीनों सन्ध्या में नमस्कार करने का तात्पर्य यह था कि सन्ध्या वन्दन जैसे नित्यकर्म में भी दिशा के नियमों को छोड़कर हिरण्यकशिपु के आकस्मिक आगमन के भय से देवता लोग उसी दिशा को नमस्कार करने लगते थे, जिस दिशा की ओर उसके भ्रमण की चर्चा उन्हें सुनाई पड़ती थी।

सटाच्छटाभिन्नघनेन बिभ्रता नृसिंह सैंहीमतनुं तनुं त्वया ।
स मुग्धकान्तास्तनसङ्गभङ्गुरैरुरोविदारं प्रतिचस्करे नखैः ॥४७॥

अर्थ—हे नृसिंह! आपने अति विशाल सिंह का शरीर धारण कर, अपनी जटाओं से बादलों को छिन्न-भिन्न करके, उस दैत्य के वक्षस्थल को, नवयौवना कान्ता के कठोर स्तनों से भी टेढ़े हो जाने वाले अपने नखों से, विदीर्ण कर दिया।

टिप्पणी—यहाँ जटाओं से बादलों को छिन्न भिन्न करने का तात्पर्य यह है कि नृसिंह भगवान् का विशाल स्वरूप इतना ऊँचा था कि उनके कंधे की जटाएँ बादलों को स्पर्श कर रही थीं।

विनोदमिच्छन्नथ दर्पजन्मनो रणेन कण्ड्वास्त्रिदशैः समं पुनः ।
स रावणो नाम निकामभीषणं बभूव रक्षः क्षतरक्षणं दिवः ॥४८॥

अर्थ—इसके बाद वही हिरण्यकशिपु देवताओं के साथ होने वाले (जीवन भर मचे रहने वाले) रण के गर्व से उत्पन्न भुजाओं की खुजली को मिटाने की इच्छा से रावण नाम का अत्यन्त भयंकर, स्वर्ग की रक्षा का विनाश करने वाला राक्षस हुआ।

[नीचे के अठारह छन्दों में रावण की उद्दण्डता का वर्णन है—]

प्रभुर्बुभूषुर्भुवनत्रयस्य यः शिरोऽतिरागाद्दशमं चिकर्तिषुः ।
अतर्कयद्विघ्नमिवेष्टसाहसः प्रसादमिच्छासदृशं पिनाकिनः ॥४९॥

अर्थ—साहसपूर्ण कामों में अनुराग रखने वाले जिस रावण ने त्रिभुवन के अधीश्वर बनने की इच्छा से, अत्यन्त उत्साह के साथ अपना दसवाँ मस्तक काटने को उद्यत होकर अपनी इच्छा के अनुसार मिलनेवाले पिनाकी शिव जी के वरदान को भी विघ्न की तरह माना। (इसके साथ आगे के पाँचों श्लोकों के अर्थों में—ऐसा रावण नामक राक्षस हुआ—इतना जोड लेना चाहिए)

टिप्पणी—इस छन्द में रावण की परम साहसिकता का परिचय दिया गया है। तात्पर्य यह कि उसे अपने शिरों को काट कर शिवजी के लिए अग्नि में हवन कर देने की इतनी त्वरा थी कि दसवां सिर काटते ही जब शिवजी वरदान देने लगे तो उसे यह अभीष्ट वरदान प्राप्ति भी विघ्न की तरह मालूम हुई। पुराणों की अनेक कथाओं में शिवजी की प्रसन्नता के लिए रावण द्वारा अपने शिरों को काट कर अग्नि में हवन करने की चर्चा आई है। उसी की ओर इस श्लोक में संकेत किया गया है।

समुत्क्षिपन्यः पृथिवीभृतां वरं वरप्रदानस्य चकार शूलिनः ।
त्रसत्तुषाराद्रिसुतससंभ्रमस्वयंग्रहाश्लेषसुखेन निष्क्रयम् ॥५०॥

अर्थ—जिस रावण ने पर्वतराज कैलास को ऊपर उठाकर वर देने वाले शिव जी को, डरती हुई पार्वती के वेगपूर्वक स्वयं उनके कण्ठ में आलिंगन करने के कारण उत्पन्न सुख से समन्वित कर, प्रत्युपकृत किया।

टिप्पणी—अकस्मात् कैलास के हिलने डुलने से पार्वती अपने स्त्री सुलभ स्वभाव से घबरा कर शिवजी के कण्ठ में दोनों बाहें डाल कर उनसे सुरन्त लिपट गयी। प्रिय की प्रार्थना के बिना प्रियतमा द्वारा दिया गया ऐसा गाढ़ आलिंगन सबसे अधिक आनन्ददायी होता है। शिवजी को ऐसा आनन्द दे कर रावण ने अपने इस व्यवहार द्वारा उनके वरदान का बदला चुका दिया। एक ओर कैलासाधिपति का वरदान था तो दूसरी ओर उससे भी बढ़कर सुख था। इन दोनों के इस विनिमय के कारण इस छन्द में परिवृत्ति—अलंकार है।

पुरीमवस्कन्द लुनीहि नन्दनं मुषाण रत्नानि हरामराङ्गनाः ।
विगृह्य चक्रे नमुचिद्विषा बली य इत्थमस्वास्थ्यमहर्दिवं दिवः ५१

अर्थ—जिस बलवान् रावण ने इन्द्र के साथ विरोध कर बार बार अमरावती पर चढाई की, नन्दन वन को छिन्न-भिन्न कर दिया, सब प्रकार के रत्नों को चुरा लिया तथा देवांगनाओं को छीन लिया। इस प्रकार उसने प्रतिदिन स्वर्गलोक को, उपद्रव मचाकर अस्तव्यस्त बना दिया।

टिप्पणी—'बार बार' विशेषण सभी क्रियाओ के साथ अन्वित होगा। समुच्चय अलकार।

सलीलयातानि न भर्तुरभ्रमोर्न चित्रमुच्चैःश्रवसः पदक्रमम् ।
अनुद्रुतः संयति येन केवलं बलस्य शत्रुः प्रशशंस शीघ्रताम् ॥५२॥

अर्थ—युद्ध मे जिस रावण द्वारा दौडाये जाने पर (पीछा किए जाने पर) बल के शत्रु इन्द्र ने न तो (अपने वाहन) ऐरावत (हाथी) के लीलापूर्वक मन्द गमन की प्रशसा की और न अपने उच्चै श्रवा घोडे की विविध प्रकार की चालों की प्रशसा की, उन्होंने तो केवल (उन दोनों के) शीघ्र गमन की ही प्रशसा की।

टिप्पणी—ऐरावत और उच्चै श्रवा के शीघ्र गमन की प्रशसा इसलिए इन्द्र ने की कि यदि वे तेजी से इन्द्र को ले कर रणभूमि से भाग न होते तो रावण उन्हें पकड लिए होता।

अशक्नुवन् सोढुमधीरलोचनः सहस्ररश्मेरिव यस्य दर्शनम् ।
प्रविश्य हेमाद्रिगुहागृहान्तरं निनाय बिभ्यद्दिवसानि कौशिकः ५३

अर्थ—अस्थिर दृष्टि वाले महेन्द्र ने उलूक की भाँति, सहस्ररश्मि सूर्य के समान परम तेजस्वी जिस रावण के दर्शन की क्षमता न रख-कर हिमालय पर्वत के गुफा गृहों के भीतर पैठकर (भी) डरते हुए अपने दिन बिताया था।

टिप्पणी—जिस प्रकार उलूक सूर्य की ओर न देख सकने के कारण सूर्योदय होते ही गुफाओं में छिप कर डरता हुआ अपने दिन बिताता है उसी प्रकार महेन्द्र भी रावण की ओर से भयभीत हो कर हिमालय की गुफाओं में छिप कर अपने दिन बिताता था। कौशिक शब्द यहाँ श्लिष्ट है, एक का अर्थ है महेन्द्र दूसरे का उलूक।

बृहच्छिलानिष्ठुरकण्ठघट्टनाद्विकीर्णलोलाग्निकणं सुरद्विषः ।
जगत्प्रभोरप्रसहिष्णु वैष्णवं न चक्रमस्याक्रमताधिकंधरम् ॥५४॥

अर्थ—विशाल शिला के समान कठोर (रावण के) कण्ठ से टकराने के कारण चारों ओर से जिसमें अग्नि की चिनगारियाँ निकलने लगीं (किन्तु रावण का जिससे प्रतिघात न हो सका) वह भगवान् विष्णु का पराजय करने में असमर्थ सुदर्शन चक्र, देवताओं के शत्रु एवं सम्पूर्ण जगत् के एकमात्र स्वामी इस रावण के कन्धे पर पहुँच कर कुछ न कर सका (प्रत्युत स्वयं प्रतिहत हो गया ।) ।

निभिन्नशङ्खः कलुषीभवन्मुहुर्मदेन दन्तीव मनुष्यधर्मणः ।
निरस्तगाम्भीर्यमपास्तपुष्पकं प्रकम्पयामास न मानसं न सः ॥५५॥

अर्थ—हाथी के समान (पराक्रमशील) इस रावण ने अपने मद में (मद जल) शङ्ख नामक खजाने (साधारण शङ्ख) को तोडकर उसे अत्यन्त क्षुब्ध (गँदला) कर उसकी गभीरता (गहराई) को नष्ट कर एवं उसके पुष्पक (फूलों के समूहों) को छीनकर मनुष्यधर्मा कुबेर के मानस (मानसरोवर) को बारम्बार नहीं कँपाया—ऐसा नहीं, किन्तु कँपाया ही ।

टिप्पणी—जिस प्रकार कोई हाथी मस्त हो कर किसी सरोवर में घुसकर उसके नालों को तोड़-ताड़ कर जल को गँदला कर मिट्टी डाल डालकर उसकी गहराई को कम कर उसमें विकसित कमल आदि के फूलों को छिन्न भिन्न कर उन्हें तहस-नहस कर देता है उसी प्रकार रावण ने भी अपने बल के गर्व से उन्मत्त हो कर शङ्ख नामक निधि को लूटकर कुबेर को क्षुब्ध कर उसकी गभीरता को नष्ट कर तथा उसके पुष्पक विमान को छीनकर उसका चित्त कम्पित कर दिया था। श्लेष अलंकार ।

रणेषु तस्य प्रहिताः प्रचेतसा सरोषहुङ्कारपराङ्मुखीकृताः ।
प्रहर्तुरेवोरगराजरज्जवो जवेन कण्ठं सभयाः प्रपेदिरे ॥५६॥

अर्थ—रणभूमि में वरुण द्वारा चलाये गए भीषण नागों के पाश, उस रावण के क्रोधपूर्वक किए गए हुँकार से पराङ्मुख होकर भयपूर्वक प्रहर्ता (वरुण) के ही कण्ठों में वेग के साथ आकर लिपट गये ।

टिप्पणी—वरुण ने तो रावण के विनाश के लिए भीषण नागों को ही अस्त्र बनाकर प्रयुक्त किया था किन्तु इधर रावण के क्रोध भरे हुंकार से ये इतने

भयभीत हो गए कि तुरन्त वापस लौटकर वरुण के ही गले में लिपट गये। विषम अलंकार।

परेतभर्तुर्महिषोऽमुना धनुर्विधातुमुत्खातविषाणमण्डलः।
हतेऽपि भारे महतस्त्रपाभरादुवाह दुःखेन भृशानतं शिरः ॥५७॥

अर्थ—इसी रावण द्वारा धनुष बनाने के लिए जिसकी सींगें उखाड़ ली गयी थीं ऐसे यमराज के भैंसे का (यद्यपि सींगें ऊपार कर) भार कम कर दिया था, किन्तु मारे लज्जा के भार से तब भी वह अत्यन्त झुके हुए शिर को दुःख के साथ ऊपर उठाये हुए था।

टिप्पणी—भार के हट जाने पर भी शिर नीचे झुका रहा—इस प्रकार विरोध अलंकार है।

स्पृशन्सशङ्कः समये शुचावपि स्थितः कराग्रैरसमग्रपातिभिः।
अघर्मघर्मोदकबिन्दुमौक्तिकैरलंचकारास्य वधूरहस्करः ॥५८॥

अर्थ—ग्रीष्म ऋतु में स्थित रहकर भी सूर्य अपनी सकुचित किरणों के अग्रभाग द्वारा भयपूर्वक स्पर्श करता हुआ इस रावण की स्त्रियों को शीतल पसीने की बूंदरूपी मुक्तावलियों से अलंकृत किया करता था।

टिप्पणी—तात्पर्य यह कि ग्रीष्म ऋतु में भी सूर्य रावण के भय से लंका में असह्य रूप में नहीं तपता था। समासोक्ति अलंकार।

कलासमग्रेण गृहानमुञ्चता मनस्विनीरुत्कयितुं पटीयसा।
विलासिनस्तस्य वितन्वता रतिं न नर्मसाचिव्यमकारि नेन्दुना ॥५९॥

अर्थ—अपनी सोलहों कलाओं के साथ रावण के भवन को कभी न छोड़ने वाले तथा मानिनी कामिनियों को (कामकेलि के प्रति) उत्कण्ठित करने में परमपटु चन्द्रमा इस परम विलासी रावण के रति-विषयक अनुराग को बढ़ाता हुआ उसका कामकेलि सम्बन्धी मन्त्रित्व नहीं करता था—ऐसा नहीं, किन्तु करता ही था।

टिप्पणी—तात्पर्य यह कि उसके अन्तःपुर में सदा चन्द्रमा का निवास रहता था। रातें चांदनी रहती थी, जिससे मानिनियों का भी कामोत्कण्ठा हुआ करती थी।

विदग्धलीलोचितदन्तपत्रिकाविधित्सया नूनमनेन मानिना।
न जातु वैनायकमेकमुद्धृतं विषाणमद्यापि पुनः प्ररोहति ॥६०॥

अर्थ—इस अहंकारी रावण ने अपनी चतुर विलासिनियों के कर्णाभरण को बनाने के लिए निश्चय ही कभी विनायक गणेश का एक दांत उधार लिया होगा, जो आज तक भी नहीं जम रहा है।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलंकार।

निशान्तनारीपरिधानधूननस्फुटागसाप्यूरुषु लोलचक्षुषः।
प्रियेण तस्यानपराधबाधिताः प्रकम्पनेनानुचकम्पिरे सुराः॥६१॥

अर्थ—अन्तःपुर की रमणियों के वस्त्रों को कँपाने के कारण वायु के स्पष्ट अपराध करने पर भी, उनकी (रमणियों की नग्न) जांघों को देखने के लिए लालायित रावण के प्रिय करने के कारण उसी के द्वारा बिना किसी अपराध के ही बांधे गये देवताओं के समूह अनुकम्पित किये गये।

टिप्पणी—वायु ने यद्यपि अन्तःपुर में प्रविष्ट हो कर स्त्रियों के वस्त्रों का उलट-पुलट कर अक्षम्य अपराध किया था किन्तु इसी उलट पुलट के कारण रावण की लालायित आंखें रमणियों की नग्न जांघों को देख सकी थीं अतः वह वायु पर परम प्रसन्न हुआ और इस प्रकार प्रिय कार्य कर के वायु ने बिना किसी अपराध के कारागार में जकड़े गए देवताओं की मुक्ति रावण से करा ली। एक की चतुराई से बहुतों का प्राण रक्षा हो गई।

तिरस्कृतस्तस्य जनाभिभाविना मुहुर्महिम्ना महसां महीयसाम्।
बभार बाष्पैर्द्विगुणीकृतं तनुस्तनूनपाद्धूमवितानमाधिजैः॥६२॥

अर्थ—उस रावण के समस्त लोक को तिरस्कृत करने वाले अत्यन्त महान तेज की महिमा से बारम्बार तिरस्कृत होने के कारण दुर्बल अग्नि अपने आन्तरिक दुःख के निःश्वास की भाप से दो गुना अधिक धूममण्डल धारण करता था।

टिप्पणी—तात्पर्य यह कि परम तेजस्वी कहा जाने वाला अग्नि भी रावण के सामने निस्तेज हो कर केवल धूम मण्डल बनाता रह जाता था। अतिशयोक्ति अलंकार।

परस्य मर्माविधमुज्झतां निजं द्विजिह्वतादोषमजिह्मगामिभिः।
तमिद्धमाराधयितुं सकर्णकैः कुलैर्न भेजे फणिनां भुजङ्गता॥६३॥

अर्थ—उग्र स्वभाव वाले उस रावण की सेवा के लिए, दूसरों के मर्मस्थल (हृदय आदि जीवस्थान तथा गुप्ताचार आदि) को भिन्न करने

वाले, अपने द्विजिह्वता रूपी दोष (दृष्टि दोष तथा पिशुनता आदि) को छोड़ने वाले सर्पों के कुलों ने सीधी चाल चलकर (ऋजु गति से तथा निष्कपट भाव से चलकर) तथा कान युक्त (आंखों से देखने की अपनी आदत छोड़कर तथा नियन्त्रण में रहकर) बनकर अपनी भुजगता ही छोड़ दी थी।

टिप्पणी—तात्पर्य यह कि इस रावण के शासन में पड़ कर दुष्टों ने दुष्टता तथा सर्पों ने अपना सर्पत्व गुण भी छोड़ दिया था। समासोक्ति अलंकार।

तदीयमातङ्गघटाविघट्टितैः कटस्थलप्रोषितदानवारिभिः ।
गृहीतदिक्कैरपुनर्निवर्तिभिश्चिराय याथार्थ्यमलम्भि दिग्गजैः ॥६४॥

अर्थ—उसके हाथियों के समूहों से घायल होने के कारण गण्ड-स्थल से नष्ट मद जल वाले दिग्गजों ने भाग भाग कर (दूर) दिशाओं में आश्रय लेकर तथा वहां से फिर कभी न लौट-कर चिरकाल तक के लिए अपने (दिग्गज) नाम को चरितार्थ कर दिया था।

टिप्पणी—तात्पर्य यह कि रावण की सेना के हाथियों के डर से वे हाथी इतने भयभीत हो गए थे कि भिन्न भिन्न दिशाओं में भाग कर उन्होंने शरण ली और चिरकाल तक वहीं रुके रहे, वहां से कभी वापस नहीं हुए, अतएव उनका 'दिग्गज' अर्थात् दिशा का हाथी यह स्थायी नाम पड़ गया।

अभीक्ष्णमुष्णैरपि तस्य सोष्मणः सुरेन्द्रबन्दीश्वसितानिलैर्यथा ।
सचन्दनाम्भःकणकोमलैस्तथा वपुर्जलार्द्रापवनैर्न निर्ववौ ॥६५॥

अर्थ—कामज्वर से सन्तप्त उस रावण का शरीर, देवराज इन्द्र की बंदिनी स्त्रियों के अत्यन्त उष्ण निःश्वास की वायु से जिस प्रकार शीतल होता था, उस प्रकार चन्दन मिश्रित जल के कणों से युक्त होने के कारण मृदुल एवं जल से सिंचित ताड़ के पत्तों से की जाती हुई हवा से नहीं शीतल होता था।

टिप्पणी—चन्दन की अपेक्षा उष्ण निःश्वासों से शीतल होने के कारण इस छन्द में विषम अलंकार है।

तपेन वर्षाः शरदा हिमागमो वसन्तलक्ष्म्या शिशिरः समेत्य च ।
प्रसूनक्लृप्तिं दधतः सदर्तवः पुरेऽस्य वास्तव्यकुटुम्बितां ययुः ॥६६॥

अर्थ—ग्रीष्म ऋतु के साथ वर्षा, शरद् ऋतु के साथ हेमन्त तथा शिशिर ऋतु के साथ वसन्त ऋतु आकर सर्वदा कुसुमों की प्रभूत सम्पत्ति लिए हुए, उसकी (रावण) राजधानी में निवास करते थे और उसके कुटुम्बी-से बन गये थे।

टिप्पणी—तात्पर्य यह कि रावण की राजधानी मे सदा छहों ऋतु विराजमान रहते थे। एक साथ सभी ऋतुओं के समागम मे असम्बन्ध मे सम्बन्ध रूप अतिशयोक्ति अलकार है।

अमानवं जातमजं कुले मनोः प्रभाविनं भाविनमन्तमात्मनः।
मुमोच जानन्नपि जानकीं न यः सदाभिमानैकधना हि मानिनः ६७

अर्थ—अमानव, अजन्मा, एवं (राम रूप मे) मनु के कुल मे उत्पन्न, अत्यन्त प्रभावशाली आपको अपना भविष्य में विनाश करने वाला जानकर भी उस रावण ने जानकी जी को नही छोड़ा (ऐसा वह अभिमानी था, सच है) मानी पुरुषों का सदा अभिमान ही एकमात्र धन होता है।

टिप्पणी—मानी पुरुष प्राण-सकट उपस्थित हो जाने पर भी अपने अभिमान को नही छोडते। कारण से कार्य का समर्थन होने के कारण इस छन्द मे अर्थान्तरन्यास अलकार है।

स्मरत्यदो दाशरथिर्भवन्भवानमुं वनान्ताद्वनितापहारिणम्।
पयोधिमाबद्धचलज्जलाविलं विलङ्घ्य लङ्कां निकषा हनिष्यति ६८

अर्थ—दशरथ पुत्र (राम) के रूप मे दण्डकारण्य से स्त्री (जानकी) को चुराने वाले, इसी रावण को, (पर्वतों द्वारा सेतु) बाधने से चंचल एवं गंदले जल वाले समुद्र को लाँधकर लंका नगरी के समीप आपने मारा था—क्या इस बात को आप स्मरण कर रहे हैं?

अथोपपत्तिं छलनापरोऽपरामवाप्य शैलूष इवैष भूमिकाम्।
तिरोहितात्मा शिशुपालसंज्ञया प्रतीयते संप्रति सोऽप्यसः परैः ६९

अर्थ—राक्षस शरीर छोड़ने के अनन्तर (इस समय) दूसरों को छलने मे तत्पर यह रावण नट के रूपान्तर की भाँति दूसरे जन्म को धारण कर एवं अपने पूर्व स्वरूप को छिपाकर शिशुपाल नाम से, रावण होने पर भी, दूसरों की दृष्टि मे, वह नहीं यह कोई दूसरा है—ऐसा प्रतीत हो रहा है।

टिप्पणी—जिस प्रकार नाटक में भाग लेनेवाला नट विविध रूप धारण कर नई नई वेशभूषा तथा बाल चाल में लोगों को भ्रम में डाल देता है कि 'यह वह नहीं है' उसी प्रकार यह शिशुपाल भी यद्यपि रावण ही है फिर भी लोग 'यह रावण नहीं है'—ऐसा समझते हैं।

[आगे के तीन श्लोकों में शिशुपाल की चर्चा की गयी है।]

स बाल आसीद्वपुषा चतुर्भुजो मुखेन पूर्णेन्दुनिभस्त्रिलोचनः ।
युवा कराक्रान्तमहीभृदुच्चकैरसंशयं संप्रति तेजसा रविः ॥७०॥

अर्थ—यह शिशुपाल शरीर से बालपन में (विष्णु भगवान की भाँति) चार भुजाओं वाला मुख से पूर्ण चन्द्रमा के समान एवं (शंकर की भाँति) तीन नेत्रों वाला था। इस समय जवान होकर यह अपने (बलवान्) करों (हाथों तथा किरणों) से राजाओं (पक्षान्तर में पर्वतों) को आक्रान्त कर अपने महान् तेज से निस्सन्देह सूर्य के समान (दिखाई पड रहा) है।

टिप्पणी—करों से महीभृत को आक्रान्त कर के—इसमें श्लेषानुप्राणित उत्प्रेक्षा अलंकार है तथा पूर्व पद में उपमा है। विष्णु, शंकर, चन्द्रमा तथा सूर्य के समान उपमित करने का तात्पर्य यह है कि यद्यपि देखने में वह बहुत ही सौम्य तथा तेजस्वी है किन्तु स्वभाव से अति दुःखद है।

स्वयं विधाता सुरदैत्यरक्षसामनुग्रहावग्रहयोर्यदृच्छया ।
दशाननादीनभिराद्धदेवतावितीर्णवीर्यातिशयान् हसत्यसौ ॥७१॥

अर्थ—अपनी इच्छा से ही यह शिशुपाल देवताओं, दैत्यों तथा राक्षसों पर प्रसन्नता तथा क्रूरता का विधाता है एवं इसी कारण से (यह) आराधित (महादेव आदि) देवताओं के वरदान से अत्यन्त पराक्रम प्राप्त करने वाले दशानन आदि का परिहास करता है।

टिप्पणी—तात्पर्य यह कि रावणादि की भाँति इसने किसी देवता का वरदान नहीं प्राप्त किया है स्वयं अपने पराक्रम से ही देवताओं दैत्यों तथा राक्षसों पर जब चाहे कृपा करता है जब चाहे दण्ड विधान करता है। यही कारण है कि यह उन रावणादि का उपहास करता है जो महादेव आदि की कृपा से ऐश्वर्यवान बने थे।

बलावलेपादधुनापि पूर्ववत् प्रबाध्यते तेन जगज्जिगीषुणा ।
सतीव योषित्प्रकृतिः सुनिश्चला पुमांसमभ्येति भवान्तरेष्वपि॥७२॥

अर्थ—विजयाभिलाषी यह शिशुपाल अपने पूर्वजन्मों के अनुसार इस जन्म में भी अपने पराक्रम के अभिमान से जगत् को उत्पीडित कर रहा है (ऐसा क्यों न हो) सती स्त्री की भाँति मनुष्य की अत्यन्त स्थिर प्रकृति दूसरे जन्म मे भी उसे प्राप्त होती ही है।

टिप्पणी—मनु का कथन है—

पतिं या नाभिचरति मनोवाक्काय संयता।
सा भर्तृलोकमाप्नोति सद्भिः साध्वीति चोच्यते॥

अर्थात् जो साध्वी स्त्री मन्-वचन और शरीर से पति को कभी अप्रसन्न नहीं करती वह जन्मांतर मे भी पति का लोक (सान्निध्य) प्राप्त करती है—ऐसा सत्पुरुषो का कथन है। अर्थान्तरन्यास अलंकार।

तदेनमुल्लङ्घितशासनं विधेर्विधेहि कीनाशनिकेतनातिथिम्।
शुभेतराचारविपक्त्रिमापदो निपातनीया हि सतामसाधवः॥७३॥

अर्थ—अतएव विधाता की भी आज्ञा को उल्लंघित करने वाले इस शिशुपाल को आप यमराज के भवन का अतिथि बनाइए, क्योंकि (अपने ही) अनाचारों के कारण आपदाएँ जिनपर स्वयं आकर पक रही हों—ऐसे असज्जनों का विनाश करना सत्पुरुषों का कर्तव्य है।

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलंकार।

हृदयमरिवधोदयादुदूढद्रढिम दधातु पुनः पुरन्दरस्य।
[illegible]॥७४॥

[illegible] गयी है ऐसा इन्द्र का वक्षस्थल फिर से घनी पुलकावली से युक्त इन्द्राणी के दोनों स्तनों के अग्रभाग के साथ, उत्सुकतापूर्वक किये गए गाढ आलिंगन के पीडन को सहने योग्य बन जाय।

टिप्पणी—इस छन्द में पदार्थहेतुक काव्यलिंग, संबंध में असंबंध रूप अतिशयोक्ति अर्थालंकार तथा वृत्यनुप्रास नामक शब्दालंकार है। यह पुष्पिताग्रा वृत्त है, जिसका लक्षण है "अयुजि नयुग रेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा" अर्थात् विषम चरणों में क्रम से दो नगण, एक रगण तथा एक यगण और सम चरणों में एक नगण दो जगण तथा एक रगण और एक गुरु वर्ण हो।

ओमित्युक्तवतोऽथ शार्ङ्गिण इति व्याहृत्य वाचं नभ-
स्तस्मिन्नुत्पतिते पुरः सुरमुनाविन्दोः श्रियं बिभ्रति।

शत्रूणामनिशं विनाशपिशुनः क्रुद्धस्य चैद्यं प्रति
व्योम्नीव भ्रुकुटिच्छलेन वदने केतुश्चकारास्पदम् ॥७५॥

अर्थ—इस प्रकार (उपर्युक्त) बातें कह आकाश की ओर उठ जाने पर जब (श्रीकृष्ण भगवान् के) सम्मुख देवर्षि नारद का मुख चन्द्रमा की शोभा धारण करने लगा तब 'ऐसा ही होगा' कह कर नारद की बात को अंगीकार करने वाले एवं शिशुपाल के प्रति क्रुद्ध भगवान् श्रीकृष्ण के गगनमण्डल की भाँति (नीले) मुख मण्डल पर सर्वदा शत्रुओं के विनाश की सूचना देने वाले केतु ने कुटिल भ्रुकुटि के बहाने से अपना स्थान बना लिया।

टिप्पणी—इस छन्द में अनेक काव्य सौन्दर्य हैं। इसमें वीर रस और उसके सहकारी रौद्र रस का पूर्ण परिपाक हुआ है। 'चन्द्रमा की शोभा धारण करने लगा' इसमें निदर्शनालङ्कार है। गगन मण्डल की भाँति मुख मण्डल पर—इसमें उपमा है। भ्रुकुटि के बहाने से केतु उदय हुआ—इसमें अपह्नुति है। इस प्रकार इन सब के अंगांगिभाव का संकर है। चमत्कार के लिए तथा मङ्गलाचरण की दृष्टि से सर्ग के इस अंतिम श्लोक में भी आदिम श्लोक की भाँति माङ्गलिक 'श्री' शब्द का प्रयोग है। महाभाष्यकार पतञ्जलि ने आदि, मध्य और अन्त में मङ्गलाचरण की प्रशंसा करते हुए कहा है—मङ्गलादीनि मङ्गलमध्यानि मङ्गलान्तानि शास्त्राणि प्रथन्ते, वीर पुरुषाण्यायुष्मत् पुरुषाणि च भवन्ति अध्येतारश्च प्रवक्तारो भवन्ति। अर्थात् जिस शास्त्र या ग्रन्थ में आदि मध्य और अन्त—तीनों स्थलों पर मङ्गलाचरण किया जाता है, उसकी प्रशंसा होती है, उसके निर्माता तथा अध्येता दानी हो वीर (नीरोग) दीर्घायु तथा प्रवक्ता होते हैं। यह छन्द शार्दूलविक्रीडित है, जिसका लक्षण है—सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्। सर्ग के अन्त में भिन्न छन्द रखने की रीति काव्य में प्रशस्त मानी गयी है। दण्डी ने कहा है—सर्गैरनतिविस्तीर्णैः श्राव्यवृत्तैः सुसन्धिभिः। सर्वत्र भिन्नसर्गान्तैरुपेतं लोकरञ्जकम्।

श्री माघ कवि कृत शिशुपाल वध महाकाव्य में कृष्णनारद सम्भाषण नामक प्रथम सर्ग समाप्त।

— o —

द्वितीय सर्ग

यियक्षमाणेनाहूतः पार्थेनाथ द्विषन्मुरम् ।
अभिचैद्यं प्रतिष्ठासुरासीत्कार्यद्वयाकुलः ॥१॥

अर्थ—तदनन्तर (इन्द्र के सन्देश को सुन लेने के अनन्तर एक ओर) यज्ञ के लिए युधिष्ठिर द्वारा बुलाये गये तथा (दूसरी ओर) शिशुपाल पर अभियान करने के इच्छुक मुरारि—इन दोनों कार्यों को लेकर आकुल हो उठे। (कि क्या कार्य पहले करूँ क्या बाद में ?)

सार्धमुद्धवसीरिभ्यामथासावासदत्सदः ।
गुरुकाव्यानुगां बिभ्रच्चान्द्रीमभिनभः श्रियम् ॥ २ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर भगवान श्रीकृष्ण आकाश में बृहस्पति और शुक्र से अनुगत चन्द्रमा की शोभा को धारण कर उद्धव और बलराम के साथ सभा भवन मे गये।

जाज्वल्यमाना जगतः शान्तये समुपेयुषी ।
व्यद्योतिष्ट सभावेद्यामसौ नरशिखित्रयी ॥ ३ ॥

अर्थ—जगत् की शान्ति के लिए मिलित, एव तेज से अत्यन्त जलते हुए ये तीनो पुरुष रूपी अग्नि सभा रूपी वेदी पर परम प्रकाशमान हुए।

टिप्पणी—जगत् की शान्ति के लिए किए गए यज्ञ की वेदी पर भी तीनों अग्नि मिलते है। रूपक अलकार।

रत्नस्तम्भेषु संक्रान्तप्रतिमास्ते चकाशिरे ।
एकाकिनोऽपि परितः पौरुषेयवृता इव ॥ ४ ॥

अर्थ—रत्न जटित सभाभवन के स्तम्भों मे जिनके प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ रहे थे, ऐसे वे (तीनों महापुरुष सभाभवन में) अकेले होने पर भी मानों चारों ओर से अनेक पुरुषों से घिरे हुए विराज रहे थे।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलकार।

अध्यासामासुरुत्तुङ्गहेमपीठानि यान्यमी ।
तैरूहे केसरिक्रान्तत्रिकूटशिखरोपमा ॥ ५ ॥

अर्थ—ये तीनों जिन ऊँचे सुवर्ण के आसनों पर विराजमान थे, वे (आसन) सिंहों से अधिष्ठित त्रिकूट पर्वत के तीनों शृङ्गों के समान प्रतीत हो रहे थे।

टिप्पणी—उपमा अलंकार।

गुरुद्वयाय गुरुणोरुभयोरथ कार्ययोः ।
हरिर्विप्रतिषेधं तमाचचक्षे विचक्षणः ॥ ६ ॥

अर्थ—(आसन पर बैठ जाने के अनन्तर) बोलने में निपुण भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने दोनों गुरुजनों (उद्धव और बलराम) से, इन दोनों महान् (आवश्यक) कार्यों के परस्पर विरोध की चर्चा की।

द्योतितान्तःसभैः कुन्दकुड्मलाग्रदतः स्मितैः ।
स्नपितेवाभवत्तस्य शुद्धवर्णा सरस्वती ॥ ७ ॥

अर्थ—कुन्द की कली के समान मनोहर दाँतों वाले भगवान् श्रीकृष्ण की वाणी, सभा के मध्य भाग को प्रकाशित करने वाले उनके मन्द मन्द हास्य से नहलाई हुई के समान शुद्ध वर्ण वाली हो रही थी।

टिप्पणी—तात्पर्य यह कि भगवान श्रीकृष्ण मन्द हास्य करते हुए स्पष्ट वाणी में बोल रहे थे।

भवद्गिरामवसरप्रदानाय वचांसि नः ।
पूर्वरङ्गः प्रसङ्गाय नाटकीयस्य वस्तुनः ॥ ८ ॥

अर्थ—(भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—) आप लोगों की बातों का प्रसंग उठाने का अवसर देने के लिए मेरी यह वाणी है, (क्योंकि) नाटक की कथावस्तु का प्रसंग आरम्भ करने के लिए ही पहले पूर्वरंग होता है।

टिप्पणी—भगवान् श्रीकृष्ण का तात्पर्य यह है कि आप लोगों को इस विषय पर अपनी-अपनी सम्मति प्रकट करने के लिए मैंने यह प्रसंग छेड़ा है। पूर्वरंग कहते हैं नाटक आरम्भ होने के पूर्व विघ्न शान्ति के लिए गान, वाद्यादि से साथ देवताओं

की जो स्तुति की जाती है, उसको। नाटक का उद्देश्य पूर्वरंग नहीं है, प्रत्युत वह कथावस्तु के प्रसंग को आरम्भ करने के लिए है।

यन्नाट्यवस्तुनः पूर्वं रंगविघ्नोपशान्तये।
कुशीलवाः प्रकुर्वन्ति पूर्वरंगः प्रकीर्तितः ॥

प्रतिवस्तूपमा अलंकार।

करदीकृतभूपालो भ्रातृभिर्जित्वरैर्दिशाम्।
विनाप्यस्मदलंभूष्णुरिज्यायै तपसः सुतः ॥ ९ ॥

अर्थ—दिशाओं को जीतने वाले भीम, अर्जुन आदि भाइयों के द्वारा (संसार के) राजाओं को अपने वश में करके धर्मराज के पुत्र युधिष्ठिर हमारे विना भी अपना यज्ञ पूर्ण करने में समर्थ हैं।

टिप्पणी—तात्पर्य यह कि इस स्थिति में शिशुपाल के ऊपर अभियान करना ही उचित है।

उत्तिष्ठमानस्तु परो नोपेक्ष्यः पथ्यमिच्छता।
समौ हि शिष्टैराम्नातौ वर्त्स्यन्तावामयः स च ॥ १० ॥

अर्थ—अपना कल्याण चाहने वाले पुरुष को बढ़ते हुए शत्रु की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए, क्योंकि (नीति के) पण्डितों ने बढ़ने वाले रोग और शत्रु को समान बतलाया है।

टिप्पणी—उपमा अलंकार।

न दूये सात्वतीसूनुर्यन्मह्यमपराध्यति।
यत्तु दन्दह्यते लोकमदो दुःखाकरोति माम् ॥ ११ ॥

अर्थ—सात्वती का पुत्र (शिशुपाल) जो मेरे साथ द्रोह करता है—इससे मुझे (तनिक भी) खेद नहीं है (प्रत्युत) वह जो सर्वसाधारण को बुरी तरह दुःख देता है, इससे मुझे पीड़ा पहुँचाता है।

टिप्पणी—तात्पर्य यह कि ऐसी स्थिति में शिशुपाल पर ही चढ़ाई करना उचित है पार्थ को तो प्रार्थना करके मनाया जा सकता है।

मम तावन्मतमिदं श्रूयतामङ्ग वामपि।
ज्ञातसारोऽपि खल्वेकः संदिग्धे कार्यवस्तुनि ॥ १२ ॥

अर्थ—हे प्रिय! (जब तक आप लोगों की सम्मति नहीं सुन लेता) तब तक तो मेरा यही मत है। अब आप दोनों की सम्मति सुनना

चाहता हूँ, (क्योंकि) तत्त्व को जानने वाला भी अकेला होने पर कर्त्तव्य के निश्चय करने में सन्दिग्ध रहता है।

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलंकार।

यावदर्थपदां वाचमेवमादाय माधवः ।
निरराम महीयांसः प्रकृत्या मितभाषिणः ॥ १३ ॥

अर्थ—इस प्रकार अर्थ से भरी (संक्षिप्त) बातें कहकर श्रीकृष्ण भगवान् चुप हो गये। महान् लोग स्वभाव से ही स्वल्पभाषी होते हैं। (अर्थात् वे निरर्थक बातें कभी नहीं कहते।)

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलंकार।

[अब नीचे के आठ श्लोकों का एक ही क्रिया 'बलरामजी बोले' इस में अन्वय है।]

ततः सपत्नापनयस्मरणानुशयस्फुरा ।
ओष्ठेन रामो रामोष्ठबिम्बचुम्बनचुञ्चुना ॥ १४ ॥

अर्थ—(भगवान् श्रीकृष्ण के चुप हो जाने के) अनन्तर शत्रु के अपराध के स्मरण से काँपते हुए उन होठों से, जो रेवती के ओष्ठ बिम्बों को चूमने में प्रसिद्ध थे (बलराम जी बोले)।

टिप्पणी—इस एक ही श्लोक में कवि ने बलराम की विशेषताओं का पर्याप्त परिचय दे दिया। शत्रु के अपराधों के स्मरण से ओठ काँपने लगे—इस वाक्य में उनकी वीरता का तथा रेवती के होठों को चूमने वाले—इससे उनकी विलासिता का पूर्ण चित्र सामने आ जाता है। उपमा और अनुप्रास की संसृष्टि।

विवक्षितामर्थविदस्तत्क्षणप्रतिसंहृताम् ।
प्रापयन् पवनव्याधेर्गिरमुत्तरपक्षताम् ॥ १५ ॥

अर्थ—आगे बोलने के लिए इच्छुक किन्तु उस समय (बलराम के बोलने के कारण) निवर्तित सुचतुर उद्धव की वाणी को सिद्धान्त पक्ष में स्थापित करते हुए (बलराम जी बोले—)

टिप्पणी—श्रीकृष्ण की बातें सुन कर उद्धव कुछ बोलना चाहते थे कि बलराम बोल पड़े। उद्धव परम चतुर थे वह सोचकर चुप हो गए कि यदि मैं अभी कुछ कहने लगूँगा तो यह उग्र और अविवेकी बलराम कुपित हो जायगा। इससे अच्छा है कि पहले इसकी बातें सुन लूँ फिर मैं अपनी बातें कहूँगा।

इस प्रकार उद्धव की वाणी को सिद्धान्त अर्थात् सारवस्तु के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई और बलराम की बातें असार सिद्ध हुईं ।

घूर्णयन् मदिरास्वादमदपाटलितद्युती ।
रेवतीवदनोच्छिष्टपरिपूतपुटे दृशौ ॥ १६ ॥

अर्थ—मदिरा के पान करने के कारण उत्पन्न मादकता से थोडी थोडी रक्तवर्ण की कान्ति से युक्त एवं रेवती के मुख से जूठी होने के कारण पवित्र दोनों पलकों वाली आंखों को इधर उधर घुमाते हुए (बलराम जी बोले) ।

टिप्पणी—रेवती ने रति के समय बलराम की आंखों को बार बार जो चूमा था, उससे उनकी पलकें पवित्र हो गयी थीं। जूठी होने से सभी वस्तुएं अपवित्र हो जाती हैं, किन्तु 'रतिकाले मुखं स्त्रीणां शुद्धमाखेटके शुनाम्', अर्थात् रति के समय स्त्रियों का तथा शिकार में कुत्तों का मुख पवित्र रहता है, इस उक्ति से यहां जूठी होने पर भी बलराम की आंखें पवित्र थीं । विरोधाभास अलंकार ।

आश्लेषलोलुपवधूस्तनकार्कश्यसाक्षिणीम् ।
म्लापयन्नभिमानोष्णैर्वनमालां मुखानिलैः ॥१७॥

अर्थ—आलिंगन के लिए लालायित रेवती के दोनों स्तनों की कठिनता की साक्षिणी (समीप से देखनेवाली) बनमाला (नीले कमल की माला) को अभिमान से संतप्त मुख की निःश्वासों से मलिन करते हुए (बलराम जी बोले) ।

टिप्पणी—बलराम की माला को साक्षिणी बनाने का तात्पर्य यह है कि बलराम के सिवा किसी दूसरी वस्तु ने रेवती के स्तनों की कठिनता का अनुभव नहीं किया था। असम्बन्ध में सम्बन्ध रूप अतिशयोक्ति अलंकार ।

दधत्संध्यारुणव्योमस्फुरत्तारानुकारिणीः ।
द्विषद्वेषोपरक्ताङ्गसङ्गिनीः स्वेदविप्रुषः ॥ १८ ॥

अर्थ—सन्ध्या के समय रक्त गगन-मंडल में चमकती हुई तारिकाओं का अनुकरण करनेवाली, शत्रु के प्रति उत्पन्न क्रोध के कारण लाल अंगों में सुशोभित पसीने की बूंदों को धारण किए हुए (बलराम जी बोले— ।

टिप्पणी—उपमा अलंकार।

प्रोल्लसत्कुण्डलप्रोतपद्मरागदलत्विषा ।
कृष्णोत्तरासङ्गरुचं विदधच्चौतपल्लवीम् ॥१९॥

अर्थ—अत्यंत चमकते हुए कुण्डल में जटित पद्मराग मणि के टुकड़ों की कान्ति से नीले रंग की चादर की शोभा को आम के पल्लव के समान और भी धूमिल वर्ण की बनाते हुए (बलराम जी बोले) ।

टिप्पणी—निदर्शना अलंकार।

ककुद्मिकन्यावक्त्रान्तर्वासलब्धाधिवासया ।
मुखामोदं मदिरया कृतानुव्याधमुद्वमन् ॥२०॥

अर्थ—रेवती के मुख की (सहज) सुगन्ध से सुवासित मदिरा से जिसको, संसर्ग प्राप्त हो गया था ऐसे अपने मुख की सुगन्ध को (सभा भवन में) बिखेरते हुए (बलराम जी बोले) ।

टिप्पणी—तद्गुण अलंकार।

जगाद वदनच्छद्मपद्मपर्यन्तपातिनः ।
नयन्मधुलिहः श्वैत्यमुदग्रदशनांशुभिः ॥२१॥

अर्थ—मुख को पद्म समझकर समीप उड़ने वाले भ्रमरों को अपने परम उज्ज्वल दाँतों की किरणों से श्वेत बनाते हुए (बलराम जी) बोले ।

टिप्पणी—तद्गुण तथा अपह्नुव का संकर ।

यद्वासुदेवेनादीनमनादीनवमीरितम् ।
वचसस्तस्य सपदि क्रिया केवलमुत्तरम् ॥२२॥

अर्थ—(बलराम जी ने कहा—) वासुदेव ने अभी जो परम निर्दोष तथा दीनता से विहीन बातें कही हैं, उनकी तुरंत पूर्ति करना ही उनका उचित उत्तर है ।

नैतल्लघ्वपि भूयस्या वचो वाचातिशय्यते ।
इन्धनौघधगप्यग्निस्त्विषा नात्येति पूषणम् ॥ २३ ॥

अर्थ—अत्यन्त संक्षेप में ही कही गयी (श्रीकृष्ण की) यह बात अत्यंत विस्तारपूर्वक कही जानेवाली बातों से काटी नहीं जा सकती,

क्योंकि काष्ठ समूह को जलानेवाली अग्नि कभी भी अपनी कान्ति से सूर्य का अतिक्रमण नहीं कर सकती।

टिप्पणी—दृष्टान्त अलंकार।

संक्षिप्तस्याप्यतोऽस्यैव वाक्यस्यार्थगरीयसः।
सुविस्तरतरा वाचो भाष्यभूता भवन्तु मे ॥ २४ ॥

अर्थ—अतएव अत्यन्त विस्तार के साथ कही जाने वाली मेरी वार्तों को बहुत संक्षेप में कही गयी वासुदेव की इसी अर्थभरी तथा गंभीर वाणी का भाष्य समझना चाहिए।

टिप्पणी—जिस प्रकार अत्यन्त संक्षेप में कहे गये सूत्रों की विस्तारपूर्वक व्याख्या उनकी विशेषताओं को प्रकाशित करने के लिए की जाती है, उसी प्रकार वासुदेव की अत्यन्त संक्षिप्त वाणी की विशेषताओं पर इस लंबी वार्ता में प्रकाश डाला जायगा। उपमा अलंकार।

विरोधिवचसो मूकान् वागीशानपि कुर्वते।
जडानप्यनुलोमार्थान् प्रवाचः कृतिनां गिरः ॥२५॥

अर्थ—कुशल पुरुषों की वाणी प्रतिकूल बोलनेवाले बड़े-बड़े वक्ताओं को भी बिल्कुल मूक बना देती है और अपने पक्ष में बोलनेवाले मन्दमतियों को भी निपुण वक्ता बना देती है।

टिप्पणी—विरोध तथा अतिशयोक्ति अलंकार।

षड्गुणाः शक्तयस्तिस्रः सिद्धयश्चोदयास्त्रयः।
ग्रन्थानधीत्य व्याकर्तुमिति दुर्मेधसोऽप्यलम् ॥ २६ ॥

अर्थ—मन्द बुद्धि लोग भी नीति ग्रन्थों को पढ़कर यह व्याख्या करने में समर्थ बन जाते हैं कि गुण छः होते हैं, शक्तियाँ तीन होती हैं, सिद्धियाँ तीन होती हैं तथा उदय तीन होते हैं।

टिप्पणी—राजाओं के छः गुण ये हैं—सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय और द्वैधीभाव। पैसा दे-लेकर सुलह करने का नाम सन्धि है, विग्रह का अर्थ है अपकार करना, यान चढ़ाई करने को कहते हैं, आसन का तात्पर्य है उपेक्षा करना, संश्रय है, दूसरे की शरण लेना तथा द्वैधीभाव का अर्थ है एक के साथ सुलह करके उसकी सहायता से दूसरे से विग्रह करना। तीन शक्तियाँ ये हैं—प्रभु शक्ति, मन्त्र शक्ति और

उत्साह शक्ति। कोप, दुर्ग और दण्ड सम्पत्ति को प्रभुशक्ति कहते हैं, कोश का अर्थ है खजाना, दुर्ग किले को कहते हैं, जो अच्छी तरह प्राकार और परिखा आदि से सुरक्षित हो तथा चतुरगिनी सेना की सम्पत्ति का नाम ही दण्ड सम्पत्ति है। विज्ञान को मन्त्र शक्ति तथा पराक्रम को उत्साहशक्ति समझना चाहिए। तीनों सिद्धियाँ ये हैं —भूमि, सुवर्ण तथा मन्त्र। चय, अपचय तथा स्थान—ये तीन उदय हैं। चय का अर्थ है वृद्धि, अपचय कहते हैं विनाश को तथा स्थान उस अवस्था को कहते हैं जिसमें न वृद्धि हो न विनाश।

अनिर्लोडितकार्यस्य वाग्जालं वाग्मिनो वृथा।
निमित्तादपराद्धेषोर्धानुष्कस्येव वल्गितम् ॥ २७ ॥

अर्थ—कार्य के सबंध मे सदा अस्पष्ट धारणा रखनेवाले वाचाल व्यक्ति का वाक्प्रपच, लक्ष्य से जिसके बाण च्युत हो जाते हैं, ऐसे धनुर्धारी की लंबी-लबी बातों के समान बिल्कुल व्यर्थ है।

टिप्पणी—दृष्टान्त अलकार।

सर्वकार्यशरीरेषु मुक्त्वाङ्गस्कन्धपञ्चकम्।
सौगतानामिवात्मान्यो नास्ति मन्त्रो महीभृताम् ॥२८॥

अर्थ—राजाओं के लिए समस्त कार्य रूपी शरीर में पांच अंगोंवाले मत्र के अतिरिक्त ठीक उसी प्रकार दूसरा मत्र नहीं है जैसे बौद्धों के मत में इस समस्त देह में पाच स्कन्धों के अतिरिक्त कोई अन्य आत्मा नहीं है।

टिप्पणी—बौद्ध शरीर में आत्मा नाम की कोई वस्तु नहीं स्वीकार करते। वे शरीर को पाच स्कन्धो से युक्त मानते है, रूप स्कन्ध, वेदना स्कन्ध, विज्ञान स्कन्ध, सज्ञा स्कन्ध और सस्कार स्कन्ध। इस चराचर जगत में दृश्यमान सभी वस्तुओं का आकार रूप स्कन्ध है। सुख दुःख का अनुभव अथवा रूप का ज्ञान वेदना स्कन्ध है। धारा प्रवाह रूप से होने वाला आश्रय ज्ञान अथवा अध्ययन की हुई वस्तु का अविस्मरण विज्ञान स्कन्ध है। चैतन्य अथवा वस्तु समूह का नाम सज्ञा स्कन्ध है और चित्त पर पडी हुई छाया सस्कार स्कन्ध है। इन पाच स्कन्धो के अतिरिक्त जिस प्रकार शरीर में आत्मा नाम की कोई वस्तु बौद्धो के लिए नही है, उसी प्रकार राजाओं के लिए पचाग-युक्त मत्र के अतिरिक्त किसी भी कार्य में कोई अन्य मत्र नही है। राजाओ के ये पचाग मत्र ये हैं—कार्य के आरम्भ करने का उपाय, कार्य को सिद्ध करने में उपयोगी द्रव्य का सग्रह देश और काल का निरूपण, विपत्तियो को दूर

करने के उपाय और कार्य की सिद्धि। बलराम के इस वचन का तात्पर्य यह है कि इन सब बातों पर विचार कर उचित यही लगता है कि यह समय शिशुपाल पर अभियान करने के लिए उपयुक्त है। उपमा अलंकार।

मन्त्रो योध इवाधीरः सर्वाङ्गैः संवृतैरपि ।
चिरं न सहते स्थातुं परेभ्यो भेदशङ्कया ॥२९॥

अर्थ—सभी अंगों से ढँका हुआ होने पर भी मंत्र अधीर योद्धा की भाँति दूसरों से (शत्रु से) भिन्न (घायल) होने की आशंका से चिरकाल तक ठहर नहीं सकता।

टिप्पणी—अर्थात जिस प्रकार डरपोक योद्धा अपने वक्षस्थल एवं शिर आदि को अच्छी तरह से ढके रहने पर भी शत्रु द्वारा घायल होने के भय से युद्ध भूमि में देर तक नहीं ठहर सकता उसी प्रकार पूर्वोक्त पाचों उपायों द्वारा अच्छी तरह से गुप्त रखने पर भी मंत्रणा दूसरों के कानोंमें पड कर कहीं फूट न जाय इस आशंका से देर तक नहीं ठहर सकती। बलराम का तात्पर्य यह है कि इसलिए चुपचाप शिशुपाल पर चढाई करने में अब तनिक भी विलंब नहीं करना चाहिए। उपमा अलंकार।

आत्मोदयः परज्यानिर्द्वयं नीतिरितीयती ।
तदूरीकृत्य कृतिभिर्वाचस्पत्यं प्रतायते ॥३०॥

अर्थ—अपनी उन्नति और शत्रु का विनाश—यही दो नीति की बातें है। (इनके अतिरिक्त कोई तीसरी बात नीतिशास्त्र मे नहीं है) इन्हीं दोनों को अंगीकार कर कुशल पुरुष अपनी वाक्चतुरता का विस्तार करते हैं।

टिप्पणी—अतएव अपनी उन्नति के लिए शिशुपाल पर चढाई करने में अब हमें तनिक भी विलम्ब नहीं करना चाहिए।

तृप्तियोगः परेणापि महिम्ना न महात्मनाम् ।
पूर्णश्चन्द्रोदयाकाङ्क्षी दृष्टान्तोऽत्र महार्णवः ॥३१॥

अर्थ—परम बुद्धिमान (राजा) लोग अत्यन्त अधिक महिमा से समन्वित होकर भी सन्तुष्ट नहीं होते, मेरे इस कथन मे सब प्रकार से पूर्ण महान् समुद्र ही दृष्टान्त है जो (बराबर) चन्द्रमा के उदय का आकांक्षी (बना रहता) है।

टिप्पणी—इस श्लोक में यदि दृष्टान्त शब्द न आया होता तो यह दृष्टान्त अलंकार होता । दृष्टान्त शब्द के आ जाने से उपमा अलंकार हो गया है एवं पुनरुक्ति के होने से एकावली अलंकार है।

संपदा सुस्थिरंमन्यो भवति स्वल्पयापि यः ।
कृतकृत्यो विधिर्मन्ये न वर्धयति तस्य ताम् ॥३२॥

अर्थ—जो थोडी-सी सम्पत्ति पा जाने पर अपने को सुस्थिर या स्वस्थ मानने लगता है, उस (स्वल्प सतुष्ट) की स्वल्प सम्पत्ति को कृतार्थ विधाता भी नहीं बढाता—ऐसा मैं मानता हूँ ।

टिप्पणी—तात्पर्य यह कि थोडे मे सतुष्ट एव पुरुषार्थ के हीन हो जाने पर पुरुष की दैव भी सहायता नही करता।

समूलघातमघ्नन्तः परान्नोद्यन्ति मानिनः ।
प्रध्वंसितान्धतमसस्तत्रोदाहरणं रविः ॥ ३३ ॥

अर्थ—स्वाभिमानी पुरुष शत्रुओं का समूल नाश किये बिना उन्नति नहीं प्राप्त करते, इस विषय में गाढे अन्धकार को पूर्णतः नष्ट करके उदय होने वाला सूर्य ही उदाहरण है ।

टिप्पणी—इस छन्द में भी 'उदाहरण' शब्द के प्रयोग के कारण दृष्टान्त अलकार नही हो सकता, प्रत्युत उपमा अलकार है।

विपक्षमखिलीकृत्य प्रतिष्ठा खलु दुर्लभा ।
अनीत्वा पङ्कतां धूलिमुदकं नावतिष्ठते ॥ ३४ ॥

अर्थ—शत्रु का समूल नाश किए बिना प्रतिष्ठा की प्राप्ति दुर्लभ है,(क्योंकि) जल धूल को कीचड बनाये बिना नहीं ठहर सकता ।

टिप्पणी—दृष्टान्त अलकार।

म्रियते यावदेकोऽपि रिपुस्तावत्कुतः सुखम् ।
पुरः क्लिश्नाति सोमं हि सैंहिकेयोऽसुरद्रुहाम् ॥३५॥

अर्थ—जब तक एक भी शत्रु शेष रहता है तब तक मनुष्य को सुख कहाँ ? राहु समस्त देवताओं के सम्मुख ही चन्द्रमा को दुःख पहुँचाता है ।

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलकार।

मखा गरीयान् शत्रुश्च कृत्रिमस्तौ हि कार्यतः ।
स्यातामभित्रौ मित्रे च सहजप्राकृतावपि ॥ ३६ ॥

अर्थ—कृत्रिम मित्र और कृत्रिम शत्रु सबसे अधिक बलवान् होते हैं, क्योंकि ये दोनों ही किसी न किसी उपकार या अपकार से उत्पन्न होते हैं। सहज तथा प्राकृत मित्र और शत्रु भी कार्यवश कभी अमित्र और मित्र बन जाते है।

टिप्पणी—नीति शास्त्रों में मित्र और शत्रु के तीन प्रकार बतलाये गए हैं। कृत्रिम, सहज और प्राकृत। जो किसी उपकार या अपकार से मित्र या शत्रु बनते हैं वे कृत्रिम कहाते हैं। मौसी फूआ आदि के पुत्र सहज मित्र तथा चाचा के पुत्र सहज शत्रु कहे जाते हैं। इन दोनों के अतिरिक्त प्राकृत मित्र और शत्रु उन्हें कहते हैं जो वंशपरम्परा से मित्र और शत्रु बने चले आते हैं। इन तीनों प्रकार के मित्रों और शत्रुओं में कृत्रिम मित्र और कृत्रिम शत्रु को ही महत्त्वपूर्ण समझना चाहिए क्योंकि वे किसी न किसी कारण-वश वैसा बन जाते हैं। इतना ही नहीं किसी कार्य के कारण तो सहज और प्राकृत मित्र और शत्रु भी अमित्र और मित्र बन जाते हैं। तात्पर्य यह कि यह राग और द्वेष अनित्य होता है। आज जिससे मित्रता है, कल ही उससे शत्रुता हो सकती है और आज का शत्रु कल का मित्र बन सकता है।

[निज ता बुआ का पुत्र शिशुपाल भी, जो सहज मित्र है और किसी कारणवश शत्रु बन गया है संधि करके पुनः मित्र बनाया जा सकता है—इस धारणा का निराकरण करते हैं—]

उपकर्त्रारिणा संधिर्न मित्रेणापकारिणा ।
उपकारापकारौ हि लक्ष्यं लक्षणमेतयोः ॥ ३७ ॥

अर्थ—उपकारी शत्रु के साथ भी सन्धि कर लेना उचित है, किन्तु अपकारी मित्र के साथ (कभी) नहीं, क्योंकि इस उपकार और अपकार को ही मित्र और शत्रु का लक्षण समझना चाहिए।

त्वया विप्रकृतश्चैद्यो रुक्मिणीं हरता हरे ।
बद्धमूलस्य मूलं हि महद्वैरतरोः स्त्रियः ॥ ३८ ॥

अर्थ—हे वासुदेव ! तुमने रुक्मिणी का हरण करते समय शिशुपाल को (जो) पराजित किया था, (वही शिशुपाल के वैर का मूल कारण है, क्योंकि) स्त्रियाँ सुदृढ़ मूल वाले शत्रुतारूपी वृक्ष की महान जड़ें (कारण) होती हैं।

टिप्पणी—रूपक तथा अर्थान्तरन्यास की संसृष्टि।

त्वयि भौमं गते जेतुमरौत्सीत्स पुरीमिमाम् ।
प्रोषितार्यमणं मेरोरन्धकारस्तटीमिव ॥ ३९ ॥

अर्थ—तुम्हारे नरकासुर को जीतने के लिए बाहर चले जाने पर शिशुपाल ने इस द्वारकापुरी को इस प्रकार घेर लिया था, जिस प्रकार सूर्य के अस्ताचल चले जाने पर अन्धकार सुमेरु की चोटियों को घेर लेता है।

टिप्पणी—उपमा अलंकार।

आलप्यालमिदं बभ्रोर्यत्स दारानपाहरत् ।
कथापि खलु पापानामलमश्रेयसे यतः ॥ ४० ॥

अर्थ—शिशुपाल ने बभ्रु (एक यादव विशेष) की स्त्री का जो अपहरण किया था, यह बात तो कहनी ही नहीं चाहिए क्योंकि निश्चय ही दुरात्माओं की (दर्शन सहवास आदि तो दूर) चर्चा भी अकल्याण करने वाली होती है।

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलंकार।

विराद्ध एवं भवता विराद्धा बहुधा च नः ।
निर्वर्त्यतेऽरिः क्रियया स श्रुतश्रवसः सुतः ॥ ४१ ॥

अर्थ—इस प्रकार तुम्हारे द्वारा अपमानित और खिन्न श्रुतश्रवा के पुत्र शिशुपाल ने हमारा अनेक बार अपकार किया, (अब) वह इन्हीं कारणों से हमारा कृत्रिम शत्रु बन गया है (अतः अब उसकी उपेक्षा अनिष्टकर होगी।)।

विधाय वैरं सामर्षे नरोऽरौ य उदासते ।
प्रक्षिप्योदर्चिषं कक्षे शेरते तेऽभिमारुतम् ॥ ४२ ॥

अर्थ—जो मनुष्य पहले ही से रुष्ट शत्रु के साथ वैर ठानकर उसकी उपेक्षा करते हैं अथवा उसकी ओर से उदासीन बन जाते हैं वे वायु के सम्मुख तृणों के समूह में आग लगाकर सोते हैं।

टिप्पणी—जिस प्रकार हवा के रुख पर तृण समूह में आग लगा कर बन जाना अपना विनाश करना है उसी प्रकार रुष्ट शत्रु के साथ विरोध करके उदासीन बन रहना अपना विनाश है। निदर्शना अलंकार।

मनागनभ्यावृत्त्या वा कामं क्षाम्यतु यः क्षमी ।
क्रियासमभिहारेण विराध्यन्तं क्षमेत कः ॥ ४३ ॥

अर्थ—जो क्षमाशील है वे थोडा-सा अथवा पहली बार के अपराध करने वाले को भली प्रकार सहन कर ले किन्तु बारम्बार (गुरुतर) अपराध करने वाले को कौन सहन कर सकता है ?

अन्यदा भूषणं पुंसः क्षमा लज्जेव योषितः ।
पराक्रमः परिभवे वैयात्यं सुरतेष्विव ॥ ४४ ॥

अर्थ—दूसरे अवसरो पर स्त्रियों की लज्जा के समान पुरुषो का आभूषण उनकी क्षमा है, किन्तु अपमान या पराजय के अवसर पर, सम्भोग काल मे स्त्रियो की धृष्टता या निर्लज्जता की भाँति उनका पराक्रम (ही) उनका आभूषण होता है।

माजीवन् यः परावज्ञादुःखदग्धोऽपि जीवति ।
तस्याजननिरेवास्तु जननीक्लेशकारिणः ॥ ४५ ॥

अर्थ—जो मनुष्य शत्रु के अपमान से प्राप्त दुःख से दग्ध होकर भी गर्हित जीवन बिताते हुए अपने प्राणो को धारण करता है, उस माता को क्लेश देने वाले (गर्भ धारण और प्रसवादि के दुःखो को देने वाले) की उत्पत्ति मत हो (तभी ठीक)।

पादाहतं यदुत्थाय मूर्धानमधिरोहति ।
स्वस्थादेवापमानेऽपि देहिनस्तद्वरं रजः ॥ ४६ ॥

अर्थ—जो धूल पैर से आहत होने पर उडकर (आहत करने वाले के) शिर पर चढ जाती है, वह अपमान होने पर भी स्वस्थ बने रहने वाले शरीरधारी मनुष्य से श्रेष्ठ है।

टिप्पणी—व्यतिरेक अलंकार।

असंपादयतः कञ्चिदर्थं जातिक्रियागुणैः ।
यदृच्छाशब्दवत्पुंसः संज्ञायै जन्म केवलम् ॥ ४७ ॥

अर्थ—अपने (ब्राह्मणत्व आदि, पक्षान्तर मे गोत्व आदि) जाति, (यज्ञ-अध्ययन आदि, पक्षान्तर मे पाचकत्व आदि) क्रिया एवं (शूरता आदि, पक्षान्तर मे शुक्लता आदि) गुणो से कुछ भी अर्थ को (सुकृत परमार्थ आदि, पक्षान्तर मे अपनी अभिरुचि के अनुसार व्यवहार रूप प्रयोजन को) न निष्पन्न करने वाले पुरुष का जन्म इच्छा कल्पित

(जात्यादि प्रवृत्ति निमित्त शून्य) डित्थ, कपित्थ आदि शब्दों की भाँति केवल पुकारने के लिए है। (अर्थात् उनका जन्म निरर्थक है)।

टिप्पणी—तात्पर्य यह कि जिस प्रकार इच्छानुसार पुकारे गए डित्थ, कपित्थ आदि शब्दों की जाति, क्रिया अथवा गुण किसी से कोई वाच्यार्थ नहीं निकलता है उसी प्रकार अकर्मण्य पुरुष की ब्राह्मणत्वादि जाति यज्ञादि क्रिया तथा शौर्यादि गुण—इन सब से भी कोई काम नहीं हो सकता। वे केवल डित्थ कपित्थ आदि की भाँति नाममात्र के लिए हैं।

तुङ्गत्वमितरा नाद्रौ नेदं सिन्धावगाधता।
अलङ्घनीयताहेतुरुभयं तन्मनस्विनि ॥ ४८ ॥

अर्थ—पर्वत में ऊँचाई है, अगाध गहराई नहीं है और समुद्र में अगाध गहराई है, ऊँचाई नहीं है, किन्तु अलंघनीय होने के ये दोनों ही कारण मनस्वी पुरुष में विद्यमान रहते हैं? (अर्थात् मनस्वी पुरुष पर्वत के समान ऊँचे तथा समुद्र के समान अगाध गभीर होते हैं, उनका पार पाना सरल काम नहीं हैं।)

टिप्पणी—व्यतिरेक अलंकार।

तुल्येऽपराधे स्वर्भानुर्भानुमन्तं चिरेण यत्।
हिमांशुमाशु ग्रसते तन्म्रदिम्नः स्फुटं फलम् ॥ ४९ ॥

अर्थ—अपराध के समान होने पर भी राहु सूर्य को चिरकाल बाद और चन्द्रमा को शीघ्र ही जो ग्रसता है, सो (चन्द्रमा की) मृदुता का ही स्पष्ट परिणाम है।

टिप्पणी—अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार।

स्वयं प्रणमतेऽल्पेऽपि परवायावुपेयुषि।
निदर्शनमसाराणां लघुर्बहुतृणं नरः ॥ ५० ॥

अर्थ—अत्यन्त तुच्छ तृण के समान जो मनुष्य स्वल्प वायु के समान शत्रु के सम्मुख आ जाने पर स्वयमेव झुक कर प्रणाम करता है, वह (अपनी तुच्छता के कारण) दुर्बलों अथवा निस्सत्वों का उदाहरण है।

टिप्पणी—उपमा अलंकार।

तेजस्विमध्ये तेजस्वी दवीयानपि गण्यते ।
पञ्चमः पञ्चतपसस्तपनो जातवेदसाम् ॥ ५१ ॥

अर्थ—दूरस्थ होने पर भी तेजस्वी (पुरुष) तेजस्वियों के मध्य में परिगणित होता है, पचाग्नि को तापने वाले साधकों के लिए (दूरस्थ होने पर भी) पाचवे अग्नि सूर्य होते हैं।

टिप्पणी—पचाग्नि तापने वाले चारों ओर से अग्नियों के बीच में बैठते हैं उनके लिए अति दूरवर्ती होने पर भी सूर्य पाचवा अग्नि है। अर्थान्तरन्यास अलकार।

अकृत्वा हेलया पादमुच्चैर्मूर्धसु विद्विषाम् ।
कथंकारमनालम्बा कीर्तिर्द्यामधिरोहति ॥ ५२ ॥

अर्थ—लीलापूर्वक शत्रुओं के ऊँचे मस्तक पर पैर बिना रखे ही निरालम्ब कीर्त्ति कैसे स्वर्ग तक चढ सकती है?

टिप्पणी—जिस प्रकार किसी ऊंचे स्थान पर चढने के लिए बिना किसी सीढी पर चढे निरालम्ब नहीं पहुचा जा सकता उसी प्रकार कीर्ति भी बिना शत्रुओं के ऊंचे मस्तक पर चढे निरालम्ब हो कर स्वर्ग तक नहीं पहुच सकती। समासोक्ति अलकार।

अङ्काधिरोपितमृगश्चन्द्रमा मृगलाञ्छनः ।
केसरी निष्ठुरक्षिप्तमृगयूथो मृगाधिपः ॥ ५३ ॥

अर्थ—मृग को अपनी गोद में रखनेवाला चन्द्रमा मृगलाञ्छन कहा जाता है, (किन्तु) निष्ठुरतापूर्वक मृगों के समूहों को मारने वाला केसरी मृगाधिप कहा जाता है।

टिप्पणी—तात्पर्य यह कि शत्रु के साथ मृदुता का व्यवहार अपकीर्ति का कारण बनता है और पराक्रम यश का। अप्रस्तुतप्रशसा अलकार।

चतुर्थोपायसाध्ये तु रिपौ सान्त्वमपक्रिया ।
स्वेद्यमामज्वरं प्राज्ञः कोऽम्भसा परिषिञ्चति ॥ ५४ ॥

अर्थ—चतुर्थ उपाय अर्थात् दण्ड से साध्य होने वाले शत्रु के साथ सामनीति का व्यवहार करना अपना ही अपकार करना है। कौन बुद्धिमान् पसीना से (अर्थात् ऐसे उष्ण उपचार द्वारा जिससे रोगी को पसीना हो) साध्य होने वाले अपरिपक्व (तरुण) ज्वर को जल से सींचता है (अर्थात् कोई नहीं।)।

टिप्पणी—अर्थात जिस प्रकार उस तरुण ज्वर में जिसमें पसीना होने पर ही शान्ति हो सकती है जल से स्नान करा देने पर ज्वर बिगड जाता है उसी प्रकार क्रोधीय शत्रु के साथ सन्धि की बात करना उसे बिगाड देना है। दृष्टान्त अलंकार।

सामवादाः सकोपस्य तस्य प्रत्युत दीपिकाः ।
प्रतप्तस्येव सहसा सर्पिषस्तोयबिन्दवः ॥ ५५ ॥

अर्थ—(अतः) क्रोधयुक्त शिशुपाल के साथ सन्धि की बातें करना, खूब तपे हुए घृत में जल की बूंदें डालने के समान उसे और भी उद्दीप्त करना होगा। (अर्थात् उसे दण्ड देना ही उचित होगा।)

गुणानामायथातथ्यादर्थं विप्लावयन्ति ये ।
अमात्यव्यञ्जना राज्ञा दूष्यास्ते शत्रुसंज्ञिताः ॥५६॥

अर्थ—सन्धि विग्रह आदि गुणों का यथायोग्य प्रयोग न करके जो (राजा के) कार्यों की हानि करते हैं, उन मंत्री वेषधारी शत्रुओं को राजा को गर्हित मानना चाहिए (अर्थात् उन्हें छोड देना ही उचित है।)।

स्वशक्त्युपचये केचित्परस्य व्यसनेऽपरे ।
यानमाहुस्तदासीनं त्वामुत्थापयति द्वयम् ॥ ५७ ॥

अर्थ—कुछ (नीतिज्ञों) ने अपनी शक्ति की वृद्धि होने पर और कुछ ने शत्रु के विपत्तिग्रस्त होने पर शत्रु पर चढ़ाई करने की बात बताई है, ये दोनों ही बातें निरुद्योगी तुम्हें (इसी समय शिशुपाल पर चढाई करने की) प्रेरणा दे रहा है।

टिप्पणी—कामन्दक ने कहा है – प्रायेण सन्तो व्यसने रिपूणां यातव्यमित्येव समादिशन्ति। तथा विपक्ष व्यसनानपेक्षी श्रमो द्विषन्तं मुक्ति प्रतीयान। अर्थात कुछ विद्वानों ने शत्रु पर विपत्ति के समय अभियान करने का उपदेश किया है किन्तु इसके विपरीत कुछ ने शत्रु की विपत्ति की प्रतीक्षा न कर के स्वयं समर्थ हो कर शत्रु पर आक्रमण करने का उपदेश किया है। अब अपनी शक्ति की वृद्धि का परिचय बलराम जा दे रहे हैं।

लिलङ्घयिषतो लोकानलङ्घ्यानलघीयसः ।
यादवाम्भोनिधीन् रुन्धे वेलेव भवतः क्षमा ॥ ५८ ॥

अर्थ--समस्त लोकों को लाँघने के इच्छुक, दूसरों द्वारा अलंघनीय एवं परम शक्ति-शाली समुद्रों के समान यदुवंशियों को तट की भाँति केवल आप की क्षमा रोके हुए है (अन्यथा अब तक वे सभी शत्रुओं का सफाया कर चुके होते) ।

विजयस्त्वयि सेनायाः साक्षिमात्रेऽपदिश्यताम् ।
फलभाजि समीक्ष्योक्ते बुद्धेर्भोग इवात्मनि ॥ ५६ ॥

अर्थ—सांख्य के मत मे जिस प्रकार आत्मा साक्षी रहकर फल का भागी होता है और बुद्धि सुखदु खादि का भोग करती है उसी प्रकार तुम साक्षी मात्र बने रहकर फल के भागी बनोगे और (यादवों की) सेना विजय लाभ करेगी । तुम उद्घोषणा मात्र कर दो ।

हते हिडिम्बरिपुणा राज्ञि द्वैमातुरे युधि ।
चिरस्य मित्रव्यसनी सुदमो दमघोषजः ॥ ६० ॥

अर्थ—भीमसेन द्वारा युद्ध मे राजा जरासन्ध के मारे जाने से चिर-काल से मित्र के दु ख से दु खी शिशुपाल (इस समय) सुख पूर्वक साध्य है ।

टिप्पणी—पौराणिक कथा के अनुसार दो पत्नियो के गर्भ से उत्पन्न बालक के शरीर के दो अंशो को जरा नामक एक राक्षसी ने जोड कर एक बना दिया था, इसी से उसका नाम जरासन्ध पडा था। जरासन्ध और शिशुपाल में परस्पर बडी मैत्री थी।

नीतिरापदि यद्गम्यः परस्तन्मानिनो ह्रिये ।
विधुर्विधुन्तुदस्येव पूर्णस्तस्योत्सवाय सः ॥ ६१

अर्थ—शत्रु पर आपत्तिकाल में अभियान करना चाहिए यह जो नीति है, वह मानी पुरुष के लिए लज्जाजनक है । राहु के लिए पूर्णिमा के चन्द्रमा की भाँति सुस्थिर शत्रु (अभियान के लिए) आनन्द दायक होता है ।

अन्यदुच्छृङ्खलं सत्त्वमन्यच्छास्त्रनियन्त्रितम् ।
सामानाधिकरण्यं हि तेजस्तिमिरयोः कुतः ॥ ६२ ॥

अर्थ—(अपनी शक्ति के मद से) उच्छृंखल (मर्यादा रहित) अथवा स्वतंत्र प्राणी (शत्रु को जो पीड़ा पहुचाता है) दूसरी चीज है और

(मनु आदि) शास्त्रकारों के आदेशों से नियंत्रित होकर (जो शत्रु को आपत्तिकाल में पीड़ा पहुँचायी जाती है) वह दूसरी चीज है। (इन दोनों में कोई सामंजस्य नहीं है, क्योंकि) प्रकाश और अन्धकार कहीं से एक ही स्थान मे रह सकते है ?

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलंकार।

इन्द्रप्रस्थगमस्तावत् कारि मा सन्तु चेदयः।
आस्माकदन्तिसांनिध्याद्वामनीभूतभूरुहः ॥ ६३ ॥

अर्थ—इसलिए आप (युधिष्ठिर के नगर) इन्द्रप्रस्थ को मत जायँ। प्रत्युत चेदि देश हमारे हाथियों के सन्निकट होने के कारण छोटे वृक्षों वाला बन जाय। (अर्थात् इन्द्रप्रस्थ न जाकर तुरन्त शिशुपाल के चेदि देश पर ही सदलबल अभियान कर दें।)

टिप्पणी— पर्यायोक्त अलंकार।

निरुद्धवीवधासारप्रसारा गा इव व्रजम्।
उपरुन्धन्तु दाशार्हाः पुरीं माहिष्मतीं द्विषः ॥ ६४ ॥

अर्थ—(हमारे) यादव ... की सेना, तथा तृणकाष्ठादि का प्रवे... ों के दूध को ढोनेवाली बहगी का ... हो, ऐसे गोष्ठ में गौ की भाँति माहिष्मती नगरी में शत्रुओं को जाकर घेर लें।

यजतां पाण्डवः स्वर्गमवत्विन्द्रस्तपत्विनः।
वयं हनाम द्विषतः सर्वः स्वार्थं समीहते ॥ ६५ ॥

अर्थ—पाण्डव लोग (अपना) यज्ञ सम्पन्न करें, इन्द्र स्वर्ग की रक्षा करें, सूर्य जगत को उष्णता प्रदान करते रहें और हम अपने शत्रुओं का विनाश करें (क्योंकि) सभी अपना अपना स्वार्थ साधन करना चाहते हैं।

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलंकार।

प्राप्यतां विद्युतां संपत्संपर्कादर्करोचिषाम्।
शस्त्रैर्द्विषच्छिरश्छेदप्रोच्छलच्छोणितोक्षितैः ॥ ६६ ॥

अर्थ—शत्रुओं के शिरों के काटने से बाहर निकलते हुए रक्त से सिंचित (हम लोगों के) शस्त्र समूह सूर्य की किरणों के सम्पर्क से विद्युत् की शोभा प्राप्त करें।

टिप्पणी—निदर्शना अलकार।

इति संरम्भिणो वाणीर्बलस्यालेख्यदेवताः ।
सभाभित्तिप्रतिध्वानैर्भयादन्ववदन्निव ॥ ६७ ॥

अर्थ—इस प्रकार चित्र लिखित देवता मानों, अति क्षुब्ध बलराम की (उपर्युक्त) बातों का, सभामण्डप की दीवारों से निकलने वाली प्रतिध्वनि के बहाने से भय के साथ अनुमोदन-सा करने लगे।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलकार।

निशम्य ताः शेषगवीरभिधातुमधोक्षजः
शिष्याय बृहतां पत्युः प्रस्तावमदिशद्दृशा ॥ ६८ ॥

अर्थ—अतीन्द्रिय ज्ञानी भगवान श्री कृष्ण ने शेषावतार बलराम की वाणी सुनकर बृहस्पति के शिष्य उद्धव को (इस प्रसग पर) बोलने के लिए आँखों से (इशारा करके) अवसर प्रदान किया।

भारतीमाहितभरामथानुद्धतमुद्धवः ।
तथ्यामुतथ्यानुजवज्जगादाग्रे गदाग्रजम् ॥ ६९ ॥

अर्थ—(श्रीकृष्ण की आज्ञा के) अनन्तर उद्धव जी भगवान श्रीकृष्ण के समीप अर्थ की गभीरता से भरी हुई, गर्वरहित सत्य वाणी महर्षि उतथ्य के अनुज बृहस्पति की भाँति (इस प्रकार) बोले।

संप्रत्यसांप्रतं वक्तुमुक्ते, मुसलपाणिना ।
निर्धारितेऽर्थे लेखेन खलूक्त्वा खलु वाचिकम् ॥७० ॥

अर्थ—(उद्धव ने कहा:—)अब मुसलपाणि बलराम के कथन के अनन्तर मेरा कुछ कहना अनुचित है, क्योंकि पत्र द्वारा प्रयोजन ज्ञात हो जाने के अनन्तर उसी को मौखिक सन्देश के रूप मे कहना व्यर्थ होता है।

टिप्पणी—बलराम को मुसलपाणि कहने की ध्वनि यह है कि वे केवल शूर-वीर हैं, राजनीति मे उनका कोई सम्बन्ध नही है। जो बात पत्र में लिखी जा चुकी है, पत्र पढ़ लेने के बाद भी उसी का मौखिक सन्देश कहना व्यर्थ है। अर्थान्तरन्यास अलकार।

तथापि यन्मय्यपि ते गुरुरित्यस्ति गौरवम् ।
तत्प्रयोजककर्तृत्वमुपैति मम जल्पतः ॥ ७१ ॥

अर्थ—तथापि तुम (बलराम की भाँति) मुझमे भी जो गुरु हो का आदर रखते हो वही आदर मुझे इस समय कुछ कहने की प्रेरणा दे रहा है।

वर्णैः कतिपयैरेव ग्रथितस्य स्वरैरिव ।
अनन्ता वाङ्मयस्याहो गेयस्येव विचित्रता ।। ७२ ।।

अर्थ—कतिपय (पचास) वर्णों द्वारा ही ग्रथित वाङमय (शब्द जाल) की विचित्रता कतिपय (सात) स्वरों द्वारा ग्रथित गानों की भाँति अनन्त है—यह कितनी विचित्र बात है।

टिप्पणी—जिस प्रकार षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पचम, धैवत और निषाद्—इन्ही सात स्वरो से ही समस्त गानो की रचना होती है और उनके परस्पर भेदोपभेदो का कोई अन्त नही मिलता, उसी प्रकार केवल पचास या बावन अक्षरो से इस विशाल शब्द जाल का ऐसा निर्माण होता है कि उसकी विचित्रता का अन्त नही मिलता। उपमा अलकार।

बह्वपि स्वेच्छया कामं प्रकीर्णमभीधीयते ।
अनुज्झितार्थसंबन्धः प्रबंधो दुरुदाहरः ।। ७३ ।।

अर्थ—अपनी प्रतिभा के अनुसार बहुत-सी असगत (इधर-उधर की) बाते कही जा सकती हैं, किन्तु मुख्य प्रयोजन से सम्बन्ध न छोड़ने वाला प्रबन्ध कठिनाई से उपस्थित किया जाता है।

टिप्पणी—इसमे साधारणतया बलराम के कथन की प्रशसा तथा निन्दा—दोनो ही व्यजित होती है।

म्रदीयसीमपि घनामनल्पगुणकल्पिताम् ।
प्रसारयन्ति कुशलाश्चित्रां वाचं पटीमिव ।। ७४ ।।

अर्थ—कुशल वक्ता अत्यन्त मृदु अक्षरोंवाली (पक्ष मे, स्पर्श करने में चिकनी) होने पर भी अर्थ से भरी हुई (पक्ष मे सघन अर्थात् दबीज) अनेक (श्लेष अथवा प्रसाद, माधुर्य औदार्य आदि) गुणो से समन्वित (अनेक सूतों से बनी हुई) और शब्दों से विचित्र (अनेक रंग वाली, चितकबरी) वाणी को साडी की तरह विस्तृत करते हैं।

टिप्पणी—श्लेषानुप्राणित उपमा अलकार। बलराम की वाणी की प्रशसा तथा निन्दा दोनो ही इससे व्यजित होती है।

विशेषविदुषः शास्त्रं यत्तवोद्ग्राह्यते पुरः ।
हेतुः परिचयस्थैर्ये वक्तुर्गुणनिकैव सा ॥ ७५ ॥

अर्थ—(नीति शास्त्र के) परम विद्वान आप के सम्मुख यह जो नीति शास्त्र की चर्चा की जा रही है वह (चर्चा) वक्ता के अभ्यास की दृढ़ता के लिए बार-बार उसी को दोहराने की तरह है। (अर्थात् इससे वक्ता की कोई विशेषज्ञता नहीं समझनी चाहिए।)

प्रज्ञोत्साहावतः स्वामी यतेताधातुमात्मनि ।
तौ हि मूलमुदेष्यन्त्या जिगीषोरात्मसंपदः ॥ ७६ ॥

अर्थ—इसीलिए (विजय की इच्छा रखने वाले) स्वामी को चाहिए कि वह प्रज्ञा (मंत्र शक्ति) तथा उत्साह (पराक्रम) दोनों को अपने भीतर धारण करे। यही दोनों वस्तुएँ विजय की इच्छा रखने वाले व्यक्ति की उदयशील प्रभु शक्ति (आत्म सम्पत्ति) की जड़ें होती हैं।

टिप्पणी—उद्धव का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार विजयेच्छुक को उत्साह रखना आवश्यक है उसी प्रकार उत्तम बुद्धि अथवा सन्मत्र की भी अपेक्षा है। इससे बलराम की केवल उत्साह बढ़ाने वाली बातों की निन्दा ध्वनित होती है।

सोपधानां धियं धीराः स्थेयसीं खट्वयन्ति ये ।
तत्रानिशं निषण्णास्ते जानते जातु न श्रमम् ॥ ७७ ॥

अर्थ—जो बुद्धिमान लोग युक्तियुक्त (पक्ष में तकिया से युक्त) और अचंचल (पक्ष में अति दृढ़) बुद्धि को पलँग बना लेते हैं (अर्थात् बुद्धि रूपी पलँग पर ही लेटे रहते हैं) वे रात दिन उसी पर लेटे-लेटे कभी भी परिश्रम के मूल्य को नहीं जान सकते।

टिप्पणी—तात्पर्य यह कि केवल बुद्धि के भरोसे रहने पर ही कल्याण नहीं होता। बुद्धिपूर्वक उत्साह करने पर ही सिद्धि मिलती है। परिणाम अलंकार।

स्पृशन्ति शरवत्तीक्ष्णास्तोकमन्तर्विशन्ति च ।
बहुस्पृशापि स्थूलेन स्थीयते बहिरश्मवत् ॥ ७८ ॥

अर्थ—तीक्ष्ण बुद्धि वाले लोग बाण की भाँति बहुत स्वल्प (स्थल में) स्पर्श करते हैं, किन्तु अन्तःप्रविष्ट हो जाते हैं और मन्द बुद्धि लोग पत्थर के टुकड़े की भाँति बहुत (चौड़े स्थल में) स्पर्श करने पर भी बाहर ही रह जाते हैं।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि कुशाग्र बुद्धि लोग किसी बात को तनिक सा-ही सुन कर उसका तत्त्व समझ लेते हैं और मन्द बुद्धि बहुत कुछ समय देकर भी कोरे ही रह जाते हैं, पूरा मर्म नहीं समझ पाते। अथवा यह भी तात्पर्य हो सकता है कि बुद्धिमान् लोग अल्प परिश्रम से बहुत बड़ा कार्य सिद्ध कर लेते हैं और मूर्ख छोटे से कार्य के लिए बहुत बड़ा प्रयास करने पर भी सिद्धि नहीं प्राप्त कर पाते। उपमा अलंकार।

आरभन्तेऽल्पमेवाज्ञाः कामं व्यग्रा भवन्ति च।
महारम्भाः कृतधियस्तिष्ठन्ति च निराकुलाः॥ ७९॥

अर्थ—मूर्ख लोग छोटा-सा कार्य आरम्भ करते हैं और उसी में अत्यन्त व्याकुल हो जाते हैं (पार नहीं जा पाते) और बुद्धिमान लोग बड़े से बड़ा कार्य आरम्भ करते हैं और निश्चिन्त बने रहते हैं (अर्थात् सफलता प्राप्त ही कर लेते हैं)।

उपायमास्थितस्यापि नश्यन्त्यर्थाः प्रमाद्यतः।
हन्ति नोपशयस्थोऽपि शयालुर्मृगयुर्मृगान्॥ ८०॥

अर्थ—कार्य सिद्धि के उपायों में लगे रहने वाले भी असावधानी से अपने कार्य का नाश कर देते हैं, घात (मृगों के आने-जाने के मार्ग में शिकारियों द्वारा बनाये गए गड्ढे) में बैठा हुआ भी नींद में निरत शिकारी मृगों को नहीं मार पाता।

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलंकार।

उदेतुमत्यजन्नीहां राजसु द्वादशस्वपि।
जिगीषुरेको दिनकृदादित्येष्विव कल्पते॥ ८१॥

अर्थ—बारह राजाओं के मध्य में, विजय का अभिलाषी राजा एक होने पर भी बारहों आदित्यों के मध्य में दिनकर सूर्य की भाँति इच्छा शक्ति को न छोड़ते हुए अपनी उन्नति में समर्थ होता है।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि उत्साह शक्ति ही प्रभुशक्ति का मूल है। बारहों महीनों के बारह आदित्य पुराणों में कहे गए हैं। उनके नाम ये हैं—इन्द्र, धाता, भग, पूषा, मित्र, वरुण, अर्यमा, अंशु, विवस्वान्, त्वष्टा, सविता और विष्णु। जिस प्रकार इन बारहों आदित्यों के मध्य में दिनकर एक ही होता है, अन्य ग्यारह

केवल आदित्य मात्र कहे जाते हैं वे 'दिनकर' नही कहे जा सकते, क्योंकि जो दिन करता है, वही 'दिनकर' है, उसी प्रकार बारह प्रकार के राजाओं में विजयाभिलाषी एक ही उदय प्राप्त करता है, अन्य ग्यारह वैसे के वैसे ही रह जाते हैं। बारह राजा ये है—शत्रु, मित्र, शत्रु का मित्र, मित्र का मित्र, शत्रु के मित्र का मित्र, पार्ष्णिग्राह (अपने पीछे सहायतार्थ स्वयं पहुंचने वाला), आक्रन्द (शत्रु की सहायता के लिए स्वयं पहुंचने वाला), पार्ष्णिग्राहासार (अपने पक्ष में सहायतार्थ बुलाया हुआ राजा), आक्रन्दासार (शत्रु के पक्ष में सहायतार्थ बुलाया हुआ राजा) विजिगीषु (स्वयं विजयाभिलाषी), मध्यम और उदासीन। इन बारहों में विजयाभिलाषी ही अपनी उत्साह शक्ति से उदय प्राप्त करता है और अन्य ग्यारहों में से पांच प्रथम सम्मुख या पुरस्सर तथा तदनन्तर चार पृष्ठगामी एवं मध्यम और उदासीन ये दोनों स्वतन्त्र रहते हैं। पूर्णोपमा अलंकार।

बुद्धिशस्त्रः प्रकृत्यङ्गो घनसंवृतिकञ्चुकः।
चारेक्षणो दूतमुखः पुरुषः कोऽपि पार्थिवः॥ ८२॥

अर्थ—बुद्धि ही जिसका शस्त्र है, स्वामी एवं अमात्य आदि राज्याङ्ग ही जिसके अंग हैं, दुर्भेद्य मन्त्र की सुरक्षा ही जिसका कवच है, गुप्तचर ही जिसके नेत्र हैं, सन्देशवाहक दूत ही जिसका मुख है, इस प्रकार का राजा कोई अलौकिक ही पुरुष है।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि राजा सामान्य पुरुष नहीं है वह इस लोक में रहते हुए भी अलौकिक है। अतिशयोक्ति अलंकार।

तेजः क्षमा वा नैकान्तं कालज्ञस्य महीपतेः।
नैकमोजः प्रसादो वा रसभावविदः कवेः॥ ८३॥

अर्थ—समय को पहचानने वाले राजा के लिए केवल क्षात्र तेज दिखलाना अथवा केवल क्षमा दिखलाना—ऐसा कोई एकान्त नियम नहीं रहता (वे समय देखकर जहां जिसकी आवश्यकता होती है उसका प्रयोग करते हैं जैसे—) रसों और भावों के मर्म को जानने वाले कवि के लिए केवल ओज गुण अथवा केवल प्रसाद गुण नहीं होता, (वे दोनों ही का यथाप्रसंग अनुसरण करते हैं।)

टिप्पणी—दृष्टान्त अलंकार।

कृतापचारोऽपि परैरनाविष्कृतविक्रियः ।
असाध्यः कुरुते कोपं प्राप्ते काले गदो यथा ॥ ८४ ॥

अर्थ—शत्रु द्वारा अपकृत होने पर (पक्ष में, कुपथ्य सेवन करने पर) भी, अपने आन्तरिक विकार को न प्रकट करने वाला (बुद्धिमान) असाध्यरोग की भाँति यथासमय (पक्ष में, शक्ति क्षीण होने पर) कोप करता है ।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार रोग कुपथ्य सेवन करने पर भी पहले कोई विकार नही प्रकट करता किन्तु शरीर की शक्ति क्षीण हो जाने पर वही असाध्य हो जाता है और प्रचण्ड कोप करता है, उसी प्रकार बुद्धिमान् लोग शत्रु से तिरस्कृत होने पर भी अपने मन के विकारो को मन ही में दबाये रहते है, और जब शत्रु को तनिक भी आपत्ति में ग्रस्त देखते है तो उस पर कोप प्रकट करते है । उपमा अलकार ।

मृदुव्यवहितं तेजो भोक्तुमर्थान् प्रकल्पते ।
प्रदीपः स्नेहमादत्ते दशयाभ्यन्तरस्थया ॥ ८५ ॥

अर्थ—(बाहर के) कोमल व्यवहार से ढका हुआ अथवा क्षमा विमिश्रित तेज प्रयोजन की सिद्धि प्राप्त करने में समर्थ होता है, (क्योंकि) दीपक अपने मध्य मे स्थित बत्ती से ही तेल को ग्रहण करता है ।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि क्षमापूर्वक प्रयुक्त क्षात्र तेज सफल होता है, सर्वथा पहले क्षमा का प्रयोग करना उचित होता है। अर्थान्तरन्यास अलकार ।

नालम्बते दैष्टिकतां न निषीदति पौरुषे ।
शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वयं विद्वानपेक्षते ॥ ८६ ॥

अर्थ—विद्वान् पुरुष न तो दैव के भरोसे रहता है और न केवल पुरुषार्थ पर ही आश्रित रहता है, किन्तु वह शब्द और अर्थ दोनो की अपेक्षा करने वाले सुकवि की भाँति दैव और पुरुषार्थ दोनों की अपेक्षा करता है ।

टिप्पणी—केवल शब्द अथवा केवल अर्थ काव्य नहीं कहे जा सकते। काव्यप्रकाश-कार ने काव्य की परिभाषा दी है—"तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृती पुन क्वापि"। जिस प्रकार सुकवि शब्द और अर्थ दोनो की अपेक्षा करता

है उसी प्रकार कृती पुरुष भी भाग्य और पौरुष दोनो ही के भरोसे रहते हैं। उपमा अलंकार।

स्थायिनोऽर्थे प्रवर्तन्ते भावाः संचारिणो यथा।
रसस्यैकस्य भूयांसस्तथा नेतुर्महीभृतः॥ ८७॥

अर्थ—(जिस प्रकार) रस की अवस्था प्राप्त करने वाले एक ही स्थायी भाव के अनेक सचारी भाव (स्वय आकर) सहायक हो जाते हैं उसी प्रकार स्थिर (क्षमापूर्वक काल की प्रतीक्षा करनेवाले) एक ही *विजगीषु राजा की सिद्धि में दूसरे राजा लोग* (स्वय आकर) सहायक हो जाते हैं।

टिप्पणी—उपमा अलंकार।

तन्त्रावापविदा योगैर्मण्डलान्यधितिष्ठता।
सुनिग्रहा नरेन्द्रेण फणीन्द्रा इव शत्रवः॥ ८८॥

अर्थ—तन्त्र और आवाप को जानने वाले (राजा के पक्ष में, तन्त्र अर्थात् अपने राष्ट्र और आवाप अर्थात् दूसरे राष्ट्र की वार्तों को जानने वाले, विषवैद्य के पक्ष मे तन्त्र का अर्थात् मन्त्र शास्त्र और आवाप अर्थात् औषधि प्रयोग को जाननेवाले) एवं योग (राजा पक्ष में, साम दामादि उपाय, विषवैद्य पक्ष में देवता का ध्यान) द्वारा मंडल को (राजापक्ष मे अपने और परकीय राष्ट्र के घेरे को, विषवैद्य पक्ष में महेन्द्र आदि देवताओं के मन्दिरों को) अतिक्रान्त करनेवाले नरेन्द्र [राजा और विषवैद्य] शत्रु को सर्पों की भाँति सुखपूर्वक अपने वश में कर लेते हैं।

टिप्पणी—श्लेषानुप्राणित उपमा अलंकार।

करप्रचेयामुत्तुङ्गः प्रभुशक्तिं प्रथीयसीम्।
प्रज्ञाबलबृहन्मूलः फलत्युत्साहपादपः॥ ८९॥

अर्थ—बुद्धि (मन्त्र) बल रूपी *विशाल जड़ोंवाला*, अत्यन्त उन्नत उत्साह रूपी वृक्ष कर से बढ़ने वाली अत्यन्त महान् प्रभु शक्ति का फल प्रदान करता है।

टिप्पणी—रूपक अलंकार।

अनल्पत्वात्प्रधानत्वाद्वंशस्येवेतरे स्वराः ।
विजिगीषोर्नृपतयः प्रयान्ति परिवारताम् ॥ ६० ॥

अर्थ—प्रज्ञा और उत्साह के आधिक्य होने से (वांसुरी पक्ष मे, अत्यन्त उच्च होने से) तथा प्रधान होने से दूसरे राजा लोग, विजयाभिलाषी राजा के साथ वासुरी के स्वर मे दूसरे स्वरों की भाँति, परिवार की भाँति व्यवहार करते है।

अप्यनारभमाणस्य विभोरुत्पादिताः परैः ।
व्रजन्ति गुणतामर्थाः शब्दा इव विहायसः ॥ ६१ ॥

अर्थ—स्वय कुछ भी न करने पर भी प्रभु (व्यापक) के, शत्रुओं द्वारा किए गए (शख, भेरी आदि द्वारा उत्पन्न किए गए शब्द) कार्य, आकाश मे शब्द की भाँति, उसी की विशेषणता को प्राप्त हो जाते हैं।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि समर्थ राजा स्वय उदासीन रहकर भी अपनी महिमा से शत्रुओं द्वारा की गयी कार्यों की सिद्धि को उसी प्रकार अपना गुण बना लेता है जिस प्रकार शख भेरी आदि के शब्दों को आकाश अपना शब्द बना लेता है। उपमा अलकार।

यातव्यपार्ष्णिग्राहादिमालायामधिकद्युतिः ।
एकार्थतन्तुप्रोतायां नायको नायकायते ॥ ६२ ॥

अर्थ—एक प्रयोजन रूपी सूत्र मे गूँथी हुई, अभियान करने योग्य प्राकृत (शत्रु) तथा उसके पृष्ठानुयायी शत्रु राजाओं की माला मे महान् तेजस्वी शक्ति सम्पन्न विजिगीषु (विजयाभिलाषी) राजा नायक (मध्यमणि अथवा 'सुमेरु') की भाँति शोभा पाता है।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि इस पृथ्वी को वश मे करने के इच्छुक राजाओं मे वही सार्वभौम राजा होता है, जो सर्वाधिक तेजस्वी होता है। रूपक अलकार।

षाड्गुण्यमुपयुञ्जीत शक्त्यपेक्षो रसायनम् ।
भवन्त्यस्यैवमङ्गानि स्थास्नूनि बलवन्ति च ॥ ६३ ॥

अर्थ—अपनी शक्ति के अनुसार अथवा प्रभाव, उत्साह और मत्र इन तीनों शक्तियों तथा बल के अनुसार सन्धि विग्रह आदि छहों गुण

रूपी रसायन (पृथ्वी को प्राप्त कराने वाले उपाय, पक्षान्तर में षड् रस संयुक्त रसायन) का सेवन (विजयाभिलाषी राजा को) करना चाहिए, इस के सेवन से उसके (राज्य के) अंग (स्वामी, जनपद, अमात्य, कोश, दुर्ग, सेना और मित्र/ पक्षान्तर में शरीर के अंग) स्थिर और बलवान होते हैं।

टिप्पणी—श्लिष्ट परम्परित रूपक ।

स्थाने शमवतां शक्त्या व्यायामे वृद्धिरङ्गिनाम् ।
अयथाबलमारम्भो निदानं क्षयसंपदः ॥ ९४ ॥

अर्थ—अपनी शक्ति के अनुसार क्षमाशील (शान्त) अंगी (सप्तांग वाला राजा तथा शरीर धारी मनुष्य) का व्यायाम (सन्धिविग्रह आदि छहों गुणों के प्रयोग, पक्षान्तर में दण्ड बैठक आदि कसरत) करने पर (उसके राज्य और शरीर की) तो वृद्धि होती है। (किन्तु इसके विपरीत) अपनी शक्ति का अतिक्रमण कर के किया गया व्यायाम क्षय (अत्यन्त हानि, पक्षान्तर में क्षय रोग) का कारण बन जाता है ।

तदीशितारं चेदीनां भवांस्तमवमंस्त मा ।
निहन्त्यरीनेकपदे य उदात्तः स्वरानिव ॥ ९५ ॥

अर्थ–इस कारण से आप चेदि नरेश उस शिशुपाल का (अशक्त है- ऐसा समझकर) अपमान (इस समय) न करें जो एक ही पद में अन्य स्वरों को नीचा करनेवाले उदात्त स्वर की भाँति (एक ही पद में) शत्रुओं को परास्त कर देता है।

टिप्पणी—उदात्त स्वर 'अनुदात्तपदमेकवर्जम्' इस परिभाषा से अनुदात्त और स्वरित स्वर को एक ही पद में नीचा कर देता है। इसी प्रकार शिशुपाल भी अपने शत्रुओं को एक ही पग में परास्त कर देता है। अतएव आप उसे बलराम के कथनानुसार अशक्त समझ कर इस समय न छेड़ें।

मा वेदि यदसावेको जेतव्यश्चेदिराडिति ।
राजयक्ष्मेव रोगाणां समूहः स महीभृताम् ॥ ९६ ॥

अर्थ—यह चेदिराज शिशुपाल अकेला है अतः (सरलता से) जीता जा सकता है—ऐसा मत समझो क्योंकि यह रोगों के समूह राजयक्ष्मा की भाँति राजाओं का समूह है।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार ज्वर, खाँसी, रक्त पित्तादि के प्रकोप इन अनेक रोगों के समूह का नाम राजयक्ष्मा है उसी प्रकार शिशुपाल अनेक राजाओं का समूह है, वह अकेला नहीं है, उसका जीतना बहुत सरल नहीं है।

संपादितफलस्तेन सपक्षः परभेदनः।
कार्मुकेणेव गुणिना बाणः संधानमेष्यति ॥ ९७ ॥

अर्थ—सम्पादित फल वाला (शिशुपाल द्वारा लाभान्वित, बाण पक्ष में फलक युक्त), पक्षयुक्त (परिवार समेत, पक्षान्तर में पंखों समेत) परभेदक (दोनों पक्ष में शत्रु विनाशक) बाण (बाणासुर तथा बाण) गुणशाली (शौर्य आदि युक्त, प्रत्यंचा युक्त) उस शिशुपाल से धनुष की भाँति (उस अवसर पर) संधि कर लेगा।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि बाणासुर को जब यह ज्ञात होगा कि शिशुपाल के साथ तुम्हारा युद्ध होनेवाला है तो वह भी उसी से इस प्रकार मिल जायगा जैसे बाण चढ़ी हुई प्रत्यंचा वाले धनुष में मिल जाता है। श्लेषानुप्राणित उपमा अलंकार।

ये चान्ये कालयवनशाल्वरुक्मिद्रुमादयः।
तमःस्वभावास्तेऽप्येनं प्रदोषमनुयायिनः ॥ ९८ ॥

अर्थ—जो दूसरे कालयवन, शाल्व, रुक्मि, द्रुम आदि तमोगुण युक्त राजा लोग हैं, वे उस अवसर पर इसी प्रदोष अर्थात् परम दुष्ट स्वभाव वाले शिशुपाल के अनुयायी बन जायगे।

टिप्पणी—जिस प्रकार अंधकार रात्रि का अनुसरण करता है उसी प्रकार यह सब तामसी राजा लोग भी शिशुपाल का उस समय अनुसरण करेंगे। यहाँ वस्तु से अलंकार की ध्वनि है।

उपजापः कृतस्तेन तानाकोपवतस्त्वयि।
आशु दीपयिताल्पोऽपि साग्नीनेधानिवानिलः ॥ ९९ ॥

अर्थ—शिशुपाल द्वारा किया गया अल्प भेद (भेद बुद्धि) भी (पहले से ही) तुम्हारे ऊपर परम क्रुद्ध उन (बाणादि) को अग्नि युक्त काष्ट को (अल्प) वायु की भाँति शीघ्र ही प्रज्वलित कर देगा।

बृहत्सहायः कार्यान्तं क्षोदीयानपि गच्छति।
संभूयाम्भोधिमभ्येति महानद्या नगापगा॥ १०० ॥

अर्थ—महान सहायता प्राप्त करनेवाला अति क्षुद्र भी अपनी प्रयोजन-सिद्धि कर लेता है, पर्वत से निकलने वाली क्षुद्र नदियाँ भी बड़ी नदियों—गंगा आदि से मिलकर समुद्र तक जा पहुँचती हैं।

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलंकार।

तस्य मित्राण्यमित्रास्ते ये च ये चोभये नृपाः।
अभियुक्तं त्वयैनं ते गन्तारस्त्वामतः परे॥ १०१ ॥

अर्थ—तुम्हारे आक्रमण करने पर जो शिशुपाल के मित्र राजा लोग हैं तथा जो तुम्हारे अमित्र हैं—वे दोनों ही शिशुपाल के पास चले जायगे और जो बच रहेंगे (अर्थात् तुम्हारे मित्र और उसके शत्रु होंगे) वे तुम्हारे पास आ जायगे।

मखविघ्नाय सकलमित्थमुत्थाप्य राजकम्।
हन्त जातमजातारेः प्रथमेन त्वयारिणा॥ १०२ ॥

अर्थ—खेद की बात होगा कि इस प्रकार (राजसूय) यज्ञ में विघ्न डालने के लिए समस्त राजाओं के समूह को क्षुब्ध करके तुम ही सर्वप्रथम अजातशत्रु युधिष्ठिर के शत्रु बन जाओगे।

संभाव्य त्वामतिभरक्षमस्कन्धं स बान्धवः।
सहायमध्वरधुरां धर्मराजो विवक्षते॥ १०३ ॥

अर्थ—भाई धर्मराज युधिष्ठिर ने (तो) तुम्हें (ही) महान् भार उठाने में समर्थ कन्धों वाला सहायक समझकर उस बड़े यज्ञ राजसूय का भार उठाने की इच्छा की है।

महात्मानोऽनुगृह्णन्ति भजमानान्रिपूनपि।
सपत्नीः प्रापयन्त्यब्धिं सिन्धवो नगनिम्नगाः॥ १०४॥

अर्थ--महान् पुरुष तो शरणागत शत्रुओं पर भी अनुग्रह करते है। बड़ी नदियाँ अपनी सपत्नी (छोटी मोटी) पहाडी नदियों को (भी) समुद्र तक (अपने पति तक स्वय) पहुँचाती हैं।

टिप्पणी—तात्पर्य यह कि महानदियाँ अपने सौभाग्य को अपनी सपत्नियों म स्वय बाँट देती है। अर्थान्तरन्यास अलकार।

चिरादपि बलात्कारो बलिनः सिद्धयेऽरिषु ।
छन्दानुवृत्तिदुःसाध्याः सुहृदो विमनीकृताः ॥ १०५ ॥

अर्थ—बलवान् पुरुष अपने शत्रु को बहुत समय के बीत जाने पर भी बल प्रयोग कर के अपने वश मे ला सकते हैं किन्तु किसी कारणवश जिनका मन दु खी कर दिया जाता है ऐसे मित्रों को (उनकी इच्छानुसार सब काम करने पर भी पहले की भांति) कठिनता से प्रसन्न किया जाता है।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि शत्रु को धीरे-धीरे दण्ड से भी वश म किया जा सकता है किन्तु मित्र को वैमनस्य होने पर सामनीति से भी वश में करना कठिन होता है।

मन्यसेऽरिवधः श्रेयान् प्रीतये नाकिनामिति ।
पुरोडाशभुजामिष्टमिष्टं कर्तुमलंतराम् ॥ १०६ ॥

अर्थ—देवताओं की प्रसन्नता के लिए (यदि) शत्रु का सहार (शिशुपाल का वध) अधिक प्रशसनीय है, ऐसा मानते हो तो (यह स्मरण रखो कि) हविष्य भोजी देवताओं के अभीष्ट यज्ञ (युधिष्ठिर क राजसूय यज्ञ) की पूर्ति ही (उनकी प्रसन्नता के लिए) अति पर्याप्त है।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि देवताओं के लिए शिशुपाल वध से अतिप्रियकर कार्य राजसूय यज्ञ ही है, क्योंकि यज्ञ में हविष्य खाने पर और अधिक पुष्ट होने म उन्हें शत्रु वध म सुगमता होगी। भूख क लिए शत्रु नाश उतना आनन्ददायी नहीं है जितना प्रिय भोजन।

अमृतं नाम यत्सन्तो मन्त्रजिह्वेषु जुह्वति ।
शोभैव मन्दरक्षुब्धक्षुभिताम्भोधिवर्णना ॥ १०७ ॥

अर्थ—सत्पुरुष लोग अग्नि में जो हवन करते हैं वही अमृत है, मन्दराचल रूपी मथनी से व्याकुल समुद्र से अमृत की उत्पत्ति की चर्चा तो केवल अलकार है।

है —'रक्षोहागमलघ्वसन्देहा प्रयोजनम्' इसी को पस्पशाह्निक भाष्य कहा जाता है। जब तक यह प्रयोजनात्मक पस्पशाह्निक भाष्य नहीं होता, तब तक व्याकरण विद्या की सार्थकता पूर्णतः परिलक्षित नहीं होती। क्योंकि—

सर्वस्यैव हि शास्त्रस्य कर्मणो वापि कस्यचित्।
यावत्प्रयोजनं नोक्तं तावत्तत्केन गृह्यते॥

अर्थात् सभी शास्त्रों अथवा कर्मों का जब तक प्रयोजन नहीं बतला दिया जाता तब तक उनमें कौन प्रवृत्त होता है, कोई नहीं। इस श्लोक में 'अपस्पशा' में शब्द श्लेष, 'सद्वृत्ति' और 'सन्निबन्धना' में अर्थश्लेष तथा 'अनुत्सूत्रपदन्यासा' में उभयश्लेष तथा 'शब्दविद्येव' इसमें पूर्णोपमा अलंकार है। 'न्यास' 'काशिका' और 'महाभाष्य' ये पाणिनीय व्याकरण के अन्यतम प्राचीन ग्रन्थ हैं।

अज्ञातदोषैर्दोषज्ञैरुदूष्योभयवेतनैः।
भेद्याः शत्रोरभिव्यक्तशासनैः सामवायिकाः॥ ११३॥

अर्थ—जिनके दोष दूसरों द्वारा नहीं जाने जाते किन्तु जो स्वयं दूसरों के दोषों को जानते रहते हैं, और जो दोनों ओर से जीविका ग्रहण करते हैं, ऐसे गुप्तचरों द्वारा राजा आदि के कूट लेखों को प्रकट करके शत्रु के अमात्य एवं भृत्यों को परस्पर दूषित करके फोड देना चाहिए।

टिप्पणी—अर्थात् इस समय केवल गुप्तचरों को भेजने की ही आवश्यकता नहीं है, वरन् भेदबुद्धि डालकर शिशुपाल के अमात्य एवं भृत्यों को भी परस्पर लडा देने की आवश्यकता है।

उपेयिवांसि कर्तारः पुरीमाजातशात्रवीम्।
राजन्यकान्युपायज्ञैरेकार्थानि चरैस्तव॥ ११४॥

अर्थ—(इस प्रकार) तुम्हारे कार्य कुशल गुप्तचरों द्वारा एकमात्र प्रयोजन वाले अन्यान्य राजाओं के समूह अजातशत्रु अर्थात् धर्मराज युधिष्ठिर की नगरी इन्द्रप्रस्थ में पहुँचा दिये जायगे।

टिप्पणी—अर्थात् तुम्हारे कार्य कुशल गुप्तचर पृथ्वी भर के राजाओं को तुम्हारा यह गूढ सन्देश देकर कि, वहाँ हमारा एक बहुत बड़ा कार्य है, अतः युधि-

फिर वे राजसूय यज्ञ के बहाने से सब मिल-जुल कर आप लोग वहां आइएगा, उस स्थान पर मिल देंगे।

[यज्ञ के अवसर पर युद्ध की सम्भावना किस प्रकार हो सकती है, इसका निराकरण उद्धव इस प्रकार कर रहे हैं —]

मनिशेपं सुते पाण्डोर्भक्ति भजति तन्वति ।
वैरायितारस्तरलाः स्वयं मत्सरिणः परे ॥ ११५ ॥

अर्थ—पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर द्वारा तुम्हारे प्रति विशेष रूप से भक्ति प्रदर्शित किए जाने पर, जो चचल स्वभाव वाले शत्रु होंगे वे स्वयमेव तुम्हारे साथ वैर ठान देंगे। (अर्थात् तुम्हें अपनी ओर से युद्ध आरम्भ करने की आवश्यकता ही न होगी।)

य इहात्मविदो विपक्षमध्ये
सहसंवृद्धियुजोऽपि भूभुजः स्युः ।
बलिपुष्टकुलादिवान्यपुष्टैः
पृथगस्मादचिरेण भाविता तैः ॥ ११६ ॥

अर्थ—(युद्ध ठन जाने पर) शत्रुओं के बीच में, जो शिशुपाल के साथ ऐश्वर्य प्राप्त करने वाले चतुर राजा होंगे, वे भी अपनी वास्तविक स्थिति को जान कर, कौओं के परिवार में से कोयलों की भांति, शीघ्र ही उससे पृथक् हो जायगे।

टिप्पणी—अर्थात् जब तनातनी बढ जायगी तो कितने ऐसे राजा होंगे जो शिशुपाल के साथ रहने के कारण ऐश्वर्य तो प्राप्त किए होंगे किन्तु जब उन्हें अपनी वास्तविक स्थिति का ज्ञान होगा तो वे इस प्रकार उसके समूह से अलग हो जायगे जिस प्रकार कोकिल कौओं के बीच में पालित पोषित होने पर भी अवसर लगते ही अलग हो जाता है। यह औपच्छन्दसिक वृत्त है। सर्ग की समाप्ति पर भिन्न छन्दों की रचना की परम्परा है।

महजचापलदोषसमुद्धतस्खलितदुर्बलपक्षपरिग्रहः ।
तव दुरासदवीर्यविभावसौ शलभतां लभतामसुहृद्गणः ॥११७॥

अर्थ—स्वाभाविक दुर्विनय (चचलता) के दोष से गर्वित (प्रेरित) एव दुर्बल तथा अत्यन्त अस्थिर पक्ष (सहायक, पतग पक्ष मे परो) वाला तुम्हारा शत्रुवर्ग तुम्हारी असह्य-पराक्रम-रूपी अग्नि मे पतगों की भाति भस्म हो जाय—(यही मैं चाहता हूँ)।

टिप्पणी—रूपक अलकार। द्रुतविलबित छन्द।

इति निगकलितार्थामौद्धवी वाचमेना-
मनुगतनयमार्गामर्गलां दुर्नयस्य।
जनितमुदमुदस्थादुच्चकैरुच्छ्रितोरः
स्थलनियतनिषण्णश्रीश्रुतां शुश्रुवान् सः ॥ ११८॥

अर्थ—इस प्रकार विवेचना पूर्ण अर्थ से भरी हुई, नीति मार्ग पर चलनेवाली, दुर्नीति (बलराम की उक्ति की ओर सकेत है) की अर्गला अर्थात् रोकनेवाली, प्रसन्न करनेवाली, केवल अपने विशाल वक्षस्थल पर निरन्तर निवास करनेवाली लक्ष्मी से सुनी गई उद्धव की इस वाणी को (भगवान् श्रीकृष्ण ने) सुना और (तदनन्तर) वे अपने ऊँचे आसन से उठकर खडे हो गये।

टिप्पणी—रूपक और अनुप्रास अलकार। मालिनी छन्द। लक्ष्मी के सुनने का तात्पर्य यह है कि श्रीकृष्ण के सिवाय उद्धव के उस भाषण को किसी दूसरे ने नहीं सुना।

श्री माघ कविकृत शिशुपाल वध नामक महाकाव्य मे मन्त्रवर्णन नामक द्वितीय सर्ग समाप्त।

—०—

तृतीय सर्ग

कौबेरदिग्भागमपास्य मार्गमागस्त्यमुष्णांशुरिवावतीर्णः ।
अपेतयुद्धाभिनिवेशसौम्यो हरिर्हरिप्रस्थमथ प्रतस्थे ॥ १ ॥

अर्थ—तदनन्तर (उद्धव की बातें सुनने के अनन्तर) युद्ध का आग्रह समाप्त हो जाने से सुप्रसन्न, भगवान श्रीकृष्ण ने कुबेर की दिशा अर्थात् उत्तरायण को छोड़कर अगस्त्य की दिशा (दक्षिणायन) के मार्ग पर अवतरित होने वाले सूर्य की भाँति इन्द्रप्रस्थ की ओर प्रस्थान किया।

टिप्पणी—इस तीसरे सर्ग में इन्द्रवज्रा और उपेन्द्र वज्रा के मिश्रण से उपजाति छन्द है, जिसका लक्षण है—'अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः।' उपमा अलंकार।

जगत्पवित्रैरपि तं न पादैः स्प्रष्टुं जगत्पूज्यमयुज्यतार्कः ।
यतो बृहत्पार्वणचन्द्रचारु तस्यातपत्रं बिभराम्बभूवे ॥ २ ॥

अर्थ—सूर्य जगत्पूज्य उन भगवान श्रीकृष्ण को अपनी जगत्पवित्र किरणों से भी स्पर्श नहीं कर सके क्योंकि भगवान के ऊपर भृत्यों ने पूर्णिमा के विशाल चन्द्रमा की भाँति सुन्दर महान छत्र धारण किया था।

मृणालसूत्राऽमलमन्तरेण स्थितश्चलच्चामरयोर्द्वयं सः ।
भेजेऽभितःपातुकसिद्धसिन्धोरभूतपूर्वां रुचमम्बुराशेः ॥ ३ ॥

अर्थ—कमल के तन्तु की भाँति श्वेत चलते हुए दो चाँमरों के बीच में स्थित भगवान् श्रीकृष्ण ऐसे समुद्र की अभूतपूर्व (अलौकिक) शोभा को धारण किए हुए थे जिसके दोनों ओर से आकाशगंगा की धारा गिर रही हो।

टिप्पणी—निदर्शना और अतिशयोक्ति अलंकार।

[नीचे के आठ श्लोकों में भगवान् श्रीकृष्ण की वेशभूषा का वर्णन है।]

चित्राभिरस्योपरि मौलिभाजां भाभिर्मणीनामनणीयसीभिः ।
अनेकधातुच्छुरिताश्मराशेर्गोवर्धनस्याऽकृतिरन्वकारि॥ ४ ॥

अर्थ—भगवान श्री कृष्ण के मस्तक पर विराजमान मुकुट की मणियों की विशाल एवं रंग बिरंगी किरणें अनेक रंग की धातुओं के मिलने से रंग-बिरंगी शिलाओं के समूह वाले गोवर्धन पर्वत की शोभा का अनुकरण कर रही थीं।

टिप्पणी—पूर्णोपमा अलंकार।

तस्योल्लसत्काञ्चनकुण्डलाग्रप्रत्युप्तगारुत्मतरत्नभासा ।
अवाप बाल्योचितनीलकण्ठपिच्छावचूडाकलनामिवोरः ॥५॥

अर्थ—भगवान श्रीकृष्ण का वक्षस्थल, देदीप्यमान सुवर्ण के कुण्डल के अग्रभाग में जड़ी हुई मरकत मणि की किरणों की चमक से, ऐसा सुशोभित हो रहा था मानों उस पर उनके बाल्यकाल में पहनने योग्य मयूर के परों की कलँगी धारण करने की शोभा हो रही हो।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलंकार। बचपन में भगवान श्रीकृष्ण मयूरपंख धारण करते थे, मरकत मणि की पीली किरण उनके वक्षस्थल पर पड़कर मयूर पुच्छ की कलँगी के गिरने की सी भ्रांति पैदा कर रही थी।

तमङ्गदे मन्दरकूटकोटिव्याघट्टनोत्तेजनया मणीनाम् ।
बंहीयसा दीप्तिवितानकेन चकासयामासतुरुल्लसन्ती ॥६॥

अर्थ—उन भगवान श्री कृष्णचन्द्र को मन्दराचल के शिखर के अग्र भाग के संघर्षण से सान पर चढ़ायी हुई के समान अधिक चमकदार मणियों की किरणों के समूह से देदीप्यमान दोनों भुजाओं के केयूर अति सुशोभित कर रहे थे।

टिप्पणी—भगवान ने अपनी दोनों भुजाओं में केयूर धारण किया था। समुद्र मंथन के समय उन केयूर में जड़ी मणियाँ मन्दराचल के शिखर के अग्रभाग [illegible] [illegible] [illegible] थीं। इसी कारण सान पर चढ़ने के समान उनमें अत्यधिक चमक आ गयी थी। अतिशयोक्ति अलंकार।

निसर्गरक्तैर्वलयावनद्धताम्राश्मरश्मिच्छुरितैर्नखाग्रैः ।

व्यद्योतताद्यापि सुरारिवक्षोविक्षोभजासृक्स्नपितैरिवासौ ॥७॥

अर्थ—भगवान् श्री कृष्णचन्द्र के नख स्वभाव से ही रक्त वर्ण के थे; किन्तु वलय में जड़ी हुई पद्मराग मणि की किरणों से मिश्रित होने के कारण वे मानों आज भी हिरण्यकशिपु के वक्षस्थल के विदारण से रक्त में सिक्त होने के समान सुशोभित हो रहे थे।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि उन्होंने वलय भी धारण किये थे। उत्प्रेक्षा अलङ्कार।

✓ उभौ यदि व्योम्नि पृथक्प्रवाहावाकाशगङ्गापयसः पतेताम् ।

तेनोपमीयेत तमालनीलमामुक्तमुक्तालतमस्य वक्षः ॥ ८ ॥

अर्थ—तमाल की भाँति नील वर्ण का एवं मुक्ता की माला से सुशोभित भगवान श्री कृष्ण का वक्षस्थल, आकाशगंगा के जल के दोनों प्रवाह जिसमें प्रथक् प्रथक प्रवाहित हो रहे हों उस आकाश से समानता कर रहा था।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि मुक्ता की माला से सुशोभित भगवान् के वक्षस्थल का उपमान कोई नही दिखाई पड़ा। वे मुक्ता की माला धारण किए हुए थे। अतिशयोक्ति अलंकार।

तेनाम्भसां सारमयः पयोधेर्दध्रे मणिर्दीधितिदीपिताशः ।

अन्तर्वसन्बिम्बगतस्तदङ्गे साक्षादिवालक्ष्यत यत्र लोकः ॥९॥

अर्थ—अपनी किरणों से समस्त दिशाओं को उद्भासित करने वाली समुद्र का सर्वस्व कौस्तुभ मणि भगवान् ने पहन रखी थी। उस मणि में प्रतिबिम्ब रूप से दिखाई पड़नेवाला बाह्य जगत मानों भगवान के शरीर में भीतर निवास करने वाले जगत् के समान प्रत्यक्ष दिखाई पड़ रहा था।

टिप्पणी—कौस्तुभ मणि भगवान ने पहन रखी थी। उसमें बाह्य जगत का जो प्रतिबिम्ब पड़ रहा था, वह ऐसा मालूम पड़ रहा था मानो समस्त जगत् ही उनके शरीर में प्रत्यक्ष रूप से निवास करता हो। उत्प्रेक्षा अलंकार।

मुक्तामयं सारसनावलम्बि भाति स्म दामाप्रपदीनमस्य ।

अङ्गुष्ठनिष्ठ्यूतमिवोर्ध्वमुच्चैस्त्रिस्रोतसः संततधारमम्भः ॥१०॥

अर्थ—भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के कटि सूत्र में बँधी हुई और पैरों तक (नीचे) लटकती हुई मोतियों की माला, इस प्रकार सुशोभित हो रही थी मानों भगवान विष्णु के अगूठे से निकल कर ऊपर की ओर ऊँचाई में उठती हुई मन्दाकिनी की अनवरत प्रवहमान धारा का जल हो।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलंकार।

स इन्द्रनीलस्थलनीलमूर्ती रराज कर्चूरपिशङ्गवासाः ।
विसृत्वरैरम्बुरुहां रजोभिर्यमस्वसुश्चित्र इवोदभारः ॥११॥

अर्थ—इन्द्रनील मणि रचित फर्श की भाँति श्यामल तथा हरताल के समान पीले वस्त्र धारण करने वाले भगवान् श्री कृष्ण, यमुना के उस रंग विरंगे जल समूह की भाँति सुशोभित हो रहे थे, जिसमें कमलों का पराग इधर उधर फैला हुआ हो।

प्रसाधितस्यास्य मधुद्विषोऽभूदन्यैव लक्ष्मीरिति युक्तमेतत् ।
वपुष्यशेषेऽखिललोककान्ता सानन्यकान्ता ह्युरसीतरा तु ॥१२॥

अर्थ—(उस समय) इस प्रकार विविध आभूषणों से अलंकृत भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र की श्री (लक्ष्मी, शोभा) एक अन्य ही हो गई थी, यह उचित ही था क्योंकि वह अलंकारों से सजाई गई श्री (शोभा) उनके सारे शरीर में निवास कर रही थी और सम्पूर्ण लोक की प्रिया थी, जब कि दूसरी श्री (भगवान् की पत्नी लक्ष्मी) दूसरे की प्रिया नहीं (हो सकता) थी और वह (केवल) उनके हृदय में ही निवास कर रही थी।

टिप्पणी—[illegible] । इस भाव [illegible] आगे युक्ति से [illegible] में [illegible] हैं।

कपाटविस्तीर्णमनोरमोरःस्थलस्थितश्रीललनस्य तस्य ।
आनन्दिताशेषजना बभूव सर्वाङ्गसङ्गिन्यपरेव लक्ष्मीः ॥१३॥

अर्थ—कपाट के समान विस्तृत और मनोहर वक्षस्थल में निवास करने वाली लक्ष्मी जिनकी कान्ता थी ऐसे भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र की, सब समय सभी लोगों को आनन्दित करनेवाली, सारी देह में व्याप्त एक दूसरी ही श्री (लक्ष्मी) हो रही थी।

टिप्पणी—इसमें भी अतिशयोक्ति अलङ्कार है। प्राय कवि लोग एक ही भाव को अनेक उक्तियों द्वारा कहते हैं।

प्राणच्छिदां दैत्यपतेर्नखानामुपेयुषा भूषणतां क्षतेन।
प्रकाशकार्कश्यगुणौ दधानाः स्तनौ तरुण्यः परिवव्रुरेनम् ॥१४॥

अर्थ—भूषण का स्थान प्राप्त करने वाले, दैत्य पति हिरण्यकशिपु के प्राणों को हरनेवाले (भगवान के) नखों क क्षत (घाव) स अपनी कठोरता को प्रकट करनेवाले स्तनों वाली तरुणियाँ भगवान् श्री कृष्णचन्द्र को (चारों ओर से) घेरे हुए थीं।

टिप्पणी—अतिशयोक्ति अलङ्कार।

आकर्षतेवो र्नमतिक्रशीयानत्युन्नतत्वात्कुचमण्डलेन।
ननाम मध्योऽतिगुरुत्वभाजा नितान्तमाक्रान्त इवाङ्गनानां ॥१५॥

अर्थ—अत्यन्त स्थूल एव अत्यन्त उन्नत होने के कारण (मध्य भाग को) ऊपर की ओर खींचते हुए से स्तन मण्डलों के भार से उन तरुणियों का अति कृश कटि प्रदेश अत्यन्त भार पीडित की तरह मानों नीचे की ओर दबा जा रहा था।

टिप्पणी—समासोक्ति और उत्प्रेक्षा का संकर।

या यां प्रियः प्रैक्षत कातराक्षीं सा सा ह्रिया नम्रमुखी बभूव।
निःशङ्कमन्याः सममाहितेर्ष्यास्तत्रान्तरे जघ्नुरमुं कटाक्षैः ॥१६॥

अर्थ—(अंगनाओं के) प्रिय भगवान श्री कृष्ण जिन जिन की ओर देखते थे, वे वे लज्जा से चकितनेत्रा होकर नीचे मुँह कर लेती थीं। और दूसरी (जिनकी ओर भगवान नहीं ताकते थे, वे) उसी समय (श्री कृष्ण के देखने के समय) ईर्ष्या युक्त निर्लज्ज भाव से एक साथ ही कटाक्ष से उन्हे घायल कर रही थीं।

तस्यातसीसूनसमानभासो भ्राम्यन्मयूखावलिमण्डलेन।
चक्रेण रेजे यमुनाजलौघः स्फुरन्महावर्त इवैकबाहुः ॥१७॥

अर्थ—अलसी के पुष्प के समान श्यामल वर्ण भगवान श्रीकृष्ण का एक हाथ घूमते हुए किरणों के समूह से युक्त घेरे वाले सुदर्शन

चक्र से, बड़े बड़े चक्करों अर्थात् भँवरों से युक्त यमुना के जल समूह के समान सुशोभित हो रहा था।

विरोधिनां विग्रहभेददक्षा मूर्तेव शक्तिः क्वचिदस्खलन्ती ।
नित्यं हरेः सन्निहिता निकामं कौमोदकी मोदयति स्म चेतः ॥१८॥

अर्थ—शत्रुओं के शरीर को नष्ट करने में निपुण, कहीं भी न चूकनेवाली, सदा संग रहनेवाली, मूर्तिमती शक्ति-सी कौमोदकी नाम की गदा भगवान् श्री कृष्ण के चित्त को अतिशय आनन्द दे रही थी।

न केवलं यः स्वतया मुरारेरनन्यसाधारणतां दधानः ।
अत्यर्थमुद्वेजयिता परेषां नाम्नापि तस्यैव स नन्दकोऽभूत् ॥१९॥

अर्थ—जो न केवल दूसरों के लिए दुर्लभ (एक मात्र भगवान के लिए ही सुलभ) बन कर अपनी मूर्ति से ही मुरारि को आनन्दित कर रहा था, प्रत्युत शत्रुओं को अत्यन्त उद्विग्न कर अपने नाम से भी उनमें आनन्द पैदा कर रहा था, ऐसा नन्दक नामक खड्ग भी भगवान के साथ था।

टिप्पणी—व्याजस्तुति अलंकार।

न नीतमन्येन नतिं कदाचित्कर्णान्तिकप्राप्तगुणं क्रियासु ।
विधेयमस्या भवदन्तिकस्थं शार्ङ्गं धनुर्मित्रमिव द्रढीयः ॥२०॥

अर्थ—जिसे दूसरे लोग कभी झुका नहीं सके (मित्र पक्ष में, अपनी ओर नहीं मिला सके) युद्ध में जिसकी प्रत्यंचा (पक्ष में, गुण) कान तक पहुँच जाती है, ऐसा अत्यन्त दृढ़ सींग का बना हुआ शार्ङ्ग नामक धनुष भी मित्र की भाँति भगवान् श्री कृष्ण के पास था।

टिप्पणी—श्लेषानुप्राणित उपमा अलंकार।

प्रवृद्धमन्द्राम्बुदधीरनादः कृष्णार्णवाभ्यर्णचरैकहंसः ।
मन्दानिलापूरकृतं दधानो निध्वानमश्रूयत पाञ्चजन्यः ॥२१॥

अर्थ—मेघ के समान जिसकी ध्वनि अत्यन्त गम्भीर और मनोहर थी, जो कृष्ण रूप समुद्र के समीप विचरण करनेवाला एकमात्र हंस

रूप था, जो थोडी वायु के प्रवेश करने से भी (गम्भीर) ध्वनि करता था, ऐसे पांचजन्य नामक शंख की ध्वनि (अब) सुनाई पडने लगी।

रराज संपादकमिष्टसिद्धेः सर्वासु दिक्ष्वप्रतिपिद्धमार्गम् ।
महारथः पुष्परथं रथाङ्गी क्षिप्रं क्षपानाथ इवाधिरूढः ॥२२॥

अर्थ—महारथी चक्रपाणि भगवान् श्री कृष्णचन्द्र, इष्ट सिद्धि करने वाले एव जिसका मार्ग सभी दिशाओं मे अप्रतिपिद्ध था ऐसे शीघ्रगामी पुष्परथ (क्रीडा रथ) में पुष्य नक्षत्र स्थित चन्द्रमा की भाँति सुशोभित हो रहे थे।

टिप्पणी—पुष्य नक्षत्र इष्टसिद्धि दायक तथा सार्वदिक् गमन म प्रशस्त है।

ध्वजाग्रधामा ददृशेऽथ शौरेः संक्रान्तमूर्तिर्मणिमेदिनीषु ।
फणावतस्त्रासयितुं रसायास्तलं विविक्षन्निव पन्नगारिः ॥२३॥

अर्थ—रथ पर भगवान् श्रीकृष्ण के बैठ जाने के अनन्तर रथ की ध्वजा के अग्रभाग मे विराजमान एव मणिमय फर्श मे प्रतिबिम्बित अग वाले पन्नगारि गरुड जी, मानों (पाताल स्थित) सर्पों को भयभीत करने के लिए पृथ्वी के भीतर प्रवेश करते हुए-से दिखाई पडे।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलकार।

यियासतस्तस्य महीध्ररन्ध्रभिदापटीयान् पटहप्रणादः ।
जलान्तराणीव महार्णवौघः शब्दान्तराण्यन्तरयांचकार ॥२४॥

अर्थ— भगवान श्रीकृष्ण के चलते समय पर्वतों की गुफाओं को भेदने मे अति सगर्व नगाडों की ध्वनि ने दूसरे शब्दों को इस प्रकार अपने मे अन्तर्हित कर लिया जैसे समुद्र का जल दूसरे जलों को अपने में अन्तर्हित कर लेता है।

यतः स भर्ता जगतां जगाम धर्त्रा धरित्र्याः फणिना ततोऽधः ।
महाभराभुग्नशिरःसहस्रसाहायकव्यग्रभुजं प्रसस्रे ॥२५॥

अर्थ—जगत के भरण-पोपण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जिस मार्ग से चले उस भूभाग के नीचे, धरती को धारण करनेवाले शेषनाग ने, अतिशय भार से नीचे की ओर दबे जाने वाले अपने सहस्र फणो की सहायता के लिए व्याकुल अपनी भुजाओं को फैला लिया।

टिप्पणी—अतिशयोक्ति अलङ्कार ।

अथोच्चकैस्तोरणसङ्गभङ्गभयावनम्रीकृतकेतनानि ।
क्रियाफलानीव सुनीतिभाजं सैन्यानि सोमान्वयमन्वयुस्तम् ॥२६॥

अर्थ—(भगवान् श्री कृष्ण के चलने के) अनन्तर ऊँचे ऊँचे तोरणों (लकड़ी के बने फाटकों) के संग टकराकर टूटने के भय से पताके को नीचे की ओर झुकाकर चलनेवाली यादव-सेना नीतिमान पुरुष के पीछे कार्यों की सिद्धि के समान चन्द्रकुल भूषण (भगवान श्री कृष्ण) के पीछे चली।

श्यामारुणैर्वारणदानतोयैरालोडिताः काञ्चनभूपरागाः ।
आनेमिमग्नैः शितिकण्ठपत्त्रक्षोदद्युतश्चुक्षुदिरे रथौघैः ॥२७॥

अर्थ—काले और रक्त वर्ण के हाथियों के मदजल से भीगी होने के कारण मयूर की पूँछ के चूर्ण के समान कान्तिवाली, सुवर्णमयी पृथ्वी की धूल, नेमि पर्यन्त कीचड में धँसे हुए चक्के वाले रथों के समूहों से (फिर) पीस दी गयी।

टिप्पणी—इस वर्णन में हाथियों रथों और घोड़ों की विपुल भीड़ की व्यंजना होती है। यहाँ अलङ्कार से वस्तु की ध्वनि है।

न लङ्घयामास महाजनानां शिरांसि नैवोद्धतिमाजगाम ।
अचेष्टताष्टापदभूमिरेणुः पदाहतो यत्सदृशं गरिम्णः ॥२८॥

अर्थ—(उस) सुवर्ण मय भूमि की धूल (हाथी घोड़े और रथों के) पैर से आहत होने पर (भी) उस भीड़ के लोगों के शिरों पर नहीं पड़ी, (इतना ही नहीं) वह ऊपर (भी) नहीं उठी। (क्यों ऐसा हुआ उसका कारण बता रहे हैं—) प्रत्युत उसने अपनी गरिमा के अनुकूल ही आचरण किया।

टिप्पणी—जो महान होते हैं वे कुपित और पीड़ित होने पर भी गुरुजनों का अपमान नहीं करते और अपनी गम्भीरता के अनुरूप ही आचरण करते हैं। [illegible] अलङ्कार।

निरुध्यमाना यदुभिः कथंचिन्मुहुर्यदुच्चिक्षिपुरग्रपादान् ।
ध्रुवं गुरून्मार्गरुधः करीन्द्रानुल्लङ्घ्य गन्तुं तुरगास्तदीषुः ॥२९॥

अर्थ—घोडे आरोही यादवों द्वारा किसी प्रकार (लगाम खींच कर) रोके जाने पर भी अगले पैरों को जो बार-बार आगे डाल रहे थे उससे ऐसा मालूम होता था मानो वे मार्ग रोकनेवाले बडे बडे गजराजों को डाककर आगे चला जाना चाहते थे।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलङ्कार। सन्मार्ग में बाधा डालनेवाले गुरुजन भी उपेक्षित हो जाते हैं, अलङ्कार से वस्तु की ध्वनि।

अवेक्षितानायतवल्गमग्रे तुरङ्गिभिर्यत्ननिरुद्धवाहैः।
प्रक्रीडितान् रेणुभिरेत्य तूर्णं निन्युर्जनन्यः पृथुकान् पथिभ्यः ॥३०

अर्थ—लगाम खींच कर बडे यत्न से घोडों को रोकनेवाले अश्वारोहियों द्वारा अग्रभाग में देखे गये, पथ की धूल में खेलने वाले बच्चों को उनकी माताएँ शीघ्रतापूर्वक दौड दौडकर उठाने लगीं।

टिप्पणी—स्वभावोक्ति अलङ्कार।

दिदृक्षमाणाः प्रतिरथ्यमीयुर्मुरारिमारादनघं जनौघाः।
अनेकशः संस्तुतमप्यनल्पा नवं नवं प्रीतिरहो करोति ॥३१॥

अर्थ—निष्कलङ्क भगवान श्रीकृष्णचन्द्र को देखने के इच्छुक जन समूह, प्रत्येक सडक पर आ-आकर उनके समीप उपस्थित हो गये। (क्यों न हो) अनेक बार की परिचित वस्तु को भी अत्यधिक प्रीति नूतन-नूतन रूप में देखती है।

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलङ्कार।

उपेयुषो वर्त्म निरन्तराभिरसौ निरुच्छ्वासमनीकिनीभिः।
रथस्य तस्यां पुरि दत्तचक्षुर्विद्वान् विदामास शनैर्न यातम् ॥३२॥

अर्थ—द्वारकापुरी की ओर दृष्टि रखवाले विद्वान् भगवान श्रीकृष्णचन्द्र, सघन सेनाओं से अति सङ्कुल मार्ग पर चलने वाले रथ की मन्दगति को नहीं जान पाये।

टिप्पणी—काव्यलिङ्ग अलङ्कार।

मध्येसमुद्रं ककुभः पिशङ्गीर्या कुर्वती काञ्चनवप्रभासा ।
तुरङ्गकान्तामुखहव्यवाहज्वालेव भित्त्वा जलमुल्ललास ॥३३॥

अर्थ—समुद्र के बीच मे अपनी सुवर्णमयी चहार दीवारी की कान्ति से दिशाओ को पीले वर्ण की बनाती हुई जो द्वारकापुरी (समुद्र के) जल का भेदन कर उठी हुई थी वह उस समय मानो वडवानल की ज्वाला के समान सुशोभित हो रही थी ॥३३॥

कृतास्पदा भूमिभृतां सहस्रैरुदन्वदम्भः परिवीतमूर्तिः ।
अनिर्विदा या विदधे विधात्रा पृथ्वी पृथिव्याः प्रतियातनेव॥३४॥

अर्थ—सहस्रों भूमिधरो अर्थात् राजाओं, (पृथ्वी पक्ष मे पर्वतो) द्वारा निवास बनायी गयी एव समुद्र के जल से चारों ओर घिरी हुई वह विशाल द्वारकापुरी खेद रहित विधाता द्वारा सम्पूर्ण पृथ्वी के प्रतिबिम्ब के समान रची गयी थी ॥३४॥

टिप्पणी—इस विशाल पृथ्वी में भी अनेक पर्वतो के निवास हैं, तथा यह भी चारो ओर से समुद्रो से घिरी हुई है।

त्वष्टुः सदाभ्यासगृहीतशिल्पविज्ञानसंपत्प्रसरस्य सीमा ।
अदृश्यतादर्शतलामलेषु च्छायेव या स्वर्जलधेर्जलेषु ॥३५॥

अर्थ—विश्वकर्मा के सदा निर्माण के अभ्यास मे निरत रहने के कारण उनकी शिल्प विद्या में प्राप्त निपुणता की सीमा स्वरूप वह द्वारका पुरी दर्पण तल की भाँति स्वच्छ समुद्र के जल मे मानो स्वर्ग की छाया-सी दिखाई पड रही थी।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलंकार।

रथाङ्गभर्त्रेऽभिनवं वराय यस्याः पितेव प्रतिपादितायाः ।
प्रेम्णोपकण्ठं मुहुरङ्कभाजो रत्नावलीरम्बुधिराबबन्ध ॥३६॥

अर्थ—पिता की भाँति समुद्र श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्ण को (पक्ष में, जामाता को) तुरन्त दी गयी, अपने अङ्क में (समीप मे या गोद में) विराजमान उस द्वारकापुरी के कण्ठ मे (समीप मे) स्नेह वश बारम्बार रत्नों की मालिका चारों ओर से बाँध देता था।

टिप्पणी—जिस प्रकार जामाता को दी गई कन्या के कण्ठ में पिता बार बार प्रसन्न रत्नावली बाँध देता है उसी प्रकार द्वारका रूपी पुत्री को श्रीकृष्ण को प्रदान कर पिता समुद्र भी उसके चारों ओर रत्नों की पंक्तियाँ बाँध देता था। तात्पर्य यह है कि द्वारका के चारों ओर रत्नों की पंक्तियाँ पड़ी हुई थीं। इत्थेपानुप्राणित उपमा अलंकार।

यस्याश्चलद्वारिधिवारिवीचिच्छटोच्छलच्छङ्खकुलाकुलेन ।
वप्रेण पर्यन्तचरोडुचक्रः सुमेरुरभ्रोऽन्वहमन्वकारि ॥३७॥

अर्थ—चंचल समुद्र के जल की लहरों की परम्परा से उछालकर लाये गये शङ्खों से सकुलित उस द्वारका पुरी की प्राचीर प्रतिदिन समीप में विचरण करने वाले नक्षत्रों के समूह से युक्त सुमेरु पर्वत के शिखर का अनुकरण करती थी ॥३७॥

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि द्वारका की प्राचीर सुमेरु की शिखर की भाँति ऊँचा थी तथा उसके इर्द गिर्द सीपियाँ और शंखों के ढेर लगे थे।

X वणिक्पथे पूगकृतानि यत्र भ्रमागतैरम्बुभिरम्बुराशिः ।
लोलैरलोलद्युतिभाञ्जि मुष्णन् रत्नानि रत्नाकरतामवाप ॥३८॥

अर्थ—उस द्वारकापुरी के बाजारों में ढेरों के रूप में रखे गये स्थिर कान्ति वाले (सदा एक रूप में चमकने वाले) रत्नों को, जल निकलने वाली नालियों में आए हुए चंचल जल के द्वारा चुरा-चुरा कर जलनिधि (कोरा जल वाला) रत्नाकर (रत्नों का आकर) बन गया था।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि पहले समुद्र केवल जलनिधि अर्थात् जल वाला था द्वारका के बाजारों में पड़े हुए रत्नों की ढेरियों को नालियों के जल से चुरा चुरा कर वह 'रत्नाकर' बन गया। अतिशयोक्ति अलंकार।

अम्भश्च्युतः कोमलरत्नराशीनपांनिधिः फेनपिनद्धभासः ।
यत्रातपे दातुमिवाधितल्पं निस्तारयामास तरङ्गहस्तैः ॥ ३९ ॥

अर्थ—उस द्वारकापुरी में जलनिधि समुद्र जल चुवाने वाले अतएव फेनिल और कोमल बहुमूल्य रत्नों की राशियों को मानों धूप

मे सुखाने के लिए बाजारों के बीच मे अपने तरग रूपी हाथों से फैलाता था।

टिप्पणी—गाली वस्तु या उसका स्वामी सुखाने के लिए धूप में फैलाता ही है। उत्प्रेक्षा और रूपक का सकर।

यच्छालमुत्तुङ्गतया जिगेतुं दूरादुदस्थीयत सागरस्य।
महोर्मिभिर्व्याहतवाञ्छितार्थैर्व्रीडादिवाभ्यासगतैर्विलिल्ये ॥४०॥

अर्थ—समुद्र की उत्तुग तरगें उस द्वारकापुरी के प्राकार को मानो अपनी ऊचाई से जीतने के लिए, दूर से उठकर आती थी और समीप आकर अपने अभीष्ट को न प्राप्त कर लज्जित होकर वहीं विलीन हो जाती थीं।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलकार।

कुतूहलेनेव जवादुपेत्य प्राकारभित्त्या महसा निषिद्धः।
रसन्नरोदीद्भृशमम्बुवर्षव्याजेन यस्या वहिरम्बुवाहः ॥ ४१ ॥

अर्थ—बादल मानो कुतूहल वश वेग से आकर उस द्वारका पुरी की प्राचीर की दीवार से एकाएक निवारित होकर बाहर ही गरजते हुए (दु ख से चिल्लाते हुए) पानी बरसाने के बहाने से अत्यन्त रुदन करते थे।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलकार।

यदङ्गनारूपसरूपतायाः कंचिद्गुणं भेदकमिच्छतीभिः।
आराधितोऽद्धा मनुरप्सरोभिश्चक्रे प्रजाः स्वाः सनिमेषचिह्नाः॥४२

अर्थ—उस द्वारकापुरी की रमणियों के सौन्दर्य मे अपने सौन्दर्य से कुछ भेद करनेवाले चिह्न की इच्छुक अप्सराओं से प्रार्थित होकर ही मानों मनु ने अपनी प्रजा को पलकों वाली बना दिया था।

टिप्पणी—द्वारकापुरी की रमणियां अप्सराओं के समान ही सुन्दर थी। अप्सराओं को इससे बड़ी चिन्ता हुई और उन्होंने अपने में और इनमें भेद प्रकट करने के लिए कुछ विशेष चिह्न बना देने की प्रार्थना मनु से की। मानों इस प्रार्थना से प्रभावित होकर मनु ने इसी से मानव मनुष्यों को पलकों वाली बना दिया। तात्पर्य

यह है कि द्वारापुरी की सुन्दरी रमणियों में और अप्सराओं में केवल पलकों का भेद था। अलङ्कार से वस्तु की ध्वनि। उत्प्रेक्षा अलङ्कार।

स्फुरत्तुषारांशुमरीचिजालैर्विनिह्नुताः स्फाटिकसौधपंक्तौः।
आरुह्य नार्यः क्षणदासु यत्र नभोगता देव्य इव व्यराजन् ॥४३॥

अर्थ—उस द्वारकापुरी मे रात्रि के समय थिरकती हुई चन्द्रमा की किरणों अर्थात् चन्द्रिका से (अट्टालिकाओं के चन्द्रिका के समान शुभ्र वर्ण होने के कारण) छिपायी हुई रमणियां, स्फटिकमणि की बनी हुई महलों की सीढ़ियों पर ऊपर चढ़कर इस प्रकार सुशोभित होती थी मानो आकाश में विचरण करने वाली देवियाँ हों।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि द्वारकापुरी की अटारियाँ स्फटिक की बनी थी और चाँदनी रात म समान रग होने के कारण वे छिप जाती थी। केवल सीढ़ियों पर ऊपर चढ़ी रमणियाँ आकाश में विचरती हुई देवियों की भाँति दिखाई पड़ती थीं। सामान्य और उत्प्रेक्षा का सङ्कर।

कान्तेन्दुकान्तोपलकुट्टिमेषु प्रतिक्षपं हर्म्यतलेषु यत्र।
उच्चैरधःपातिपयोमुचोऽपि समूहमूहुः पयसां प्रणाल्यः ॥४४॥

अर्थ—उस द्वारकापुरी मे प्रत्येक रात्रि मे मनोहर चन्द्रकान्ता मणि की फर्शों वाली ऊँची अट्टालिकाओं की छतों पर बनी हुई नालियाँ, प्रचुर जलराशि बहाया करती थी, यद्यपि मेघ उनके नीचे विचरण किया करते थे।

टिप्पणी—चन्द्रकान्ता मणि चाँदनी रात म आर्द्र होकर पानी बहाया करती है। उसी की बनी हुई छत थी, अत चाँदनी रात में उन पर बनी हुई नालियों से प्रचुर जल गिरा करता था। व छतें इतनी ऊँची थीं कि बादल उनसे नीचे ही रह जाते थे। अतिशयोक्ति अलङ्कार।

रतौ ह्रिया यत्र निशाम्य दीपाञ्जालागताभ्योऽधिगृहं गृहिण्यः।
बिभ्युर्बिडालेक्षणभीषणाभ्यो वैदूर्यकुड्येषु शशिद्युतिभ्यः ॥४५॥

अर्थ—उस द्वारकापुरी के महलों मे कुलाङ्गनाएँ रतिकाल में दीपों को बुझाकर झरोखों के मार्ग से आने वाली, वैदूर्य मणि रचित दीवारों

पर बिल्ली की आँखों के समान भयंकर दिखाई पड़ने वाली चन्द्रमा की किरणों से डर जाती थीं।

यस्यामति श्लक्ष्णतया गृहेषु विधातुमालेख्यमशक्नुवन्तः।
चक्रुर्युवानः प्रतिबिम्बिताङ्गाः सजीवचित्रा इव रत्नभित्तीः ॥४६॥

अर्थ—उस द्वारकापुरी के भवनों की दीवारों के (मणि रचित होने से) अत्यन्त चिकनी होने के कारण, चित्र निर्माण करने में असमर्थ युवक गण मानों अपने प्रतिबिम्बित अगों से रत्न की दीवारों को सजीव चित्रों से युक्त बना देते थे।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलङ्कार।

सावर्ण्यभाजां प्रतिमागतानां लक्ष्यैः स्मरापाण्डुतयाङ्गनानाम्।
यस्यां कपोलैः कलधौतधामस्तम्भेषु भेजे मणिदर्पणश्रीः ॥४७॥

अर्थ—उस द्वारकापुरी के सुवर्ण-निर्मित भवन-स्तम्भों में प्रतिबिम्बित, (सुवर्ण के) समान रंग वाली रमणियों के कपोल, काम पीड़ा वश पीले होने से पृथक दिखाई पड़ने के कारण स्फटिक निर्मित दर्पण की शोभा धारण करते थे।

टिप्पणी—सामान्य और निदर्शना अलङ्कार का सङ्कर।

शुकाङ्गनीलोपलनिर्मितानां लिप्तेषु भासा गृहदेहलीनाम्।
यस्यामलिन्देषु न चक्रुरेव मुग्धाङ्गना गोमयगोमुखानि ॥४८॥

अर्थ—उस द्वारकापुरी में मुग्धा बालाएँ, तोते के अंग की भाँति नीले रंग की (मरकत मणि की) बनी हुई घर की देहलियों की कान्ति से प्रतिभासित द्वार के बहिर्भाग की भूमि पर गोबर नहीं ही लीपती थीं।

टिप्पणी—उन्हें भ्रान्ति हो जाती थी कि उसमें तो गोबर से लीपा जा चुका है। भ्रान्तिमान् अलङ्कार।

गोपानसीषु क्षणमास्थितानामालम्बिभिश्चन्द्रकिणां कलापैः।
हरिन्मणिश्यामतृणाभिरामैर्गृहाणि नीध्रैरिव यत्र रेजुः ॥ ४९ ॥

अर्थ—उस द्वारिकापुरी के प्रासाद वल्लियों पर थोडी देर के लिए बैठे हुए मयूरों की फैली हुई लंबी लंबी पूँछों से मानों मरकत मणि की तरह हरे हरे तृणों से छाए हुए मनोहर छप्परों की शोभा धारण कर लेते थे।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलंकार।

बृहत्तुलैरप्यतुलैर्वितानमालापिनद्धैरपि चावितानैः।
रेजे विचित्रैरपि या सचित्रैर्गृहैर्विशालैरपि भूरिशालैः॥५०॥

अर्थ—जो द्वारिकापुरी, 'बृहत्तुल' होने पर भी 'अतुल' अर्थात् महान स्तम्भों वाले एव अनुपम, 'वितानमालापिनद्ध' होने पर भी 'अवितान' अर्थात् वितानों के समूहों से युक्त एवं समस्त वस्तुओं से भरे पुरे, 'विचित्र' होने पर भी 'सचित्र' अर्थात् अद्भुत चित्रों से समलङ्कृत एवं 'विशाल' होने पर भी 'भूरिशाल' अर्थात् बड़े बडे अनेक कमरों वाले भवनों से सुशोभित थी।

टिप्पणी—इस श्लोक म संस्कृत भाषा के अनेकार्थक शब्दों के कारण विरोधाभास अलंकार है। ठेठ हिन्दी अनुवाद में उसका प्रकट करना थोडा कठिन है। 'वृहत्तुल' होने पर भी 'अतुल', 'वितानमालापिनद्ध' होने पर भी 'अवितान' 'विचित्र' होने पर भी 'सचित्र' एव 'विशाल' होने पर भी 'भूरिशाल' शब्दों के कारण सामान्यत प्रथम तो विरोध मालूम पडता है किन्तु बाद में दूसरा अर्थ लेने से विरोध का परिहार हो जाता है।

चिक्रंसया कृत्रिमपत्रिपंक्तेः कपोतपालीषु निकेतनानाम्।
मार्जारमप्यायतनिश्चलाङ्गं यस्यां जनः कृत्रिममेव मेने॥५१॥

अर्थ—उस द्वारकापुरी में भवनों की कपोतपालियों पर निर्मित बनावटी पक्षियों की पक्तियों पर आक्रमण करने की इच्छा से झुकी हुई अतएव निश्चल अंगोंवाली (असली) बिल्लियों को भी (वहाँ के) लोग (भ्रमवश) कृत्रिम ही मानते थे।

टिप्पणी—भ्रान्तिमान् अलंकार।

चितिप्रतिष्ठोऽपि मुखारविन्दैर्वधूजनश्चन्द्रमधश्चकार।
अतीतनक्षत्रपथानि यत्र प्रासादशृङ्गाणि मुधाध्यरुक्षत॥५२॥

अर्थ—उस द्वारकापुरी में युवती रमणियाँ पृथ्वी पर रहते हुए भी (आकाशस्थ) चन्द्रमा को अपने मुखारविन्दों से नीचा कर देती थीं और नक्षत्र-पथों को भी नीचे कर देने वाली ऊँची अटारियों के छतों पर वे व्यर्थ ही चढ़ती थीं।

टिप्पणी—धरती पर नीचे रह कर भी आकाशस्थ चन्द्रमा को नीचा कर देना—यहाँ विरोध अलंकार है। नक्षत्र पथ से भी ऊँची छतों पर बिना चढ़े ही जब वे मुख कान्ति से चन्द्रमा को नीचे कर देती थीं तो उनका उनके ऊपर छत पर चढ़ना व्यर्थ ही था। काव्यलिंग अलंकार।

रम्या इति प्राप्तवतीः पताका रागं विविक्ता इति वर्धयन्तीः।
यस्यामसेवन्त नमद्वलीकाः समं वधूभिर्वलभीर्युवानः ॥५३॥

अर्थ—उस द्वारकापुरी में युवक जन, रम्य होने के कारण पताका प्राप्त करने वाली अर्थात् ध्वजायुक्त (पक्ष में, रमणीयता के कारण प्रसिद्ध) विविक्त अर्थात् निर्जन होने के कारण राग को बढ़ाने वाली (पक्ष में, विविक्त अर्थात् विमल) नमद्वलीक अर्थात् नीचे की ओर झुकी हुई छपरोंवाली (पक्ष में, नमद्वलीक अर्थात् मध्य भाग में त्रिवलियों से सुशोभित) वलभी अर्थात् एकान्तस्थ कुटियों का सेवन अपनी वधुओं के साथ करते थे।

टिप्पणी—वधू और वलभी के समान धर्म के कारण तुल्ययोगिता अलंकार है श्लेष नहीं है।

सुगन्धितामप्रतियत्नपूर्वां बिभ्रन्ति यत्र प्रमदाय पुंसाम्।
मधूनि वक्त्राणि च कामिनीनामामोदकर्मव्यतिहारमीयुः ॥५४॥

अर्थ—उस द्वारकापुरी में स्वाभाविक सुगन्धि धारण करने वाली मदिरा तथा कामिनियों के मुख रसिक युवकों के आनन्द के लिए एक दूसरे का सुगन्धित करते थे।

टिप्पणी—अर्थात् पु[illegible] [illegible] ग और कामिनियों के अधरों का र[illegible] पान कर मद [illegible] स्वाभाविक [illegible]ध [illegible]र का गुण धारण किये रहते थे। [illegible] नियाँ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] करनेवाले थे। [illegible] अलंकार।

रतान्तरे यत्र गृहान्तरेषु वितर्दिनिर्यूहविटङ्कनीडः ।
रुतानि शृण्वन्वयसां गणोऽन्तेवासित्वमाप स्फुटमङ्गनानाम् ॥५५॥

अर्थ—उस द्वारकापुरी के भवनों के भीतर बनी हुई विहार वेदिकाओं के बाहर निकले हुए काष्ठ के अग्रभाग में रहनेवाले तोता-मैना आदि पक्षियों ने, रमणीयों के सुरतकालिक शब्दों को सुन-सुन स्पष्ट ही उनकी शिष्यता प्राप्त कर ली थी।

टिप्पणी—अर्थात उन पक्षियों ने रमणियों के रति के समय के सीत्कार आदि शब्दों का बोलना स्पष्ट ही सीख लिया था।

छन्नेष्वपि स्पष्टतरेषु यत्र स्वच्छानि नारीकुचमण्डलेषु ।
आकाशसाम्यं दधुरम्बराणि न नामतः केवलमर्थतोऽपि ॥५६॥

अर्थ—उस द्वारकापुरी में, ढँके रहने पर भी स्पष्ट दिखाई पडनेवाले रमणियों के स्तन मण्डलों में अत्यन्त सूक्ष्म अम्बर (वस्त्र) केवल नाम से ही आकाश की समानता नहीं कर रहे थे किन्तु अर्थ से भी उसकी समानता कर रहे थे।

टिप्पणी—रमणियाँ यद्यपि अपने स्तनों को ढके रहती थीं किन्तु वस्त्र के अति सूक्ष्म होने के कारण वह दिखाई पडता था। वस्त्र का नाम है अम्बर। आकाश सभी वस्तुओं को ढके रहता है किन्तु निराकार होने के कारण वे वस्तुएं स्पष्ट दिखाई पड़ती हैं। यही दशा उन सूक्ष्म वस्त्रों की भी थी। इस प्रकार अंबर केवल नाम से नहीं प्रत्युत काम से भी आकाश की समानता कर रहा था। उपमा अलंकार।

यस्यामजिह्मा महतीमपङ्काः सीमानमत्यायतयोऽत्यजन्तः ।
जनैरजातस्खलनैर्न जातु द्वयेऽप्यमुच्यन्त विनीतमार्गाः ॥ ५७ ॥

अर्थ—उस द्वारकापुरी में, सरल (पक्ष में, कपट रहित, कीचड रहित (पक्ष में, निष्पाप) महान सीमाओं को न छोडनेवाले अर्थात् राज्य की सीमा तक जानेवाले (पक्ष में, अपनी मर्यादा को न छोडनेवाले) अत्यन्त विस्तृत (पक्ष में, दीर्घकाल तक प्रचलित) दोनों विनीत मार्गों को (भली भाँति बनाई गई नगर की सड़कों को तथा सुशिक्षित सदाचार की पद्धति को) वहाँ के कभी न स्खलित होने वाले (ठोकर खाकर न गिरनेवाले, लोग कभी नहीं छोडते थे।

टिप्पणी—अपह्नुति अलंकार ।

परस्परस्पर्धिपरार्घ्यरूपाः पौरस्त्रियो यत्र विधाय वेधाः ।
श्रीनिर्मितिप्राप्तघुणक्षतैकवर्णोपमावाच्यमलं ममार्ज ॥ ५८ ॥

अर्थ—उस द्वारका पुरी में, एक दूसरे को, अपनी अनन्य सुन्दरता से चुनौती देने वाली पुर की रमणियों की रचना कर विधाता ने घुणाक्षर न्याय द्वारा लक्ष्मी की रचना कर जो अपयश प्राप्त किया था, उसको भली भाँति धो डाला ।

टिप्पणी—जिस प्रकार लकड़ी में लगा हुआ कोई घुन संयोगवश कभी कोई अक्षर बना देता है, उसी प्रकार संयोगवश पहले विधाता ने लक्ष्मी जैसी सुन्दरी की रचना कर दी थी । उनके माथे यह महान् अपयश था । किन्तु उन्होंने अपना यह अपयश द्वारकापुरी की एक से एक बढ़कर सुन्दरी रमणियों की रचना कर भली भाँति धो दिया । यहाँ अतिशयोक्ति अलंकार द्वारा पुर की स्त्रियाँ की सुन्दरता लक्ष्मी के समान थी—इस वस्तु की व्यंजना है ।

क्षुण्णं यदन्तःकरणेन वृक्षाः फलन्ति कल्पोपपदास्तदेव ।
अध्यूषुषो यामभरञ्जनस्य याः संपदस्ता मनसोऽप्यगम्याः ॥५९॥

अर्थ—अन्तःकरण से जिस वस्तु की कामना की जाती थी, उन्हीं को कल्पवृक्ष वहाँ फलते थे । इस प्रकार उस नगरी में निवास करनेवाले लोगों की जो सम्पत्ति थी वह (दूसरों द्वारा) मन से भी नहीं जानी जा सकती थी ।

टिप्पणी—द्वारकापुरी के घर घर में कल्प वृक्ष था—इस अतिशयोक्ति से वहाँ के निवासी देवताओं के समान थे—इस वस्तु की व्यंजना होती है । अलंकार से वस्तु की ध्वनि ।

कला दधानः सकलाः स्वभाभिरुद्भासयन्सौधसिताभिराशाः ।
यां रेवतीजानिरियेष हातुं न रौहिणेयो न च रोहिणीशः ॥६०॥

अर्थ—समस्त कलाओं (चौंसठ विद्याओं, सोलह कलाओं) को धारण करनेवाले, चूना से पुते हुए भवन के समान अपनी कान्ति से दिशाओं को उद्भासित करनेवाले, रेवती (बलराम की पत्नी, नक्षत्र

विशेप) के पति (रोहिणी के पुत्र) बलराम तथा (रोहिणी के स्वामी) चन्द्रमा जिस पुरी को छोडने की इच्छा नहीं करते थे।

टिप्पणी—तुल्ययोगिता अलंकार।

बाणाहवव्याहतशंभुशक्तेरासत्तिमासाद्य जनार्दनस्य।
शरीरिणा जेत्रशरेण यत्र निःशङ्कमूषे मकरध्वजेन ॥ ६१ ॥

अर्थ—उस द्वारकापुरी में बाणासुर के युद्ध में शम्भु की शक्ति को क्षय करनेवाले भगवान कृष्ण का सामीप्य (पुत्रत्व) प्राप्त कर शरीरधारी, विजयी, पंच शर धारण करनेवाला कामदेव निर्भय होकर निवास करता था।

टिप्पणी—पौराणिक कथा है कि जब भगवान् जनार्दन (विष्णु) का साथ सुप्रसिद्ध बाणासुर का भीषण संग्राम हो रहा था तो बाण की तपस्या से पूर्व प्रसन्न होकर भगवान् भी उसी की ओर से युद्ध करने लगे थे किन्तु अन्त में उन्हें हार खानी पड़ी। इस प्रकार शम्भु को पराजित करनेवाले कृष्ण का पुत्र बनकर कामदेव शङ्कर के भय से मुक्त हो गया था। काव्यलिंग अलंकार।

निषेव्यमाणेन शिवैर्मरुद्भिरध्यास्यमाना हरिणा चिराय।
उदश्मिरत्नाङ्कुरधाम्नि सिन्धावाह्वास्त मेरावमरावतीं या ॥६२॥

अर्थ—शिव मरुतों (द्वारकापुरी के पक्ष में, शीतल मन्द सुगंध पवन। अमरावती के पक्ष में, एकादश रुद्रों एवं उनचास मरुतों) द्वारा चिरकाल से सुसेवित हरि, (भगवान् श्री कृष्ण, पक्ष में देवराज इन्द्र) की निवास-स्थली जो द्वारकापुरी दीप्तिमान रत्नों के आगार (दोनों पक्षों में, समुद्र के मध्य में स्थित होकर (दीप्तिमान रत्नों की उत्पत्ति भूमि) सुमेरु पर्वत पर स्थित अमरावती को ललकार रही थी।

टिप्पणी—श्लेषानुप्राणित उपमा अलंकार।

स्निग्धाञ्जनश्यामरुचिः सुवृत्तो वध्वा इवाध्वासितरुक्मकान्तेः।
विशेषको वा विशिशेष यस्याः श्रियं त्रिलोकीतिलकः स एव ६३

अर्थ--तेल निर्मित अंजन के समान श्यामल कान्तिवाले, सुवृत्त अर्थात् सदाचारपरायण (तिलक पक्ष में, गोलाकार) त्रलोकी के तिलक के समान भगवान् श्री कृष्णचन्द्र, जिसके वर्ण की कान्ति स्वयं ही नहीं नष्ट हुई थी (ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रों की कान्ति, तिलक पक्ष मे शरीर के गौरादि वर्णों की सुन्दरता) ऐसी द्वारकापुरी की शोभा को स्त्री की भाँति और अधिक बढा रहे थे।

टिप्पणी—जिस प्रकार तेल द्वारा बनाये गये कज्जल का श्यामल गोलाकार तिलक रमणी की कान्ति एवं वर्ण की शोभा को नष्ट न करते हुए उसे और बढा देता है उसी प्रकार कज्जल के समान श्यामल वर्ण वाले सदाचार परायण भगवान श्री कृष्णचन्द्र स्वयं ही ब्राह्मणादि चारों वर्णों की मर्यादा को नष्ट न करनेवाली द्वारकापुरी की शोभा को बढा रहे थे।

टिप्पणी—श्लेषोपमा अलंकार।

तामीक्षमाणः स पुरं पुरस्तात्प्रापत्प्रतोलीमतुलप्रतापः।
वज्रप्रभोद्भासिसुरायुधश्रीर्या देवसेनेव परैरलङ्घ्या ॥६४॥

अर्थ—अतुलित प्रतापशाली भगवान श्री कृष्णचन्द्र उस द्वारकापुरी की ओर देखते हुए पूर्व दिशा की ओर देवसेना के समान शत्रुओं से अलंघनीय एक गली में पहुँचे, जो (तोरण एवं प्रासाद आदि में लगे हुए) वज्र (हीरों) की कान्ति से इन्द्रधनुष के समान सुशोभित हो रही थी, (पक्ष में, जिसमें इन्द्र के शस्त्र वज्र से अन्यान्य देवताओं के शस्त्रास्त्रों की कान्ति उद्भासित थी)।

प्रजा इवाङ्गादरविन्दनाभेः शंभोर्जटाजूटतटादिवापः।
मुखादिवाथ श्रुतयो विधातुः पुरान्निरीयुर्मुरजिद्ध्वजिन्यः ॥६५॥

अर्थ—कमलनाभि भगवान् विष्णु के अंग से प्रजा वर्ग की भाँति, शम्भु के जटाजूट से (गंगा) जल की भाँति, विधाता के मुख से श्रुतियों की भाँति भगवान् श्रीकृष्ण की सेना, द्वारकापुरी से बाहर निकली।

टिप्पणी—समस्त जगत के प्राणी भगवान के अंगों से उत्पन्न हुए हैं। 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते' अथवा 'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत' इत्यादि श्रुतियाँ इस की साक्षी हैं। मालोपमालंकार।

श्लिष्यद्भिरन्योन्यमुखाग्रसङ्गस्खलत्खलीनं हरिभिर्विलोलैः ।
परस्परोत्पीडितजानुभागा दुःखेन निश्चक्रमुरश्ववाराः ॥६६ ॥

अर्थ—एक दूसरे के मुख के अग्रभाग में रगड़ खाती हुई लगामों वाले चचल घोड़ों के घुडसवार, परस्पर जाघों से टकराते हुए बड़े कष्ट से (उस गली से) बाहर निकले।

टिप्पणी—स्वभावोक्ति अलकार।

निरन्तरालेऽपि विमुच्यमाने दूरं पथि प्राणभृतां गणेन ।
तेजोमहद्भिस्तमसेव दीपैर्द्विपैरसंबाधमयांबभूवे ॥ ६७ ॥

अर्थ—अत्यन्त सकुलित होने पर भी, अन्धकार की भाँति दूर से ही प्राणि-वर्ग के पथ छोडकर हट जाने पर बलवान द्विपों अर्थात् हाथियों के समूह, (अत्यन्त प्रकाश युक्त) दीपकों की भाँति सुखपूर्वक आगे बढ़ने लगे।

टिप्पणी—अर्थात् जिस प्रकार अन्धकार से आच्छन्न पथ पर दीपक अपने तेज से ही पथ को प्रकाशित करता हुआ आगे बढ़ता जाता है उसी प्रकार उस अत्यत भीडभाड युक्त पथ पर भी चलनेवाले अत्यत बलवान हाथियों को आते देखकर लोग अन्धकार की भाति मार्ग छोडकर दूर हट गये और वे हाथी सुखपूर्वक आगे बढ़ गए,उन्हे घोडो की भाति सकट का सामना नही करना पडा।

शनैरनीयन्त रयात्पतन्तो रथाः क्षितिं हस्तिनखादखेदैः ।
सयत्नसूतायतरश्मिभुग्नग्रीवाग्रमंसक्तयुगैस्तुरंगैः ॥ ६८ ॥

अर्थ—वेग से चलने वाले रथ, प्रयत्नपूर्वक सारथियों द्वारा लगाम के खींचने से जिनके टेढे कन्धों पर जुआ का काष्ठ लग रहा था—ऐसे बिना थके हुए तुरगों द्वारा पुर द्वार के समीप से धीरे-धीरे सम-भूमि पर लाये गये।

टिप्पणी—पुरद्वार स्वभावत ऊंचा था, ऊंचाई से नीचे की समभूमि पर आने के कारण यद्यपि घुडसवारों ने रथ के घोडों की लगाम को खूब खींच रखा था फिर भी ढलान होने के कारण जुआ घोडों की तिरछी गरदन में लग रहा था और इस प्रकार धीरे-धीरे रथ समभूमि पर आ गये। स्वभावोक्ति अलकार।

चलोर्मिभिस्तत्क्षणहीयमानरथ्याभुजाया वलयैरिवास्याः ।
प्रायेण निष्क्रामति चक्रपाणौ नेष्टं पुरो द्वारवतीत्वमासीत् ॥६९॥

अर्थ—मानो कङ्कणों के समान सेना-प्रवाह द्वारा उसी क्षण श्रीकृष्ण भगवान के द्वारका पुरी से बाहर निकलने पर, जन-शून्य सड़क-रूपी भुजाओं वाली उस द्वारकापुरी को अपना अनेक द्वारों वाली होना नहीं अच्छा लगा।

टिप्पणी—वह देश धन्य है, जहाँ स्वयं भगवान् निवास करें अब उनसे रहित होकर मैं क्या करूँगी—ऐसा द्वारकापुरी ने उस समय समझा। जो स्त्री अनेक द्वारोंवाली होती है अर्थात् जो अनेक घरों में जाती है अथवा जिसमें अनेक छिद्र या अवगुण होते हैं उसे उसका स्वामी छोड़ ही देता है। इसी प्रकार मानो अनेक द्वारोंवाली होने के कारण भगवान् श्रीकृष्ण ने द्वारकापुरी को छोड़ दिया। मानों वह सोचती है कि यदि मुझमें अनेक द्वार न होते तो भगवान् कैसे मुझे छोड़कर बाहर जाते। इस प्रकार अपने अनेक द्वारवती होने की निन्दा करती है। स्त्रियाँ पति के विदेश जाने पर अपना कङ्कण उतार देती हैं। द्वारकापुरी भी भगवान् श्रीकृष्ण के बाहर निकलते ही मानो कङ्कणों की भाँति सेना के प्रवाह को अपनी भुजाओं रूपी सड़कों से बाहर निकालकर प्रोषित-पतिका बन गयी। उपमा तथा उत्प्रेक्षा का सङ्कर।

पारेजलं नीरनिधेरपश्यन्मुरारिरानीलपलाशराशीः ।
वनावलीरुत्कलिकासहस्रप्रतिक्षणोत्कूलितशैवलाभाः ॥ ७० ॥

अर्थ—भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी ने समुद्र के उस पार, चारों ओर हरे-हरे पत्तों से सघन तथा सहस्रों लहरों से प्रतिक्षण तट पर लाये गये सेवारों की भाँति सुशोभित सुन्दर वनावली को देखा।

टिप्पणी—उपमा तथा उत्प्रेक्षा का सन्देह सङ्कर।

लक्ष्मीभृतोऽम्भोधितटाधिवासान् द्रुमानसौ नीरदनीलभासः ।
लतावधूसंप्रयुजोऽधिवेलं बहूकृतान् स्वानिव पश्यति स्म ॥ ७१॥

अर्थ—भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने लक्ष्मी अर्थात् शोभा को धारण करने वाले, समुद्र तट वासी, काले बादल के समान श्यामल वर्ण

वट के समान लताओं से समन्वित (वन के) वृक्षों को उस समुद्र तट पर मानो अपने ही अनेक स्वरूपों की भाँति देखा।

टिप्पणी—वृक्षों के जो विशेषण हैं वे इसी प्रकार भगवान विष्णु अर्थात् श्री कृष्णचन्द्र पर भी प्रयुक्त होते हैं अतः वृक्षों का वर्णन उनके अनेक स्वरूप के रूप में उत्प्रेक्षित किया गया। संसृष्टि उत्प्रेक्षा अलंकार।

आश्लिष्टभूमिं रसितारमुच्चैर्लोलद्भुजाकारबृहत्तरङ्गम्।
फेनायमानं पतिमापगानामसावपस्मारिणमाशशङ्के ॥ ७२ ॥

अर्थ—भगवान श्री कृष्ण चन्द्र ने भूमि का आलिंगन करते हुए, उच्च स्वर से बोलते हुए, चंचल बाहुओं के समान बड़ी बड़ी तरंगों को फैलाए हुए फेन से युक्त, नदियों के स्वामी समुद्र को मृगी के रोग से पीडित के समान समझा।

टिप्पणी—मृगी का रोगी भी धरती पर गिर पड़ता है, उच्च स्वर से चिल्लाता है, चंचल भुजाओं को फैलाए रहता है तथा मुँह से फेन गिराता है।

पीत्वा जलानां निधिनातिगार्ध्याद्वृद्धिं गतेऽप्यात्मनि नैव मान्तीः।
क्षिप्ता इवेन्दोः स रुचोऽधिवेलं मुक्तावलीराकलयांचकार ॥७३॥

अर्थ—समुद्र द्वारा अत्यन्त लोभवश पीने के कारण (पेट के) बहुत बढ़ जाने पर भी अपने (पेट) में न अमाती हुई, अतः मानों बाहर वमन की गयी चन्द्रमा की किरणों की भाँति भगवान श्री कृष्ण ने, समुद्र तट पर इधर-उधर पड़ी मोतियों के समूहों को देखा।

टिप्पणी—चन्द्रोदय के कारण समुद्र में ज्वार आ जाता है और उसका जल बहुत ऊँचा हो जाता है। ऊँची-ऊँची तरंगों से मुक्ताएँ तट पर आ जाती हैं। कवि उसी की उत्प्रेक्षा करता है मानो अत्यन्त लोभवश समुद्र ने चन्द्रकिरणों का अतिशय पान कर लिया है यद्यपि उसका पेट बहुत बढ़ गया है फिर भी वे किरणें उसमें नहीं समा रही हैं अतः उसने उन्हें वमन कर दिया है। वे मुक्ताएँ मानो समुद्र की वमन की हुई चन्द्रकिरणें हैं। अत्यन्त लोभवश अधिक पी लेने वाला वमन करता है। उत्प्रेक्षा अलंकार।

माटोपमुर्वीमनिशं नदन्तो यैः प्लावयिष्यन्ति समन्ततोऽमी ।
तान्येकदेशान्निभृतं पयोधेः सोऽम्भांसि मेघान् पिबतो ददर्श ७४

अर्थ—मेघ गण बड़े गर्व के साथ निरन्तर गर्जते हुए जिस जल राशि से पृथ्वी को चारों ओर से डुबा देते हैं, उसी जल राशि को समुद्र के एक छोर में निश्चल होकर पान करते हुए उनको (मेघों को) भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने देखा ।

टिप्पणी—इससे समुद्र की अपरिमिति व्यजित होती है ।

उद्धृत्य मेघैस्तत एव तोयमर्थं मुनीन्द्रैरिव संप्रणीताः ।
आलोकयामास हरिः पतन्तीर्नदीः स्मृतीर्वेदमिवाम्बुराशिम् ॥७५॥

अर्थ—मेघों द्वारा उसी समुद्र से जलराशि लेकर निर्मित (बनाई गयी) नदियों को, समुद्र में प्रवेश करते हुए भगवान ने, वेदों मे समाविष्ट होती हुई उन स्मृतियों की भाँति देखा, जो बड़े-बड़े मुनियों द्वारा उन्हीं वेदों से सगृहीत अर्थों के आधार पर निर्मित हैं ।

टिप्पणी—मुनियो ने स्मृतियों को वेदों में वर्णित अर्थों के आधार पर ही रचा है । जिस प्रकार उनकी अन्तिम परिणति वेदों में ही होती है उसी प्रकार मेघो ने समुद्र में ही जल लेकर वृष्टि द्वारा जिन नदियों की रचना की है, वे भी अन्त में उसी समुद्र में विलीन हो जाती है । मेघो की मुनियो के साथ जल की पदार्थ के साथ, नदियो की स्मृतियो के साथ और समुद्र की वेदो के साथ उपमा दी गयी है । उपमा अलङ्कार ।

निर्कीय दिश्यानि धनान्युरूणि द्वैप्यानमाप्नुत्तमलाभभाजः ।
तरीषु तत्रत्यमफल्गु भाण्डं सांयात्रिकानावपतोऽभ्यनन्दत् ॥७६॥

अर्थ—भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र ने दूसरी-दूसरी दिशाओं से लाई गई अनेक बहुमूल्य वस्तुओं की बिक्री से उत्तम लाभ उठानेवाले और फिर इस द्वीप की मूल्यवान वस्तुओं को (अन्यत्र बेंचने के लिए) नौकाओं में रखनेवाले समुद्र द्वीपवासी नाविक व्यापारियों का अभिनन्दन किया ।

टिप्पणी—यात्रा के शकुन स्वरूप नाविका को देखकर भगवान ने उनका अभिनन्दन किया ।

उत्पित्सवोऽन्तर्नदभर्तुरुच्चैर्गरीयसा निःश्वसितानिलेन ।

पयांसि भक्त्या गरुडध्वजस्य ध्वजानिनीचिक्षिपिरे फणीन्द्राः॥७७

अन्वय—समुद्र के भीतर से ऊपर उछलने के इच्छुक फणीन्द्रों ने मानों (भगवान् श्री कृष्ण के प्रति) भक्ति के कारण गरुडध्वज भगवान् श्रीकृष्ण की पताका के समान, अत्यन्त वेगयुक्त मुख के निःश्वासों की वायु से जलराशि को ऊपर की ओर उछाल दिया ।

टिप्पणी—भगवान् श्री कृष्ण गरुडध्वज हैं अर्थात वह गरुड़ उनका वाहन है जो सर्पों का शत्रु है। समुद्र के सर्पों ने यह समझकर कि गरुड़ से भी अधिक बलवान थे कृष्ण भगवान हैं वे ही हम नागों की गरुड़ से रक्षा कर सकते हैं उनकी भक्ति की ओर मानो उसी भक्ति से वे उनकी ध्वजा की भांति जल को ऊपर उछालने लगे। उत्प्रेक्षा अलंकार।

तमागतं वीक्ष्य युगान्तबन्धुमुत्सङ्गशय्याशयमम्बुराशिः ।

प्रत्युज्जगामेव गुरुप्रमोदप्रसारितोत्तुङ्गतरङ्गबाहुः ॥७८॥

अन्वय—जलनिधि समुद्र ने, प्रलय की आपत्तियों में त्राण देने वाले, अपनी अंक रूपी शैय्या में शयन करनेवाले, सामने उपस्थित भगवान् श्री कृष्ण को देख कर, अत्यन्त आनन्द में अपनी ऊंची भुजा रूपी तरंगों को फैला कर मानो उनकी अगवानी की।

टिप्पणी—दूर से आये हुए प्रियजन का आगे बढ़कर बाहु पसार कर आलिंगन किया ही जाता है। उत्प्रेक्षा अलंकार।

उत्सङ्गिताम्भःकणिको नभस्वानुदन्वतः स्वेदलवान् ममार्ज ।

तथ्यानुवेलं व्रजतोऽधिवेलमेलालतास्फालनलब्धगन्धः ॥ ७९ ॥

अन्वय—मध्य में जलबिन्दु लिए हुए, इलायची की लताओं के संघर्ष से सुगन्धित समुद्री हवा समुद्र तट पर जाते हुए भगवान श्री कृष्णचन्द्र की पसीने की बूंदों को प्रतिक्षण सुखाती रही।

टिप्पणी—स्वाभाविक अलंकार।

उत्तालतालीवनसंप्रवृत्तसमीरसीमन्तितकेतकीकाः ।
आसेदिरे लावणसैन्धवीनां चमूचरैः कच्छभुवां प्रदेशाः ॥ ८० ॥

अर्थ—सैनिक चार समुद्र के समीप उस कच्छ भूमि के प्रदेशों मे पहुँच गये, जिसमें उन्नत ताड के वनों से निकली हुई वायु केतकी के पौधो अथवा पुष्पों को सिर के केशो के समान दो भागो मे विभक्त कर रही थी ॥८०॥

टिप्पणी—स्वभावोक्ति और अनुप्रास अलङ्कार। श्लोक मे ओजगुण कर्णप्रिय शब्दो की मनोहर झनकार है।

लवङ्गमालाकलितावतंसास्ते नारिकेलान्तरपः पिबन्तः ।
आस्वादितार्द्रक्रमुकाः समुद्रादभ्यागतस्य प्रतिपत्तिमीयुः ॥ ८१ ॥

अर्थ—लवग के पुष्पो की मालाओं से विभूपित, नारियल के भीतर के जल को पीते हुए तथा गीली सुपारियो का स्वाद चखते हुए (भगवान श्री कृष्ण के) सैनिकों ने समुद्र से विधिवत अतिथि-सत्कार प्राप्त किया।

टिप्पणी—काव्यलिंग अलंकार।

तुरगशताकुलस्य परितः परमेकतुरंगजन्मनः
प्रमथितभूभृतः प्रतिपथं मथितस्य भृशं महीभृता ।
परिचलतो बलानुजबलस्य पुरः सततं धृतश्रिय-
श्चिरविगतश्रियो जलनिधेश्च तदाभवदन्तरं महत् ॥८२॥

अर्थ—चारो ओर से सैकडों अश्वों से आकुलित, प्रत्येक मार्ग मे राजाओं अथवा पर्वतों को मथनेवाली तथा सर्वदा श्रीसम्पन्न नगर (द्वारकापुरी) से अथवा आगे आगे चलने वाली भगवान श्री कृष्ण की सेना के तथा केवल एक मात्र अश्व उच्चैःश्रवा की जन्मभूमि, राजाओं अथवा मन्दर पर्वत द्वारा अत्यन्त मथे गये तथा बहुत दिनों से लक्ष्मी से विहीन समुद्र के बीच मे उस समय (प्रस्थान के समय) महान् अन्तर हो गया।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि यादव-सेना समुद्र से आगे निकल गया और दोनों में पर्याप्त व्यवधान हो गया। यह व्यवधान होना ही चाहिए था क्योंकि दोनों में अन्तर भी पर्याप्त था। सेना सैकड़ों घोड़ों से भरी थी, समुद्र बेचारा केवल एक उच्चैःश्रवा घोड़े की जन्मभूमि था, वह भी उसमें नहीं रह गया था। सेना अनेक राजाओं द्वारा पर्यंना या मथती हुई चलती थी जबकि समुद्र को अकेले मन्दराचल ने मथ डाला था। सेना में लक्ष्मी अथवा शोभा सर्वदा विराजती थी जब कि समुद्र से लक्ष्मी उत्पन्न होते ही छीन ली गयी थी। व्यतिरेक अलंकार। पंचचामरं रुचिरा अथवा धृतश्री वृत्त। लक्षण—'न ज भजा जरौ नगणै कथिता भुवि पञ्चचामरं।'

श्री माघकवि कृत शिशुपालवध नामक महाकाव्य में पुरी-
प्रस्थान नामक तृतीय सर्ग समाप्त ॥ ३ ॥

चतुर्थ सर्ग

निःश्वासधूमं सह रत्नभाभिर्भित्त्वोत्थितं भूमिमिवोरगाणाम् ।
नीलोपलस्यूतविचित्रधातुमसौ गिरिं रैवतकं ददर्श ॥ १ ॥

अर्थ—भगवान् श्रीकृष्ण ने (पथ पर) चलते हुए इन्द्रनील मणि के साथ विविध प्रकार की धातुओं से युक्त रैवतक पर्वत को देखा। वह ऐसा मालूम पड रहा था मानों मणियों की कान्ति के साथ भूमि को विदारित कर ऊपर उठती हुई सर्पों के निःश्वास की धूम-राशि हो।

टिप्पणी—इस सर्ग में अनेक प्रकार के छन्द हैं। आदि के अठारह श्लोक उपजाति हैं जिसका लक्षण पहले ही बताया जा चुका है। सर्ग भर में रैवतक पर्वत का वर्णन है। नीचे के आठ श्लोकों में 'रैवतक को देखा'—इतना वाक्यांश जोड़ना पड़ेगा।

गुर्वीरजस्रं दृषदः समन्तादुपर्युपर्यम्बुमुचां वितानैः ।
विन्ध्यायमानं दिवसस्य भर्तुर्मार्गं पुना रोद्धुमिवोन्नमद्भिः ॥२॥

अर्थ—बडी-बडी चट्टानों के ऊपर ऊपर निरन्तर छाये हुए मेघों के वितानों से घिरा हुआ रैवतक मानों फिर से सूर्य के मार्ग को अवरुद्ध करने के लिए विन्ध्याचल के समान आचरण कर रहा था। (ऐसे रैवतक को भगवान ने देखा)।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलंकार।

क्रान्तं रुचा काञ्चनवप्रभाजा नवप्रभाजालभृतां मणीनाम् ।
श्रितं शिलाश्यामलताभिरामं लताभिरामन्त्रितषट्पदाभिः ॥३॥

अर्थ—नूतन किरणों के जाला से युक्त मणियों की सुवर्णमयी चोटी तक फैली हुई कान्ति से व्याप्त, इन्द्रनील मणि की शिलाओं की श्यामलता से सुन्दर, तथा (मकरन्द से परिपूरित होने के कारण) भ्रमरों को आमन्त्रित करती हुई लताओं से आश्रित (रैवतक को भगवान ने देखा।)।

टिप्पणी—इस श्लोक में यमक अलंकार है। इसके बाद भी दो के अन्तर पर तीसरे श्लोक में यमक अलंकार है।

महत्सहस्रैर्गगनं शिरोभिः पादैर्भुवं व्याप्य वितिष्ठमानम्।
विलोचनस्थानगतोष्णरश्मिनिशाकरं साधु हिरण्यगर्भम्॥ ४॥

अर्थ—सहस्त्रों शिखरों (पक्ष में, शिरों) से आकाश को तथा (उतने ही) समीपवर्ती छोटे-छोटे पर्वतों की श्रेणियों (पक्ष में, चरणों) से पृथ्वी तल को घेर कर अवस्थित तथा नेत्र स्थानों पर सूर्य और चन्द्रमा से सुशोभित मानो हिरण्यगर्भ ब्रह्मा की भाँति दिखाई पड़ने वाले अथवा भीतर सुवर्णों से भरे हुए (रैवतक को भगवान ने देखा)।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलंकार।

क्वचिज्जलापायविपाण्डुराणि धौतोत्तरीयप्रतिमच्छवीनि।
अभ्राणि बिभ्राणमुमाङ्गसङ्गविभक्तभस्मानमिव स्मरारिम्॥ ५॥

अर्थ—किसी भाग में जल के अभाव के कारण श्वेत धुले हुए वस्त्र की भाँति सुशोभित मेघों को धारण किए हुए, पार्वती के अर्ध भाग से पृथक् अंग पर भस्म लपेटे हुए कामरिपु शंकर के समान स्थित (रैवतक को देखा)।

टिप्पणी—उपमा अलंकार।

छायां निजस्त्रीचटुलालसानां मदेन किंचिच्चटुलालसानाम्।
कुर्वाणमुत्पिञ्जलजातपत्रैर्विहंगमानां जलजातपत्रैः॥ ६॥

अर्थ—अपनी-अपनी स्त्रियों के प्रिय वचनों को सुनने के अभिलाषी तथा मस्ती के कारण कुछ-कुछ चंचलता तथा आलस्य से घिरे हुए पक्षियों को, पीले-पीले पत्तों वाले कमल रूपी छातों से छाया करते हुए (रैवतक को भगवान ने देखा)।

टिप्पणी—इसमें कमलों को विपुलता की व्यंजना होती है। यमक और रूपक का संकर।

स्कन्धाधिरूढोज्ज्वलनीलकण्ठानुर्वीरुहः श्लिष्टतनूनहीन्द्रैः।
प्रनर्तितानेकलताभुजाग्रान् रुद्राननेकानिव धारयन्तम्॥ ७॥

अर्थ—जिनके स्कन्धों पर अनेक मनोहर मयूर अधिरूढ है (पक्ष मे, जिनके कंधे पर मनोहर नीलकण्ठ स्थित है) बड़े बड़े सर्पों से व्याप्त शरीर वाले तथा अनेक लता-रूपी भुजाओं के अग्रभाग को नचाने वाले वृक्षों को, मानो रुद्र के समान धारण किए हुए (रैवतक को भगवान ने देखा)।

टिप्पणी—रुद्रो के समान वृक्षो की उत्प्रेक्षा की गयी है। रुद्र भी ताण्डव नृत्य के समय लताओ के समान अपनी भुजाओ के अग्रभाग को नचाते है। उत्प्रेक्षा अलकार।

विलम्बिनीलोत्पलकर्णपूराः कपोलभित्तीरिव लोध्रगौरीः।
नवोलपालंकृतसैकताभाः शुचीरपः शैवलिनीर्दधानम् ॥ ८ ॥

अर्थ—लवे नील कमल-रूपी कर्णाभरण से विभूषित तथा लोध्र के फूलो के पराग से गौर वर्ण की स्त्रियो की कपोलस्थली के समान स्थित-नवीन हरित तृणो से अलकृत नदीतट की कान्ति के समान सुशोभित, परम पवित्र और सिवारो से घिरी हुई निर्मल जल राशि को धारण किए हुए (रैवतक को भगवान ने देखा)।

टिप्पणी—उपमा अलकार।

राजीवराजीवशलोलभृङ्ग मुष्णन्तमुष्णं ततिभिस्तरूणाम्।
कान्तालकान्ता ललनाः सुराणां रक्षोभिरक्षोभितमुद्वहन्तम् ॥९॥

अर्थ—कमलो की पक्तियो के अधीन होकर विचरण करते हुए चचल भ्रमरो से युक्त, वृक्षो की पक्तियो से धूप की गरमी को दूर करने वाले तथा राक्षसो के उपद्रवो से मुक्त मनोहर अलकावली से विभूषित देवागनाओ को धारण किए हुए (रैवतक को भगवान ने देखा)।

टिप्पणी—[illegible]

मुद्रे मुरारेरमरैः सुमेरोरानीय यस्योपचितस्य शृङ्गैः।
भवन्ति नोद्दामगिरां कवीनामुच्छ्रायसौन्दर्यगुणा मृषोद्याः ॥१०॥

अर्थ—भगवान श्रीकृष्ण की प्रसन्नता के लिए देवताओं द्वारा सुमेरु पर्वत के (लाए गए) शिखरों से बढ़ाये गये रैवतक पर्वत की उच्चता तथा सुन्दरता का उत्कर्ष, प्रगल्भभाषी कवियों की वाणी को झूठा नहीं बना रहा था।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि देवताओं ने सुमेरु के शिखरों की समृद्धि तथा उच्चता को लाकर रैवतक के शिखरों को बढ़ा दिया था, अतः कवि जो कुछ भी प्रगल्भ वाणी उसकी उच्चता तथा सुन्दरता के विषय में कहता है, वह मिथ्या नहीं है। अतिशयोक्ति अलङ्कार।

यतः परार्घ्यानि भृतान्यनूनैः प्रस्थैर्मुहुर्भूरिभिरुच्छिखानि।
आढ्यादिव प्रापणिकादजस्रं जग्राह रत्नान्यमितानि लोकः ॥११॥

अर्थ—लोग बड़ी-बड़ी विशाल चोटियों में सुरक्षित (बड़े-बड़े प्रस्थ नामक परिमाणों में भरकर) उत्कृष्ट और चमकते हुए रत्नों को इस रैवतक पर्वत से निरन्तर इस प्रकार प्राप्त करते थे जिस प्रकार किसी धनिक जौहरी से प्राप्त करते हैं।

टिप्पणी—उपमा अलङ्कार।

अखिद्यतासन्नमुदग्रतापं रविं दधानेऽप्यरविन्दधामे।
भृङ्गावलिर्यस्य तटे निपीतरसा नमत्तामरसा न मत्ता ॥ १२ ॥

अर्थ—(रैवतक पर्वत के अत्यन्त ऊँचे होने के कारण) अत्यन्त समीप एवं असह्य ताप वाले (रविन्दधान अर्थात्) सूर्य को धारण करने पर भी (अरविन्दधान अर्थात्) कमलों को धारण करने वाले उस (रैवतक) के तट पर मकरन्द रस-पान करनेवाले तथा अपने भार से कमलों को नम्र करने वाले मतवाले भ्रमरों की पंक्तियाँ खिन्न नहीं होती थीं।

टिप्पणी—सूर्य के अत्यन्त निकटस्थ होने के कारण यद्यपि असह्य गर्मी पड़ती थी किन्तु कमलों के समूह में विहार करने हुए भ्रमरों को खेद नहीं होता था। 'रविन्दधाने' तथा 'अरविन्दधाने' इन दोनों शब्दों में शब्दश्लेष मूलक विरोधालङ्कार है। यमक अलङ्कार पूर्ववत् है।

यत्राधिरूढेन महीरुहोच्चैरुन्निद्रपुष्पाक्षिमहस्रभाजा ।
सुराधिपाधिष्ठितहस्तिमल्ललीला दधौ राजतगण्डशैलः ॥ १३ ॥

अथ—उस रैवतक पर्वत में रजतमय च्युत-शिखर खिले हुए सहस्रों नेत्ररूपी पुष्पों से सुशोभित, ऊँचे वृक्षों से अधिरूढ होने के कारण (सहस्रों नेत्रों वाले) देवराज इन्द्र के विराजमान होने पर ऐरावत हाथी की शोभा को धारण किए हुए थे ।

टिप्पणी—निदर्शना अलंकार ।

विभिन्नवर्णा गरुडाग्रजेन सूर्यस्य रथ्याः परितः स्फुरन्त्या ।
रत्नैः पुनर्यत्र रुचा रुचं स्वामानिन्यिरे वंशकरीरनीलैः ॥ १४॥

अथ—गरुड के अग्रज (सूर्य के सारथी) अरुण द्वारा अन्य (लाल) रग में रँगे गये सूर्य के रथ के घोडे, उस रैवतक पर्वत पर वास के करील के समान श्यामल वर्ण वाले रत्नों (मरकत मणि) की चारों ओर चमकती हुई कान्ति से, फिर अपने पुराने (हरे) रग को प्राप्त कर लेते थे ।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि रैवतक का शिखर इतना ऊचा था कि सूर्य मण्डल तक पहुचा हुआ था । तदगुण अलंकार ।

यत्रोज्झिताभिर्मुहुरम्बुवाहैः समुन्नमद्भिर्न समुन्नमद्भिः ।
वनं बबाधे विषपावकोत्था विपन्नगानामविपन्नगानाम् ॥ १५ ॥

अथ—उस रैवतक पर्वत पर ऊपर उठे हुए मेघों द्वारा बरसायी गयी जलराशि से बार बार अच्छी तरह भिगोए हुए सर्पयुक्त वृक्षों के वन को, विषाग्नि से उत्पन्न होने वाली बाधाएं नहीं सताती थीं ।

टिप्पणी—अर्थात नित्य ही वृष्टि होने के कारण विषाग्नि का प्रभाव उस वन पर नहीं पड़ता था । यमक अलंकार ।

फलद्भिरुष्णांशुकराभिमर्शात्कार्शानवं धाम पतङ्गकान्तैः ।
शशंस यः पात्रगुणाद्गुणानां संक्रान्तिमाक्रान्तगुणातिरेकाम् १६

अर्थ—वह रैवतक गिरि, सूर्य की किरणों के सम्पर्क के कारण अग्नि के तेज को प्रकट करने वाली सूर्यकान्त मणियों द्वारा, जिन्हें पात्र के गुण के संसर्ग से अधिक तेज प्राप्त हो जाता है—ऐसे गुणों की सक्रान्ति की प्रशंसा करता था।

टिप्पणी—गुण योग्य पात्रों में पड़कर अधिक तेजवान हो जाते हैं—इस बात की प्रशंसा रैवतक अपनी सूर्यकान्त मणियों के द्वारा करता था। सूर्य की किरण यद्यपि सर्वत्र ताप फैला रही थीं किन्तु सूर्यकान्त मणि में वे अग्नि का तेज प्रकट कर रही थीं। वृत्यनुप्रास अलंकार।

दृष्टोऽपि शैलः स मुहुर्मुरारेरपूर्ववद्विस्मयमाततान।
क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः॥ १७॥

अर्थ—बारम्बार देखा हुआ भी वह रैवतक गिरि पहले कभी न देखे हुए के समान भगवान श्रीकृष्ण के विस्मय को बढ़ा रहा था, (क्यों न हो) क्षण-क्षण में जो वस्तु को अपूर्व सुन्दरता अथवा नवीनता प्राप्त होती है, वही रमणीयता का (सच्चा) स्वरूप है।

टिप्पणी—काव्यलिंग अलंकार।

उच्चारणज्ञोऽथ गिरां दधानमुच्चा रणत्पक्षिगणास्तटीस्तम्।
उत्कं धरं द्रष्टुमवेक्ष्य शौरिमुत्कंधरं दारुक इत्युवाच॥ १८॥

अर्थ—(भगवान् के विस्मित होने के) अनन्तर बोलने में प्रवीण दारुक (सारथी) ने बोलते हुए पक्षियों से युक्त तट को धारण करने वाले रैवतक पर्वत को देखने के लिए उत्सुक अतएव कंधे को ऊँचा उठाए हुए भगवान् श्रीकृष्ण को देखकर यह कहा—

टिप्पणी—यमकालंकार।

आच्छादितायतदिगम्बरमुच्चकैर्गा-
माक्रम्य संस्थितमुदग्रविशालशृङ्गम्।
मूर्ध्निस्खलत्तुहिनदीधितिकोटिमेन-
मुद्वीक्ष्य को भुवि न विस्मयते नगेशम्॥ १९॥

अर्थ—लम्बी एवं विशाल दिशाओं तथा आकाश को आच्छादित करने वाले (शंकर पक्ष में, दिशा रूपी वस्त्रों से अंगों को ढँकने वाले) ऊँची पृथ्वी को व्याप्त कर अवस्थित, अत्यन्त ऊँचे शिखरों से सुशोभित (पक्ष में, विशाल सींगों वाले ऊँचे नन्दीश्वर नामक बैल की पीठ पर विराजमान) तथा शिखर पर (पक्ष में, मस्तक पर) चमकती हुई चन्द्रमा की किरणों से सुशोभित इस नागराज रैवतक (कैलासपति शंकर) को देखकर इस धरती पर कौन नहीं विस्मय में पड जायगा। (अर्थात् सभी विस्मय में पड जायँगे)।

टिप्पणी—इस शब्द में न तो तुल्ययोगिता अलंकार है न समासोक्ति है और न श्लेष है प्रत्युत शब्द से अर्था तरवीकृत ध्वनि है। छ द वम न निरुका है जिसका लक्षण है उक्ता वम न निरुका तभजा जगाग।

उदयति विततोर्ध्वरश्मिरज्जावहिमरुचौ हिमधाम्नि याति चास्तम्।
वहति गिरिरयं विलम्बिघण्टाद्वयपरिवारितवारणेन्द्रलीलाम्॥२०॥

अर्थ—विस्तृत ऊर्ध्व गामी रज्जु के समान किरणों वाले सूर्य के उदित होने एवं चन्द्रमा के अस्त होने पर यह रैवतक गिरि विशेष रूप से नीचे लटकते हुए दोनों ओर दो घंटों से वेष्टित गजराज की शोभा धारण करता है।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि सूर्योदय के समय सूर्य की लम्बी रस्सी के समान किरणें विस्तृत होकर इसके शिखर के एक ओर तथा उसी प्रकार अस्त होते चन्द्रमा की किरण दूसरी ओर जब पड़ती है तो यह उस गजराज की शोभा धारण करता है जो दोनों ओर लटकती रस्सी में लटकते हुए दो घण्टों से परिवेष्ठित हो। निदर्शना अलंकार। पुष्पिताग्रा छन्द। अयुजि नयुग रेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा।

वहति यः परितः कनकस्थलीः सहरिता लसमाननवांशुकः।
अचल एष भवानिव राजते स हरितालसमाननवांशुकः॥२१॥

अर्थ—नूतन कान्तियों से शोभायमान जो रैवतक गिरि दूर्वायुक्त सुवर्ण मयी भूमि को चारों ओर से धारण किए हुए है, वह हरताल के समान नूतन पीतवस्त्र धारण करने वाले श्रीमान् की भाँति सुशोभित हो रहा है।

टिप्पणी—द्रुतविलम्बित छन्द। द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ' अर्थात एक नगण दो भगण तथा एक रगण जिसमें हो। यमक अलंकार।

पाश्चात्यभागमिह सानुषु संनिषण्णाः
पश्यन्ति शान्तमलसान्द्रतरांशुजालम्।
संपूर्णलब्धललनालपनोपमान-
मुत्सङ्गसङ्गिहरिणस्य मृगाङ्कमूर्तेः ॥ २२ ॥

अर्थ—इस रैवतक गिरि के शिखरों पर बैठे हुए लोग निष्कलंक एवं सघन किरणों के जाल से युक्त, स्त्रियों के मनोहर मुख की अविकल समानता प्राप्त करने वाले, गोद में हिरण के चिह्न से सुशोभित चन्द्रमा के पृष्ठ-भाग को देखते हैं।

टिप्पणी—अतिशयोक्ति अलंकार में रैवतक की विशाल उच्चता की ध्वनि होती है। वसन्ततिलका छन्द।

कृत्वा पुंवत्पातमुच्चैर्भृगुभ्यो मूर्ध्नि ग्राव्णां जर्जरा निर्झरौघाः।
कुर्वन्ति द्यामुत्पतन्तः स्मरार्तस्वर्लोकस्त्रीगात्रनिर्वाणमत्र ॥२३॥

अर्थ—इस रैवतक पर्वत पर झरनों के प्रवाह पुरुषों की भाँति ऊँचे तटविहीन शिखरों से बड़ी-बड़ी शिलाओं के ऊपर गिरकर जर्जरित हो जाते हैं और इस प्रकार फिर ऊपर की ओर उछल कर कामार्त आकाशगामी अप्सराओं के अंगों की शान्ति करते हैं।

टिप्पणी—वानप्रस्थ आश्रम में ऊँचे शिखर से शिला पर कूद कर प्राण त्यागने-वाले पुरुष पुण्य भी आकाश में जाकर अप्सराओं के साथ विहार करते हैं। झरनों के प्रवाह भी उन्हीं के समान ऊँचे शिलाओं पर गिर कर बूँद-बूँद बिखर कर ऊपर जा कर अप्सराओं के काम सन्तप्त अंगों को शान्त करते हैं। कहा गया है—

अनुष्ठानासमर्थस्य वानप्रस्थस्य जीर्यतः ।
भृग्वग्निजलसम्पातैर्मरणं प्रविधीयते ॥

अर्थात् कार्य करने में अशक्त वृद्ध जर्जर वानप्रस्थों को पर्वत शिखर पर से नीचे, अग्नि में अथवा जल में कूद कर प्राण त्याग करने का विधान है। शालिनी छन्द। "शालिन्युक्ता म्तौ तगौ गोऽब्धिलोकैः।"

स्थगयन्त्यमूः शमितचातकार्तस्वरा
जलदास्तडित्तुलितकान्तकार्तस्वराः ।
जगतीरिह स्फुरितचारुचामीकराः
सवितुःक्वचित् कपिशयन्ति चामी कराः ॥ २४ ॥

अर्थ—इस रैवतक गिरि की कुछ भूमि पर चातकों के आर्त स्वर को शान्त करने वाले तथा बिजली के प्रकाश के समान सुवर्ण को चमकाने वाले मेघ छाये हुए हैं तथा कुछ भूमि पर सुवर्ण को अतिशय चमकीला बनाने वाली सूर्य की ये किरणें पीले वर्ण की धूप चमका रही हैं।

टिप्पणी—यह रैवतक इतना विशाल है कि कहीं इसमें बादल बरस रहे हैं और कहीं कड़ाके की धूप फैली हुई है। पथ्या छन्द—"सजसा यलौ च सह-गेन पथ्या मता।'

उत्क्षिप्तमुच्छ्रितसिताशुकरावलम्बै-
रुत्तम्भितोडुभिरतीवतरां शिरोभिः ।
श्रद्धेयनिर्झरजलव्यपदेशमस्य
विष्वक्तटेषु पतति स्फुटमन्तरीक्षम् ॥ २५ ॥

अर्थ—ऊपर की ओर फैली हुई चन्द्रमा के हाथ-रूपी किरणों में अवलंबित एवं नक्षत्र मण्डलों की टेक से युक्त शिरों (शिखरों) से अत्यन्त यत्नपूर्वक ऊपर की ओर धारण किया गया आकाशमण्डल ही (नीले रंग की) समानता के कारण विश्वसनीय झरनों के जल के बहाने से मानों इस रैवतक पर्वत के चारों ओर स्पष्ट रूप में गिर रहा है।

टिप्पणी—आकाश भी नीला है और ऊपर से धारा आर गिरने वाले झरना का जल भी नीला है। कवि उत्प्रेक्षा कर रहा है मानो रैवतक चन्द्रमा के ऊपर की ओर उठी हुई किरण रूपी हाथों से अवलम्बित तथा नक्षत्रों की टेक से टिके हुए आकाश को अपने शिखरों पर यत्नपूर्वक धारण किए है किन्तु वह गिरा जा रहा है। ध्वनि यह है कि इसके शिखर चन्द्रमा तथा नक्षत्रों के पथ से भी ऊँचे हैं। उत्प्रेक्षा अलंकार। वसन्ततिलका छन्द।

एकत्र स्फटिकतटांशुभिन्ननीरा
नीलाश्मद्युतिभिदुराम्भसोऽपरत्र ।
कालिन्दीजलजनितश्रियः श्रयन्ते
वैदग्ध्यीमिह सरितः सुरापगायाः ।। २६ ।।

अर्थ—एक ओर स्फटिक के तट की किरणों से श्वेत जल वाली तथा दूसरी ओर इन्द्रनील मणि की कान्ति से नीले जल वाली इस पर्वत पर बहने वाली नदियाँ यमुना के नीले जल से सुशोभित गंगा की शोभा को धारण करती हैं।

टिप्पणी—तद्गुणात्थापित निदर्शना अलंकार। प्रहर्षिणी छन्द। म्नौज्रौ गस्त्रिदशयति प्रहर्षिणीयम।

इतस्ततोऽस्मिन्विलसन्ति मेरोःसमानवप्रे मणिसानुरागाः ।
स्त्रियश्च पत्यौ सुरसुन्दरीभिः समा नवप्रेमणि सानुरागाः ।।२७।।

अर्थ—सुमेरु पर्वत के समान चोटियों वाले इस रैवतक गिरि पर इधर-उधर रत्न युक्त तट की किरणे फैल रही हैं तथा अभिनव प्रेम युक्त पति में अनुरक्त चित्त वाली अप्सराओं के समान सुन्दरी रमणियाँ इधर-उधर क्रीडा कर रही हैं।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि परस्पर अनुराग भरे दम्पति तथा उनके विहार के अनुरूप मनोरम स्थलों का इस पर्वत में प्राचुर्य है। यमक अलंकार। उपजाति छन्द।

उच्चैर्महारजतराजिविराजितासौ
दुर्वर्णभित्तिरिह सान्द्रसुधासवर्णा ।

अभ्येति भस्मपरिपाण्डुरितस्मरारे-
रुद्वह्निलोचनललामललाटलीलाम ॥ २८ ॥

अर्थ—इस रेवतक गिरि मे गाढ़ी पुती हुई चूने की सफेदी के समान श्वेत रग वाली, सुवर्ण की रेखाओं से सुशोभित यह ऊँची रजतमयी दीवाल विभूति से श्वेत अगों वाले भगवान शकर के अग्नि की ज्वाला से समन्वित तीसरे नेत्र से विभूषित ललाट की शोभा को धारण कर रही है।

टिप्पणी—निदर्शना अलकार।

अयमतिजरठाः प्रकामगुर्वीरलघुविलम्बिपयोधरोपरुद्धाः।
सततमसुमतामगम्यरूपाः परिणतदिक्करिकास्तटीर्बिभर्ति ॥२९॥

अर्थ—यह रैवतक गिरि अत्यन्त कठिन (कुमारी पक्ष में, अति वृद्धा) बहुत ऊँची (पक्ष में, बहुत मोटी) बडे विशाल मेघों से घिरी हुई (पक्ष मे, बडे-बडे लम्बे स्तनों से युक्त) सर्वदा (अति उन्नत होने के कारण) जीवधारियों से अगम्य (वृद्धा होने के कारण पुरुषों से अगम्य) तथा तिरछे दाँत से प्रहार करने वाले दिग्गजों से युक्त तटियों को (जिसके अगों पर दाँतों एव नखों के क्षत के चिह्न पड गए हैं ऐसी वृद्धा कुमारियों को) धारण करता है।

टिप्पणी—तटी के विशेषणों से वृद्धागना की भी प्रतीति एक ही साथ हो जाती है। समासोक्ति अलकार। पुष्पिताग्रा छन्द।

भूमाकरं दधति पुरः सौवर्णे
वर्णेनाग्नेः सदृशि तटे पश्यामी।
श्यामीभूताः कुसुमसमूहेऽलीनां
लीनामालीमिह तरवो बिभ्राणाः ॥ ३० ॥

अर्थ—इस रैवतक गिरि पर आगे की ओर देखिये, रंग में अग्नि के समान सुवर्णमय तट पर कुसुमों के समूहों में स्थित भ्रमरों की पंक्तियों

5-2245.

को धारण किए हुए ये श्यामल वर्ण के वृक्ष धूएँ के समान प्रतीत हो रहे हैं।

टिप्पणी—सुवर्णतट अग्नि की भाँति तथा श्यामल वृक्ष धूएँ के समान दिखाई पड़ रहे है। जलधरमाला छन्द। "अब्ध्यङ्गैः स्याज्जलधरमाला म्भौ स्मौ।"

> व्योमस्पृशः प्रथयता कलधौतभित्ती-
> रुन्निद्रपुष्पचणचम्पकपिङ्गभासः।
> सौमेरवीमधिगतेन नितम्बशोभा-
> मेतेन भारतमिलावृतवद्विभाति ॥ ३१ ॥

अर्थ—आकाश को छूने वाले एवं विकसित चम्पक के पुष्पों के समान पीत वर्ण की कान्ति युक्त सुवर्ण के तटों को धारण करते हुए सुमेरु पर्वत के नितम्ब की शोभा को प्राप्त करने वाले इस रैवतक गिरि से यह हमारा भारतवर्ष का भूखण्ड इलावृत्त वर्ष (लोक विशेष) की भाँति सुशोभित हो रहा है।

टिप्पणी—पौराणिक भूगोल के अनुसार जम्बूद्वीप में नव खण्ड कहे गए हैं, उनमें से हिमालय के दक्षिण का भूखण्ड हैमवत अथवा भारतवर्ष नाम मध्य का खण्ड सुमेरु पर्वत से सम्बधित होने के कारण सौमेरव अथवा इलावृत्त कहलाता है।

> रुचिरचित्रतनूरुहशालिभिर्विचलितैः परितः प्रियकव्रजैः।
> विविधरत्नमयैरभिभात्यसाववयवैरिव जङ्गमतां गतैः ॥ ३२ ॥

अर्थ—यह रैवतक गिरि अनेक प्रकार के उज्ज्वल एवं चितकबरे बालों वाले चारों ओर घूमते हुए प्रियक नामक हिरणों के समूहों से इस प्रकार शोभायमान हो रहा है, मानों विविध रत्नों से युक्त इसी (पर्वत) के अंगों के समूह ही जीव धारण करके इधर-उधर विचरण कर रहे हैं।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलंकार। द्रुतविलम्बित छन्द।

कुशेशयैरत्र जलाशयोषिता मुदा रमन्ते कलभा विकस्वरैः ।
प्रगीयते सिद्धगणैश्च योषितामुदारमन्ते कलभाविकस्वरैः ॥३३॥

अर्थ—इस रैवतक गिरि के जलाशयों में प्रविष्ट हुए तीस वर्ष की अवस्था वाले हाथियों के समूह विकसित कमलों के साथ क्रीड़ा कर रहे हैं और मनोहर एव कामोद्दीपक स्वर से सिद्ध के समूह अपनी रमणियों के साथ मस्ती से गा रहे हैं।

टिप्पणी—अर्थात् कमलों से भरे हुए जलाशयों तथा सिद्धों की विहार-स्थली यह रैवतक पृथ्वी पर का स्वर्ग है। वंशस्थ छन्द। यमक अलंकार।

आसादितस्य तमसा नियतेर्नियोगा-
दाकाङ्क्षतः पुनरपक्रमणेन कालम् ।
पत्युस्त्विषामिह महौषधयः कलत्र-
स्थानं परैरनभिभूतममूर्वहन्ति ॥ ३४ ॥

अर्थ—इस रैवतक गिरि पर स्थित ये महान् औषधियाँ विधाता के शासन में नियन्त्रित होकर अन्धकार से (पक्ष में, विपत्ति से) आच्छन्न, अथवा अस्तगत और पुन उदयाचल पर पहुंच कर (अपनी उन्नति प्राप्तकर) समागम के समय की आकांक्षा करने वाले ज्योतिष्पति सूर्य के, दूसरों से न आक्रान्त होने वाले (दूसरे पुरुष द्वारा तिरस्कृत न होने वाले) स्त्रियों के तेज को अर्थात् कान्ति को धारण किए रहती है।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि विधाता के कठोर शासन में अनुबद्ध सूर्य जब रात्रि के समय अन्धकार से आच्छन्न होकर पुन उदयाचल के समय की प्रतीक्षा करता है उस समय रैवतक पर्वत की दिव्य-गुणशाली औषधियाँ सूर्य की उस दीप्ति की रक्षा करती हैं, जिसे अन्धकार पराजित नहीं कर सकता। अर्थात् निविड अन्धकार में भी दिव्य औषधियों के प्रकाश से यह गिरि प्रकाशमान रहता है। स्त्रियों की रक्षा स्त्रियों के बीच में ही होती है। जिस प्रकार किसी विपत्तिग्रस्त सज्जन पुरुष की स्त्री को कोई उदार पुरुष आपत्तिकाल में सुरक्षार्थ धरोहर के समान अपने घर की स्त्रियों के बीच में रखकर फिर अच्छा समय आ जाने पर उसे वापस

करदना है उसी प्रकार रैवतक गिरि का ओषधिया भी रात के समय सूर्य की कान्ति को अपने बीच सुरक्षित रखकर सबेरे पुनः उसे अर्पित कर दता है। समासोक्ति अलकार।

वनस्पतिस्कन्धनिषण्णबालप्रवालहस्ताः प्रमदा इवात्र ।
पुष्पेक्षणैर्लम्भितलोचकैर्वा मधुव्रतव्रातवृतैर्व्रतत्यः ॥ ३५ ॥

अर्थ—इस रैवतक गिरि पर, वृक्षों (प्रियतम) के कँधो पर अपने नूतन पल्लव रूपी हाथो को रखे हुए एव भ्रमरो के समूहा से घिरे हुए होने के कारण मानो कज्जल लगाये हुए नेत्रो के समान पुष्पो से सुशोभित लताएँ रमणियो के समान दिखाई पड रही हे।

टिप्पणी—युवती स्त्रियाँ भी अपने प्रियतमो के कधो पर नूतन पल्लव के समान अपने हाथ को रखे रहती है। प्रसन्नता से उनके नेत्र पुष्पो के समान खिले रहते है। वे भी अपने नेत्रो म काजल लगाती है। इस छन्द म क्रियापद कोई नही है, अत ऊपर से—'दिखाई पड रही है'—इसका अध्याहार करना पडता है। वामन के कथनानुसार प्रसग के स्पष्ट होने पर क्रिया के अध्याहार करने म दोष नही माना जाता।

विहगाः कदम्बसुरभाविह गाः कलयन्त्यनुक्षणमनेकलयम् ।
भ्रमयन्नुपैति मुहुरभ्रमयं पवनश्च धूतनवनीपवनः ॥ ३६ ॥

अर्थ—कदम्ब के पुष्पो से सुगन्धित इस रैवतक गिरि पर पक्षीगण अनेक प्रकार के स्वरों म कूजते रहते हैं और नूतन कदम्ब के वन को कँपाने वाला यह वायु बारम्बार मेघों को कँपाता हुआ विचरण करता है।

टिप्पणी—प्रमिताक्षरा छन्द। प्रमिताक्षरा सजससैरुदिता।

विद्भिरागमपरैर्विवृतं कथंचि-
च्छ्रुत्वापि दुर्ग्रहमनिश्चितधीभिरन्यैः ।
श्रेयान् द्विजातिरिव हन्तुमघानि दक्षं
गूढार्थमेष निधिमन्त्रगणं बिभर्ति ॥ ३७ ॥

अर्थ—यह रैवतक गिरि श्रेष्ठ ब्राह्मण की भाँति, आगम परायण अर्थात् निधि की खोज में निरत रहनेवालों (ब्राह्मण पक्ष में, मन्त्र शास्त्र के साधनों और विधानों को जानने वालों) से किसी प्रकार प्रकाश में लाई गई तथा अन्य अनिश्चित बुद्धि वालों द्वारा सुनने पर भी (अर्थात् यहाँ निधि है अथवा यह मन्त्र है—ऐसा सुनकर भी) दुष्प्राप्य एवं दारिद्र्य (पापों) को नष्ट करने में समर्थ गूढ़ अर्थ वाली अर्थात् छिपे हुए धन वाली (पक्ष में, अप्रकट अर्थ वाले) निधियों को मन्त्र की भाँति (पक्ष में, मन्त्र को गुप्त निधि की भाँति) धारण किए हुए है।

टिप्पणी—अर्थात जिस प्रकार एक श्रेष्ठ विद्वान् ब्राह्मण अनेक गोपनीय मन्त्रों को जानता है, उसी प्रकार यह रैवतक भी अनेक प्रचुर धनराशि वाली निधियों को भीतर छिपाये हुए है। समासोक्ति अलंकार।

निम्बोष्ठं बहु मनुते तुरंगवक्त्र-
श्चुम्बन्तं मुखमिह किन्नरं प्रियायाः।
श्लिष्यन्तं मुहुरितरोऽपि तं निजस्त्री-
मुत्तुङ्गस्तनभरभङ्गभीरुमध्याम् ॥ ३८ ॥

अर्थ—इस रैवतक गिरि पर घोड़े के मुख के समान मुख वाला किन्नर (मनुष्य के समान मुख वाले किन्नर को) अपनी प्रियतमा के बिम्ब-फल के समान ओष्ठवाले मुख को चूमते हुए देखकर (स्वयं घोड़े जैसा मुख होने के कारण चुम्बन करने में असमर्थ होने से) बड़ा भाग्यशाली मानता है। किन्तु दूसरा (मनुष्य के समान मुख वाला) भी, उसे (घोड़े के समान मुख किन्तु मनुष्य के समान शरीर वाले किन्नर को) ऊँचे स्तनों के भार से झुकी हुई सुन्दर कटि प्रदेश वाली अपनी प्रिय, तमा को बारम्बार आलिंगन करते देखकर बड़ा भाग्यशाली मानता था।

टिप्पणी—किन्नर एक देवयोनि विशेष है जिनमें से कुछ का मुख घोड़े के समान और अंग मनुष्य के समान तथा कुछ का मुख मनुष्य के समान तथा अंग घोड़े के समान होता है। प्रहर्षिणी छन्द।

यदेतदस्यानुतटं विभाति वनं ततानेकतमालतालम्।
न पुष्पितात्र स्थगितार्करश्मावनन्तनाने कतमा लताऽलम् ॥३९॥

अर्थ--इस रैवतक पर्वत के तट-प्रान्तो में अनेक फैले हुए तमालों एवं ताल वृक्षों से युक्त यह आगे दिखाई पड़नेवाला जो वन शोभायमान हो रहा है, उस सूर्य की किरणों को रोकने वाले अपार विस्तार युक्त वन में कौन ऐसी लता है, जो अत्यन्त पुष्पित नहीं हुई है।

दन्तोज्ज्वलासु विमलोपलमेखलान्ताः
सद्रत्नचित्रकटकासु बृहन्नितम्बाः।
अस्मिन् भजन्ति घनकोमलगण्डशैला
नार्योऽनुरूपमधिवासमधित्यकासु ॥ ४० ॥

अर्थ—इस रैवतक पर्वत की 'दन्तों' अर्थात् निकुञ्जों से मनोहर (स्त्री पक्ष में, उज्ज्वल दांतों वाली) एवं मूल्यवान रत्नों से रंग-बिरंगी चोटियों वाली (पक्ष में, मूल्यवान रंग-बिरंगे रत्नो से निर्मित वलयवाली) अधित्यकाओं पर उज्ज्वल मणि की मेखला से सुशोभित (पर्वत पक्ष में, श्वेत शिलाओं वाली चोटियों से मनोहर) बृहत् नितम्ब (पक्ष में, बड-बडे शिखरों) एवं पुष्ट तथा चिकने कपोलवाली रमणियां अपने समान(पक्ष में, विस्तृत एवं कोमल बडे-बडे पत्थर के टुकडों वाले) स्थलों का सेवन करती हैं।

टिप्पणी—श्लेषात्थापित तुल्ययोगिता अलंकार।

अनतिचिरोज्झितस्य जलदेन चिर-
स्थितबहुबुद्बुदस्य पयसोऽनुकृतिम्।
विरलविकीर्णवज्रशकला सकला-
मिह विदधाति धौतकलधौतमही ॥ ४१ ॥

अर्थ—इस रैवतक गिरि पर इधर उधर अविरल रूप में छिटके हुए श्वेत हीरों के टुकडों से युक्त श्वेत वर्ण की रजतमयी भूमि मेघों द्वारा तत्काल बरसाये गये एवं बडी देर तक स्थिर रहने वाले बुदबुदों से युक्त जल का पूर्णतया अनुकरण करती है।

टिप्पणी—अतिशयोक्ति अलंकार। [illegible] छन्द। लक्षण — कुररीरुता नजभजला गुरु

वर्जयन्त्या जनैः संगमेकान्तत-
स्तर्कयन्त्या सुखं सङ्गमे कान्ततः ।
योषयैष स्मरासन्नतापाङ्गया
सेव्यतेऽनेकया संनतापाङ्गया ॥ ४२ ॥

अर्थ—यह रैवतक गिरि, एकान्त में प्रियतम के समागम में सुख की कल्पना से लोगों के साथ को छोड़ने वाली, कामदेव के ताप से सन्तप्त अंगों वाली अतएव नम्र अपाङ्गों वाली अनेक रमणियों से सेवित है।

टिप्पणी—अर्थात् इच्छानुरूप विहार करने के स्थलों से यह पर्वत भरा हुआ है। स्त्रग्विणी छन्द लक्षण—'रैश्चतुर्भिर्युता स्त्रग्विणी संमता'। यमक अलङ्कार।

संकीर्णकीचकवनस्खलितैकवाल-
विच्छेदकातरधियश्चलितुं चमर्यः ।
अस्मिन् मृदुश्वसनगर्भतदीयरन्ध्र-
निर्यत्स्वनश्रुतिसुखादिव नोत्सहन्ते ॥ ४३ ॥

अर्थ—इस रैवतक गिरि पर सघन बाँसों के वन में पूँछ के एक बाल के गिर जाने से व्याकुल बुद्धि वाली चमरी गौएँ, मानों कोमल वायु के झोंकें के अन्तःप्रविष्ट होने के कारण उनमें (बाँसों से)[1] निकलने वाले सुमधुर स्वर के सुनने में होने वाले आनन्द से आगे चलने की इच्छा नहीं करती हैं।

टिप्पणी—चमरी गाएँ अपने बालों पर बड़ा प्यार करती हैं, वे मरण पर्यन्त अपने बालों की रक्षा करती हैं। उत्प्रेक्षा अलङ्कार।

मुक्तं मुक्तागौरमिह क्षीरमिवाभ्रै-
र्वापीष्वन्तर्लीनमहानीलदलासु ।
शस्त्रीश्यामैरंशुभिराशु द्रुतमम्भ-
श्छायामच्छामृच्छति नीलीसलिलस्य ॥ ४४ ॥

अर्थ—इस रैवतक गिरि पर भीतर इन्द्रनील मणि की शिलाओं से युक्त बावलियों में, मेघों से बरसाया गया मुक्ता के समान निर्मल अतएव क्षीर की भाँति श्वेत जल, छुरी की भांति श्यामल (भीतर स्थित इन्द्रनील मणि की) किरणों से तुरन्त गिरते ही नील मिश्रित जल की शोभा को प्राप्त करता है।

टिप्पणी—निदर्शना और व्यतिरेक का संकर। मत्तमयूर छंद। लक्षण—वेदैरन्ध्रैर्म्तौ यसगा मत्तमयूरम्।

या न ययौ प्रियमन्यवधूभ्यः सारतरागमना यतमानम्।
तेन सहेह बिभर्ति रहः स्त्री सा रतरागमनायतमानम्॥४५॥

अर्थ—इस रैवतक गिरि पर दूसरी स्त्रियों की अपेक्षा समागम करने में श्रेष्ठ जो रमणी प्रार्थना करने पर भी अपने प्रियतम के साथ नहीं जाती थी वही (रमणी) एकान्त में अपने उसी प्रेमी के साथ थोड़ी देर तक मान करने के बाद स्वयमेव रमण की अभिलाषिणी बन जाती है।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि रैवतक अत्यन्त मान करने वाली रमणियों को भी उद्दीप्त कर देने वाला है। दोधक छंद। लक्षण—दोधकवृत्तमिदं भभभाद् गौ। यमक अलंकार।

भिन्नेषु रत्नकिरणैः किरणेष्विहेन्दो-
रुच्चावचैरुपगतेषु सहस्रसंख्याम्।
दोषापि नूनमहिमांशुरसौ किलेति
व्याकोशकोकनदतां दधते नलिन्यः॥ ४६॥

अर्थ—इस रैवतक गिरि पर चन्द्रमा की किरण के, अनेक प्रकार के रत्नों की किरणों से मिश्रित होने के कारण सहस्रों की संख्या में हो जाने पर कमलिनियाँ निश्चय ही यह सूर्य हैं—ऐसा मान कर रात्रि में भी विकसित-कमल-पुष्पों वाली बन जाती हैं।

टिप्पणी—अतिशयोक्ति अलंकार से भ्रान्तिमान अलंकार की व्यंजना।

अपशङ्कमङ्कपरिवर्तनोचिताश्चलिताः पुरः पतिमुपैतुमात्मजाः ।
अनुरोदितीव करुणेन पत्रिणां विरुतेन वत्सलतयैष निम्नगाः॥४७

अर्थ—नि शङ्क होकर गोद मे लोट-लोट कर खेलने मे अभ्यस्त और अब अपने पति (समुद्र) से मिलने के लिए आगे की ओर चलती हुई अपनी पुत्री नदियों के लिए यह रैवतक मानो वात्सल्य वश होकर पक्षियों के करुण स्वर मे पीछे से रो रहा है।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलङ्कार ।

मधुकरविटपानमितास्तरुपङ्क्तीर्बिभ्रतोऽस्य विटपानमिताः ।
परिपाकपिशङ्गलतारजसा रोधश्चकास्ति कपिशं गलता ॥ ४८ ॥

अर्थ—मधुकर रूपी विटो (लम्पट और कामुक युवको) द्वारा पान की जाती हुई विस्तृत शाखाओं क भार से नीचे की ओर झुकी हुई वृक्षो की पंक्तियों को धारण करने वाले इस रैवतक पर्वत का कटि (तट) प्रान्त,पकने के कारण भूरे पत्ते वाली लताओ की गिरती हुई पुष्परेणु स भूरे वर्ण का हो रहा है।

टिप्पणी—रूपक अथवा अष्टगणा आर्यागीति छन्द ।

प्राग्भागतः पतदिहेदमुपत्यकासु
शृङ्गारितायतमहेभकराभमम्भः ।
संलक्ष्यते विविधरत्नकरानुविद्ध
मूर्ध्वप्रसारितसुराधिपचापचारु ॥ ४९ ॥

अर्थ—इस रैवतक पर्वत पर ऊपरी भाग स नीचे की ओर गिरता हुआ (सिन्दूरादि आभूषणों के), शृंगार से सुशोभित विशाल गजराज के शुण्ड की भाँति आभायुक्त एव विविध प्रकार के रत्नो की किरणों से अनुरंजित यह जल प्रवाह ऊपर की ओर फैले हुए इन्द्रधनुष की भाँति सुशोभित दिखाई पड रहा है।

टिप्पणी—उपमा अलङ्कार । वसन्ततिलका छन्द ।

दधति च विकसद्विचित्रकल्प-
द्रुमकुसुमैरभिगुम्फितानिवैताः ।
क्षणमलघुविलम्बिपिच्छदाम्नः
शिखरशिखाः शिखिशेखरानमुष्य ॥ ५० ॥

अर्थ—और भी, इस रैवतक गिरि की शिखर-रूपी शिखाएँ, नाना वर्ण के विकसित कल्पद्रुम के कुसुमों से गूथी हुई की भाँति ऐसी मालूम पड़ रही हैं मानों लंबी-लंबी फैली हुई पिच्छ रूपी मालाओं को धारण करने वाले मयूरों की शिखाओं को क्षण भर के लिए धारण किए हुए हैं।

टिप्पणी—रूपक और उत्प्रेक्षा का सकर। पुष्पिताग्रा छन्द।

सवधूकाः सुखिनोऽस्मिन्ननवरतममन्दरागतामरसदृशः ।
नासेवन्ते रसवन्न नवरतममन्दरागतामरसदृशः ॥ ५१ ॥

अर्थ—इस रैवतक पर्वत पर अत्यन्त श्रेष्ठतम, मन्दराचल से आए हुए देवताओं के समान परम सुन्दर, अत्यन्त रक्तवर्ण के कमल की भाँति लाल-लाल नेत्रों वाले विलासी पुरुष अपनी रमणियों के साथ अनुराग पूर्वक नूतन रति नहीं करते, ऐसा नहीं (किन्तु करते ही हैं।)

टिप्पणी—उपमा अलकार। आर्यागीति छन्द।

आच्छाद्य पुष्पपटमेष महान्तमन्त-
रावर्तिभिर्गृहकपोतशिरोधराभैः ।
स्वाङ्गानि धूमरुचिमागुरवीं दधानै-
र्धूपायतीव पटलैर्नवनीरदानाम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—यह रैवतक गिरि अत्यन्त विस्तृत पुष्प-रूपी वस्त्र को ओढ़-कर, भीतर (वस्त्र के भीतर इधर-उधर) निरन्तर भ्रमण करने वाले, पालतू कबूतरों के कण्ठ की (कान्ति की) तरह कान्तिमान एवं अगुरु के धूम की कान्ति को धारण करने वाले नवीन बादलों के समूहों से मानों अपने अंगों को धूप (सुगंधित द्रव्य का धूम) का सेवन करा रहा है।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा रूपक और निदर्शना का सङ्कर। वसन्ततिलका छन्द।

अन्योन्यव्यतिकरचारुभिर्विचित्रै
रत्रस्यन्नवमणिजन्मभिर्मयूखैः।
विस्मेरान् गगनसदः करोत्यमुष्मि
न्नाकाशे रचितमभित्ति चित्रकर्म ॥ ५३ ॥

अर्थ—इस रैवतक पर्वत पर एक दूसरे के मिश्रण से सुन्दर विविध वर्णों की एवं त्रास नामक (मणि का दोष विशेष) दोष से रहित नूतन मणियों से उत्पन्न किरणों के समूहों से आकाश में रचित, आधार रहित चित्रकर्म आकाशगामी (जीवों) को विस्मय में डाल देता था।

टिप्पणी—भ्रान्तिमान और विभावना अलंकार का सङ्कर। प्रहर्षिणी छन्द।

समीरशिशिरः शिरःसु वसतां
सतां जवनिका निकामसुखिनाम्।
बिभर्ति जनयन्नयं मुदमपा
मपायधवला वलाहकततीः ॥ ५४ ॥

अर्थ—वायु से शीतल एवं शिखरों पर निवास करने वाले अत्यन्त सुखी पुण्यवान लोगों में आनन्द उत्पन्न करने वाला यह रैवतक गिरि, जलरहित (होने के कारण) श्वेत बादलों की पंक्ति रूपी जवनिका (पर्दा) को धारण किए हुए है।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि रैवतक के ऊँचे-ऊँचे शिखर सर्वदा वायु से शीतल रहते हैं और बादलों की छाया से आवृत होने के कारण विलासियों को आनन्द पहुँचाते हैं। परिणाम अलंकार। जलोद्धतगति छन्द। लक्षण—रसै जसजसा जलोद्धतगति।

मैत्र्यादिचित्तपरिकर्मविदो विधाय
क्लेशप्रहाणमिह लब्धसबीजयोगाः।

ख्यातिं च सत्त्वपुरुषान्यतयाधिगम्य
वाञ्छन्ति तामपि समाधिभृतो निरोद्धुम् ॥५५॥

अर्थ—इस रैवतक गिरि पर समाधि धारण करने वाले योगी जन मैत्री आदि चित्त की शोधक वृत्तियों को जानकर, क्लेशों को दूर कर, बीज युक्त योग को प्राप्त कर एवं प्रकृति और पुरुष की ख्याति (ज्ञान) को पृथक-पृथक भिन्न रूप में जान कर उस ख्याति को भी दूर करने की अभिलाषा करते हैं।

टिप्पणी—मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा—ये चार चित्त की शोधक वृत्तियाँ हैं। पुण्यकर्ताओं के लिए मैत्री, दुखियों के लिए करुणा, सुखियों के लिए मुदिता अर्थात् उनका अनुमोदन एवं पापियों के लिए उपेक्षा वृत्ति है। क्लेश पाँच हैं—"अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्च क्लेशाः"। अनित्य वस्तुओं में नित्यता का बोध अविद्या है, जैसे नश्वर शरीर में आत्मबुद्धि का भान। अहङ्कार का नाम अस्मिता है। अभिमत विषयों में अभिलाषा राग है। अनभिमत विषयों में क्रोध द्वेष है। कार्य और अकार्य में आग्रह अभिनिवेश है। ये पाँच क्लेश के कारण हैं। प्रकृति और पुरुष के विवेक को न जानने से संसार में भटकना पड़ता है और जो इनके पार्थक्य को जान लेते हैं उन्हें मोक्ष प्राप्ति हो जाती है। तात्पर्य यह है कि यह रैवतक केवल भोग विलास की ही भूमि नहीं है, प्रत्युत मोक्ष-प्राप्ति की भी भूमि है।

मरकतमयमेदिनीषु भानो-
स्तरुविटपान्तरपातिनो मयूखाः।
अवनतशितिकण्ठकण्ठलक्ष्मी-
मिह दधति स्फुरिताणुरेणुजालाः ॥५६॥

अर्थ—इस रैवतक गिरि की मरकत मणि मयी भूमि पर, वृक्षों के पल्लवों के मध्यभाग से छन कर नीचे आनेवाली अतएव धूल के सूक्ष्म कणों को स्फुरित करने वाली सूर्य की किरणें नीचे मुख किए हुए मयूर के कण्ठ की शोभा को धारण करती हैं।

टिप्पणी—निदर्शना अलङ्कार। पुष्पिताग्रा छन्द।

या बिभर्ति कलवल्लकीगुणस्वानमानमतिकालिमाऽलया ।
नात्र कान्तमुपगीतया तया स्वानमा नमति काऽलिमालया ॥५७॥

अर्थ—इस रैवतक गिरि पर अतिशय कृष्णवर्ण की घूमती हुई जो भ्रमर-पंक्ति है, वह वीणा के तारों के सुमधुर शब्दों की समानता प्राप्त करती है। समीप में गान करती हुई उस भ्रमरपंक्ति से सुखपूर्वक आकर्षित करने योग्य कौन कामिनी अपने प्रियतम के प्रति नहीं विनम्र हो जाती (प्रत्युत सभी हो जाती है।)।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि यह रैवतक इतना कामोद्दीपक है कि सभी सुन्दरियाँ अपना मान छोड़ कर प्रियतम को शीघ्र ही प्रणाम करती है। रथोद्धता छन्द। लक्षण—'रा नराविह रथोद्धता लगौ।

मार्गशशाङ्ककिरणाहतचन्द्रकान्त-
निस्यन्दिनीरनिकरेण कृताभिषेकाः ।
अर्कोपलोल्लसितवह्निभिरह्नितप्ता-
स्तीव्रं महाव्रतमिवात्र चरन्ति वप्राः ॥५८॥

अर्थ—इस रैवतक गिरि के तट रात्रि में चन्द्रमा की किरणों से आहत हो कर चन्द्रकान्त मणि से निकले हुए जल-प्रवाह से स्नान कर और दिन में सूर्यकान्त मणि से निकली हुई अग्नि से सतप्त होकर मानों अत्यन्त कठोर महान व्रत का पालन करते हैं।

टिप्पणी—स्नान कर के अग्नि सेवा का व्रत तापसी लोग भी करते हैं। उपमा अलंकार।

एतस्मिन्नधिकपयःश्रियं वहन्त्यः
संक्षोभं पवनभुवा जवेन नीताः ।
वाल्मीकेरहितसामलक्ष्मणोक्ता
धर्मं दधति गिरां महासरस्यः ॥ ५९ ॥

अर्थ--इस रैवतक पर्वत में अधिक जल की समृद्धि (रामायण में, सुग्रीवादि कपियों के अधिक वर्णन एवं गुण अलंकार) को धारण करनेवाले, वायुजनित वेग से क्षुब्ध किए गए (पक्ष में, वेगशाली पवन पुत्र हनुमान के वर्णनों द्वारा औद्धत्य को प्राप्त) महान् सरोवर, राम लक्ष्मण की कथा से युक्त (सरोवर पक्ष में, अपने पतियों से युक्त सारसियों वाले) आदिकवि वाल्मीकि की वाणी रामायण की समानता को धारण करते हैं।

टिप्पणी—पवनभुवाजवेन इस वाक्य में अभंग अर्थ श्लेष तथा अन्य नाना पदों में पद भंग द्वारा दो अर्थों की प्रतीति के कारण शब्दश्लेष अलंकार है। उपमा अलंकार भी है। प्रहर्षिणी छन्द।

इह मुहुर्मुदितैः कलभै रवः
प्रतिदिशं क्रियते कलभैरवः।
स्फुरति चानुवनं चमरीचयः
कनकरत्नभुवां च मरीचयः ॥ ६० ॥

अर्थ—इस रैवतक पर्वत पर सुप्रसन्न हाथियों के बच्चे प्रत्येक दिशा में सुमधुर किन्तु भीषण चीत्कार करते हैं और प्रत्येक वन में चमरी गौओं के समूह विचरण करते हैं तथा सुवर्णमयी भूमि की किरणें चमकती रहती हैं।

टिप्पणी—उदात्त और यमक अलंकार। द्रुतविलम्बित छन्द।

त्वक्सारन्ध्रपरिपूरणलब्धगीति-
रस्मिन्नसौ मृदितपक्ष्मलरल्लकाङ्गः।
कस्तूरिकामृगविमर्दसुगन्धिरेति
रागीव सक्तिमधिकां विषयेषु वायुः ॥ ६१ ॥

अर्थ—इस रैवतक पर्वत पर बांसा के छिद्रों की स्वयं पूर्ति पर उनके बजने से गायन सुख का अनुभव करनेवाली, मुलायम बालों वाले रल्लक मृगों के अंगों को स्पर्श करनेवाली तथा कस्तूरी मृग के संघर्षण

से सुगन्धित वायु कामी पुरुषों की भाँति इसके प्रदेशों के विषयों में अधिक आसक्ति प्राप्त करती है।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु इस गिरि में सदा बहती रहती है। जिस प्रकार विषयी पुरुष शब्द, स्पर्श रूप, रस, गन्ध आदि विषयों में विशेष आसक्ति रखता है उसी प्रकार वशीवादन, रल्लक मृगों के अंगों के मृदु कोमल स्पर्श एवं कस्तूरी की सुगन्धि की आसक्ति वायु को भी है। उपमा अलंकार। वसन्ततिलका छन्द।

प्रीत्यै यूनां व्यवहिततपनाः
प्रौढध्वान्तं दिनमिह जलदाः।
दोषामन्यं विदधति सुरत-
क्रीडायामश्रमशमपटवः॥ ६२॥

अर्थ—इस रैवतक पर्वत पर युवकों और युवतियों की प्रसन्नता के लिए सूर्य को ढक देने वाले, सुरत क्रीडा के श्रम को शान्त करने में निपुण मेघों के समूह गाढ अन्धकार वाले दिन को अपने को रात्रि के समान मानने वाला बना देते हैं।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि मेघों से सूर्य के ढक जाने पर दिन स्वयं अपने को गाढ अन्धकार युक्त होने के कारण रात्रि मानने लगता है। इसमें युवक और युवतियाँ रात्रि की भाँति दिन में ही सुरत क्रीडा करती हैं। भ्रमर विलसित छन्द। लक्षण—"म्भौ न्लौ ग स्याद्भ्रमरविलसितम्।"

भग्नो निवासोऽयमिहास्य पुष्पैः
सदानतो येन विषाणिनाऽगः।
तीव्राणि तेनोज्झति कोपितोऽसौ
सदानतोयेन विषाणि नागः॥ ६३॥

अर्थ—इस रैवतक पर्वत पर इस सर्प का निवास-स्थल सदा पुष्पों (के भार) से नम्र रहने वाले इस वृक्ष को मदमस्त हाथी ने तोड़ दिया है

जिससे अत्यन्त कोप युक्त होकर यह सर्प तीव्र विष का वमन कर रहा है।

टिप्पणी—हाथी का प्रतीकार करने में असमर्थ सर्प अपने ही आश्रय का विष से जला रहा है। दुर्बल अपकारी का कुछ न बिगाड पाने पर अपना ही सिर पीटता है। यमक अलंकार। उपजाति छन्द।

प्रालेयशीतमचलेश्वरमीश्वरोऽपि
सान्द्रेभचर्मवसनावरणोऽधिशेते।
सर्वर्तुनिर्वृतिकरे निवसन्नुपैति
न द्वन्द्वदुःखमिह किञ्चिदकिञ्चनोऽपि ॥ ६४ ॥

अर्थ—सर्वशक्तिमान् ईश्वर (शिव) भी अत्यन्त मोटे गज चर्म को ओढकर ही हिमालय पर्वत पर शयन करते हैं किन्तु सर्वदा सुख देने वाले इस रैवतक पर्वत [पर निवास करने वाला अकिंचन पुरुष भी तनिक भी शीत या गर्मी का दु ख नहीं उठाता।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि सभी ऋतुओं के निरन्तर सहयोग के कारण न तो यहा शीत की अधिकता है न गर्मी की। व्यतिरेक अलंकार। वसन्त-तिलका छन्द।

नवनगवनलेखाश्याममध्याभिराभिः
स्फटिककटकभूमिर्नाटयत्येष शैलः।
अहिपरिकरभाजो भास्मनैरङ्गरागै-
रधिगतधवलिम्नः शूलपाणेरभिख्याम् ॥ ६५ ॥

अर्थ—यह रैवतक पर्वत नूतन वृक्षों के वन की पंक्तियों से श्यामल वर्ण की मध्यभाग वाली इन स्फटिकमय तटवर्ती भूमियों से, वासुकि रूपी परिकर को कटि प्रदेश में बाँधे हुए तथा समूचे शरीर पर भस्म लपेटने के कारण धवलता को प्राप्त त्रिशूलपाणि शंकर भगवान की शोभा का अनुकरण कर रहा है।

टिप्पणी—निदर्शना अलंकार। मालिनी छन्द। लक्षण—'ननमयययुतेय मालिनी भोगिलोकैः।"

दधद्भिरभितस्तटौ विकचवारिजाम्बू नदै-
विनोदितदिनक्लमाः कृतरुचश्च जाम्बूनदैः ।
निपेव्य मधु माधवाः सरसमत्र कादम्बरं
हरन्ति रतये रहः प्रियतमाङ्गकादम्बरम् ॥६६॥

अर्थ—इस रैवतक पर्वत पर विकसित कमलों से युक्त जल वाले दो तटों को धारण करने वाली नदियों से जिनके दिन का परिश्रम दूर कर दिया गया है एवं सुवर्ण के आभूषणों से जिनकी शोभा बहुत बढ़ गयी है—ऐसे यादव गण स्वादुयुक्त इक्षु के मद्य को पीकर रति के लिए एकान्त मे अपनी प्रियतमाओं के अंगों से वस्त्र का अपहरण कर रहे हैं ।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि यादव गण इस रैवतक पर्वत पर निदाक विहार कर रहे है । पृथ्वी छन्द । लक्षण—'जसौ जसयलावसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरु ।'

दर्पणनिर्मलासु पतिते घनतिमिरमुषि
ज्योतिषि रौप्यभित्तिषु पुरः प्रतिफलति मुहुः ।
व्रीडमसंमुखोऽपि रमयत्यपहृतवसनाः
काञ्चनकंदरासु तरुणीरिह नयति रविः ॥६७॥

अर्थ—इस रैवतक पर्वत मे सूर्य, दर्पण की भाँति निर्मल अग्रवर्ती रजतमयी भित्तियों पर गिरती हुई, घने अन्धकार को दूर करने वाली अपनी किरणों के सुवर्णमयी कन्दराओं मे बारम्बार प्रति फलित होने के कारण, अपने प्रियतमों द्वारा निर्वस्त्र की गई तरुणियों को, सम्मुखस्थ न होते हुए भी अर्थात् परोक्ष मे रह कर भी लज्जित करता है ।

टिप्पणी—रमणियां सुवर्णमयी कन्दराओं में क्रीडा के लिए प्रियतम के साथ जब प्रवेश करती थीं तो प्रियतम अवसर समझ कर उनका वस्त्र खींच कर उन्हें नग्न कर देते थे, किन्तु कन्दरा के सम्मुख रजतमयी भित्ति पर सूर्य की किरणें जब पड़ती थीं तब उनका प्रतिबिम्ब कन्दराओं में भी प्रतिफलित हो कर प्रकाश कर देता था जिससे इस प्रकार आकस्मिक रूप से प्रकाश हो जाने पर वे रमणियां लज्जित

होजाना था। अतिशयोक्ति अलंकार। वंशपत्रपतित छन्द। लक्षण — दिङमुनि वंशपत्रपतितं भरभनलगैः।

अनुकृतशिखरौघश्रीभिरभ्यागतेऽम्भो
त्वयि सरभसमभ्युत्तिष्ठतीवाद्रिरुच्चैः।
द्रुतमरुदुपनुन्नैरुन्नमद्भिः महेल
हलधरपरिधानश्यामलैरम्बुवाहैः ॥६८॥

अर्थ—यह रैवतक पर्वत अभ्यागत रूप में तुम्हारे (श्रीकृष्ण के) यहाँ पधारने पर अपने शिखरों की शोभा का अनुकरण करनेवाले, शीघ्रगामी वायु द्वारा प्रेरित होने के कारण लीलापूर्वक, बलराम के वस्त्र की भाँति श्यामल एवं ऊँचे उठे हुए बादलों द्वारा उत्सुकता के साथ मानों (अगवानी के लिए) अभ्युत्थान सा कर रहा है।

टिप्पणी—चिर काल बाद मित्र हितैषी या गुरु जन के समागमन पर लोग उत्साहपूर्वक उठ कर खड़े हो जाते हैं। आकाश में ऊपर छाए हुए बादलों की कवि उत्प्रेक्षा कर रहा है मानो स्वयं रैवतक ही उठ कर भगवान के प्रति अपना आदर प्रकट करने के लिए अभ्युत्थान कर रहा है। निदर्शना से अनुप्राणित भ्रांतिमान एवं उत्प्रेक्षा का संकर अर्थालंकार। वृत्यनुप्रास शब्दालंकार। मालिनी छन्द।

श्री माघकवि कृत शिशुपालवध नामक महाकाव्य में रैवतक वर्णन नामक चतुर्थ सर्ग समाप्त।

———

पाँचवाँ सर्ग

इत्थं गिरः प्रियतमा इव सोऽव्यलीकाः
शुश्राव सूततनयस्य तदा व्यलीकाः ।
रन्तुं निरन्तरमियेष ततोऽवसाने
तासां गिरौ च वनराजिपटं वसाने ॥ १ ॥

अर्थ—उस समय भगवान् श्रीकृष्ण ने इस प्रकार मन को प्रिय लगने वाली प्रियतमा की भाँति, सूतपुत्र दारुक की असत्यता रहित अर्थात् सत्य वाणी सुनी और तब (वाणी के समाप्त होने पर) सघन वन-पंक्ति-रूपी वस्त्र से ढँके हुए रैवतक पर्वत पर उन्होंने क्रीडा करने की इच्छा की।

टिप्पणी—अर्थात् दारुक की उपर्युक्त बातें सुनने के अनन्तर भगवान् ने रैवतक पर कुछ समय तक रुककर निवास करने की इच्छा की। उपमा और यमक की संसृष्टि। इस सर्ग में वसन्ततिलका छन्द है।

तं स द्विपेन्द्रतुलितातुलतुङ्गशृङ्ग-
मभ्युल्लसत्कदलिकावनराजिमुच्चैः ।
विस्तारुद्धवसुधोऽन्वचलं चचाल
लक्ष्मीं दधत्प्रतिगिरेरलघुर्बलौघः ॥ २ ॥

अर्थ—वन की पंक्तियों के समान ध्वजा एवं पताकाओं से सुशोभित, उन्नत, विस्तार से वसुधा को व्याप्त करनेवाले एवं स्वयं एक अन्य प्रतियोगी पर्वत की शोभा को धारण करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण के विशाल सैन्य-समूह ने अपने श्रेष्ठ हाथियों से

जिसके अनुपम एव उच्च शिखरों का अनुकरण किया जा रहा था, एव जो कदलीवन् की पक्तियो से सुशोभित था—ऐसे रैवतक पर्वत की ओर प्रस्थान किया।

टिप्पणी—निदर्शना, उत्प्रेक्षा एव श्लेष का सकर।

भास्वत्करव्यतिकरोल्लसिताम्बरान्ताः
मापत्रपा इव महाजनदर्शनेन।
संविव्युरम्बरविकाशि चमूसमुत्थं
पृथ्वीरजः करभकण्ठकडारमाशाः ॥ ३ ॥

अर्थ—सूर्य की किरणो के ससर्ग से आकाश-मण्डल को प्रकाशित करनेवाली, (पक्ष मे, सुन्दर पुरुष के हाथ के स्पर्श से जिसके वस्त्र का अचल गिर गया है—ऐसी स्त्रियों ने, दिशाओं ने, मानों महापुरुष (श्रीकृष्ण भगवान्, पक्ष मे गुरुजन) के दर्शन से लज्जित-सी होकर, आकाशव्यापी एव सेना से उठी हुई ऊट के बच्चे के कण्ठ की भाँति भूरे रग की पृथ्वी की धूल से अपने को आच्छादित कर लिया।

टिप्पणी—स्त्रियाँ भी गुरुजनो के सम्मुख वस्त्र के अचल के गिर जाने पर जो ही वस्तु सामने मिल जाती है, उसी मे अपना तन ढँक लेती है। उत्प्रेक्षा से अनुप्राणित समासोक्ति अलकार।

आवर्तिनः शुभफलप्रदशुक्तियुक्ताः
संपन्नदेवमणयो भृतरन्ध्रभागाः।
अश्वाः प्यधुर्वसुमतीमतिरोचमाना-
स्तूर्णं पयोधय इवोर्मिभिरापतन्तः ॥ ४ ॥

अर्थ—आवर्त्त अर्थात् दस रोम की भवरों से सुशोभित (समुद्र पक्ष मे, जल की बड़ी-बड़ी भँवरों वाले) राज्य आदि शुभ फल देने वाली शुक्तियों अर्थात् घोडो के अगो पर सुतुही के समान लक्षण विशेष से युक्त (पक्ष मे, मोती का फल देने वाली सुतुहियो से समन्वित) देवमणि अर्थात् ग्रयाल भाग मे विशेष भवरी वाले (पक्ष मे, कौस्तुभ आदि दिव्य मणियों को पैदा करने वाले) (सेना के) पार्श्व भाग को भरने

वाले अथवा निम्न प्रदेश मे मासल अगो वाले (पक्ष मे, निचले स्थानों में जल से भरे हुए) अत्यन्त सुशोभित अथवा विस्तृत कण्ठावर्त वाले (पक्ष मे, अत्यन्त सुशोभित), एव अपनी सरपट की चाल से (पक्ष मे, लहरों से) दौडते हुए (सेना के) घोडों ने समुद्र की भाति वसुधा को एक दम से छा लिया।

टिप्पणी—अर्थश्लेष और उपमा का सकर।

> आरुग्णमग्रमरमत्य सृणिं शिताग्र
> मेकःपलायत जवेन कृतार्तनादः ।
> अन्यः पुनर्मुहुरुदप्लवतास्तभार-
> मन्योन्यतः पथि बतानिभितामिभोष्ट्रौ ।। ५ ।।

अर्थ—मार्ग मे (चलते हुए) हाथी और ऊँट एक दूसरे से डर रहे थे यह बडे विस्मय की बात थी। (कैसे डर रहे थे वे—)एक हाथी कुम्भ-स्थल के नीचे तक धसे हुए अकुश को कुछ न समझ कर अत्यन्त करुण क्रन्दन करते हुए जोर से भाग रहा था और उधर एक ऊँट अपने बोझे को गिरा कर बार-बार उछल कूद मचा रहा था।

टिप्पणी—स्वभावोक्ति अलकार।

> आयस्तमैक्षत जनश्चटुलाग्रपादं
> गच्छन्तमुच्चलितचामरचारुमश्वम् ।
> नागं पुनर्मृदु सलीलनिमीलिताक्ष
> सर्वः प्रियः खलु भवत्यनुरूपचेष्टः ।। ६ ।।

अर्थ—लोग अगले पैरो को चचलता से आगे बढाते हुए द्रुतगति से चलने वाले अर्थात् वेग से दौडनेवाले उन घोडों को देखते थे, जिनकी अति चचल पूँछें इधर-उधर झूलते हुए चवर की भाँति सुन्दर मालूम पड रही थीं और फिर उन हाथियो को देखते थे जो आँखों को अधमुँदी किए हुए मन्द गति से चल रहे थे। (इस प्रकार अत्यन्त तेज और अति-मन्द गति पर तुल्य दृष्टि कैसे—अत कवि बतला रहा है—) सभी प्राणी अपनी जाति के अनुरूप काम करते हुए प्रीति के भाजन होते ही है।

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलङ्कार।

त्रस्तः समस्तजनहासकरः करेणो-
स्तावत्खरः प्रखरमुल्ललयांचकार।
यावच्चलासनविलोलनितम्बबिम्ब-
विस्रस्तवस्त्रमवरोधवधूः पपात ॥ ७ ॥

अर्थ—हथिनी से डरा हुआ गदहा सभी लोगों को हँसाते हुए (जाति स्वभाव वश) तब तक अत्यन्त उछल कूद मचाता रहा। जब तक उसके ऊपर की काठी के गिर जाने के कारण उस पर बैठी हुई अन्त पुर अर्थात् रनवाँस की दासी गिर गई और उसके नितम्ब भाग से उसका वस्त्र हट गया।

टिप्पणी—स्वभावोक्ति अलङ्कार।

शैलोपशल्यनिपतद्रथनेमिधारा-
निष्पिष्टनिष्ठुरशिलातलचूर्णगर्भाः।
भूरेणवो नभसि नद्धपयोदचक्रा
श्चक्रीवदङ्गरुहधूम्ररुचो विसस्रुः ॥ ८ ॥

अर्थ—रैवतक पर्वत के समीपवर्ती प्रान्तों में दौड़ते हुए रथों के चक्कों की लीक से पिसे हुए कठोर शिलातल के चूर्ण से युक्त, मेघ-मण्डल के समान ऊपर फैली हुई, गदहे की रोमावली की भाँति धूमिल वर्ण की पृथ्वी की धूल चारों ओर से फैल गयी।

उद्यत्कृशानुशकलेषु खुराभिघाता
द्भूमीसमायतशिलाफलकाचितेषु।
पर्यन्तवर्त्मसु विचक्रमिरे महाश्वाः
शैलस्य दर्दुरपुटानिव वादयन्तः ॥ ९ ॥

अर्थ—खुरों की चोट से उठती हुई आग की चिनगारियों वाली समतल भूमि पर पड़ी हुई विशाल शिलाओं से व्याप्त, पर्वत की

समीपवर्ती सडकों पर (सेना के) बडे-बडे घोडे मानों डुगडुगी सी बजाते हुए चलने लगे।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलंकार।

तेजोनिरोधसमतावहितेन यन्त्रा
सम्यक्कशात्रयविचारवता नियुक्तः।
आरट्टजश्चटुलनिष्ठुरपातमुच्चै-
श्चित्रं चकार पदमर्धपुलायितेन ॥ १० ॥

अर्थ—वेग को रोकने वाली लगाम को थामने में सावधान तीनों प्रकार की (उत्तम, मध्यम और अधम) चाबुकों के प्रयोग जानने वाले घुडसवारों से भली भाँति हाँके गए ऊँचे आरट्ट (अरब) देश में उत्पन्न घोडे अपने विचित्र पाद-विक्षेप द्वारा कभी चंचल और कभी कठोर भाव से, मण्डलाकार गति-विशेष से चल रहे थे।

टिप्पणी—इस स्थान में घोडे की गति एवं चाबुक के लक्षणों का शास्त्रीय ज्ञान वर्णित है। घोडे को तीन प्रकार की चाबुकें लगायी जाती है। कभी कठोर, कभी साधारण और कभी बहुत साधारण। इनके अनुसार उनकी गति भी कभी अत्यन्त वेग पूर्वक, कभी मध्यम और कभी अति साधारण होती है। घोडे के वेग को रोकने वाला लगाम होती है। भगवान् श्रीकृष्ण की सेना के घुडसवार अश्वशास्त्र की इन सभी बातों के विशेषज्ञ थे। घोडे अरबी थे। वे विचित्र ढंग से कभी चंचल और कभी गंभीर पाद-क्षेप करने लगे।

नीहारजालमलिनः पुनरुक्तसान्द्राः
कुर्वन्वधूजनविलोचनपक्ष्ममालाः।
क्षुण्णः क्षणं यदुबलैर्दिवमाततान
पांशुर्दिशां मुखमतुच्छयदच्छितोऽद्रेः ॥ ११ ॥

अर्थ—हिम (पाले) के कणों की भाँति मलिन, (सेना की) वधुओं के नेत्रों की बरौनियों को द्विगुणित सघन करनेवाली, यादवों की सेना से पिस कर (रैवतक) पर्वत से उठी हुई, आकाश को व्याप्त करने की इच्छुक धूल ने दिशाओं के मुख को क्षण भर में आच्छादित कर लिया।

उच्छिद्य विद्विष इव प्रसभं मृगेन्द्रा-
निन्द्रानुजानुचरभूपतयोऽध्यवात्सुः ।
वन्येभमस्तकनिखातनखाग्रमुक्त-
मुक्ताफलप्रकरभाञ्जि गुहागृहाणि ॥१२॥

अर्थ—इन्द्र के अनुज (भगवान श्रीकृष्ण) के अनुचर राजाओं ने, शत्रुओं की भाँति सिंहों को बलपूर्वक मार कर, वनगजों के मस्तकों को नखों के अग्रभाग से फाड़कर निकाली गयी गजमुक्ताओं की राशि से युक्त गुफाओं के घरों को अपना आवास बना लिया।

टिप्पणी—राजाओं के शत्रुओं के घरों में भी मोतियों की राशि होती है।

बिभ्राणया बहलयावकपङ्कपिङ्ग-
पिच्छावचूडमनुमाधवधाम जग्मुः ।
चञ्च्वग्रदष्टचटुलाहिपताकयान्ये
स्वावासमाशमुरगाशनकेतुयष्ट्या ॥१३॥

अर्थ—दूसरे नृपतिगण सघन आलते के रङ्ग की भाँति हरित वर्ण के गरुड की पूँछ-रूपी चामर को धारण करने वाले, चोंच के अग्र-भाग से पकड़े हुए चचल सर्प-रूपी पताका से युक्त, सर्प भक्षी गरुड के ऊपर अधिष्ठित ध्वज-दण्ड की पहचान से हरि के निवास स्थान के समीप अपने-अपने आवास-स्थान को जाते थे।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि उस महान् भीड में जहाँ सैकड़ों शिविर लगे थे, राजा लोग पहले भगवान् श्रीकृष्ण का गरुड के पताके से सुशोभित वासस्थान देख लेते थे और तब उसके समीपवर्ती अपने निवास-स्थान को झट से पहचान लेते थे।

छायामपास्य महतीमपि वर्तमाना-
मागामिनीं जगृहिरे जनतास्तरूणाम् ।
सर्वो हि नोपगतमप्यपचीयमानं
वर्धिष्णुमाश्रयमनागतमभ्युपैति ॥१४॥

अर्थ—(सैनिक) लोग वृक्षों की विद्यमान् विस्तृत छाया को छोड़कर आगे आने वाली छाया का आश्रय लेने लगे। (क्यों न हो) सभी लोग क्षय होने वाले उपस्थित आश्रय को नहीं स्वीकार करते, प्रत्युत वृद्धि को प्राप्त करने वाले अनुपस्थित आश्रय को भी वे ग्रहण कर लेते हैं।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि दिन के पहले प्रहर में जहाँ सघन और विस्तृत छाया थी, वहाँ दोपहर में धूप आने की सम्भावना थी अतः विस्तृत छाया के विद्यमान होते हुए भी लोग वहाँ जा जाकर बैठने लगे जहाँ दोपहर में विस्तृत छाया आने वाली थी। संसार का भी यह नियम है कि भविष्य की आशा पर ही वर्तमान की उपेक्षा की जाती है। अर्थान्तरन्यास अलंकार।

अग्रे गतेन वसतिं परिगृह्य रम्या
मापात्यसैनिकनिराकरणाकुलेन।
यान्तोऽन्यतः प्लुतकृतस्वरमाशु दूरा-
दुद्बाहुना जुहुविरे मुहुरात्मवर्ग्याः ॥१५॥

अर्थ—आगे जाकर मनोहर निवास स्थल प्राप्त करने वाला कोई यादव सैनिक स्वयम् उस स्थान पर आने वाले अन्य सैनिकों को हटाने में व्याकुल होकर अपने दोनों हाथ उठाकर दूसरे स्थान पर जाने वाले अपने घर के लोगों को, बारम्बार ऊँचे स्वर से दूर से ही बुलाने लगा।

सिक्ता इवामृतरसेन मुहुर्जनाना
क्लान्तिच्छिदो वनवनस्पतयस्तदानीम्।
शाखावसक्तवसनाभरणाभिरामाः
कल्पद्रुमैः सह विचित्रफलैर्विरेजुः ॥१६॥

अर्थ—मानो अमृत रस से सींचे हुए की भाँति, बारम्बार (आश्रय में आने वाले) लोगों के परिश्रम को दूर करने वाले, शाखाओं में लटके हुए वस्त्रों और आभूषणों से मनोहर वन्य वृक्ष विविध प्रकार के फलों से युक्त होकर कल्पवृक्षों की भाँति सुशोभित हो रहे थे।

टिप्पणी—कल्पद्रुम भी अमृत रस से भरे हुए, लोगों के क्लेश को दूर करने वाले तथा वस्त्राभूषणादि को प्रदान करने वाले होते हैं। उपमा अलंकार।

यानाज्जनः परिजनैरवतार्यमाणा
राज्ञीर्नरापनयनाकुलसौविदल्लाः ।
स्रस्तावगुण्ठनपटाः क्षणलक्ष्यमाण-
वक्त्रश्रियः सभयकौतुकमीक्षते स्म ॥ १७ ॥

अर्थ—परिजनों द्वारा वाहनों से नीचे उतारी जानेवाली, देखने वाले लोगों को दूर हटाने में परेशान कञ्चुकियों से युक्त, उन रानियों की मुखश्री को, जिनके घूँघट का वस्त्र नीचे उतरते समय खिसक गया था, क्षण भर के लिए लोगों ने भय मिश्रित कुतूहल के साथ देख लिया।

कण्ठावसक्तमृदुबाहुलतास्तुरङ्गा
द्राजावरोधनवधूरवतारयन्तः ।
आलिङ्गनान्यधिकृताः स्फुटमापुरेव
गण्डस्थलीः शुचितया न चुचुम्बुरासाम् ॥ १८ ॥

अर्थ—घोड़ों की पीठ से राजाओं की (अन्त:पुरवासिनी) रमणियों को नीचे उतारने वाले अन्त:पुरचारी कञ्चुकियों ने, अपने कण्ठ में मृदुल बाहु रूपी लताओं को डाल देने के कारण उनका (रानियों का) स्फुट आलिंगन तो कर लिया (किन्तु) केवल पवित्र होने के कारण उनके कपोलों को नहीं चूमा।

दृष्ट्वैव निर्जितकलापभरामधस्ताद्
व्याकीर्णमाल्यकबरां कबरीं तरुण्याः ।
प्राद्रुद्रुवत् सपदि चन्द्रकवान् द्रुमाग्रात्
संघर्षिणा सह गुणाभ्यधिकैर्दुरासम् ॥ १९ ॥

अर्थ—वृक्षों के नीचे मयूरपिच्छ को पराजित करने वाली, गूँथे हुए पुष्पों से रंग बिरंगी तरुणियों की केशराशि ही को मानों देखकर

मयूर शीघ्र ही वृक्षों के ऊपर से उड-उडकर भागने लगे। (क्यों न हो) स्पर्धा रखने वाले अपने से अधिक गुण वालों के साथ ठहरने में असमर्थ होते हैं।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा और अर्थान्तरन्यास का सकर।

रोचिष्णुकाञ्चनचयांशुपिशङ्गिताशा
वंशध्वजैर्जलदसंहतिमुल्लिखन्त्यः।
भूभर्तुरायतनिरन्तरसंनिविष्टाः
पादा इवाभिनभुरावलयो रथानाम् ॥ २० ॥

अर्थ—शोभायमान सुवर्णराशि की किरणों से दिशाओं को पीत रग मे उद्भासित करनेवाली, (तत्तद् राज) वशों को सूचित करने वाली अकुश आदि की पताकाओं से अथवा बांस-रूपी ध्वजाओं से मेघ समूहों को स्पर्श करती हुई, सुविस्तृत स्थल मे अविरल खडी हुई रथों की पक्तियाँ मानो रैवतक पर्वत के चरणप्रान्तों की भाँति सुशोभित हो रही थीं।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलकार।

छायाविधायिभिरनुज्झितभूतिशोभै-
रुच्छ्रायिभिर्बहलपाटलधातुरागैः।
दूष्यैरिव क्षितिभृतां द्विरदैरुदार-
तारावलीविरचनैर्व्यरुचन्निवासाः ॥ २१ ॥

अर्थ—राजाओं के निवासस्थान, छाया अर्थात् शोभा करने वाले (तम्बू के पक्ष मे, छाया करने वाले) भूति अर्थात् धूल से शोभा को न छोडने वाले (पक्ष में सम्पत्ति अथवा समृद्धि की शोभा बढाने वाले) अत्यन्त ऊचे, सघन एव कुछ रक्त वर्ण की गेरु आदि धातुओं से विमडित (दोनों पक्षों में, समान), उत्तम नक्षत्रों अथवा मोतियों की माला की रचना से अलकृत, (पक्ष मे, उत्तम मुक्तावली से अलकृत) सेना के गजराजों से मानों पटमण्डपों (तबुओं) के समान सुशोभित हो रहे थे।

टिप्पणी—तुल्ययोगिता अलकार

उत्क्षिप्तकाण्डपटकान्तरलीयमान-
मन्दानिलप्रशमितश्रमधर्मतोयैः ।
दूर्वाप्रतानसहजास्तरणेषु भेजे
निद्रासुखं वसनसद्मसु राजदारैः ॥ २२ ॥

अर्थ—सामने टंगे हुए पर्दों के हट जाने से भीतर आने वाली मन्द-मन्द वायु से जिनकी पसीने की बूंदें शान्त हो गई थीं—ऐसी राजाओं की रमणियों ने दूब समूह के बने हुए प्राकृतिक बिस्तरों वाले तम्बुओं में रात्रि में निद्रा का भरपूर आनन्द उठाया।

प्रस्वेदवारिसविशेषविषक्तमङ्गे
कूर्पासकं क्षतनखक्षतमुत्क्षिपन्ती ।
आविर्भवद्घनपयोधरबाहुमूला
शातोदरी युवदृशां क्षणमुत्सवोऽभूत् ॥ २३ ॥

अर्थ—शरीर में होने वाले पसीने के कारण विशेष रूप से चिपकी हुई चोली को निकालते समय (प्रगल्भा नायिका के) अपने ही नखों से पुराने नखक्षत के घाव फिर ताजे हो गए। उस समय वह कृशोदरी अपने सघन पयोधरों और बाहु के मूल भाग को प्रदर्शित करती हुई युवक जनों के लिए क्षणिक उत्सव का कारण बन गयी।

यावत्स एव समयः सममेव ताव-
दव्याकुलाः पटमयान्यभितो वितत्य ।
पर्यापतत्क्रयिकलोकमगण्यपण्य-
पूर्णापणा विपणिनो विपणीर्विभेजुः ॥ २४ ॥

अर्थ—जब तक सेना के लोग उतर रहे थे, तब तक वणिक लोग निश्चिन्तता के साथ दोनों ओर से तम्बू फैलाकर असंख्य बिक्री की वस्तुओं से भरी पूरी दूकानें विभाग के अनुसार सजा लीं। और तब दूकानों पर क्रय करने वालों की भीड़ आ आकर जुटने लगी।

अल्पप्रयोजनकृतोरुतरप्रयासै-
रुद्गूर्णलोष्टलगुडैः परितोऽनुविद्धम् ।
उद्यातमुद्द्रुतमनोकहजालमध्या-
दन्यः शशं गुणमनल्पमवन्नवाप ॥ २५ ॥

अर्थ—छोटे-से परिणामवाले कार्य पर भूरि परिश्रम करनेवाले बहुत से लोग, वृक्षों की झुरमुट से निकले हुए (किसी) खरगोश को, ढेला और डंडा लेकर चारों ओर से मारते हुए जुट पड़े। एक व्यक्ति ने उन मारनेवालों से उस खरगोश को बचाकर अनल्प गुण अथवा पुण्य प्राप्त किया, अथवा एक ने बड़े जाल को उठाकर उस बड़े खरगोश को प्राप्त कर लिया।

त्रासाकुलः परिपतन् परितो निकेतान्
पुंभिर्न कैश्चिदपि धन्विभिरन्वबन्धि ।
तस्थौ तथापि न मृगः क्वचिदङ्गनाना-
माकर्णपूर्णनयनेषुहतेक्षणश्रीः ॥ २६ ॥

अर्थ—(भीड़-भाड़ को देखकर) डरे हुए अतएव अपने आवास-स्थल से निकलकर चारों ओर भागते हुए हिरणों का किसी धनुष-धारी पुरुष ने यद्यपि पीछा नहीं किया, तथापि ऐसा मालूम पड़ता था मानों रमणियों के कान तक फैले हुए नयन-रूपी बाणों से नेत्रों की शोभा के हर लिए जाने के कारण वे (हिरण) कहीं भी स्थिर नहीं रह सके।

टिप्पणी—वीरों के बाणों का भय यद्यपि हिरणों को नहीं हुआ किन्तु रमणियों के नेत्र रूपी बाण से वे ऐसे घायल हुए कि ठहर नहीं सके। उत्प्रेक्षा और काव्यलिङ्ग का संकर।

आस्तीर्णतल्परचितावसथः क्षणेन
वेश्याजनः कृतनवप्रतिकर्मकाम्यः ।
खिन्नानखिन्नमतिरापततो मनुष्यान्
प्रत्यग्रहीच्चिरनिविष्ट इवोपचारैः ॥ २७ ॥

अर्थ—क्षण भर में ही अपने उस नये निवास स्थान पर शय्या को सुसज्जित कर एवं नूतन प्रसाधनों एवं अलंकरणों से सजी-धजी हुई वेश्याएँ मार्ग की थकान से खिन्न होकर आनेवाले पुरुषों को इस प्रकार (शीतल जल एवं ताम्बूल आदि) उपचारों से स्वागत करती हुई अपने वश में करने लगीं मानो वे वहाँ की पुरानी निवासिनी हों।

सस्नुः पयः पपुरनेनिजुरम्बराणि
जक्षुर्बिसं धृतविकासिबिसप्रसूनाः।
सैन्याः श्रियामनुपभोगनिरर्थकत्व-
दोषप्रवादममृजन्नगनिम्नगानाम् ॥ २८ ॥

अर्थ—सैनिकों ने, पर्वत की नदियों के संबंध में, उनकी समृद्धि के अनुपयोग के कारण जो निरर्थकता के दोष का प्रवाद था, उसे दूर कर दिया। (किस प्रकार दूर कर दिया? उन्होंने उन नदियों में) स्नान किया, उनका जल पिया, अपने वस्त्रों को धोया, विकसित कमलों के पुष्पों को लेकर उनके मृणालों (कमलगट्टा) का भक्षण किया।

टिप्पणी—समुच्चय और काव्यलिंग अलंकार।

नाभिह्रदैः परिगृहीतरयाणि निम्नैः
स्त्रीणां बृहज्जघनसेतुनिवारितानि।
जग्मुर्जलानि जलमण्डुकवाद्यवल्गु-
वल्गद्घनस्तनतटस्खलितानि मन्दम् ॥ २९ ॥

अर्थ—जिसका वेग रमणियों के गहरे नाभि-रूपी सरोवरों से निवारित हो गया है, एवं जिसकी गति विशाल जंघा-रूपी सेतु से प्रतिहत हो गयी है—ऐसी वह सघन स्तनों के तट से टकरा कर जल रूपी मण्डुक वाद्य से सुन्दर शब्द करने वाली (पर्वतीय नदियों की) चंचल जलराशि मन्द-मन्द बहने लगी।

टिप्पणी—काव्यलिंग अलंकार।

आलोलपुष्करमुखोल्लसितैरभीक्ष्ण-
मुक्षांबभूवुरभितो वपुरम्बुवर्षैः ।
खेदायतश्वसितवेगनिरस्तमुग्ध
मूर्धन्यरत्ननिकरैरिव हास्तिकानि ॥३०॥

अर्थ—हाथियों के झुण्ड (जल मे घुसकर) मानो मार्ग चलने के श्रम के कारण ली गई लंबी उच्छ्वासों के वेग से, बाहर फेंकी हुई शिर में पैदा होनेवाली मनोहर गजमुक्ताओं के समूहों की भाँति अपने चपल सूड के छिद्रों से ऊपर फेंकी गयी जल की फुहारों से, अपने शरीर को निरन्तर सींचने लगे।

ये पक्षिणः प्रथममम्बुनिधिं गतास्ते
येऽपीन्द्रपाणितुलितायुधलूनपक्षाः ।
ते जग्मुरद्रिपतयः सरसीर्विगाढु-
माक्षिप्तकेतुकुथसैन्यगजच्छलेन ॥ ३१ ॥

अर्थ—जो पक्ष धारी (पर्वत) थे व पहले ही (इन्द्र के भय से) समुद्र में चले गये थे और जो इन्द्र के हाथ से फेंके गये वज्र से छिन्नपक्षवाले हो गये थे वे ही (पक्ष विहीन) पर्वतराज मानों ध्वजाओं एवं झूलों से रहित सेना के गजों के बहाने से महान सरोवरों में अवगाहन करने के लिए चले आये थे।

डूब हुए थे अब इन्द्र द्वारा जो पख विहीन कर दिए गए थे माना वे ही ध्वजा और सवारी विहीन सेना के गजराजो के बहाने से बड-बड सरोवरा में डूबकर स्नान करने क लिए चले आये थ । उत्प्रेक्षा अलकार ।

आत्मानमेव जलधेः प्रतिबिम्बिताङ्ग-
मूर्मौ महत्यभिमुखापतितं निरीक्ष्य ।
क्रोधादधावदपभीरभिहन्तुमन्य-
नागाभियुक्त इव युक्तमहो महेभः ॥ ३२ ॥

अर्थ—(सेना का एक) विशाल गजराज सरोवर की विशाल तरगो मे प्रतिबिम्बित अपने अग को ही सामने आया देखकर मानों अन्य गजराज द्वारा अपने को मारने के लिए खदेड़े जाते हुए के समान, तुरन्त ही स्वय निश्शक होकर क्रोध से दौडने लगा । अहो ! यह (मूर्खता) उस गजराज के लिए उचित ही थी ।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा और भ्रान्तिमान का अगागिभाव से सकर ।

नादातुमन्यकरिमुक्तमदाम्बुतिक्त
धृताङ्कुशेन न विहातुमपीच्छताम्भः ।
रुद्धे गजेन सरितः सरुषावतारे
रिक्तोदपात्रकरमास्त चिरं जनौघः ॥ ३३ ॥

अर्थ—दूसरे गजराज द्वारा छोडे गए मद-जल स सुगन्धित जल को ग्रहण करने म अनिच्छुक किन्तु (क्रोध और प्यास के कारण) जल को छोडने मे भी अनिच्छुक, एव (हाथीवान की) अकुश की अवमानना करनेवाले एक क्रुद्ध गजराज द्वारा नदी के घाट को रोक लिए जाने क कारण बहुत स लोग खाली बर्तनों को हाथ में लेकर देर तक खडे ही रह गये ।

पन्थानमाशु विजहीहि पुरः स्तनौ ते
पश्यन् प्रतिद्विरदकुम्भनिशङ्कितेताः ।
स्तम्बेरम परिणिनसुरसावुपैति
षिङ्गैरगादत ससभ्रममेव काचित ॥ ३४ ॥

अर्थ—"मार्ग को शीघ्र ही छोड कर दूर हट जाओ, (देखो,) आगे तुम्हारे दोनों विशाल स्तनों को देखकर अपने प्रतियोगी गजराज के कुम्भस्थल की शङ्का से सशयालु चित्त वाला यह गजराज तिरछा प्रहार करने के लिए चला आ रहा है"—इस प्रकार कुछ मजाक करने वाले लोगों ने शीघ्रता से एक जल (लेनेवाली) सुन्दरी से कहा।

कीर्णं शनैरनुकपोलमनेकपानां
हस्तैर्विगाढमदतापरुजः शमाय ।
आकर्णमुल्लसितमम्बु विकासिकाश-
नीकाशमाप समतां सितचामरस्य ॥३५॥

अर्थ—हाथियों के, प्रचण्ड मद की गर्मी से उत्पन्न रोग की शान्ति के लिए, अपनी सूँड से गण्डस्थलों के समीप फेंकी गयी एवं कान के समीप तक पहुँचकर सुशोभित कास के पुष्प के समान श्वेत जल की फुहारें श्वेत चँवर की समानता प्राप्त करने लगीं।

टिप्पणी—उपमा अलङ्कार।

गण्डूषमुज्झितवता पयसा सरोषं
नागेन लब्धपरवारणमारुतेन ।
अम्भोधिरोधसि पृथुप्रतिमानभाग-
रुद्धोरुदन्तमुसलप्रसरं निपेते ॥ ३६ ॥

अर्थ—दूसरे गजराज के मद की सुगन्ध पाकर एक गजराज क्रोध के साथ अपने मुखस्थ जल को बाहर फेंककर सागर के तट पर, दाँतों के मध्यवर्ती स्थूल भाग से मूसल के समान दोनों विशाल दाँतों के प्रहार करने के वेग को निरुद्ध करते हुए (कोई अवरोधक न होने के कारण) स्वयं गिर पड़ा।

टिप्पणी—दूसरे हाथी की गन्ध मात्र से उसे इतना ताप आ गया कि क्रमशः सूँड के पानी को बाहर फेंक कर उससे लड़ने के लिए दौड़ा। विशाल दाँतों का प्रहार किया, किन्तु सामने तो वाद प्रतिद्वन्द्वी हाथी था नहीं, फलतः वह स्वयं गिर पड़ा। [illegible] क्या कहा करो ?

दानं ददत्यपि जलैः सहसाधिरूढे
को विद्यमानगतिरासितुमुत्सहेत ।
यद्दन्तिनः कटकटाहतटान्मिमङ्क्षो-
र्मङ्क्षूदपाति परितः पटलैरलीनाम् ॥ ३७ ॥

अर्थ—दान (धन तथा मद) देते हुए भी अकस्मात जड लोगों द्वारा घेर लिए जाने पर कौन ऐसा दूसरी गतिवाला अर्थात् सामर्थ्यवान पुरुष है, जो वहाँ ठहरने को उत्साहित होगा । (अर्थात् कोई नहीं, ऐसी ही घटना वहाँ भी हुई) जब कि (नदी में) मज्जन करने के इच्छुक गजराज के कटाह के समान विस्तृत गण्डस्थल के तट प्रदेश से भ्रमरों के समूह चारों ओर से तुरन्त ही ऊपर उडने लगे ।

टिप्पणी—अर्थात् मद जल गिरते समय भ्रमरवृन्द ऊपर उडने लगे । अर्थान्तरन्यास अलकार ।

अन्तर्जलौघमवगाढवतः कपोलौ
हित्वा क्षणं विततपक्षतिरन्तरीक्षे ।
द्रव्याश्रयेष्वपि गुणेषु रराज नीलो
वर्णः पृथग्गत इवालिगणो गजस्य ॥ ३८ ॥

अर्थ—नदी के जल के भीतर डूबे हुए गजराज के गण्डस्थलों को छोड़कर क्षण भर ऊपर आकाश में पखो को फैलाये हुए भ्रमरो की पक्तियाँ ऐसी दिखाई पड रही थीं, मानो नील-पीतादि गुणों के द्रव्याश्रित होने पर भी यह नील वर्ण (अपने आश्रयद्रव्य गजराज के शरीर से) पृथक् होकर सुशोभित हो रहा था ।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि गजराज के नदी के भीतर डूब जाने पर उसके गण्डस्थलो पर मदजल के लोभ से मडराने वाली भ्रमरावली ऊपर उडने लगी । वह उस समय ऐसी दिखाई पड रही थी मानो नील गुण के द्रव्याश्रित रहने पर भी गजराज की नीलिमा ही द्रव्य से पृथक होकर दिखायी पड रही है । उत्प्रेक्षा अलकार ।

संमूर्च्छितैः पयसि गैरिकरेणुरागै-
रम्भोजगर्भरजसाङ्गनिषङ्गिणा च ।

क्रीडोपभोगमनुभूय सरिन्महेभा-
वन्योन्यरक्तपरिवर्तमिव व्यधत्ताम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—नदी और विशाल गजराज ने जल से छूटकर बहने वाले गेरु धातु के रंगों से तथा (गजराज के) अंग में लगनेवाले पद्म के पराग से, मानो लीलापूर्वक सुरति सुख का अनुभव कर परस्पर अपने वस्त्रों को अदल-बदल कर पहन लिया हो।

टिप्पणी—यहाँ नदी स्त्री और गजराज पुरुष है। जल क्रीडा रूपी संभोग का सुख लूट कर उन दोनों ने मानो एक दूसरे का वस्त्र जल्दी में पहन लिया हो। नदी ने गजराज के अंग में लगी हुई गेरु की लालिमा को तथा गजराज ने नदी के प्रवाह में फूले हुए कमलों के पराग को अपने अपने अंगों में लपेट कर, मानो परस्पर वस्त्र परिवर्तन कर लिया था। सुरति क्रीडा के पश्चात् शीघ्रता में स्त्री पुरुष के वस्त्र प्रायः बदल उठते हैं। उत्प्रेक्षा अलंकार।

या चन्द्रकैर्मदजलस्य महानदीनां
नेत्रश्रियं विकसतो विदधुर्गजेन्द्राः।
ता प्रत्ययापुरविलम्बितमुत्तरन्तो
धौताङ्गलग्ननवनीलपयोजपत्रैः ॥ ४० ॥

अर्थ—गजराज चारों ओर जल में तैलविन्दु की भाँति फैलते हुए अपने मद के जल द्वारा चन्द्राकार मण्डलों से महानदियों की जो नेत्र शोभा बना रहे थे, उसे जल से स्नान करके निकलते समय अंगों में लगे हुए नूतन नील कमल की पखुड़ियों से वे (गजराज) उसी क्षण स्वयं भी प्राप्त कर रहे थे।

टिप्पणी—अर्थात् दोनों की नेत्र शोभा समान रूप से बढ़ रही थी। गजराजों ने नदी की नेत्र शोभा बढ़ाई और नदियों ने गजराज की। परिवृत्ति अलंकार।

प्रत्यन्यदन्ति निशिताङ्कुशदूरभिन्न-
निर्याणनिर्यदसृजं चलितं निषादी।
रोद्धं महेभमपरिस्त्रढिमानमागा-
दाक्रान्तितो न वशमेति महान् परस्य ॥४१॥

अर्थ—प्रतियोगी गजराज पर आक्रमण करने के लिए दौडते हुए एक गजराज को महावत ने अपने तीक्ष्ण अकुश से कान के समीप गहराई से भोंक दिया और उससे रक्त बहने लगा किन्तु वह उसे रोकने म फिर भी असमर्थ रहा, (क्यों न हो) बलवान् जबर्दस्ती से किसी के वश मे नहीं आते।

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलङ्कार

सेव्योऽपि सानुनयमाकलनाय यन्त्रा
नीतेन वन्यकरिदानकृताधिवासः।
नाभाजि केवलमभाजि गजेन शाखी
नान्यस्य गन्धमपि मानभृतः सहन्ते ॥४२॥

अर्थ—महावत द्वारा बाँधने के लिए किसी प्रकार चुमकार पुचकार कर समीप म लाये गये गजराज ने अन्य जगली गजराज के मद-जल से सुगधि युक्त वृक्ष का, सेवन करने योग्य होने पर भी सेवन नहीं किया, किन्तु उसने उसे केवल तोड ही डाला। (क्या न हो) अहकारी लोग दूसरे की गन्ध भी नहीं सहन करते।

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलङ्कार।

अद्रीन्द्रकुञ्जचरकुञ्जरगण्डकाष
सङ्क्रान्तदानपयसो वनपादपस्य।
सेनागजेन मथितस्य निजप्रसूनै
र्मम्ले यथागतमगामि कुलैरलीनाम् ॥ ४३ ॥

अर्थ—रैवतक पर्वत के कुञ्जो म विचरण करने वाले गजराजों के कपोलों के सघर्षण से लगे हुए मद-जलवाले ऐसे वन के वृक्ष, जिन्हे सेना के गजराजो ने तोड दिया था, अपने पुष्पों समेत सूख गये। इससे भ्रमरो की पक्तियाँ उनके पास जैसे आई वैसे ही उड़ कर चली गई।

नोच्चैर्यदा तरुतलेषु ममुस्तदानी
माधोरणैरभिहिताः पृथुमूलशाखाः।

बन्धाय चिच्छिदुरिभास्तरुमात्मनैव
नैवात्मनीनमथवा क्रियते मदान्धैः ॥ ४४ ॥

अर्थ—बड़े-बड़े गजराज जब ऊँचे वृक्षों के नीचे नहीं आ सके तब महावतों ने उन्हें तोड़ने के लिए कह दिया, जिससे उनकी मोटी मोटी मूल शाखाओं को अपने बाँधने के लिए उन्होंने (गजराजों ने) अपने आप ही बल-पूर्वक तोड़ डाला (क्यों न हो) मदान्ध लोग अपने कल्याण का कार्य नहीं करते।

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलंकार।

उष्णोष्णशीकरसृजः श्वसनोष्मणोऽन्त
रुत्फुल्लनीलनलिनोदरतुल्यभासः।
एकान् विशालशिरसो हरिचन्दनेषु
नागान् बबन्धुरपरान्मनुजा निरासुः ॥ ४५ ॥

अर्थ—लोगों ने अर्थात् महावतों ने (सूँड़ से अथवा फण से) गरमागरम मद या विष की बूँदों को छोड़ने वाले, भीतर से अत्यन्त ताप वाले अथवा प्रचंड निःश्वास छोड़ने वाले, खिले हुए नीलकमल के अन्तर्भाग की भाँति कान्ति वाले एवं विशाल शिरों वाले नागों अर्थात् गजराजों को हरिचन्दन के वृक्षों में बाँध दिया और दूसरे नागों अर्थात् सर्पों को वहाँ से निकाल दिया।

टिप्पणी—आशय यह है कि महावतों ने हरिचन्दन के वृक्षों पर से सर्पों को भगाकर उन्हीं में हाथियों को बाँधा। दोनों नागों के विशेषण एक होने से श्लेष अलंकार।

कण्डूयतः करटभुवं करिणो मदेन
स्कन्धं सुगन्धिमनुलीनवता नगस्य।
स्थूलेन्द्रनीलशकलावलिकोमलेन
कण्ठेगुणत्वमलिना वलयेन भेजे ॥ ४६ ॥

अर्थ—गण्डस्थल को खुजलाने वाले गजराज के मदजल की सुगन्धि से युक्त वृक्ष के स्कन्ध में लगे हुए, बड़े-बड़े इन्द्रनील मणि के

टुकडों की भांति मनोहर भ्रमरों की माला उनके कण्ठहार के समान शोभा पाने लगी। अर्थात् वह इन्द्रनील मणि की कण्ठी के समान दिखाई पडने लगी।

टिप्पणी—रूपक अलंकार।

> निर्धूतवीतमपि बालकमुल्ललन्तं
> यन्ता क्रमेण परिसान्त्वनतर्जनाभिः।
> शिक्षावशेन शनकैर्वशमानिनाय
> शास्त्रं हि निश्चितधियां क्व न सिद्धिमेति ॥४७॥

अर्थ—एक महावत ने अंकुश एवं पादाघात आदि को न मानने वाले और इधर-उधर कूदने वाले पाँच वर्ष के गज-किशोर को अपने गज-शास्त्राभ्यास के बल से चुमकार-पुचकार कर तथा तर्जना देकर धीरे धीरे वश में किया। (क्यों न हो) असंदिग्ध बुद्धि वालों का शास्त्र कहां सिद्धि नहीं प्राप्त करता ?

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलंकार।

> स्तम्भं महान्तमुचितं सहसा मुमोच
> दानं ददावतितरां सरसाग्रहस्तः।
> बद्धापराणि परितो निगडान्यलावी-
> त्स्वातन्त्र्यमुज्ज्वलमवाप करेणुराजः ॥ ४८ ॥

अर्थ—एक गजराज ने अनियन्त्रित स्वच्छन्दता प्राप्त की। उसने अपने चिर-परिचित महान् स्तम्भ को एकाएक तोड दिया, हस्त (शुण्ड) के अग्रभाग को आर्द्र (गीला) कर के प्रचुर मात्रा में दान दिया अर्थात् मदजल को गिराया, तथा चारों ओर से पिछले पैरों को बांधने वाली बेडियों को तोड डाला।

टिप्पणी—गजराज की भांति राजा भी उज्ज्वल स्वतन्त्रता की प्राप्ति इसी प्रकार करता है। वह भी सबसे प्रथम अपनी महान् जडता को तोडता है, हाथ में जल लेकर ब्राह्मणों को विपुल दान देता है तथा बंधे हुए शत्रुओं की बेडियां तोडता है

जज्ञे जनैर्मुकुलिताक्षमनाददाने
संरब्धहस्तिपकनिष्ठुरचोदनाभिः ।
गम्भीरवेदिनि पुरः कवलं करीन्द्रे
मन्दोऽपि नाम न महानवगृह्य साध्यः ॥४९॥

अर्थ—एक गम्भीरवेदी गजराज क्षुपित महावत द्वारा अत्यन्त निष्ठुरतापूर्वक चाबुक लगाये जाने पर भी आखें मूँद कर जब खडा ही रह गया और उसने अपना ग्रास भी नहीं ग्रहण किया तब लोगों ने जान लिया कि सचमुच जो महान पुरुष होते हैं वे मन्द शक्ति होने पर भी बलात्कारपूर्वक वश में नहीं लाये जा सकते अथवा बलवान व्यक्ति, चाहे वह मूर्ख ही हो तो भी कष्ट पहुँचाकर साध्य नहीं किये जा सकते ।

टिप्पणी—गभीरवेदी अर्थात मद बुद्धि अथवा मदामत्त हाथी, जो चाबुक के मारने पर भी सीधे नहीं चलते अथवा बहुत सिखाये जाने पर भी नहीं सीखते । कहा गया है — त्वग्भेदात शोणितस्रावात् मांसस्य च्यवनादपि । आत्मानं यो न जानाति तस्य गभीरवेदिता ।' अथवा 'चिरकालेन यो वेत्ति शिक्षां परिचितामपि । गभीरवेदी विज्ञेय स गजो गजवेदिभिः । अर्थान्तरन्यास अलंकार ।

क्षिप्तं पुरो न जगृहे मुहुरिक्षुकाण्डं
नापेक्षते स्म निकटोपगतां करेणुम् ।
सस्मार वारणपतिः परिमीलिताक्ष-
मिच्छाविहारवनवासमहोत्सवानाम् ॥ ५० ॥

अर्थ—एक गजराज ने बारम्बार आगे डाले गये ईख के टुकडों को नहीं ग्रहण किया, तथा अपने समीप में आई हुई हथिनी की ओर भी अपेक्षा नहीं की किन्तु वह दोनो आखो को मूँद कर अपने वन-वासकालिक स्वच्छन्दविहार के महान आनन्द का ही स्मरण करता रहा ।

टिप्पणी—स्वाभाविक अलंकार ।

दुःखेन भोजयितुमागयिता गजाक
तुङ्गाग्रकायमनमन्तमनादरेण ।
उत्क्षिप्तहस्ततलदत्तनिधानपिण्ड-
स्नेहस्रुतिस्नापितनाहुरिभाधिराजम् ॥ ५१ ॥

अर्थ—ऊपर उठाई गई दोनों हथेलियों पर रखे गए हाथी को दिए जाने वाले पिण्ड से चूते हुए घृत आदि से, गीली बाहों से, हाथी को खिलाने वाला, अत्यन्त उन्नत शरीर वाले एक गजराज को, जो अवज्ञा वश अपने मुख को नीचे नहीं झुका रहा था, दुःख के साथ खिला सका।

टिप्पणी—जो स्वभावतः ऊँचे भाग होते हैं और उन पर भी अहंकार ग्रस्त होते हैं उन्हें कौन नम्र कर सकता है।

शुक्लाशुकोपरचितानि निरन्तराभि-
र्वेश्मानि रश्मिविततानि नराधिपानाम् ।
चन्द्राकृतीनि गजमण्डलिकाभिरुच्चै-
र्नीलाभ्रपंक्तिपरिवेषमिवाधिजग्मुः ॥५२॥

अर्थ—श्वेत वस्त्रों से विरचित, (दूसरे पक्ष में, श्वेत सूक्ष्म तेजस्वी अवयवों से व्याप्त) रस्सियों से तने हुए (पक्ष में, किरणों से विस्तृत) चन्द्रमा के समान दिखाई पड़ने वाले राजाओं के शिविर अत्यन्त सघन बँधे हुए गजराजों के घेरों से घिर कर ऐसे दिखाई पड़ रहे थे मानों (चन्द्रमा) काले बादलों की परिधि में पहुँच गया हो।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलंकार।

गत्यूनमार्गगतयोऽपि गतोरुमार्गाः
स्वैरं ममाचक्रपिरे भुवि वेल्लनाय ।
दर्पोदयोल्लमितफेनजलानुसार-
मंलक्ष्यपल्ययनरम्रपदास्तुरङ्गाः ॥ ५३ ॥

अर्थ—अपनी गति से मृग की गति को मन्द करने वाले, दूर का मार्ग तय करके आने वाले तथा भीतरी तेज के प्रकट होने से निकले

अश्रावि भूमिपतिभिः क्षणवीतनिद्रै-
रश्नन् पुरो हरितकं मुदमादधानः ।
ग्रीवाग्रलोलकलकिङ्किणिकानिनाद-
मिश्रं दधद्दशनचर्चुरशब्दमश्वः ॥ ५८ ॥

अर्थ—निवास-स्थान के आगे ही हरी हरी घास को खाते हुए अतएव कण्ठ में बंधी हुई चंचल घंटियों के मनोहर एवं अव्यक्त शब्द से मिश्रित दाँतों के चुर-चुर शब्द करने वाले और इसी कारण (सुनने वालों के चित्त में) आनन्द उत्पन्न करनेवाले अश्वों (के शब्दों) को, क्षण भर पूर्व ही निद्रा त्याग कर उठनेवाले राजाओं ने सुना।

टिप्पणी—स्वभावोक्ति अलंकार।

उत्खाय दर्पचलितेन सहैव रज्ज्वा
कीलं प्रयत्नपरमानवदुर्ग्रहेण ।
आकुल्यकारि कटकस्तुरगेण तूर्ण-
मश्वेति विद्रुतमनुद्रवताश्वमन्यम् ॥ ५९ ॥

अर्थ—(बल के) गर्व से चंचल एक अश्व ने उछल कर रस्सी के साथ ही अपने खूँटे को उपार लिया और वेगपूर्वक दौड़ते हुए एक दूसरे अश्व को 'यह घोड़ी है'—ऐसा भ्रम कर के उसके पीछे भागते हुए अनेक प्रयत्न करने वाले मनुष्यों से भी नहीं पकड़ा गया और इस प्रकार पूरे शिविर को उसने व्याकुल बना दिया।

टिप्पणी—स्वभावोक्ति अलंकार।

अव्याकुलं प्रकृतमुत्तरधेयकर्म
धाराः प्रसाधयितुमव्यतिकीर्णरूपाः ।
सिद्धं मुखे नवसु वीथिषु कश्चिदश्वं
वल्गाविभागकुशलो गमयांबभूव ॥ ६० ॥

अर्थ—लगाम के नियन्त्रण में निपुण एक घुड़सवार अव्यग्र स्वभाव वाले, भली भाँति सुसज्जित एवं मुक्त कर्म अर्थात् छहों दिशाओं मे मुक्त करने मे प्रवीण एक अश्व को युद्धादि के उत्तर काल में करने योग्य कार्यों के लिए असकीर्ण रूपा अर्थात् स्पष्ट 'धारा' नामक विशेष गति को सिखाने के लिए, नव प्रकार की वीथियों का अभ्यास कराने लगा—

मुक्तास्तृणानि परितः कटकं चरन्त-
त्रुट्यद्वितानतनिकाव्यतिषङ्गभाजः।
मस्तुः सरोपपरिचारकवार्यमाणा
दामाञ्चलस्खलितलोलपदं तुरंगाः ॥ ६१ ॥

अर्थ—(विहार के लिए बन्धन से) मुक्त किये गये, शिविर के चारों ओर घास चरते हुए कुछ अश्व टूटी हुई तम्बू की रस्सियों से फँस गये थे। उन्हें रोष के साथ परिचारक लोग रोक रहे थे—और वे तम्बू की रस्सी को बाँधने के लिए गाड़े गये खूटे मे अपने चचल पैरों के फस जाने से गिरते पड़ते फिर से भागने की चेष्टा कर रहे थे।

टिप्पणी—स्वभावोक्ति अलंकार।

उत्तीर्णभारलघुनाप्यलघूलपौघ
सौहित्यनिःसहतरेण तरोरधस्तात्।
रोमन्थमन्थरचलद्गुरुसास्नमास्ना
चक्रे निमीलदलसेक्षणमौक्षकेण ॥ ६२ ॥

अर्थ—पीठ पर से भार को उतार देने के कारण हलके किन्तु बड़ी बड़ी घासों को चरने से जिनका पेट भर गया था और जो भारी शरीर वाले अब न आलस्य युक्त हो गये थे—ऐसे बैलों के समूह वृक्ष के नीचे धीरे-धीरे जुगाली करते हुए बैठे थे और उससे उनका विशाल गलकम्बल धीरे धीरे हिल रहा था और दोनों आँखे आलस्य से भर कर अधमुँदी हो रही थीं।

टिप्पणी—स्वभावोक्ति अलङ्कार।

मृत्पिण्डशेखरितकोटिभिरर्धचन्द्रं
शृङ्गैः शिखाग्रगतलक्ष्ममलं हसद्भिः।
उच्छृङ्गितान्यवृषभाः सरितां नदन्तो
रोधांसि धीरमवचस्करिरे महोक्षाः ॥ ६३ ॥

अर्थ—बड़े-बड़े साँड़, गीली भूमि को खोदने के कारण जिन के अगले छोरों में गीली मिट्टी लगी हुई थी और जो इस प्रकार दोनों छोरों पर मृगचिह्न से सुशोभित अर्धचन्द्रमा का उपहास कर रही थीं, और दूसरे साड़ों की सींगों को उखाड़ दिया था—ऐसी सींगों से नदी के तट को बड़े जोर-जोर से गरजते हुए उखाड़ने लगे।

टिप्पणी—बलवान बैल या साड मस्ती के कारण अपने प्रतिद्वन्द्वी को देखकर धरती खोदने लगते हैं और जोर-जोर से हुँकड़ने लगते हैं। उनकी इसी क्रीडा को वप्रक्रीडा कहते हैं। गीली मिट्टी जब सींगों के दोनों छोरों पर लग गयी थी तो उस समय वह अर्ध-चन्द्रमा का उपहास कर रही थीं। इसमें अतिशयोक्ति अलङ्कार है।

मेदस्विनः सरभसोपगतानभीकान्
भङ्क्त्वा पराननडुहो मुहुराहवेन।
ऊर्जस्वलेन सुरभीरनु निःसपत्नं
जग्मे जयोद्धुरविशालविषाणमुक्ष्णा ॥ ६४ ॥

अर्थ—अनेक मोटे-तगडे कामातुर साँड वेगपूर्वक गौओं के पीछे-पीछे दौड़ रहे थे। एक अति बलवान् साँड़ बारंबार उन्हें कुश्ती में पछाड़ कर अपनी विजयिनी विशाल सींगों को ऊंचा उठाकर अकेले ही उन गौओं के पीछे-पीछे चलने लगा।

बिभ्राणमायतिमतीमवथा शिरोधिं
अत्यग्रतामतिरमामधिकं दधन्ति।
नोलोष्ठमोष्ठकमुदग्रमुखं तरूणा-
मभ्रंलिहानि लिलिहे नवपल्लवानि ॥ ६५ ॥

अर्थ—लंबी गरदन वाले ऊँटों के समूह अपना मुँह ऊपर उठाकर बादलों को स्पर्श करने वाले, वृक्षों के अत्यन्त रसयुक्त स्वादिष्ट और नये-नये कोमल पत्तों को अपने चंचल ओठों को डुलाते हुए खाने लगे। उस समय उनकी लंबी गरदन धारण करना सार्थक हो गया।

टिप्पणी—यदि उनकी लंबी गरदन न होती तो ऊँचे-ऊँचे वृक्षों के नये कोमल पत्तों को वे भला क्यों पा सकते थे ?

साधं कथंचिदुचितैः पिचुमर्दपत्रै-
रास्यान्तरालगतमाम्रदलं म्रदीयः।
दासेरकः सपदि संवलितं निषादै-
र्विप्रं पुरा पतगराडिव निर्जगार ॥ ६६ ॥

अर्थ—खाने में अभ्यस्त नीम के पत्तों के साथ धोखे में आम का जो एक कोमल पत्ता (किसी) ऊँट के मुख में चला गया था, उसको उसने चट पट उसी प्रकार बाहर उगल दिया जिस प्रकार गरुड ने पूर्वकाल में म्लेच्छों का भक्षण करते समय, उनके साथ धोखे से एक ब्राह्मण को निगल कर चटपट उसे उगल दिया था।

टिप्पणी—पुराणों की एक कथा के अनुसार पूर्वकाल में गरुड ने म्लेच्छों से अप्रसन्न होकर उन्हें जब निगलना शुरू किया तो अकस्मात उनका गला जलने लगा। जब उन्होंने उगला तो देखा कि वह म्लेच्छ नहीं एक ब्राह्मण था।

स्पष्टं बहिः स्थितवतेऽपि निवेदयन्त-
श्चेष्टाविशेषमनुजीविजनाय राज्ञाम्।
वैतालिकाः स्फुटपदप्रकटार्थमुच्चै-
र्भोगावलीः कलगिरोऽवसरेषु पेठुः ॥६७॥

अर्थ—बाहर बैठे हुए भी सेवकों के लिए राजाओं के तत्काल के कार्यों को स्पष्ट रूप से बतलाने के लिए, मधुर भाषी वन्दीगण, उच्च स्वर से सुबोध भाषा में अपने पद्यों का पाठ करने लगे।

टिप्पणी—राजाओ के सेवक खेमे के बाहर आना जानने के लिए उत्सुक रहते थे किन्तु वे खेम के भीतर तो जा नहीं सकते थे, अत बंदी लोग अपने-अपने राजा के उस समय के कार्यों का स्पष्ट रूप से बतलाने के लिए भोगावली का पाठ कर रहे थे। राजाओ के स्नान, ध्यान, पूजादि क्रियाओ का वर्णन करने वाली गाथा को भोगावली कहते हैं।

उन्नम्रताम्रपटमण्डपमण्डितं त-
दानीलनागकुलसंकुलमाबभासे।
संध्यांशुभिन्नघनकर्बुरितान्तरीक्ष
लक्ष्मीविडम्बि शिबिरं शिवकीर्तनस्य ॥ ६८ ॥

अर्थ—ऊँचे ऊँचे लाल रंग के तम्बुओं से सुशोभित तथा काले काले हाथियों के समूहों से घिरा हुआ मंगलकीर्ति भगवान श्रीकृष्ण चन्द्र का वह शिविर सन्ध्या की किरणों से लाल वर्ण के मेघों से चित्रित नीले आकाश की तरह शोभा दे रहा था।

टिप्पणी—उपमा अलंकार।

धरस्योद्धर्तासि त्वमिति ननु सर्वत्र जगति
प्रतीतस्तत्किं मामतिभरमधः प्रापिपयिषुः।
उपालब्धेवोच्चैर्गिरिपतिरिति श्रीपतिमसा
वलाक्रान्तः क्रीडद्द्विरदमथितोर्वीरुहरवैः ॥ ६९ ॥

अर्थ—(श्रीकृष्ण की) सेना से आक्रान्त रैवतक, हाथियों द्वारा क्रीडा में तोड़े जाते हुए वृक्षों के (शब्दों) द्वारा मानो श्रीकृष्ण जी से चिल्लाकर यह उलाहना दे रहा था कि—'हे हरि! तुम तो सर्वत्र पर्वतों के उद्धारकर्त्ता के रूप में विख्यात हो तो फिर अत्यन्त भार से बोझिल मुझे क्यों और नीचे (पाताल) की ओर ले जा रहे हो।'

टिप्पणी—समूचा रैवतक यदु-सेना से भरा हुआ था। सेना के असंख्य हाथी क्रीडा करते हुए उसके वृक्षों को तोड़ रहे थे और चारों ओर से उन्हीं की जोरों की आवाज आ रही थी कवि उसी आवाज की उत्प्रेक्षा करते हुए कहता है मानो स्वयं

रैवतक श्रीकृष्ण जी को उलाहना दे रहा था कि—"हे हरि ! आप तो गोवर्धन का ऊपर उठाकर पर्वतों के उद्धारक के रूप में विख्यात हैं तो मेरा ऐसा कौन-सा अपराध है जो पहले ही से मैं भारी बोझ से व्याकुल था और फिर आप समूची सेना के बोझ से दबाकर मुझे और नीचे (पाताल) की ओर ले जा रहे हैं।" शिखरिणी छन्द। लक्षण :—रसैरुद्रैश्छिन्ना यमनसभलाग: शिखरिणी।

श्री शिशुपालवध महाकाव्य में सेना निवेश नामक पाँचवाँ सर्ग समाप्त।

—o—

छठाँ सर्ग

अथ रिरंसुममुं युगपद्गिरौ कृतयथास्वतरुप्रसवश्रिया ।
ऋतुगणेन निषेवितुमादधे भुवि पदं विपदन्तकृतं सताम् ॥१॥

अर्थ—इसके बाद सज्जनों की विपत्ति का नाश करनेवाले भगवान श्रीकृष्ण ने रैवतक पर विहार करने की इच्छा की। (यह देख कर) वसन्त आदि सभी ऋतुएँ अपने-अपने विशेष फूलों तथा फलों की शोभा धारण किए हुए धरती पर एक साथ ही आ पहुँचीं।

टिप्पणी—इस पूरे सर्ग में यमक नामक शब्दालंकार तथा द्रुतविलंबित छन्द है। द्रुतविलंबित का लक्षण है—"द्रुतविलंबितमाह नभौभरौ।"

नवपलाशपलाशवनं पुरः स्फुटपरागपरागतपङ्कजम् ।
मृदुलतान्तलतान्तमलोकयत्स सुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः ॥२॥

अर्थ—भगवान् श्रीकृष्ण ने सर्वप्रथम उस वसन्त ऋतु का दर्शन किया जिसके कारण पलाशों के वन में नये-नये पत्ते निकल आये थे, पराग से भरे हुए कमल खिल गए थे, धूप की गर्मी से लताओं के कोमल पत्ते कुछ मुरझा गये थे और विविध प्रकार के फूलों से मनोहर सुगन्ध निकल रही थी।

विलुलितालकसंहतिरामृशन्मृगदृशां श्रमवारि ललाटजम् ।
तनुतरङ्गततिं सरसां दलत्कुवलयं वलयन्मरुदाववौ ॥३॥

अर्थ—मृग के समान नेत्रों वाली रमणियों की केशराशि को हिलाता हुआ, उनके ललाट पर छाई हुई पसीनों की बूँदों को सुखाता हुआ, सरोवरों में छोटी-छोटी लहरियों को उठाता हुआ तथा कमलों को विकसित करता हुआ मलयानिल बहने लगा।

तुलयति स्म विलोचनतारकाः कुरबकस्तनकव्यतिषङ्गिणि ।
गुणवदाश्रयलब्धगुणोदये मलिनिमालिनि माधवयोषिताम् ।।४।।

अर्थ—कुरबक के श्वेत रंग के कुसुमों के गुच्छों पर बैठने के कारण श्वेत रंग के संसर्ग से अत्यधिक चमकते हुए नीले रंग के भ्रमरों की नीलिमा भगवान श्रीकृष्ण की स्त्रियों के नेत्रों की कनीनिका की कालिमा की समानता कर रही थी।

टिप्पणी—जिस प्रकार श्रीकृष्ण भगवान् की स्त्रियों के श्वेत नेत्रों में काली कनीनिका शोभा दे रही थी उसी प्रकार कुरवक के श्वेत पुष्पों के गुच्छों में बैठे हुए भ्रमरों की अत्यधिक कालिमा भी शोभा दे रही थी। श्वेत वस्तु के बीच में पड़ने से काली वस्तु और भी अधिक चमकने लगती है। उपमा अलंकार।

स्फुटमिनोज्ज्वलकाञ्चनकान्तिभिर्युतमशोकमशोभत चम्पकैः ।
विरहिणां हृदयस्य भिदाभृतः कपिशितं पिशितं मदनाग्निना ।।५।।

अर्थ—शुद्ध सुवर्ण की कान्ति के समान चम्पा के पुष्पों के बीच में फूले हुए अशोक के पुष्प इस प्रकार शोभायमान हो रहे थे मानों विदीर्ण-हृदय विरहियों के (हृदय के) चारों ओर कामाग्नि से पीला पड़ा मांस-खण्ड हो।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलंकार। किन्तु इस उत्प्रेक्षा में कवि ने बड़ा जुगुप्सित चित्रण किया है इस में सुरुचि के सिवा कुरुचि ही अधिक दिखाई पड़ती है।

स्मरहुताशनमुर्मुरचूर्णतां दधुरिवाम्रवणस्य रजःकणाः ।
निपतिताः परितः पथिकव्रजानुपरि ते परितेपुरतो भृशम् ।। ६ ।।

अर्थ—आम के वनों का रज कण, मानों काम रूपी अग्नि के तुषानल (भूसी की आग, जो बहुत तेज होती है) के मुरमुराते हुए चूर्ण के समान, पथिकों के ऊपर पड़ कर उनको अधिक से अधिक सन्ताप पहुँचाने लगे।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलंकार।

रतिपतिप्रहितेव कृतक्रुधः प्रियतमेषु वधूरनुनायिका ।
बकुलपुष्परसासवपेशलध्वनिरगान्निरगान्मधुपावलिः ।।७।।

अर्थ—अपने प्रियतमों के ऊपर क्रुद्ध (मानिनी) स्त्रियों को उनके पति के) पास भेजने वाली मानों कामदेव से प्रेरित-की भाँति वकुल अर्थात् मौलसिरी के पुष्प-रस-रूपी आसव के पान से अधिक मधुर स्वर वाली भ्रमरों की पंक्तियाँ वृक्षों से बाहर निकल पड़ीं।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि वृक्षों के बाहर निकलने वाले भ्रमरों की मधुर ध्वनि सुनकर मानिनी स्त्रियाँ अपना मान त्याग कर स्वयं पति के पास जाने को उद्यत होने लगीं। कवि उसी की उत्प्रेक्षा करता है मानो उस भ्रमर पंक्ति को स्वयं कामदेव ने प्रेरित किया हो। उत्प्रेक्षा अलंकार।

प्रियसखीसदृशं प्रतिबोधिताः किमपि काम्यगिरा परभृतया।
प्रियतमाय वपुर्गुरुमत्सरच्छिदुरयाऽदुरनाचितमङ्गनाः॥ ८॥

अर्थ—भारी द्वेष (गंभीर मान) को काट फेंकनेवाली, मनोहर वाणी बोलने वाली प्रिय सखी के समान कोयलों द्वारा, गुप्त रहस्य पूर्ण बातों से प्रतिबोधित कामिनियाँ प्रियतम की प्रार्थना के बिना ही उन्हें अपना अङ्ग समर्पित करने लगीं।

टिप्पणी—अर्थात् कोयल की कूक सुनते ही मानिनी स्त्रियों का मान दूर हो गया और वे स्वतः अपने प्रियतमों को अपना अंग समर्पण करने लगीं। कवि उसकी उत्प्रेक्षा करता है कि मानो प्रिय सखी के समान कोयलें उन्हें मधुर स्वर में कुछ ऐसी रहस्य की बातें कह जाती हैं कि उन्हें अपना मान तोड़ना ही पड़ता है। उत्प्रेक्षा अलंकार।

मधुकरैरपवादकरैरिव स्मृतिभुवः पथिका हरिणा इव।
कलतया वचसः परिवादिनीस्वरजिता रुचिरा वशमाययुः॥९॥

अर्थ—मृगों को धोखा में डालने के लिए घण्टा आदि ध्वनितवाद्यों को बजानेवाले बहेलियों के समान मधुकरों ने, परिवादिनी नामक वीणा विशेष के स्वर को पराजित करने वाली अपने गुंजार की मधुरता से हरिणों के समान, पथिकों के चित्त को हर लिया और उन्हें काम-देव के वश में कर दिया।

टिप्पणी—जिस प्रकार बहेलियों के बाजे बजाने से मृग आदि फंदों में

...र वह सुन्दरी अपने प्रियतम से झटपट ऐसी लिपट
... सचमुच भ्रमरों से भयभीत हो गयी हो। आलिंगन
...नों हाथों के ऊपर उठा लेने से उसके स्तन अधिक
...ौर त्रिवली से सुशोभित उसका उदर भाग स्पष्ट दिखाई

...नायक चाहता था कि उसकी प्रियतमा स्वयं दौडकर उसका
...र। लतापुष्प के पास उडते हुए भ्रमरों को दिखाकर उसने उस
...दा नायिका स्वयं दौडकर उससे झटपट लिपट गया। वस्तुत दोनों
...पन्न हुआ, भ्रमरों का भय तो एक बहाना मात्र था। प्रथम श्लोक
...द्वितीय में उपमा, अनुप्रास और यमक की विजातीय संसृष्टि तथा
...अलङ्कार है।

...भपरिभ्रमद्भ्रमरसंभ्रमसंभृतशोभया।
...धे कलमेखलाकलकलोऽलकलोलदृशान्यया ॥१४॥

...सुन्दरी के मुख की सुगन्ध के लोभ से एक भ्रमर उसके
...गा, उसके भय की घबराहट से सुशोभित वह सुन्दरी
... तब उसकी अलकें उसकी चंचल आँखों के ऊपर आ
...ी सुवर्ण-मेखला से सुमधुर ध्वनि होने लगी।
...भावोक्ति तथा अनुप्रास और यमक की संसृष्टि।

...शः प्रियमग्रतः प्रणतमप्यभिमानितया न याः।
...न्मदनव्यथा निधुरिता धुरि ताः कुकुरस्त्रियः ॥१५॥

...दव रमणियाँ अनेक बार आगे झुक-झुककर प्रार्थना
...को अपनी स्वाभिमानिता के कारण कुछ नहीं गिन
...अन्त के आ जाने पर काम ...ा से व्याकुल
...यतमों के पास पहुचने लगीं।

अर्थ—(इस वसन्त ऋतु में) पति से विरहित कुछ अन्य रमणियाँ कामदेव के धनुष से चलाये गये द्रुतगामी बाणों की चोट से विदीर्ण शरीरवाली होकर मृत्यु को प्राप्त हो गयीं। उनके बारम्बार मूर्छित होने का तो कहना ही क्या है?

[निम्न तीन श्लोकों में किसी विरहिणी को उसकी प्रिय सखी आश्वासन देते हुए कहती है —]

रुरुदिषा वदनाम्बुरुहश्रियः सुतनु सत्यमलंकरणाय ते।
तदपि संप्रति संनिहिते मधावधिगमं धिगमङ्गलमश्रुणः॥१७॥
त्यजति कष्टमसावचिरादसून् विरहवेदनयेत्यघशङ्किभिः।
प्रियतया गदितास्त्वयि बान्धवैरवितथा वितथाः सखि मा गिरः॥१८॥
न खलु दूरगतोऽप्यतिवर्तते महमसाविति बन्धुतयोदितैः।
प्रणयिनो निशमय्य वधूर्बहिः स्वरमृतैरमृतैरिव निर्ववौ॥१९॥

अर्थ—"हे सुन्दरि! यद्यपि यह तुम्हारी रोने की इच्छा निश्चय ही तुम्हारे कमलमुख की शोभा बढाती है किन्तु फिर भी अब ऋतुराज वसन्त के आगमन के उत्सव पर तुम्हारा यह अश्रुपात-रूप अमंगल आचरण करना अनुचित है। स्नेह के वश होकर प्रियजन तुम्हारे अनिष्ट की आशंका से तुम्हारे विषय में यही कहेंगे कि—हाय! यह बेचारी प्रिय की विरह-वेदना से शीघ्र ही प्राण त्याग कर देगी—हे सखि! तुम उनकी इन असत्य बातों को सत्य न होने दो, क्योंकि तुम्हारा प्रियतम यद्यपि दूर परदेश में है किन्तु वह इस वसन्तोत्सव को नहीं छोडेगा।" जब इस प्रकार प्रियजनों (सखियों) द्वारा उस रमणी को आश्वासन दिया जा रहा था तब ठीक उसी समय बाहर (से आये हुए) प्रियतम के कण्ठस्वर को सुनकर प्रियजनों की इन सत्य बातों से वह सुन्दरी ऐसी तृप्त हो गयी मानो अमृत रस से सींच दी गयी हो।

टिप्पणी—रसिकों की दृष्टि में मनोहर आकृतिवालों का रुदन भी शोभा जनक होता है। प्रियजन लोग प्रेम के कारण सदा अनिष्ट की आशंका किया करते हैं।

के ऐसा कहने पर वह सुन्दरी अपने प्रियतम से झटपट ऐसी लिपट गयी मानो वह सचमुच भ्रमरों से भयभीत हो गयी हो। आलिंगन करने के लिए दोनों हाथों के ऊपर उठा लेने से उसके स्तन अधिक ऊँचे हो गये तथा त्रिवली से सुशोभित उसका उदर भाग स्पष्ट दिखाई पड़ने लगा।

टिप्पणी—नायक चाहता था कि उसकी प्रियतमा स्वयं दौडकर उसका गाढ आलिंगन करे। लतापुष्प के पास उडते हुए भ्रमरों को दिखाकर उसने उन्हें डरा दिया। फिर तो नायिका स्वयं दौडकर उससे झटपट लिपट गयी। वस्तुत दोनों के अनुराग ही से ऐसा हुआ, भ्रमरों का भय तो एक बहाना मात्र था। प्रथम श्लोक में भ्रान्तिमान द्वितीय में उपमा, अनुप्रास और यमक को विजातीय संसृष्टि तथा तृतीय में यमक अलंकार है।

वदनसौरभलोभपरिभ्रमद्भ्रमरसंभ्रमसंभृतशोभया ।
चलितया विदधे कलमेखलाकलकलोऽलकलोलदृशान्यया ॥१४॥

अर्थ—एक सुन्दरी के मुख की सुगन्ध के लोभ से एक भ्रमर उसके ऊपर मँडराने लगा, उसके भय की घबराहट से सुशोभित वह सुन्दरी जब भागने लगी तब उसकी अलकें उसकी चंचल आँखों के ऊपर आ गिरी और उसकी सुवर्ण-मेखला से सुमधुर ध्वनि होने लगी।

टिप्पणी—स्वभावोक्ति तथा अनुप्रास और यमक की संसृष्टि।

अजगणन् गणशः प्रियमग्रतः प्रणतमप्यभिमानितया न याः ।
सति मधावभवन्मदनव्यथा विधुरिता धुरि ताः कुकुरस्त्रियः ॥१५॥

अर्थ—जो यादव रमणियाँ अनेक बार आगे झुक-झुककर प्रार्थना करते हुए प्रियतम को अपनी स्वाभिमानिता के कारण कुछ नहीं गिन रही थीं वे ऋतुराज वसन्त के आ जाने पर काम-पीडा से व्याकुल होकर स्वयमेव अपने प्रियतमों के पास पहुचने लगीं।

टिप्पणी—यमक अलंकार।

कुसुमकार्मुककार्मुकसंहितद्रुतशिलीमुखखण्डितविग्रहाः ।
मरणमप्यपराः प्रतिपेदिरे किमु मुहुर्मुमुहुर्गतभर्तृकाः ॥ १६ ॥

अर्थ—(इस वसन्त ऋतु मे) पति से विरहित कुछ अन्य रमणियाँ कामदेव के धनुष से चलाये गये द्रुतगामी बाणों की चोट से विदीर्ण शरीरवाली होकर मृत्यु को प्राप्त हो गयीं। उनके बारम्बार मूर्छित होने का तो कहना ही क्या है?

[निम्न तीन श्लोकों मे किसी विरहिणी का उसकी प्रिय सखी आश्वासन देते हुए कहती है —]

रुरुदिषा वदनाम्बुरुहश्रियः सुतनु सत्यमलंकरणाय ते।
तदपि संप्रति संनिहिते मधावधिगमं धिगमङ्गलमश्रुणः ॥१७॥
त्यजति कष्टमसावचिरादसून् विरहवेदनयेत्यघशङ्किभिः।
प्रियतया गदितास्त्वयि बान्धवैरवितथा वितथाः सखि मा गिरः॥१८॥
न खलु दूरगतोऽप्यतिवर्तते महमसाविति बन्धुतयोदितैः।
प्रणयिनो निशमय्य वधूर्बहिः स्वरमृतैरमृतैरिव निर्ववौ ॥१९॥

अर्थ—"हे सुन्दरि! यद्यपि यह तुम्हारी रोने की इच्छा निश्चय ही तुम्हारे कमलमुख की शोभा बढ़ाती है किन्तु फिर भी अब ऋतुराज वसन्त के आगमन के उत्सव पर तुम्हारा यह अश्रुपात-रूप अमंगल आचरण करना अनुचित है। स्नेह के वश होकर प्रियजन तुम्हारे अनिष्ट की आशंका से तुम्हारे विषय मे यही कहेंगे कि—हाय! यह बेचारी प्रिय की विरह-वेदना से शीघ्र ही प्राण त्याग कर देगी—हे सखि! तुम उनकी इन असत्य बातों को सत्य न होने दो, क्योंकि तुम्हारा प्रियतम यद्यपि दूर परदेश मे है किन्तु वह इस वसन्तोत्सव को नहीं छोड़ेगा।" जब इस प्रकार प्रियजनों (सखियों) द्वारा उस रमणी को आश्वासन दिया जा रहा था तब ठीक उसी समय बाहर (से आये हुए) प्रियतम के कण्ठस्वर को सुनकर प्रियजनों की इन सत्य बातों से वह सुन्दरी ऐसी तृप्त हो गयी मानो अमृत रस से सींच दी गयी हो।

टिप्पणी—रसिकों की दृष्टि मे मनोहर आकृतिवाली का रुदन भी शोभा जनक होता है। प्रियजन लोग प्रेम के कारण सदा अनिष्ट की आशंका किया ही करते है।

के ऐसा कहने पर वह सुन्दरी अपने प्रियतम से झटपट ऐसी लिपट गयी मानो वह सचमुच भ्रमरों से भयभीत हो गयी हो। आलिंगन करने के लिए दोनों हाथों के ऊपर उठा लेने से उसके स्तन अधिक ऊंचे हो गये तथा त्रिवली से सुशोभित उसका उदर भाग स्पष्ट दिखाई पड़ने लगा।

टिप्पणी—नायक चाहता था कि उनकी प्रियतमा स्वय दौडकर उसका गाढ आलिंगन कर। लतापुष्प के पास उन्त हुए भ्रमरो का दिखाकर उसने उस डरा दिया। फिर तो नायिका स्वय दौडकर उसस झटपट लिपट गयी। वस्तुत दोनो के अनुराग ही स एसा हुआ भ्रमरो का भय तो एक बहाना मात्र था। प्रथम श्लोक म भ्रान्तिमान द्वितीय में उपमा अनुप्रास और यमक की विजातीय ससृष्टि तथा ततीय में यमक अलकार है।

वदनसौरभलोभपरिभ्रमद्भ्रमरसम्भ्रमसभृतशोभया।
चलितया विदधे कलमेखलाकलकलोऽलकलोलदृशान्यया ॥१४॥

अर्थ—एक सुन्दरी के मुख की सुगन्ध क लोभ से एक भ्रमर उसके ऊपर मँडराने लगा, उसके भय की घबराहट से सुशोभित वह सुन्दरी जब भागने लगी तब उसकी अलके उसकी चचल आखो के ऊपर आ गिरी और उसकी सुवर्ण मेखला से सुमधुर ध्वनि होने लगी।

टिप्पणी—स्वभावोक्ति तथा अनुप्रास और यमक की ससृष्टि।

अजगणन् गणशः प्रियमग्रतः प्रणतमप्यभिमानितया न याः।
सति मधावभवन्मदनव्यथा विधुरिता धुरि ताः कुकुरस्त्रियः ॥१५॥

अर्थ—जो यादव रमणियाँ अनेक बार आगे झुक-झुककर प्रार्थना करते हुए प्रियतम को अपनी स्वाभिमानिता के कारण कुछ नहीं गिन रही थीं वे ऋतुराज वसन्त के आ जाने पर काम-पीडा से व्याकुल होकर स्वयमेव अपने प्रियतमो के पास पहुचने लगीं।

टिप्पणी—यमक अलकार।

कुसुमकार्मुककार्मुकसहितद्रुतशिलीमुखखण्डितविग्रहाः।
मरणमप्यपराः प्रतिपेदिरे किमु मुहुर्मुमुहुर्गतभर्तृकाः ॥ १६ ॥

अर्थ—(इस वसन्त ऋतु में) पति से विरहित कुछ अन्य रमणियाँ कामदेव के धनुष से चलाये गये द्रुतगामी बाणों की चोट से विदीर्ण शरीरवाली होकर मृत्यु को प्राप्त हो गयीं। उनके बारम्बार मूर्छित होने का तो कहना ही क्या है?

[निम्न तीन श्लोकों में किसी विरहिणी का उसकी प्रिय सखी आश्वासन देते हुए कहती है —]

रुरुदिषा वदनाम्बुरुहश्रियः सुतनु सत्यमलंकरणाय ते।
तदपि संप्रति संनिहिते मधावधिगमं धिगमङ्गलमश्रुणः ॥१७॥
त्यजति कष्टमसावचिरादसून् विरहवेदनयेत्यघशङ्किभिः।
प्रियतया गदितास्त्वयि बान्धवैरवितथा वितथाः सखि मा गिरः॥१८
न खलु दूरगतोऽप्यतिवर्तते महमसाविति बन्धुतयोदितैः।
प्रणयिनो निशमय्य वधूर्बहिः स्वरमृतैरमृतैरिव निर्ववौ ॥१९॥

अर्थ—"हे सुन्दरि! यद्यपि यह तुम्हारी रोने की इच्छा निश्चय ही तुम्हारे कमलमुख की शोभा बढाती है किन्तु फिर भी अब ऋतुराज वसन्त के आगमन के उत्सव पर तुम्हारा यह अश्रुपात रूप अमंगल आचरण करना अनुचित है। स्नेह के वश होकर प्रियजन तुम्हारे अनिष्ट की आशंका से तुम्हारे विषय में यही कहेंगे कि—हाय! यह बेचारी प्रिय की विरह-वेदना से शीघ्र ही प्राण त्याग कर देगी—हे सखि! तुम उनकी इन असत्य बातों को सत्य न होने दो, क्योंकि तुम्हारा प्रियतम यद्यपि दूर परदेश में है किन्तु वह इस वसन्तोत्सव को नहीं छोडेगा।" जब इस प्रकार प्रियजनों (सखियों) द्वारा उस रमणी को आश्वासन दिया जा रहा था तब ठीक उसी समय बाहर (से आये हुए) प्रियतम के कण्ठस्वर को सुनकर प्रियजनों की इन सत्य बातों से वह सुन्दरी ऐसी तृप्त हो गयी मानों अमृत रस से सींच दी गयी हो।

टिप्पणी—रमणियों की दृष्टि में मनोहर आकृतिवालों का रुदन भी शोभा जनक होता है। प्रियजन लोग प्रेम के कारण सदा अनिष्ट की आशंका किया करते हैं।

मधुरया मधुबोधितमाधवीमधुसमृद्धिसमेधितमेधया ।
मधुकराङ्गनया मुहुरुन्मदध्वनिभृता निभृताक्षरमुज्जगे ।२०॥

अर्थ—मधुर स्वर से गुंजार करनेवाली भ्रमरियों की प्रतिभा वसन्त ऋतु के आगमन से प्रफुल्लित माधवी लता के मकरन्द (पान) के कारण बहुत बढ़ गयी और वे बार-बार मन को उन्मत्त करने वाली ध्वनि से अस्पष्ट गान करने लगीं ।

टिप्पणी—भ्रमरों का गुंजार सुनकर कामियों में रसोद्रेक होता ही है। अनुप्रास और यमक अलंकार ।

अरुणिताखिलशैलवना मुहुर्विदधती पथिकान् परितापिनः ।
विकचकिंशुकसंहतिरुच्चकैरुदवहद्दवहव्यवहश्रियम् ॥ २१ ॥

अर्थ—अपने (लाल लाल) पुष्पों से सम्पूर्ण पर्वत तथा वन प्रदेश को लालवर्ण में रंग देने वाली, बारम्बार पथिकों को सन्तप्त करनेवाली एवं उच्च भूमि पर फूली हुई पलाशों की पुष्पराशियों ने दावाग्नि की शोभा धारण कर ली ।

टिप्पणी—वसन्त ऋतु में फूले हुए पलाश के लाल-लाल पुष्पों को देखकर विरहियों का हृदय सन्तप्त होता है । निदर्शना अलंकार ।

[अंग के तीन श्लोकों में ग्रीष्म ऋतु का वर्णन है वसन्त का वर्णन समाप्त हो गया—]

रवितुरङ्गतनूरुहतुल्यतां दधति यत्र शिरीषरजोरुचः ।
उपययौ विदधन्नवमल्लिकाः शुचिरसौ चिरसौरभसंपदः ॥२२॥

अर्थ—वसन्त ऋतु के अनन्तर जिस ऋतु में शिरीष के पुष्पों के पराग की कान्ति सूर्य के घोड़ों की रोमावली के समान (हरा और पीला) रूप धारण करती है—ऐसी वह ग्रीष्म ऋतु चमेली की सुगन्धि को चिरस्थायी करती हुई आकर उपस्थित हो गयी ।

टिप्पणी—ग्रीष्म ऋतु में शिरीष और चमेली में पुष्प आते हैं । यमक अलंकार ।

दलितकोमलपाटलकुड्मले निजवधूश्वसितानुविधायिनि ।
मरुति वाति विलासिभिरुन्मदभ्रमदलौ मदलौल्यमुपाददे ॥२३॥

अथ—कोमल पाटल की नलियों को फोडनेवाले अर्थात विकसित करनेवाले, शृगारियों की वधू के श्वासोच्छ्वास का अनुकरण करनेवाले एव मतवाले भ्रमरो को भ्रमण करानेवाले ग्रीष्म ऋतु के पवन के वहने पर विलासियो मे काम की व्याकुलता वढ़ने लगी।

टिप्पणी—अर्थात पाटल की सुगधि म सिक्त ग्रीष्म की वायु के वहत ही लोग कामातुर होन लगे। यमक अलकार।

निदधिरे दयितोरसि तत्क्षणस्नपनवारितुपारभृतः स्तनः।
मरसचन्दनरेणुरनुक्षण विचकरे च करेण वरोरुभिः ॥२४॥

अथ—तत्क्षण स्नान से निवृत्त मोटे जघवाली सुन्दरी रमणियो ने जलविन्दु से विभूषित अपने दोनो स्तनो को अपने प्रियतमो के वक्षस्थल पर रख दिया और साथ ही वारम्वार अपने हाथो से उसके अगो पर घिसे हुये नये चन्दन का लेपन भी कर दिया।

[आग क श्लोको म वर्षा ऋतु का वणन ह।]

स्फुरदधीरतडिन्नयना मुहुः प्रियमिवागलितोरुपयोधरा।
जलधरावलिरप्रतिपालितस्वसमया समयाज्जगतीधरम् ॥२५॥

अथ—वारवार विजली रूपी आँखो को चमकाती हुई उमडे हुए विशाल उन्नत पयोधरो (स्तनों, वादलो) वाली जलधरो की पक्तियाँ अपने समय की विना प्रतिज्ञा किए ही प्रियतम के समान रैवतक पर्वत के समीप आ गयी।

टिप्पणी—समासोक्ति आर उपमा का सकर। जिस प्रकार काई चचलनयना एव उन्नतस्तना नायिका अपन प्रियतम क पास निर्दिष्ट समय की प्रतीक्षा विना किए ही अभिसरण करती ह उसी प्रकार चमकती हुई विजली और उमड हुए काले वादलो स युक्त वर्षा ऋतु भी अपन प्रियतम रवतक पवत क पास समय से कुछ पव ही आ पहुचा। पवतो पर वर्षा का आगमन कुछ पहल ही होता है।

गजकदम्बकमेचकमुच्चकैर्नभसि वीक्ष्य नवाम्बुदमम्बरे।
अभिससार न वल्लभमङ्गना न चकमे च कमेकरसं रहः ॥२६॥

अर्थ--श्रावण के महीने में, आकाश में हाथियों के समूहों के समान काले रंग के ऊँचे और नवीन बादलों को देखकर कौन ऐसी रमणी थी जो अपने अनन्य प्रेमी प्रियतम को एकान्त में नहीं चाहने लगी तथा उसके पास अभिसार नहीं करने लगी।

टिप्पणी--श्रावण के काले बादल कामिनियों का उद्दीपन करते हैं। अतिशयोक्ति तथा यमक अलङ्कार।

अनुययौ विविधोपलकुण्डलद्युतिवितानकसंवलितांशुकम्।
धृतधनुर्वलयस्य पयोमुचः शवलिमा वलिमानमुषो वपुः ॥२७॥

अर्थ--मण्डलाकार इन्द्र धनुष को धारण करनेवाले बादलों की विचित्रता बलि का मान मर्दन करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण के उस शरीर की शोभा का अनुकरण कर रही थी, जिस पर अनेक प्रकार की मणियों से जटित कुण्डलों की किरणों से विमिश्रित वस्त्र सुशोभित थे।

टिप्पणी--उपमा अलङ्कार।

द्रुतसमीरचलैः क्षणलक्षितव्यवहिता विटपैरिव मञ्जरी।
नवतमालनिभस्य नभस्तरोरचिररोचिररोचत वारिदैः ॥२८॥

अर्थ--नवीन तमाल वृक्ष के समान आकाश-रूपी वृक्ष की तेज वायु से हिलती हुई शाखाओं के समान मेघों के बीच में क्षण भर के लिए दिखाई पड़ती हुई तथा क्षण भर के लिए छिपी हुई बिजली मंजरी के समान शोभा पा रही थी।

टिप्पणी--उपमा अलङ्कार।

पटलमम्बुमुचां पथिकाङ्गना सपदि जीवितसंशयमेष्यती।
सनयनाम्बुसखीजनसंभ्रमाद्विधुरबन्धुरबन्धुरमैक्षत ॥२९॥

अर्थ--किसी पथिक की कोई विरहिणी रमणी शीघ्र ही मरने जा रही थी। उसकी प्रिय सखियाँ आँसू बहाकर उसके लिए शोक और त्रास प्रकट कर रही थीं। और इसी कारण उसके घर वाले भी व्याकुल हो रहे थे। इसी समय उस विरहिणी ने बड़ी दीनता और रोष के साथ मेघों की ओर आँखें उठा कर देखा।

प्रसतः सुतरामुदकम्पयद्विदलकन्दलकम्पनलालितः ।
नमयति स्म वनानि मनस्विनीजनमनोनमनो घनमारुतः ॥३०॥

अर्थ—खिले हुए कन्दली के पुष्पों को कँपाने के सुगन्धित, मानिनी रमणियों के मान को भग करने वाला एवं मेघों को स्पर्श करने वाला पवन वन के वृक्षों को झकोरने लगा तथा प्रवासियों को विशेष रूप से उद्विग्न करने लगा।

टिप्पणी—जो मानिनियों के मान भंजन करने में समर्थ है, उसका वन के वृक्षों को झकोरना अथवा प्रवासियों को विशेष उद्विग्न करना क्या बड़ी बात है।

जलदपंक्तिरनर्तयदुन्मदं कलविलापि कलापिकदम्बकम्।
कृतसमार्जनमर्दलमण्डलध्वनिजया निजया स्वनसंपदा ॥३१॥

अर्थ—मेघों की पंक्तियाँ मसाला लगे हुए नगारों के शब्दों को पराजित करने वाले अपने गर्जन से मधुर शब्द करने वाले मदोन्मत्त मयूरों को नचाने लगीं।

टिप्पणी—मदमत्त लोग नगाडा का शब्द सुनकर झूमने ही लगते है।

नवकदम्बरजोरुणिताम्बरैरधिपुरन्ध्रि शिलीन्ध्रसुगन्धिभिः ।
मनसि रागवतामनुरागिता नवनवा वनवायुभिरादधे ॥३२॥

अर्थ—नवीन कदम्ब के मकरन्द से आकाश को लाल रंग का बना देने वाली एवं भूमि-कन्दली के पुष्पों से सुगन्धित वन की वायु ने रमणियों के प्रति अनुरक्त विलासियों के चित्त में नये-नये अनुराग उत्पन्न कर दिये।

शमिततापमपोढमहीरजः प्रथमबिन्दुभिरम्बुमुचोऽम्भसाम् ।
अविरलैरचलाङ्गनमङ्गनाजनसुगं न सुगन्धि न चक्रिरे ॥३३॥

अर्थ—मेघों ने जल-वृष्टि की थोड़ी-थोड़ी प्रथम बूँदों से गर्मी को दूर कर दिया तथा धरती की धूल-धक्कड़ को साफ कर दिया। क्या इस प्रकार उसने रैवतक के तट को सुगन्धित कर के विलासिनी रम-

गियों के सुख पूर्वक सचरण के योग्य नही बना दिया (—ऐसा नहीं किन्तु बना ही दिया।)

टिप्पणी—वर्षा ऋतु की प्रथम बदा से गर्मी शान्त हो जाती है धूल धक्कड साफ हो जाता है तथा भूमि से सोधी-सोधी सुगन्ध आने लगती है। श्लोक म दा नकार प्रकृत अर्थ की विशेष पुष्टि के लिए है।

द्विरददन्तवलक्षमलक्ष्यत स्फुरितभृङ्गमृगच्छवि केतकम्।
घनघनौघविघट्टनया दिवः कृशशिखं शशिखंडमिवच्युतम् ॥३४॥

अर्थ—हाथी के दाँत के समान शुभ्र-वर्ण एव मृगचिह्न रूपी भ्रमते हुए भ्रमरों से युक्त केतकी के फूल इस प्रकार दिखाई पडे मानो सघन मेघोंके सघर्षण से आकाश से नीचे गिरे हुए चन्द्रमा के छोटे-छोटे टुकडे हों।

टिप्पणी—केतकी वर्षा में फूलती है। कवि उसके फूलो की उत्प्रेक्षा कर रहा है। उसकी दृष्टि में यह केतकी के फल नही मानो बादलो की जमघट में ऊपर से धरती पर गिरे हुए चन्द्रमा के छोटे-छोटे टुकडे हैं। चन्द्रमा के टुकडो म मृगचिह्न भी होना चाहिए, वह केतकी के फूल पर मँडराते हुए भ्रमरो की पक्तिया ह। केतकी पुष्प का उपमान चन्द्रखण्ड और भ्रमर का उपमान मृग है। उत्प्रेक्षा अलकार।

दलितमौक्तिकचूर्णविपाण्डवः स्फुरितनिर्झरशीकरचारवः।
कुटजपुष्पपरागकणाः स्फुटं विदधिरे दधिरेणुविडम्बनाम् ॥३५॥

अर्थ—पिसे हुए मोती के चूर्ण के समान अति शुभ्र एव ऊपर छह-राते हुए झरने के उज्ज्वल जल कणो के समान सुन्दर इन्द्रजव के पुष्पो के पराग के कण स्पष्ट ही दही के छोटे-छोटे छींटो की समानता धारण कर रहे थे।

टिप्पणी—दो उपमानो से अनुप्राणित उपमा अलकार।

ननपयःकणकोमलमालतीकुसुमसंततिसंततसङ्गिभिः।
प्रचलितोडुनिभैः परिपाण्डिमा शुभरजोभरजोऽलिभिराददे ॥३६॥

अर्थ—नवीन जलविन्दु के समान कोमल मालती के पुष्पों के ससग में रात-दिन रहने से (उसके पराग से धूसरित होने के कारण) मानो चलते हुए नक्षत्रों के समान भ्रमरों ने उसके श्वेत पराग के पुंजों की धवलिमा को धारण कर लिया था।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलंकार।

निजरजः पटवासमिवाकिरद्धृतपटोपमवारिमुचां दिशाम्।
प्रियवियुक्तवधूजनचेतसामनवनी नवनीपवनावलिः ॥ ३७ ॥

अर्थ—अपने प्रियतम से विरहित रमणियों के चित्त की रक्षा न करने वाली अर्थात् उन्हें दुःख देनेवाली नवीन कदम्ब वन की पंक्तियाँ, वस्त्रों के समान मेघमालाओं से आवृत दिशाओं में अपने पराग को, वस्त्रों को सुवासित करनेवाले पाउडर की भाँति बिखेर दिया।

टिप्पणी—जैसे कोई नायिका अपनी सखी के वस्त्रों पर सुगन्धित पाउडर छिड़कती है उसी प्रकार कदम्बों की पंक्तियों ने मेघमाला रूपी वस्त्रों में आवृत दिशाओं में अपना पराग बिखेर दिया।

प्रणयकोपभृतोऽपि पराङ्मुखाः सपदि वारिधरारवभीरवः।
प्रणयिनः परिरब्धुमथाङ्गना ववलिरे वलिरेचितमध्यमाः ॥३८॥

अर्थ—प्रणय कोप से पराङ्मुख रहनेवाली रमणियाँ भी वर्षा ऋतु में मेघ के गर्जन से भयभीत होकर अपने प्रियतमों का गाढ आलिंगन करने लगीं। उस समय अंगों के तन जाने से उनके उदर की त्रिवलियाँ लुप्त हो गयीं।

निगतरागगुणोऽपि जनो न कथलति वाति पयोदनभस्वति।
अभिहितेऽलिभिरेवमिवोच्चकैरननृते ननृते नवपल्लवैः ॥ ३९ ॥

अर्थ—वर्षा ऋतु की (मादक) वायु के बहने पर विरक्त होकर भी कौन ऐसा मनुष्य है जो विचलित नहीं हो जाता—इस प्रकार भ्रमरों के उच्च स्वर से सत्य वचन कहने पर मानो वृक्षों के नव पल्लव नाचने से लगे।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलंकार।

अरमयन् भवनादचिरद्युतः किल भयादपयातुमनिच्छवः ।
यदुनरेन्द्रगणं तरुणीगणास्तमथ मन्मथमन्थरभाषिणः ॥ ४० ॥

अर्थ—बिजली के डर का बहाना बनाकर पति के कक्ष से बाहर जाने की अनिच्छुक एवं काम-वेदना से मधुर-मन्द स्वर मे बोलती हुई तरुणियाँ यदुवंशी राजाओं के साथ रमण करने मे प्रवृत्त हो गयीं।

टिप्पणी—बिजली का डर बहाना मात्र था, वस्तुतः तरुणियाँ काम-वेदना से पीडित होने के कारण क्षण भर के लिए भी अपने प्रियतम को छोडना नही चाहती थीं। मीलन अलकार। वर्षा वर्णन समाप्त हुआ।

[आगे के चौदह श्लोको में शरद् ऋतु का वर्णन है—]

ददृशमन्तरिताहिमदीधितिं खगकुलाय कुलायनिलायिताम् ।
जलदकालमबोधकृतं दिशामपरथाप रथावयवायुधः ॥ ४१ ॥

अर्थ—चक्रपाणि भगवान् श्री कृष्णचन्द्र ने सूर्य को तिरोहित करने वाले, पक्षियों के समूहों को घोंसलों मे छिपानेवाले (छिपने के लिए बाध्य करनेवाले) तथा दिशाओं के ज्ञान को लुप्त करनेवाले वर्षा काल को अब अन्य रूप मे प्राप्त किया।

टिप्पणी—वर्षा में मेघावृत आकाश होने के कारण दिशाएं नहीं ज्ञात होती। पक्षीगण अपने घोंसले में ही बैठे रह जाते है तथा सूर्य भी छिपा रहते हैं। इस वर्षा काल को दूसरे रूप में प्राप्त करने का तात्पर्य यह है कि अब ऐसा कुछ नही रहा, शरद् ऋतु आगयी।

स विकचोत्पलचक्षुषमैक्षत क्षितिभृतोऽङ्कगतां दयितामिव ।
शरदमच्छगलद्वसनोपमाक्षमघनाममघनाशनकीर्तनः ॥ ४२ ॥

अर्थ—जिनके कीर्त्तन मात्र से सम्पूर्ण पापपुञ्ज नष्ट हो जाते हैं—ऐसे उन भगवान श्री कृष्णचन्द्र ने विकसित कमल-रूपी नेत्रों वाली तथा नीचे गिरते हुए निर्मल वस्त्रों के समान श्वेत मेघों से युक्त शरद ऋतु को रैवतक (अथवा राजा) की गोद मे विराजमान स्त्री की भाँति देखा।

टिप्पणी—जैसे कोई विलासी किसी स्त्री को राजा की गोद में विराजमान देखता है उसी प्रकार भगवान श्रीकृष्ण ने शरदऋतु को रैवतक के अचल म विराज

मान दखा। खिले हुए कमल न ना के समान पर थे तथा जलरहित श्वेत बादल नाच गिरते हुए वस्त्र क समान थे।

जगति नैशमशीतकरः करैर्वियति वारिदवृन्दमयं तमः।
जलजराजिषु नेद्रमदिद्रनन्न महतामहताः क्व च नारयः ॥४३॥

अथ—(शरद ऋतु के) सूर्य ने अपनी किरणों से धरती से रात्रि के घने अन्धकार, आकाश से मेघ-पुञ्ज रूपी अन्धकार तथा कमलों से सकोच रूपी अन्धकार को (एकदम) दूर कर दिया। क्या न हो, महान् पुरुषों के शत्रु कहाँ नहीं नष्ट होते अर्थात् वे जहाँ कहीं होते हैं वहीं उनका नाश होता है।

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलङ्कार।

समय एव करोति बलाबलं प्रणिगदन्त इतीव शरीरिणाम्।
शरदि हंसरवाः परुषीकृतस्वरमयूरमयू रमणीयताम् ॥ ४४॥

अथ—"समय ही शरीरधारियों को बलवान् और निर्बल बनाता है—" मानो यही कहते हुए शरद् ऋतु में हंसों के शब्द मधुर मालूम पड़ने लगे और मयूरों के स्वर कर्कश हो उठे।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलङ्कार।

तनुरुहाणि पुरो विजितध्वनेर्धवलपक्षविहगमकूजितैः।
जगलुरक्षमयेव शिखण्डिनः परिभवोऽरिभवो हि सुदुःसहः॥४५॥

अथ—(शरद् ऋतु में) हंसों के कूजने से जिनकी ध्वनि पराजित हो चुकी थी—ऐसे मयूरों ने मानो ईर्ष्या वश होकर अपने पंख झाड़ दिए। क्या न हो शत्रुओं द्वारा किया गया तिरस्कार असह्य होता ही है।

टिप्पणी—शरद् ऋतु में स्वभावतः मयूरों के पंख झड़ जाते हैं। यहाँ कवि ने प्रस्तुत में इस विकार की उत्प्रेक्षा की है। मनस्वी पुरुष शत्रु के अनादर में सिर मुंडन करा ही देते हैं। गुण हेतूत्प्रेक्षा अलङ्कार तथा चौथे चरण में साधर्म्य का समर्थन रूप अर्थान्तरन्यास का मिश्रण।

होने के कारण मानों ऐरावत के चर्म-रूपी कंचुक से ढकी हुई के समान देखा।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा और रूपक अलंकार की संसृष्टि।

वितुलितामनिलैः शरदङ्गना नवसरोरुहकेशरसंभवाम्।
विकरितुं परिहासचिकीर्षया हरिवधूरिव धूलिमुदक्षिपत्॥५२॥

अर्थ—शरद्-वधू ने वायु से उड़ाई हुई, नवीन कमलों की केसरों से उत्पन्न धूलि (पराग) को परिहास करने की इच्छा से मानों भगवान् श्रीकृष्ण की स्त्रियों के ऊपर बिखेरने के लिए फेंक दिया था।

टिप्पणी—स्त्रियां बहुधा परिहासवश अपनी सखियों के ऊपर धूल फेंक देती हैं। रूपक से अनुप्राणित उत्प्रेक्षा अलंकार।

हरितपत्रमयीव मरुद्गणैः स्रगवनद्धमनोरमपल्लवा।
मधुरिपोरभिताम्रमुखी मुदं दिवि तता वितता शुकावलिः ५३

अर्थ—लाल मुख वाले तोतों की पंक्तियों ने आकाश में (उड़ते हुए) मानों देवताओं द्वारा ग्रथित हरे-हरे पत्तों से युक्त उस माला की भाँति भगवान श्री कृष्ण को आनन्दित किया, जिसके बीच-बीच में लाल-लाल नूतन-पल्लव गूँथे गए हों।

टिप्पणी—शरद् ऋतु में बहुधा तोतों की पंक्तियां आकाश में उड़ती हैं। कवि उसी की उत्प्रेक्षा कर रहा है, मानो देवताओं ने आकाश में भगवान् की प्रसन्नता के लिए हरे हरे पत्तों के बीच बीच में गूंथ लाल पल्लव गूंथ कर माला बना दी हो।

स्मितसरोरुहनेत्रसरोजलामतिसितासिविहंगहसद्दिशम्।
अकनयन्मुदितामिव सर्वतः स शरदं शरदन्तुरदिङ्मुखाम् ५४॥

अर्थ—भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने शरद ऋतु को मानों सर्वत्र आनन्द में निमग्न के समान देखा। सरोवरों के निर्मल जल में नेत्ररूपी कमल खिले हुए थे, अत्यन्त श्वेत पंख वाले हंसों से मानों

विगतसस्यजिघत्समघट्टयत्कलमगोपवधूर्न मृगव्रजम् ।
श्रुततदीरितकोमलगीतकध्वनिमिषेऽनिमिषेक्षणमग्रतः ॥४६॥

अर्थ—आश्विन के महीने में धान की रखवाली करनेवाली स्त्रियाँ अपने आगे खडे हुए उन हरिणों को (डराकर) नहीं भगातीं जो निर्निमेष नयनों से धान को खाने की इच्छा त्याग कर उनके द्वारा कोमल स्वर में गाये जाने वाले गीतों की मनोहर ध्वनि को सुन रहे थे।

टिप्पणी—जहा धान की रक्षा के लिए डराकर मृगो को भगाना चाहिए था, वहा कोमल गीत स हो वह कार्य सुकर हो गया। समाधि अलकार।

कृतमदं निगदन्त इवाकुलीकृतजगत्त्रयमूर्जमतङ्गजम् ।
ववुरयुक्छदगुच्छसुगन्धयः सततगास्ततगानगिरोऽलिभिः ॥५०॥

अर्थ—सप्तपर्ण (छितवन) के पुष्पों के गुच्छों से सुगन्धित तथा भ्रमरों द्वारा गाकर प्रशसित वायु, मदोन्मत्त एव तीनों लोकों को व्याकुल कर देने वाले मानों कातिक मास-रूपी हाथी के आगमन की सूचना-सी देती हुई वहने लगी।

टिप्पणी—मतवाले हाथी के आगमन के समय लोग चिल्लाने लगते हैं—भागो, भागो, यह मतवाला हाथी इधर ही आ रहा है। मानो इसी प्रकार कातिक रूपी मतवाल हाथी के आगमन की सूचना शरद् की वायु भी दे रही थी। मतवाल हाथी के आगमन के समय भी इसी प्रकार की वायु बहती है। कार्त्तिक मास अत्यत कामोत्तेजक होता है और चित्त को विकारी बनानेवाला है। उत्प्रेक्षा और रूपक अलकारका सकर। रूपक यहा उत्प्रेक्षा का अग बन गया है।

विगतवारिधरावरणाः क्वचिद्ददृशुरुल्लसितासिलतासिताः ।
क्वचिदिवेन्द्रगजाजिनकञ्चुकाः शरदि नीरदिनीर्यदवो दिशः ५१

अर्थ—यदुवशियों ने शरद ऋतु में, किसी अचल म मेघरूपी आवरण से रहित दिशाओं को म्यान से बाहर निकली हुई तलवार क समान श्यामल रग की, तथा किसी अचल में (श्वेत) बादलों से युक्त

होने के कारण मानो ऐरावत के चर्म-रूपी कचुक से ढकी हुई के समान देखा।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा और रूपक अलकार की ससृष्टि।

विधुलितामनिलैः शरदङ्गना नवसरोरुहकेशरसंभवाम्।
विकरितुं परिहासनिधित्सया हरिवधूरिव धूलिमुदक्षिपत्॥५२॥

अथ—शरद्-वधू ने वायु से उडाई हुई, नवीन कमलों की केसरों से उत्पन्न धूलि (पराग) को परिहास करने की इच्छा से मानों भगवान् श्री कृष्ण की स्त्रियों के ऊपर बिखेरने के लिए फेंक दिया था।

टिप्पणी—स्त्रिया बहुधा परिहासवश अपनी सखिया के ऊपर धूल फेंक देती है। रूपक स अनुप्राणित उत्प्रेक्षा अलकार।

हरितपत्रमयीव मरुद्गणैः स्रगवनद्धमनोरमपल्लवा।
मधुरिपोरभिताम्रमुखी मुदं दिवि तता विततान शुकावलिः ५३

अथ—लाल मुख वाले तोतो की पक्तियों ने आकाश में (उडते हुए) मानों देवनाओं द्वारा मथित हरे-हरे पत्तों से युक्त।उस माला की भाँति भगवान श्री कृष्ण को आनन्दित किया, जिसके बीच-बीच में लाल-लाल नूतन-पल्लव गूँथे गए हों।

टिप्पणी—शरद् ऋतु में बहुधा तोता री पक्तियां आकाश में उडती है। रवि उसी की उत्प्रेक्षा कर रहा है, मानो देवताओ ने आकाश में भगवान् की प्रसन्नता क लिए हरे हरे पत्ता क बीच बीच में नूतन लाल पल्लव गूथ कर माला बना दी हो।

स्मितसरोरुहनेत्रसरोजलामतिसिताङ्गविहंगहसद्दिवम्।
अकलयन् मुदितामिव सर्वतः स शरदं शरदन्तुरदिङ्मुखाम् ५४॥

अथ—भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने शरद् ऋतु को मानों सर्वत्र आनन्द में निमग्न क समान देखा। सरोवरो के निर्मल जल म नत्ररूपी कमल खिले हुए थे, अत्यन्त श्वेत पख वाले हंसो से मानों

आकाश हस रहा था, और सभी दिशाओं के मुखों में मानो सरस्पड के फूल दाँतों की शोभा प्रकट कर रहे थे।

टिप्पणी—रूपक और उत्प्रेक्षा अलकार का सकर।

[अब आगे के सात श्लोकों में हेमन्त ऋतु का वर्णन किया गया है —]

गजपतिद्वयसीरपि हैमनस्तुहिनयन् सरितः पृषता पतिः।
सलिलसततिमध्वगयोषितामतनुतातनुतापकृतं दृशाम् ॥५५॥

अर्थ—(तदनन्तर) हेमन्त की उस वायु ने, जिसने हाथी डुबा देने वाली गहरी नदियों को भी बर्फ बना दिया था, पथिकों की स्त्रियों की आँखों में बहुत सन्ताप करनेवाली अर्थात् बहुत गरम आँसुओं की धाराएं पैदा कर दीं।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि विरहिणी रमणियों को असह्य वेदना देने वाली हेमन्त की वायु बहने लगी।

इदमयुक्तमहो महदेव यद्वरतनोः स्मरयत्यनिलोऽन्यदा।
स्मृतसयौवनसोष्मपयोधरान् सतुहिनस्तु हिनस्तु वियोगिनः ५६

अर्थ—अन्य ऋतुओं में जो वायु विरही लोगों को उनकी प्रियतमाओं की यादें दिलाती है—यह बहुत ही अनुचित बात है। (क्योंकि स्मरण तो साहचर्य के होने पर ही होता है, यह तो सचमुच आश्चर्य का विषय है) और हेमन्त के समय में तो जब विरही लोग (शीत के मारे अपनी प्रियतमा के) जवानी में उठे हुए तरुण कुचों की उष्णता का स्मरण करते हैं तब तो यह शीतल वायु उन्हें मार ही डालती है।

टिप्पणी—जो मारक नहीं है उसमें मारक का सम्बन्ध रूप अतिशयोक्ति अलकार।

प्रियतमेन यया सरुषा स्थितं न सह सा सहसा परिरभ्य तम्।
श्लथयितुं क्षणमक्षमताङ्गना न सहसा सहसा कृतवेपथुः ॥ ५७ ॥

अर्थ—जो कामिनी रोष के कारण अपने प्रियतम के पास नहीं रुकती थी वही मानिनी मार्गशीर्ष मास (के शीत) से काँपती हुई अपने उसी प्रियतम के पास हँसती हुई बड़ी शीघ्रता के साथ जाकर लिपट गयी और अब वह क्षण भर के लिए भी अपने आलिंगन को ढीला नहीं करना चाहती।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि यह मार्गशीर्ष मास मानिनियों का मान भंजन करनेवाला है। यह नायिका कलहान्तरिता है।

भृशमदूयत याऽधरपल्लवक्षतिरनावरणा हिममारुतैः ।
दसनरश्मिपटेन च सीत्कृतैर्निवसितेव सितेन सुनिर्ववौ ॥ ५८ ॥

अर्थ—आवरण से रहित जो नायिका के अधररूपी पल्लव का घाव हेमन्त की वायु से अत्यन्त दुःख देने लगा था, वह सी-सी करने की आवाज द्वारा मानों दाँतों की उज्ज्वल किरण रूपी वस्त्र से ढँक जाने पर भली भाँति आराम पाने लगा।

टिप्पणी—जाड़े के समय ओढ़ना न होने पर जाड़े की वायु सब को सताती है और ओढ़ना पा जाने पर उसे आराम मिलता ही है। रूपक और उत्प्रेक्षा अलंकार का संकर।

[ऊपर के ही भाव को प्रकारान्तर से व्यक्त किया गया है—]

व्रणभृता सुतनोः कलसीत्कृतस्फुरितदन्तमरीचि मयं दधे ।
स्फुटमिवावरणं हिममारुतैर्मृदुतया दुतयाधरलेखया ॥ ५९ ॥

अर्थ—अत्यन्त कोमल होने के कारण हेमन्त की वायु से पीड़ित, दन्तक्षत से युक्त सुन्दरी की अधर-लेखा ने, मधुर सी-सी करने की आवाज के साथ प्रस्फुरित होने वाली दाँतों की किरणों के वस्त्र से मानों अपने आप को स्पष्ट ही ढँक-सा लिया था।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलंकार।

धृततुषारकणस्य नभस्वतस्तरुलताङ्गुलितर्जनविभ्रमाः ।
पृथु निरन्तरमिष्टभुजान्तरं वनितयाऽनितया न विषेहिरे ॥ ६० ॥

अर्थ—हिम कणों को धारण करने वाली वायु की वृक्षों की शाखाओं रूपी अंगुलियां के तर्जन रूपी विलास को, अपने प्रियतम के विशाल वक्षस्थल को निरन्तर न प्राप्त करने वाली (अर्थात् प्रियतम के गाढ़ आलिंगन से विरहित वियोगिनी) रमणियाँ नहीं सहन कर सकीं।

टिप्पणी—वियोगिनी स्त्रियां कामोद्दीपक वस्तुओं से अत्यंत विकल हो जाती हैं।

हिमऋतावपि ताः स्म भृशस्विदो युवतयः सुतरामुपकारिणि।
प्रकटयत्यनुरागमकृत्रिमं स्मरमयं रमयन्ति विलासिनः ॥ ६१ ॥

अर्थ—काम से उत्पन्न सहज अनुराग प्रकट करने वाले (अतएव) कामियों के अत्यन्त उपकारी हेमन्त ऋतु में भी युवतियां पसीने से तर हो कर विलासियों के साथ रमण करने लगीं।

[हेमन्त वर्णन समाप्त हुआ। आगे के पाँच श्लोकों में शिशिर ऋतु का वर्णन है—]

कुसुमयन्फलिनीरलिनीरवैर्मदविकासिभिराहितहुंकृतिः।
उपवनं निरभर्त्सयत प्रियान्वियुवतीर्युवतीः शिशिरानिलः ॥६२॥

अर्थ—(तदनन्तर) वन की प्रियंगु लताओं में फूल खिलाने वाली एवं मद से उल्लसित भ्रमरियों के गुंजारों में हुँकार करने वाली शिशिर ऋतु की वायु ने कोप के कारण प्रियतमा से वियुक्त रहने वाली युवतियों को मानो खूब तर्जना दी।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलङ्कार।

[शिशिर ऋतु में सूर्य की किरणें तेज नहीं होतीं, कवि उसी के सम्बन्ध में कहता है—]

उपचितेषु परेष्वसमर्थतां व्रजति कालवशाद्बलवानपि।
तपसि मन्दगभस्तिरभीषुमान्न हि महाहिमहानिकरोऽभवत् ॥६३॥

अर्थ—समय के हेर फेर से शत्रुओं की उन्नति हो जाने पर बलवान व्यक्ति भी (शत्रु को दबाने में) असमर्थ हो जाता है। देखो न ! माघ

के महीने मे कोमल किरणो वाला भास्कर प्रबल शीत की हानि करने मे असमर्थ हो जाता है।

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलकार।

अभिपिषेणयिषुं भुवनानि यः स्मरमिवारयत लोध्ररजश्चयः।
क्षुभितसैन्यपरागविपाण्डुरद्युतिरयं तिरयन्नुदभूद्दिशः॥ ६४॥

अर्थ—चलती हुई सेना से उडी धूल के समान शुभ्र वर्ण की लोध्र के फूलो की यह धूल मानों सभी लोकों को सेना द्वारा आक्रान्त करने के इच्छुक कामदेव (के आक्रमण) की सूचना देती हुई सभी दिशाओं को आच्छादित करके फैल गयी।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलकार।

शिशिरमासमपास्य गुणोऽस्य नः क इव शीतहरस्य कुचोष्मणः।
इति धियास्तरुषः परिरेभिरे घनमतो नमतोऽनुमतान् प्रियाः॥६५॥

अर्थ—"शिशिर के महीनों के बीत जाने पर शीत दूर करने वाले हमारे स्तनों की उष्णता का क्या फल होगा"—मानो ऐसा सोच कर इस शिशिर मास म रमणियाँ अपना मान छोड़कर अपने विनत प्रियतमा का प्रगाढ़ आलिगन करने लगीं।

टिप्पणी—गम्योत्प्रेक्षा।

[कवि प्रसिद्धि के अनुसार भ्रमरा का दो स्त्रिया होती ह एक कुदलता दूसरी स्वणलता। शिशिर ऋतु म व दोनो ही प्रफुल्लित होती ह। कवि उसी के सम्बध म कह रहा ह—]

अधिलवङ्गममी रजसाधिकं मलिनिताः सुमनोदलतालिनः।
स्फुटमिति प्रसवेन पुरोऽहसत्सपदि कुन्दलता दलतालिनः ६६

अर्थ—लवगलता के पुष्पों के दलो म बैठे हुए ये भ्रमर तुरन्त ही उसकी धूल से मलिन हो गये—मानों इसी कारण से समीपमे स्थित कुन्दलता अपने विकसित पुष्पो द्वारा स्पष्ट ही उनका उपहास कर रही थी।

टिप्पणी—कुसुमित अर्थात् रजस्वला सपत्नी के साथ समागम करनेवाले पति का उपहास दूसरी पत्नी करती ही है। अथवा लवगलता के पुष्पों के पराग श्वेत नहीं होते फलत उसके मध्य में बैठने से भ्रमर अधिक मलिन हो गये थे, मानो उसे ऐसा करते देख श्वेत कुन्दलता उसका परिहास करती है। अपनी गोरी सुन्दरी स्त्री को छोड़कर जो व्यक्ति किसी मलिन कृष्णवर्णा स्त्री का सेवन करता है उस पर वह सुन्दरी हँसती ही है कि तुम इसी के योग्य हो। उत्प्रेक्षा अलकार। शिशिर वर्णन समाप्त हुआ।

[अब आगे के बारह श्लोकों में कवि पुन सभी ऋतुओं का वर्णन करता है।]

अतिसुरभिरभाजि पुष्पश्रियामतनुतरतयेव संतानकः ।
तरुणपरभृतः स्वनं रागिणामतनुत रतये वसन्तानकः ॥ ६७ ॥

अर्थ—अत्यन्त सुगन्धि युक्त कल्पवृक्ष अपनी विपुल पुष्प-समृद्धि से मानों झुक-सा गया और वसन्त के आगमन की घोषणा करनेवाली दुन्दुभि के समान तरुण कोयलें विलासियों का अनुराग बढाते हुए मधुर स्वर में गूँजने लगीं।

टिप्पणी—यह प्रभा वृत्त है जिसका लक्षण है — स्वर शर विरतिर्नना रौ प्रभा"

नोज्झितुं युवतिमाननिरासे दक्षमिष्टमधुवासरसारम् ।
चूतमालिरलिनामतिरागादक्षमिष्ट मधुवासरसारम् ॥६८ ॥

अर्थ—मकरन्द युक्त पुष्पों में वास करने की विशेष अनुरागी भ्रमरों की पंक्तियाँ युवतियों का मान-मर्दन करने में निपुण वसन्त ऋतु के सर्वस्व रसाल (आम) को अत्यन्त प्रीति के कारण छोडने में समर्थ नहीं हो सकीं।

टिप्पणी—यह स्वागता वृत्त है जिसका लक्षण है — स्वागतेति रनभाद् गुरुयुग्मम।"

जगद्वशीकर्तुमिमाः स्मरस्य प्रभावनीके तनवै जयन्तीः ।
इत्यस्य तेने कदलीर्मधुश्रीः प्रभावनी केतनवैजयन्तीः ॥ ६६॥

अर्थ—उत्पादन-शक्ति-सम्पन्न वसन्त की लक्ष्मी ने मानों मन में यह बात सोच कर कि संसार को वश में करने मे समर्थ इस कामदेव की सेना मे मैं विजयिनी ध्वजा और पताका का (भी) विस्तार कर दूँ—कदली के पौदों को सजा दिया।

टिप्पणी—उपजाति छन्द उत्प्रेक्षा। द्वितीय और चतुर्थ चरण में यमक।

स्मररागमयी वपुस्तमिस्रा परितस्तार रवेरसत्यवश्यम् ।
प्रियमाप दिवापि कोकिले स्त्री परितस्तारवे रसत्यवश्यम् ॥७०॥

अर्थ—दूषित कामवासना-रूपी अन्धकार समूह ने सचमुच ही मानों सूर्य-मण्डल को ढँक लिया। क्योंकि चारों ओर से दिन मे ही उच्च स्वर मे कोयलों के कूँजते रहने पर स्त्रियाँ अपने वश से बाहर रहने वाले प्रियतमों के पास स्वयं पहुँच गयीं।

टिप्पणी—"नैव पश्यति कामान्धो हयर्थी दोष न पश्यति" स्त्रियाँ कोयल के कूजन से इतनी विचलित हो गयी कि दिन मे ही अभिसार को चल पडी। रूपकानुप्राणित उत्प्रेक्षा। औपच्छन्दसिक वृत्त। लक्षण —विषमें ससजा गुरु समे चेत् स्मरयाच्छन्दसिक नदीय पूर्वम् ।"

[एक श्लोक मे ग्रीष्म का वर्णन है—]

वपुरम्बुविहारहिमं शुचिना रुचिरं कमनीयतरा गमिता ।
रमणेन रमण्यचिरांशुलतारुचिरङ्कमनीयत रागमिता ॥ ७१॥

अर्थ—(तदनन्तर) ग्रीष्म ऋतु ने कामिनियों को जलक्रीडा करा कर शीतल एवं निर्मल शरीरवाली बना कर अधिक सुन्दरी बना दिया। उनकी कान्ति विद्युत् लता के समान हो गयी और वे अनुराग में डूब गयीं। इसलिए उनके प्रियतमों ने उन्हें अपनी गोद मे बिठा लिया।

टिप्पणी—तोटक वृत्त । लक्षण— 'इह तोटकमब्धि सकारयुतम्' ।

[नीचे के दो श्लोकों में वर्षा का वर्णन है —]

मुदमब्दमुवामपां मयूराः सहसायन्त नदी पपाट लाभे ।
अलिना रमतालिनी शिलीन्ध्रे सह सायन्तनदीपपाटलाभे ॥७२॥

अर्थ—(तदनन्तर) बादलों से बरसे हुए जल को प्राप्तकर मयूरवृन्द एकाएक आनन्द से भर गये, नदियाँ बह निकलीं और भ्रमरियाँ सायंकाल के दीपक की भाँति लाल रंग के कन्दलों के फूलों पर भ्रमरों के साथ रमण करने लगीं ।

टिप्पणी—समुच्चय अलंकार और औपच्छन्दसिक वृत्त ।

कुटजानि वीक्ष्य शिखिभिः शिखरीन्द्र समयावनौ घनमदभ्रमराणि ।
गगनं च गीतनिनदस्य गिरोच्चैः समया वनौघनमदभ्रमराणि ७३

अर्थ—रैवतक पर्वत के समीप अत्यन्त मतवाले भ्रमरों से युक्त कुटज के पुष्पों एवं जलभार से झुके हुए लम्बे लम्बे बादलों से युक्त आकाश को देखकर मयूरवृन्द गीतों की ध्वनि के समान उच्च स्वर में बोलने लगे ।

टिप्पणी—कुटजा छन्द । लक्षण — 'सजसा भवदिह सगौ कुटजाख्यम्' ।

[नीचे के तीन श्लोकों में शरद ऋतु का वर्णन है —]

अभीष्टमासाद्य चिराय काले समुद्धृताशं कमनी चकाशे ।
योषिन्मनोजन्मसुखोदयेषु समुद्धृताशङ्कमनीचकाशे ॥ ७४ ॥

अर्थ—(तदनन्तर) कामिनी स्त्रियाँ, जिस ऋतु में काँस ऊँची हो जाती हैं अर्थात् फूलती हैं, उस शरद् ऋतु में, संभोग सुख की अभिलाषा से भरी हुई, अपने प्रियतम को, बहुत समय के बाद विश्वास पूर्वक प्राप्त कर आनन्दित हो शोभा पाने लगीं ।

टिप्पणी—यमक अलंकार । उपजाति छन्द ।

स्तनयोः समयेन याङ्गनानामभिनद्धारसमा न सा रसेन ।
परिरम्भरुचि ततिर्जलानामभिनद्धा रसमानसारसेन ॥ ७५ ॥

अर्थ—जिस ऋतु मे सारस पक्षी बोलते हैं, उस शरद् ऋतु ने रमणियो के स्तनो पर पसीने की बूंदे उत्पन्न कर दीं। हारों के समान उस पसीने की बूंदों की श्रेणी विशेष अनुराग के कारण उनके अलिंगन की अभिलाषा को नष्ट नहीं कर सकी।

टिप्पणी—रसवत् अलंकार । औपच्छन्दसिक वृत्त ।

जातप्रीतिर्या मधुरेणानुवनान्तं
कामे कान्ते सारसिकाकाकुरुतेन ।
तत्संपर्कं प्राप्य पुरा मोहनलीलां
कामेकान्ते मा रसिका का कुरुते न ॥ ७६ ॥

अर्थ—उद्यानो मे सारसी के सुमधुर किन्तु विकृत स्वर को सुन कर कामदेवके समान मनोहर प्रियतम के प्रति सभी रमणियाँ अनुराग युक्त हो जाती है। भला कौन ऐसी रमणी है जो एकान्त में अपने प्रियतम के सान्निध्य को प्राप्त कर पहले ही (प्रियतम की प्रेरणा से पूर्व ही) सब प्रकार की संभोग लीलाओं को नहीं करती है। अर्थात् सभी रमणियाँ सब प्रकार के कामशास्त्र प्रसिद्ध संभोग करने लगती हैं।

टिप्पणी—[illegible] वृत्त । [illegible]
[[illegible]—]

कान्ताजनेन रहसि प्रसभं गृहीत-
केशे रते [illegible] रतोषितेन ।
प्रेम्णा मनस्सु [illegible] हैमनीषु
के शेरते स्म [illegible]तोषितेन ॥ ७७ ॥

अर्थ—[illegible]
[illegible]

के चित्त मे निवास करनेवाली रमणियों के साथ, एकान्त मे बलपूर्वक चोटी पकडकर सभोग करते समय कौन ऐसा युवा पुरुष होगा जो हेमन्त ऋतु की (लवी) रातों में भी (क्षण भर के लिए) सोया होगा ? अर्थात् ऐसा कोई युवा पुरुष नहीं होगा।

टिप्पणी—वसन्ततिलका छन्द। इस छन्द में भी उत्तान शृगार का वर्णन है।
[नीचे क एक श्लोक में शिशिर का वर्णन है —]

गतवतामिव विस्मयमुच्चकैरसकलामलपल्लवलीलया।
मधुकृतामसकृद्गिरमावली रसकलामलपल्लवलीलया ॥७८॥

अर्थ—जो नवीन कोमल पत्ते अभी पूरे नहीं प्रकट हुए थे, वायु के कारण उनके नाचने से मानो विस्मय को प्राप्त हुए भ्रमर वृन्द चन्दन-लता के बीच में बैठे हुए थे और मकरन्द पान के कारण अत्यत उच्च स्वर मे मधुर ध्वनि से गूज रहे थे।

टिप्पणी—द्रुतविलम्बित छ द। हेतूत्प्रेक्षा अलकार।

कुर्वन्तमित्यतिभरेण नगानवाचः
पुष्पैर्विराममलिना च न गानवाचः।
श्रीमान्समस्तमनुसानु गिरौ विहर्तुं
बिभ्रत्यचोदि स मयूरगिरा विहर्तुम् ॥ ७९ ॥

अर्थ—इस प्रकार पुष्पों के भार से वृक्षों को नीचे झुकानेवाली एव भ्रमरों के गुजार को कभी भी बन्द न करने वाली समस्त ऋतुओं को प्रत्येक शिखरों पर धारण करनेवाले इस रैवतक पर्वत पर भगवान् श्रीकृष्ण क्रीडा करने के लिए मानो मयूरों की वाणी द्वारा प्रेरित किये गये।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि मानो मयूर भगवान श्रीकृष्ण से कह रहे हैं कि हे भगवन! इस रैवतक पर्वत पर आप अवश्य विहार करें और इन ऋतुओं पर अनुग्रह करें जो आप के स्वागतार्थ सब की सब एव साथ ही यहाँ निवास करती है। गम्योत्प्रेक्षा। वसन्ततिलका छन्द।

श्री माघ कवि कृत शिशुपालवध महाकाव्य म ऋतु
वर्णन नामक छठाँ सर्ग समाप्त ॥६॥

सातवाँ सर्ग

[इस प्रकार छहों ऋतुओं का विधिवत् वर्णन करने के अनन्तर अब आगे अनुचरों समेत भगवान् श्रीकृष्ण के वन-विहार की लीला का वर्णन कवि आरम्भ करता है—]

अनुगिरमृतुभिर्वितायमानामथ स विलोकयितुं वनान्तलक्ष्मीम् ।
निरगमदभिराद्धुमादृतानां भवति महत्सु न निष्फलः प्रयासः ॥१॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् श्री कृष्णचन्द्र रैवतक पर्वत के प्रत्येक शिखर पर वसन्तादि ऋतुओं द्वारा विस्तारित वन्य-श्री की शोभा देखने के लिए बाहर निकले। (यह ठीक ही था, क्योंकि) महान् व्यक्तियों की आराधना में तत्पर रहनेवालों का प्रयास (कभी) निष्फल नहीं होता।

टिप्पणी—सामान्य से विशेष का समर्थन रूप अर्थान्तरन्यास अलंकार। इस सर्ग में पुष्पिताग्रा छन्द है जिसका लक्षण है— 'अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा।'

दधति सुमनसो वनानि वह्वीर्युवतियुता यदवः प्रयातुमीषुः ।
मनसिशयमहास्त्रमन्यथामी न कुसुमपञ्चकमप्यलं विसोढुम् ॥२॥

अर्थ—यदुवंशियों ने अनेक प्रकार के कुसुमों को धारण करनेवाले वनों में (अपनी अपनी) युवती रमणियों के साथ ही भ्रमण करने की इच्छा की। क्योंकि युवतियों को साथ न ले जाने पर वे कामदेव के महान् अमोघ अस्त्र पाँच कुसुमों को भी नहीं सहन कर सकते थे।

टिप्पणी—जो पाँच कुसुमों को ही [illegible] नहीं सहन कर सकते थे वे बहुतेरे कुसुमों को धारण करनेवाले वनों को [illegible] सहन कर सकते थे? कामदेव के पाँच बाण ये हैं — अरविन्दमशोकं च चूतं च नवमल्लिका। [illegible]

सायका ।" अर्थात् अरविन्द, अशोक, आम, नवमल्लिका तथा नीलकमल—ये पाच कामदेव के बाण कहे जाते हैं। इन्हें शोषन, मोहन, ताडन, उन्मादन तथा उच्चाटन भी कहते हैं। काव्यलिंग अलकार।

अवसरमधिगम्य तं हरन्त्यो हृदयमयत्नकृतोज्ज्वलस्वरूपाः ।
अवनिषु पदमङ्गनास्तदानीं न्यदधत विभ्रमसंपदोऽङ्गनासु ॥३॥

अर्थ—पतियों के साथ वन-भ्रमण करने के उस अवसर पर हृदय को चुरानेवाली एव सहज सुन्दर गौरवर्ण की रमणियों ने धरती पर, तथा उसी समय उन रमणियों पर मन को हरनेवाली विलास सम्पदा ने पैर रखा।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि विलास लक्ष्मी से युक्त सुन्दर गौरवर्ण की यदुवशी सुन्दरियाँ अपने पति के साथ पैदल ही वनश्री को देखने के लिए चल पडी। तुल्ययोगिता तथा एकावली अलकार। अलकार से अलकार की ध्वनि।

नखरुचिरचितेन्द्रचापलेखं ललितगतेषु गतागतं दधाना ।
मुखरितवलयं पृथौ नितम्बे भुजलतिका मुहुरस्खलत्तरुण्याः ॥४॥

अर्थ—मन्द-मन्द गमन करती हुई तरुणियों की भुज-वल्लरियाँ इधर-उधर जाती-आती हुई, उनके विशाल नितम्ब प्रदेश पर जाकर बार-बार खिसक जाया करती थीं। उस समय उनके नखों की किरणें इन्द्रधनुष की शोभा धारण करती थीं और हाथ के कंकण मनोहर शब्द करते थे।

टिप्पणी—शृंगार रस का पूर्णपरिपाक हुआ है।

अतिशयपरिणाहवान् वितेने बहुतरमर्पितरत्नकिङ्किणीकः ।
अलघुनि जघनस्थलेऽपरस्या ध्वनिमधिकं कलमेखलाकलापः ५

अर्थ—किसी नायिका के अति विशाल जघन प्रदेश में बहुत बड़ी सुवर्ण की कई लड़ियों की बनी सुन्दर करधनी, रत्नों से भरी हुई

बहुत-सी छोटी छोटी किंकिणियों से युक्त होने के कारण बहुत शब्द कर रही थी।

गुरुनिबिडनितम्बबिम्बभाराक्रमणनिपीडितमङ्गनाजनस्य ।
चरणयुगमसुस्रुवत्पदेषु स्वरसमसक्तमलक्तकच्छलेन ॥६॥

अर्थ—अत्यत सघन और भारी नितम्ब मण्डल के भार से निपीडित रमणियों के दोनों चरण मानों महावर रस के बहाने से पद-विन्यास के स्थलों पर, अपना रग निरन्तर चुवा रहे थे।

टिप्पणी—अपह्नव अलकार।

[नीचे पाँच श्लोको द्वारा कुपित नायिका को प्रार्थना का वर्णन किया गया है-]

तव सपदि समीपमानये तामहमिति तस्य मयाग्रतोऽभ्यधायि ।
अतिरभसकृतालघुप्रतिज्ञामनृतगिरं गुणगौरि मा कृथा माम् ॥७॥
न च सुतनु न वेद्मि यन्महीयानसुनिरसस्तव निश्चयः परेण ।
वितथयति न जातु मद्वचोऽसाविति च तथापि सखीषु मेऽभिमानः
सततमनभिभाषणं मया ते परिपणितं भवतीमनानयन्त्या ।
त्वयि तदिति विरोधनिश्चितायां भवति भवत्वसुहृज्जनः सकामः ६
गतधृतिरवलम्बितुं बताद्यनलमनालपनादहं भवत्याः ।
प्रणयिनि यदि न प्रसादबुद्धिर्भव मम मानिनि जीविते दयालुः १०
प्रियमिति वनिता नितान्तमागःस्मरणसरोपकषायितायताक्षी ।
चरणगतसखीवचोऽनुरोधात् किल कथमप्यनुकूलयांचकार ॥११॥

अर्थ—हे उज्ज्वल गुणशीले सखि! तुम्हारे कान्त के सम्मुख में यह बात कह आयी हूँ कि—'मैं अपनी सखी को तुरन्त ही आपके समीप ला रही हूँ।' अत शीघ्रता मे जो भारी प्रतिज्ञा में कर चुकी हूँ, उससे अब तुम मुझे झूठी मत बनाओ। हे सर्वांगसुन्दरि! तुम्हारे निश्चयों को कोई दूसरा व्यक्ति आसानी से नहीं तुड़वा सकता-

क्या इस बात को मैं नहीं जानती ? नहीं, बल्कि जानती हूँ। किन्तु तुम मेरी बात को कभी झूठी न होने दोगी—यह जानकर ही मैं अपनी सखियों के बीच में अभिमान किया करती हू। तुम्हे पति के समीप ले जाने मे असफल होकर मैं कभी भी तुमसे बातें नहीं करूँगी—ऐसा मैं निश्चय कर चुकी हूँ। हे सुन्दरि ! अब ऐसी स्थिति में यदि हम लोगों का परस्पर विरोध हो जायगा तो हमारे विरोधियो की इच्छा पूरी हो जायगी। (इतना ही नहीं है कि केवल हम दोनों मे विरोध ही होगा। प्रत्युत प्राण हानि की भी सभावना है—वह कैसे) हे सखी ! यदि तुम मुझसे न बोलोगी तो मैं अधीर होकर अपने प्राणों को धारण करने मे असमर्थ हो जाऊँगी। अतएव हे मानिनी ! यदि तुममें अपने प्रियतम के प्रति अनुग्रह करने की भावना नहीं है तब भी मेरे जीवन के प्रति तो तुम दया दिखाओ।' नायक के अपराधों के स्मरण से क्रोध के कारण रक्त नेत्रों वाली नायिका चरणों पर गिरी हुई अपनी सखी के इस प्रकार के निवेदन को सुनकर बडी कठिनाई से अपने प्रियतम के अनुकूल हुई।

टिप्पणी—यह खण्डिता नायिका थी।

[कोई सखी किसी शीघ्रगामी नायक से कहती है—]

द्रुतपदमिति मा वयस्य यासीर्ननु सुतनुं परिपालयानुयान्तीम्।
नहि न विदितखेदमेतदीयस्तनजघनोद्वहने तवापि चेतः ॥१२॥

इति वदति सखीजनेऽनुरागाद्दयिततमामपरश्चिरं प्रतीक्ष्य।
तदनुगमनवशादनायतानि न्यधित मिमान इवावनिं पदानि ॥१३॥

अर्थ—"हे मित्र ! इस प्रकार जल्दी-जल्दी पैर रखते हुए मत चलो। किन्तु इस पीछे आती हुई सर्वांगसुन्दरी अपनी प्रियतमा की भी प्रतीक्षा करते जाओ। (यदि तुम यह सोचते हो कि यह भी मेरी ही भांति जल्दी-जल्दी क्यो नहीं आती तो यह कठिन है—) क्योंकि विशाल स्तनों और नितम्ब मण्डल को वहन करते हुए इसे जो परिश्रम हो रहा है क्या उसे तुम्हारा भी चित्त नहीं जानता, किन्तु

अवश्य जानता होगा।" सखियों के इस प्रकार कहने पर कोई नायक अनुराग के कारण बहुत देर तक अपनी प्रियतमा की प्रतीक्षा करता हुआ—वह पीछे आ रही है—ऐसा सोचकर धरती को मानों व्यवधान रहित पदों से नापते हुए धीरे-धीरे पैर रखकर चलने लगा।

टिप्पणी—यह स्वाधीनपतिका नायिका थी।

[कोई नायिका आगे-आगे तेजी से जाते हुए प्रियतम से मिलने के लिए दौड़ने की प्रार्थना करती हुई सखी से कह रही है—]

यदि मयि लघिमानमागताया तव धृतिरस्ति गतास्मि सम्प्रतीयम्।
द्रुततरपदपातमापपात प्रियमिति कोपपदेन कापि सख्या ॥१४॥

अर्थ—"हे सखी! यदि मैं स्वयं ही उसके पीछे-पीछे दौड़ी चली जाऊँ तो इससे मेरी बड़ी अप्रतिष्ठा होगी, किन्तु यदि इस मेरी अप्रतिष्ठा से ही तुम सन्तुष्ट हो तो लो मैं अभी इसी क्षण पीछे-पीछे चल रही हूँ।" इस प्रकार अपनी सखी से क्रोधभरी बातें कर कोई नायिका जल्दी-जल्दी पैर रखकर अपने प्रियतम के पीछे पीछे दौड़ने लगी।

टिप्पणी—यह कलहान्तरिता नायिका थी।

अविरलपुलकः सह व्रजन्त्याः प्रतिपदमेकतरः स्तनस्तरुण्याः।
घटितविघटितः प्रियस्य वक्षस्तटभुवि कन्दुकविभ्रमं बभार ॥१५॥

अर्थ—अपने प्रियतम के साथ साथ चलती हुई तरुणी का (प्रियतम से) निरन्तर बार-बार लगने और अलग होने से अतिशय रोमांच युक्त एक स्तन प्रियतम के वक्षस्थल रूपी धरती पर कन्दुक की शोभा धारण कर रहा था।

टिप्पणी—निदर्शना अलंकार। यह स्वाधीनपतिका नायिका थी।

[आगे के तीन श्लोकों में किसी नायिका की गति का वर्णन किया गया है—]

अशिथिलमपरावसज्य कण्ठे दृढपरिरब्धबृहद्बहिःस्तनेन।
हृषिततनुरहा भुजेन भर्तुर्मृदुममृदु व्यतिविद्धमेकबाहुम् ॥१६॥

मुहुरसुसममाघ्नती नितान्तं प्रणदितकाञ्चि नितम्बमण्डलेन ।
विषमितपृथुहारयष्टि तिर्यक्कुचमितरं तदुरःस्थले निपीड्य ॥१७॥
गुरुतरकलनूपुरानुनादं सललितनर्तितवामपादपद्मा ।
इतरदनतिलोलमादधाना पदमथ मन्मथमन्थरं जगाम ॥१८॥

अर्थ—एक नायिका, प्रसन्नता के कारण रोमांचयुक्त एक हाथ से दृढ़ता के साथ बाहर निकले हुए (प्रियतमा के) एक स्तन का आलिंगन करनेवाले अपने पति के गले मे बड़ी दृढता से अपनी कोमल भुजा को डालकर गाढ़ आलिंगन करते हुए चली जा रही थी। वह निरन्तर जोर-जोर से शब्द करती हुई मेखला से युक्त नितम्ब मण्डल से अपने प्रियतम को बारम्बार ताडित करती हुई तथा प्रियतम के वक्षस्थल पर स्थित विशाल मोती की माला को अपने दूसरे स्तन से तिरछी करती हुई और प्रियतम के वक्षस्थल में गड़ाती हुई जा रही थी। उस समय वह सुन्दरी रमणी लीलापूर्वक नूपुरों से गभीर मधुर शब्द उत्पन्न करती हुई बाएं चरण कमल को रख कर और दाहिने चरण कमल को स्थिर भाव से रख कर कामदेव के वश मे होकर धीरे-धीरे चल रही थी।

टिप्पणी—यह भी स्वाधीनपतिका नायिका थी।

लघुललितपदं तदंसपीठद्वयनिहितोभयपाणिपल्लवान्या ।
सकठिनकुचचूचुकप्रणोदं प्रियमबला सविलासमन्वियाय ॥१९॥

अर्थ—एक दूसरी कोई नायिका आसव के समान अपने प्रियतम के दोनों कन्धों पर अपने दोनों पाणिपल्लवों को रख कर अपने कठोर कुचों के अग्रभाग से उसे प्रेरित अथवा निपीडित करती हुई लीलापूर्वक उसके (अपने प्रियतम के) पीछे-पीछे चली जा रही थी।

जघनमलघुपीवरोरु कृच्छ्रादुरुनिबिरीसनितम्बभारखेदि ।
दयिततमशिरोधरावलम्बिस्वभुजलताविभवेन काचिदूहे ॥२०॥

अर्थ—कोई नायिका अपने भारी एवं सघन नितम्ब भाग के भार से निपीडित अत्यंत मोटे जघनस्थल को, प्रियतम के कंठ में दोनों

अवश्य जानता होगा।" सखियों के इस प्रकार कहने पर कोई नायक अनुराग के कारण बहुत देर तक अपनी प्रियतमा की प्रतीक्षा करता हुआ—वह पीछे आ रही है—ऐसा सोचकर धरती को मानों व्यवधान रहित पदों से नापते हुए धीरे-धीरे पैर रखकर चलने लगा।

टिप्पणी—यह स्वाधीनपतिका नायिका थी।

[कोई नायिका आगे-आगे तेजी से जाते हुए प्रियतम से मिलने के लिए दौड़ने की प्रार्थना करती हुई सखी से कह रही है—]

यदि मयि लघिमानमागताया तव धृतिरस्ति गतास्मि सम्प्रतीयम्।
द्रुततरपदपातमापपात प्रियमिति कोपपदेन कापि सख्या ॥१४॥

अर्थ—"हे सखी! यदि मैं स्वयं ही उसके पीछे-पीछे दौड़ी चली जाऊँ तो इससे मेरी बड़ी अप्रतिष्ठा होगी, किन्तु यदि इस मेरी अप्रतिष्ठा से ही तुम सन्तुष्ट हो तो लो मैं अभी इसी क्षण पीछे-पीछे चल रही हूँ।" इस प्रकार अपनी सखी से क्रोधभरी बातें कर कोई नायिका जल्दी जल्दी पैर रखकर अपने प्रियतम के पीछे पीछे दौड़ने लगी।

टिप्पणी—यह कलहान्तरिता नायिका थी।

अविरलपुलकः सह नजन्त्याः प्रतिपदमेकतरः स्तनस्तरुण्याः।
घटितविघटितः प्रियस्य वक्षस्तटभुवि कन्दुकनिभ्रमं नभार ॥१५॥

अर्थ—अपने प्रियतम के साथ-साथ चलती हुई तरुणी का (प्रियतम से) निरन्तर बार-बार लगने और अलग होने से अतिशय रोमांच युक्त एक स्तन प्रियतम के वक्षस्थल रूपी धरती पर कन्दुक की शोभा धारण कर रहा था।

टिप्पणी—नि[illegible] अलंकार। यह स्वाधीनपतिका नायिका थी।

[अन्य [illegible] नायिका [illegible]—]

अशिथिलमपरावसज्य कण्ठे दृढपरिरब्धबृहद्बहिः स्तनेन।
हृषिततनुरुहा भुजेन भर्तुर्द्रुममृदु व्यतिविद्धमेकबाहुम् ॥१६॥

श्रुतिपथमधुराणि सारसानामनुनदि शुश्रुविरे रुतानि ताभिः ।
विदधति जनतामनःशरव्यव्यधपटुमन्मथचापनादशङ्काम् ॥२४॥

अर्थ—नदियों के समीप उन (यदुवंशियों की) रमणियों ने, जनता के हृदय-रूपी लक्ष्य को वेधने मे समर्थ कामदेव के धनुष के शब्द की शंका उत्पन्न करने वाली सारसो की ध्वनि सुनी।

टिप्पणी—सारसो की ध्वनि कामोद्दीपन करने लगी। भ्रान्तिमान् अलकार।

मधुमथनवधूरिवाह्वयन्ति भ्रमरकुलानि जगुर्यदुत्सुकानि ।
तदभिनयमिवावलिर्वनानामतनुत नूतनपल्लवाङ्गुलीभिः ॥२५॥

अर्थ—उत्कंठित होकर गान (गुंजार) करने वाले भ्रमरो के समूह मानों श्रीकृष्ण जी की स्त्रियों को बुलाने-से लगे। और वन की पंक्तियाँ नूतन पल्लव-रूपी अंगुलियों द्वारा मानों उसी के अभिनय की चेष्टा-सी करने लगीं।

टिप्पणी—रूपकानुप्राणित उत्प्रेक्षा अलकार।

अर्धकलकलिकाकुलीकृतालिस्खलनविकीर्णविकासिकेशराणाम् ।
मरुदवनिरुहां रजो वधूभ्यः समुपहरन् विचकार कोरकाणि ॥२६॥

अर्थ—वन की वायु अर्ध विकसित कलियों द्वारा व्याकुलित भ्रमरो से जिनके विकसित केसर इधर-उधर बिखेर दिये गये थे—ऐसे वृक्षों के परागों को मानों यादव रमणियों को भेंट स्वरूप प्रदान करते हुए उनकी कलियों को प्रस्फुटित करने लगीं।

टिप्पणी—गम्योत्प्रेक्षा।

उपवनपवनानुपातदक्षैरलिभिरलाभि यदङ्गनाजनस्य ।
परिमलविषयस्तदुन्नतानामनुगमने खलु संपदोऽग्रतःस्थाः ॥२७॥

अर्थ—वन की वायु के अनुसरण करने में निपुण भ्रमरवृन्द, जो रमणियों की सुगन्धि-रूपी वस्तु को प्राप्त कर रहे थे उससे यही

लतारूपी भुजाओं को डालकर, उन्हीं के बल से बडी कठिनाई से वहन कर रही थी।

अनुवपुरपरेण वाहुमूलप्रहितभुजाकलितस्तनेन निन्ये।
निहितदशनवाससा कपोले विषमवितीर्णपदं बलादिवान्या २१

अर्थ—कोई युवक नायिका की पीठ की ओर से उसके बाहुओं के मूल भाग में से अपने दोनों हाथ डालकर उसके स्तनों को पकड कर तथा उसके कपोलों पर अपना होंठ राख कर उसे मानों बलपूर्वक ले जाने का यत्न कर रहा था। इस प्रकार वह नायिका इधर-उधर लटपटावे पैर रखती हुई चल रही थी।

अनुवनमसितभ्रुवः सखीभिः सह पदवीमपरः पुरोगतायाः।
उरसि सरसरागपादलेखाप्रतिमतयानुययावसंशयानः॥२२॥

अर्थ—एक विलासी नायक वन की ओर अपनी सखियों के साथ पहले ही गयी हुई अपनी काली भौंहों वाली प्रियतमा के चरणविन्यासों को अपने वक्षस्थल पर लगे हुए गीले आलता के रग के समान रग होने से पहचान कर निस्सन्देह रूप से उसी के पीछे-पीछे चला गया।

मदनरसमहौघपूर्णनाभीह्रदपरिवाहितरोमराजयस्ताः।
सरित इव सविभ्रमप्रयातप्रणदितहंसकभूषणा विरेजुः॥२३॥

अर्थ—काम-शृंगार के महान् प्रवाह, जिनके नाभी रूपी तालाब को परिपूर्ण करके उससे रोमावली रूप मे बाहर हो रहे थे और जिनके विलासपूर्वक गमन के कारण नूपुर-रूपी हंसों के मनोहर शब्द हो रहे थे—ऐसी वे यादव रमणियाँ नदियों के समान शोभा पा रही थीं। (नदी पक्ष में उक्त विशेषण इस प्रकार अन्वित होंगे। जल के प्रवाह तालाबों को पूर्ण करके बाहर बहने लगते हैं तथा नदियों की लीलापूर्वक गति में हंस भूषण-स्वरूप शोभा देते हैं।)

टिप्पणी—रूपक और उपमा का संकर। कोई कोई आलंकारिक इसमें श्लेष मानते हैं।

टिप्पणी—हेतूत्प्रेक्षा अलकार ।

अनवरतरसेन रागभाजा करजपरिक्षतिलब्धसस्तवेन ।
सपदि तरुणपल्लवेन वध्वा विगतदय खलु खण्डितेन मम्ले ॥३१॥

अर्थ—निरन्तर रस धार (शृगार) से युक्त, राग (अनुराग तथा लाल रग) धारण करने वाला, नायिका के नख के क्षत से परिचित किसी रमणी द्वारा निर्दयतापूर्वक तोडा हुआ वृक्ष का नवीन पल्लव (तरुण प्रेमी) तुरन्त ही मलिन हो गया ।

[एक नायिका की विशष चष्टा का वणन—]

प्रियमभि कुसुमोद्यतस्य बाहोर्नवनखमण्डनचारु मूलमन्या ।
मुहुरितरकराहितेन पीनस्तनतटरोधि तिरोदधेऽशुकेन ॥ ३२ ॥

अर्थ—कोई नायिका अपने प्रियतम के सम्मुख पुष्प ग्रहण करने के लिए आगे फैलायी हुई दाहिनी बाहु के उस मूल भाग को, जिसमें नख के नूतन क्षत सुशोभित हो रहे थे, बाँए हाथ से बार बार अचल द्वारा छिपाने लगी ।

टिप्पणी—यह प्रौढा नायिका थी ।

[आग के छ श्लोको द्वारा किसी नायिका की विशष चेष्टाओ का वणन किया गया ह—]

विततवलिविभाव्यपाण्डुलेखाकृतपरभागविलीनरोमराजिः ।
कृशमपि कृशता पुनर्नयन्ती विपुलतरोन्मुखलोचनावलग्नम् ॥३३॥
ग्रसकलकुचबन्धुरोद्धुरोरः प्रसभविभिन्नतनूत्तरीयबन्धा ।
अवनमदुदरोच्छ्वसद्दुकूलस्फुटतरलक्ष्यगभीरनाभिमूला ॥ ३४ ॥
व्यवहितमविजानती किलान्तर्वणभुवि वल्लभमाभिमुख्यभाजम् ।
अधिविटपि सलीलमग्रपुष्पग्रहणपदेन चिर विलम्ब्य काचित् ३५
अथ किल कथिते सखीभिरत्र क्षणमपरेव ससभ्रमा भवन्ती ।
शिथिलितकुसुमाकुलाग्रपाणिः प्रतिपदसंयमिताशुकावृताङ्गी ॥३६॥

प्रकट हो रहा था कि बडे लोगों के अनुसरण करने पर सम्पदाएँ आगे पडी मिलती हैं।

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलकार।

रथचरणधराङ्गनाकराब्जव्यतिकरसंपदुपात्तसौमनस्याः।
जगति सुमनसस्तदादि नूनं दधति परिस्फुटमर्थतोऽभिधानम् ॥२८॥

अर्थ—सुमनों ने, चक्रधारी भगवान् श्री कृष्णचन्द्र जी की रमणियों के कर-कमलों की सान्निध्य-रूपी सम्पत्ति को प्राप्त कर अपने चित्त मे परम सन्तोप लाभ किया और निश्चय ही उन्होंने मानों उसी दिन से जगत् मे अपना 'सुमन' अर्थात् अच्छे मन वाला यह नाम सार्थक कर लिया।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि स्त्रियाँ पुष्प चुनने में लग गयी। काव्यलिंग और उत्प्रेक्षा का सकर।

अभिमुखपतितैर्गुणप्रकर्षादवजितमुद्धतिमुज्ज्वलां दधानैः।
तरुकिसलयजालमग्रहस्तैः प्रसभमनीयत भङ्गमङ्गनानाम् ॥२९॥

अर्थ—तोडने के लिए सम्मुख उपस्थित अत्यन्त ऊचाई से युक्त रमणियों के हाथों के अग्रभाग, अपने गुणों के प्रकर्ष से पराजित वृक्षों के कोमल पत्तों के समूहों को वलपूर्वक तोडने अथवा नीचा दिखाने लगे।

टिप्पणी—समासोक्ति अलकार।

मुदितमधुभुजो भुजेन शाखाश्चलितविशृङ्खलशङ्खकं धुवत्याः।
तरुरतिशयितापराङ्गनायाः शिरसि मुदेव मुमोच पुष्पवर्षम् ॥३०॥

अर्थ—आनन्द में निमग्न भ्रमरों से युक्त शाखाओं को अपने हाथों से कँपाती हुई तथा इस प्रकार चचलता से निरन्तर बोलने वाले ककणों को धारण किए हुए एव अपने सौन्दर्य से दूसरी स्त्रियों को पराजित करने वाली एक रमणी के शिर पर उस वृक्ष ने मानों सन्तुष्ट हो कर पुष्पों की वर्षा कर दी।

टिप्पणी—हेतूत्प्रेक्षा अलंकार ।

अनवरतरसेन रागभाजा करजपरिक्षतिलब्धसंस्तवेन ।
सपदि तरुणपल्लवेन वध्वा विगतदयं खलु खण्डितेन मम्ले ।।३१।

अर्थ—निरन्तर रस धार (शृगार) से युक्त, राग (अनुराग तथा लाल रंग) धारण करने वाला, नायिका के नख के क्षत से परिचित किसी रमणी द्वारा निर्दयतापूर्वक तोडा हुआ वृक्ष का नवीन पल्लव (तरुण प्रेमी) तुरन्त ही मलिन हो गया ।

[एक नायिका की विशेष चेष्टा का वर्णन—]

प्रियमभि कुसुमोद्यतस्य बाहोर्नवनखमण्डनचारु मूलमन्या ।
मुहुरितरकराहितेन पीनस्तनतटरोधि तिरोदधेंऽशुकेन ।। ३२ ।।

अर्थ—कोई नायिका अपने प्रियतम के सम्मुख पुष्प ग्रहण करने के लिए आगे फैलायी हुई दाहिनी बाहु के उस मूल भाग को, जिसमें नख के नूतन क्षत सुशोभित हो रहे थे, बाँए हाथ से बार बार अंचल द्वारा छिपाने लगी ।

टिप्पणी—यह प्रौढा नायिका थी ।

[आगे के छ श्लोकों द्वारा किसी नायिका की विशेष चेष्टाओं का वर्णन किया गया है—]

विततवलिविभाव्यपाण्डुलेखाकृतपरभागविलीनरोमराजिः ।
कृशमपि कृशतां पुनर्नयन्ती विपुलतरोन्मुखलोचनावलग्नम् ।।३३।।
प्रसकलकुचबन्धुरोद्धरोरः प्रसभविभिन्नतनूत्तरीयबन्धा ।
श्रवनमदुदरोच्छ्वसद्दुकूलस्फुटतरलक्ष्यगभीरनाभिमूला ।। ३४ ।।
व्यवहितमविजानती किलान्तर्वणभुवि वल्लभमाभिमुख्यभाजम् ।
अधिविटपि सलीलमग्रपुष्पग्रहणपदेन चिरं विलम्ब्य काचित् ३५
अथ किल कथिते सखीभिरत्र क्षणमपरेव ससंभ्रमा भवन्ती ।
शिथिलितकुसुमाकुलाग्रपाणिः प्रतिपदसंयमितांशुकावृताङ्गी ।।३६।

कृतभयपरितोषसंनिपातं सचकितसस्मितवक्त्रवारिजश्रीः ।
मनसिजगुरुतत्क्षणोपदिष्टं किमपि रसेन रसान्तरं भजन्ती ॥३७॥
अवनतवदनेन्दुरिच्छतीव व्यवधिमधीरतया यदस्थितास्मै ।
अहरत सुतरामतोऽस्य चेतः स्फुटमभूषयति स्त्रियस्त्रपैव ॥३८॥

अर्थ—[कोई नायिका जब आगे का पुष्प चुनने के लिए उद्यत हुई तो उसके] उदर की विस्तृत त्रिवलियों पर दिखाई पडने वाली गोरी रेखाओं से जिसके सौन्दर्य मे उत्कर्ष हो गया था—ऐसी रोम-पंक्तियाँ विलीन हो गयीं। इस प्रकार स्वभाव से ही कृश उसका मध्य (कटि) प्रदेश और अधिक कृश हो गया और उसके विशाल नेत्र ऊपर की ओर हो गये। (इस प्रकार की चेष्टा से उसके) विशाल उन्नत एव दृढ स्तन-मण्डलों से एकाएक बल पड जाने के कारण (उसका) आवरण नीचे खिसक पडा। और भीतर की ओर धँसे हुए उदर से दुपट्टे के खिसक जाने के कारण उसकी गभीर नाभी का मूल भाग स्पष्ट दिखाई पडने लगा। वन के भीतर छिपे हुए किन्तु सम्मुख स्थित अपने प्रियतम को जानकर भी अनजान-सी बनती हुई वह सुन्दरी एक वृक्ष के समीप लीलापूर्वक (अपने अगों को दिखाने के लिए) आगे के फूलों को तोडने के बहाने से देर तक खडी रही। तदनन्तर सखियों द्वारा यह बताये जाने पर कि 'अरे! 'तुम्हारा प्रियतम यहीं छिपा हुआ है', वह सुन्दरी क्षण भर के लिए अपने को छिपाती-सी हुई घबरा कर मानों कुछ दूसरी ही बन गयी और हाथों से पुष्प चुनना छोड कर वह अपने अस्त-व्यस्त वस्त्रों को ठीक ठाक करने लगी। (इस प्रकार पति के देखने मे) प्राप्त भय और सन्तोष के सम्मिश्रण के कारण आचार्य कामदेव द्वारा तत्क्षण बताये गये किसी अलौकिक एवं अकथनीय आनन्द मे वह सुन्दरी विभोर हो गयी और इस प्रकार अनुराग के कारण वह चकित होकर मन्द मन्द मुस्कराने लगी, जिससे उसके मुख-कमल की शोभा और अधिक बढ़ गयी। इस प्रकार लज्जा से नम्र मुखी वह नायिका अधीर होकर एवं कुछ व्यवधान की इच्छा से व्याकुल होकर अपने प्रियतम के सम्मुख खडी ही रह गयी।

उसने अपने प्रियतम के चित्त को भली भाँति चुरा लिया। क्यों न ऐसा होता लज्जा ही स्त्रियों की शोभा बढ़ाती है।

टिप्पणी—यह मध्या नायिका थी। अर्थान्तरन्यास अलकार।

किसलयशकलेष्ववाचनीयाः पुलकिनि केवलमङ्गके निधेयाः।
नखपदलिपयोऽपि दीपितार्थाः प्रणिदधिरे दयितैरनङ्गलेखाः॥३९॥

अर्थ—कोमल पल्लवों के टुकड़ों पर प्रियतम और प्रियतमाओं ने पढ़ने मे अशक्य किन्तु केवल रोमाच युक्त अगों पर विरह-शान्ति के लिए रखने योग्य ऐसे काम-प्रेरित प्रेम-पत्रों को लिखा, जिनपर नखांक-रूपी अक्षर अंकित थे।

टिप्पणी—व्यतिरेक अलकार।

कृतकृतकरुषा सखीमपास्य त्वमकुशलेति कयाचिदात्मनैव।
अभिमतमभि साभिलाषमाविष्कृतभुजमूलमबन्धि मूर्ध्नि माला॥४०॥

अर्थ—बनावटी क्रोध करके कोई नायिका अपनी सखी को "तुम माला बाँधने मे निपुण नहीं हो" ऐसा कहकर निरस्त कर दिया और स्वयं ही अपने प्रियतम के सम्मुख अनुरक्ति प्रकट करती हुए एव अपनी भुजाओं के मूलभाग को दिखाती हुई वह अपने शिर पर माला बाँधने लगी।

टिप्पणी—यह प्रौढा नायिका थी।

[नीचे के तीन श्लोकों द्वारा कोई सखी नायिका से कह रही है—]

अभिमुखमुपयाति मा स्म किंचित्त्वमभिदधाः पटले मधुव्रतानाम्।
मधुसुरभिमुखाब्जगन्धलब्धेरधिकमधित्वदनेन मा निपाति॥४१॥

सरजसमकरन्दनिर्भरासु प्रसवविभूतिषु भूरुहां विरक्तः।
ध्रुवममृतपनामवाञ्छयासावधरममुं मधुपस्तवाजिहीते॥४२॥

इति वदति सखीजने निमीलद्द्विगुणितसान्द्रतराक्षिपक्ष्ममाला।
अपतदलिभयेन भर्तुरङ्कं भवति हि विक्लवता गुणोऽङ्गनानाम॥४३॥

अर्थ—'मधुलोभी भ्रमरों के सम्मुख आ जाने पर तुम कुछ मत बोलना, क्योंकि मदिरा से सुगन्धित तुम्हारे मुख-कमल की सुगन्धि को पाकर वे कहीं तुम्हारे ऊपर विशेष रूप से आकर टूट न पड़ें। मकरन्द और मधु से व्याप्त वृक्षों की लताओं की पुष्प-समृद्धि से विरक्त होकर यह मधुप निश्चय ही 'अमृतप' (अर्थात् तुम्हारे अधर के अमृत का पान करने वाला) नाम प्राप्त करने की इच्छा से तुम्हारे होठों पर आ रहा है। (दूसरा अर्थ इस प्रकार है—यह मद्यप पार्थिव शरीर धारियों की रजवीर्य सवध से उत्पन्न होने वाला सन्तान परम्परा से विरक्त होकर अमृतप अर्थात् देवलोक में पहुँचकर अमृत-पान करनेवाला बनने की इच्छा से अथवा परम मोक्ष प्राप्ति की इच्छा से शाश्वत एव पृथ्वी से सम्बन्ध न रखनेवाले इस परलोक पथ का मार्ग ढूँढ रहा है।) सखियों की इस प्रकार की बातें सुनकर कोई भय-भीत नायिका अपनी विशाल एवं तरल आँखों को ढँकने वाली पलकों को मींचती हुई पति की गोद में जाकर गिर पड़ी। (यह उचित ही था क्योंकि) भीरुता स्त्रियों का गुण ही है।

टिप्पणी—चयालीसवें श्लोक का जो दो अर्थ किया गया है वह शब्द-शक्ति-मूल ध्वनि के अनुरोध से। उसे श्लेष नहीं कह सकते। हेतूत्प्रेक्षा और असम्बन्ध में सम्बन्ध रूप अतिशयोक्ति का संकर। तीनों अन्त में अर्थान्तरन्यास की पुष्टि करते हैं।

मुखकमलकमुन्नमय्य यूना यदभिनवोढवधूर्बलादचुम्बि।
तदपि न किल बालपल्लवाग्रग्रहपरया विविदे विदग्धसख्या ४४

अर्थ—किसी युवा नायक ने अपनी नव परिणीता वधू के मुख कमल को जबरदस्ती से ऊपर उठाकर जो चूम लिया सो उसके इस व्यापार को देखनेवाली उसकी सुचतुर सहेली नूतन कोमल पत्तों को तोड़ने की चेष्टा दिखाते हुए मानो अनजान ही बनी रही।

टिप्पणी—यह मुग्धा नायिका थी।

ततिनिततिभिस्तिरोहितायां प्रतियुवतौ वदनं प्रियः प्रियायाः।
यदधयदधरावलोपनृत्यत्करवलयस्वनितेन तद्विवव्रे ॥ ४५ ॥

अर्थ—सपत्नी के लताकुंज की ओट में छिप जाने पर प्रियतम ने अपनी प्रियतमा का जो अधर पान कर लिया सो उसके इस अधर पान को (नायिका के) अधर काटने की पीडा से चचल हाथों के कङ्कणों की आवाज ने प्रकट कर दिया।

टिप्पणी—इसमें एक धृष्टा तथा दूसरी ईर्ष्यालु नायिका थी।

विलसितमनुकुर्वती पुरस्ताद्धरणिरुहाधिरुहो वधूर्लतायाः।
रमणमृजुतया पुरः सखीनामकलितचापलदोषमालिलिङ्ग ॥४६॥

अर्थ—कोई रमणी आगे वाले वृक्षपर आलिंगित लता की चेष्टा का अनुकरण करती हुई, अपनी सिधाई के कारण, इस अनुचित चचलता रूपी दोष का कोई विचार बिना किए ही अपने प्रियतम से लिपट गयी।

टिप्पणी—यह हर्ष और उत्सुकता से युक्त प्रौढा नायिका थी।

सललितमवलम्ब्य पाणिनांसे सहचरमुच्छ्रितगुच्छवाञ्छयान्या।
सकलकलभकुम्भविभ्रमाभ्यामुरसि रसादवतस्तरे स्तनाभ्याम् ४७

अर्थ—एक दूसरी रमणी ने ऊचाई परस्थित पुष्पों के गुच्छेको तोडने की इच्छा से विलासपूर्वक अपने प्रियतम के कन्धे को (बाए) हाथ से पकड़कर (खड़ी हो गयी। इस प्रकार) हाथी के गण्डस्थलों के समान शोभाशाली अपने उन्नत कुच मडलो द्वारा उसने अनुराग वश प्रियतम के वक्षस्थलों को ढक लिया।

टिप्पणी—यह भी प्रौढा नायिका था।

मृदुचरणतलाग्रदुःस्थितत्वादसहतरा कुचकुम्भयोर्भरस्य।
उपरि निरवलम्बनं प्रियस्य न्यपतदथोच्चतरोच्चिचीषयान्या ॥४८॥

अर्थ—एक दूसरी रमणी बड़ी ऊचाई पर स्थित फूलों को चुनने की इच्छा से अपने मृदुल चरणों के पंजो के बल पर जो कष्टपूर्वक खड़ी हुई सो कलश के समान विशाल स्तनों का भार न सहन कर सकने के कारण असहाय होकर वह प्रियतम के वक्षस्थल पर ही गिर पड़ी।

टिप्पणी—यह भी प्रौढा नायिका थी। स्वभावोक्ति अलकार।

उपरिजतरुजानि याजमानां कुशलतया परिरम्भलोलुपोऽन्यः।
प्रथितपृथुपयोधरां गृहाण स्वयमिति मुग्धवधूमुदास दोर्भ्याम् ४९

अर्थ—ऊचाई पर स्थित वृक्ष के पुष्पो को तोड देने की प्रार्थना करने वाली विस्तृत एव कठोर स्तनो वाली मुग्धा (अर्थात् सीधी-सादी) नायिका को आलिंगन के लोभी एक नायक ने 'तुम स्वयं ही तोड़ लो" यह कहकर चतुरता से अपने दोनों हाथों से ऊपर उठा लिया।

टिप्पणी—यह नायक अनुकूल तथा नायिका स्वाधीनपतिका तथा प्रौढा थी।

इदमिदमिति भूरुहां प्रसूनैर्मुहुरतिलोभयता पुरःपुरोऽन्या।
अनुरहसमनायि नायकेन त्वरयति रन्तुमहो जनं मनोभूः ॥५०॥

अर्थ—कोई चतुर नायक एक नायिका को 'यह पुष्प लो, यह पुष्प लो', कह-कह कर अनेक वृक्ष के पुष्पों को तोडने की बार-बार लालच दिखाकर एकान्त में ले गया। यह आश्चर्य का विषय है कि कामदेव रमण करने के लिए मनुष्य को (इतना) उतावला बना देता है (कि उसे देश-काल की ज्ञान ही नहीं रह जाता।

टिप्पणी—यह अनुकूल नायक तथा स्वाधीनपतिका प्रौढा नायिका थी। अर्थान्तरन्यास अलकार।

विजनमिति बलादमुं गृहीत्वा क्षणमथ वीक्ष्य विपक्षमन्तिकेऽन्या।
अभिपतितुमना लघुत्वभीतेरभवदमुञ्चति वल्लभेऽतिगुर्वी ॥५१॥

अर्थ—एक दूसरी नायिका अपने प्रियतम को स्वयं बलपूर्वक पकड़कर एकान्त म ले गयी, किन्तु उसी समय वहाँ सपत्नी को उपस्थित देखकर वह अपनी तुच्छता के भय से वहाँ से जब खिसकने की इच्छा करने लगी तो प्रियतम ने ही उसे नहीं छोड़ा। और इस परिस्थिति मे वह बड़ी गौरवशालिनी हो गयी।

टिप्पणी—उसके गौरवशालिनी होने का कारण यह था कि सपत्नी को उसका

च्छता का पता नहीं लगा और पति उसे कितना प्यार करता है—इस बात को उसका सपत्नी भी देख गयी। यह अतिप्रगल्भा नायिका थी।

अधिरजनि जगाम धाम तस्याः प्रियतमयेति रुषा स्रजावनद्धः।
पदमपि चलितुं युवा न सेहे किमिव न शक्तिहरं ससाध्वसानाम् ५२

अर्थ—रात में जो नायक सपत्नी के भवन में चला गया था, इस कारण से क्रुद्ध प्रियतमा ने नायक को माला से बाँध दिया। (इस प्रकार माला से बद्ध) वह युवक एक पग भी आगे नहीं चल सका। भयग्रस्त लोगों के लिए कौन-सी वस्तु शक्तिनाशक नहीं हो जाती?

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलंकार।

[नीचे के चार श्लोकों में कोई खण्डिता नायिका अपने अपराधी नायक को फटकार रही है, जो उसे पल्लव देकर मनाने की चेष्टा कर रहा था—]

न खलु वयममुष्य दानयोग्याः पिबति च पाति च यासकौ रहस्त्वां।
व्रज विटपममुं ददस्व तस्यै भवतु यतः सदृशोश्चिराय योगः॥५३॥
तव कितव किमाहितैर्वृथा नः क्षितिरुहपल्लवपुष्पकर्णपूरैः।
ननु जनविदितैर्भवद्व्यलीकैश्चिरपरिपूरितमेव कर्णयुग्मम् ॥५४॥
मुहुरुपहसिताभिवालिनादैर्वितरसि नः कलिकां किमर्थमेनाम्।
वसतिमुपगतेन धाम्नि तस्याः शठ कलिरेव महांस्त्वयाद्य दत्तः५५
इति गदितवती रुषा जघान स्फुरितमनोरमपक्ष्मकेसरेण।
श्रवणनियमितेन कान्तमन्या सममसिताम्बुरुहेण चक्षुषा च ५६

अर्थ—'हम तुम्हारे इस (पल्लव) दान के योग्य नहीं हैं। एकान्त में जो तुम्हारा पान करती है तथा तुम्हारी (अन्य के पास जाने से) रक्षा करती है, उसी को लेजाकर यह पल्लव दान करो। जाओ, उसीके पास इस प्रकार दो समान स्वभाववालों का चिरकाल तक सम्मेलन हो। (संस्कृत में पल्लव शब्द को तथा धूर्त नायक को विटप कहते

हैं।) हे धूर्त ! तुम यह जो वृक्षों के पल्लव और फूल लाकर व्यर्थ ही मेरे कान को आभूषित कर रहे हो, उससे हमारा क्या प्रयोजन सिद्ध होगा ! क्योंकि लोगों में अति प्रसिद्ध तुम्हारे अप्रिय वचनों से ये मेरे कान चिरकाल से भरे हुए हैं। (अर्थात् जो पहले ही से भरे हुए हैं उनको और भारी मत बनाओ।) भ्रमरों के गुंजार से उपहसित अर्थात् परिहास की गयी इस कली अथवा तुच्छ कलह को तुम हमें क्यों प्रदान कर रहे हो ? हे शठ ! तुम तो मेरी सपत्नी के भवन में निवास कर आज ही यह महान् कली अर्थात् कलह दे चुके हो (तात्पर्य यह है कि जब एक महान् कली आज ही दे चुके हो तो फिर दूसरी कली क्या होगी ?) इस प्रकार की बातें कर एक रमणी ने क्रोध से चमकती हुई उज्ज्वल एवं मनोरम पद्म के समान केसर से युक्त कानों में लगे हुए नीले कमल से अथवा केसर के समान पद्म से युक्त श्रवणपर्यन्त विस्तृत तथा नीले कमल के समान सुन्दर नेत्रों से एक साथ ही अपने प्रियतम को ताडित किया।

टिप्पणी—५४वें श्लोक में काव्यलिंग अलंकार। ५५वें में काव्यलिंग तथा श्लेषोत्थापित अभेदरूपातिशयोक्ति का संकर। ५६ वें में तुल्ययोगिता अलंकार।

विनयति सुदृशो दृशः परागं प्रणयिनि कौसुममाननानिलेन।
तदहितयुवतेरभीक्ष्णमक्ष्णोर्द्वयमपि रोषरजोभिरापुपूरे ॥ ५७ ॥

अर्थ—प्रियतम द्वारा मुख की वायु से सुन्दर नेत्रोंवाली प्रिया की एक आँख से पुष्प की धूल जब बाहर की जा रही थी तब सपत्नी की दोनों आँखें क्रोध-रूपी धूल से भर गयीं।

टिप्पणी—रूपकानुप्राणित विभावना अलंकार का संकर।

स्फुटमिदमभिचारमन्त्र एव प्रतियुवतेरभिधानमङ्गनानाम्।
वरतनुरमुनोपहूय पत्या मृदुकुसुमेन यदाहताप्यमूर्च्छत् ॥५८॥

अर्थ—'सपत्नी' का यह नाम ही मानों स्त्री जाति के लिए अभिचार का मन्त्र बन जाता है। क्योंकि 'सपत्नी' के नाम से बुलाकर पति यदि कोमल पुष्प द्वारा भी ताडन करे तो उसकी प्रियतमा मूर्च्छित हो जाती है।

टिप्पणी—मारण, मोहन, उच्चाटन आदि अभिचार क्रियाएँ हैं। इनमें भी किसी का नाम लेकर पुष्प द्वारा ताडन किया जाता है।

समदनमवतंसितेऽधिकर्णं प्रणयवता कुसुमे सुमध्यमायाः।
व्रजदपि लघुतां बभूव भारः सपदि हिरण्मयमण्डनं सपत्न्याः ॥५९॥

अर्थ—किसी प्रेमी ने अपनी कृशोदरी सुन्दरी के कानों में काम-क्रीडा के समय पुष्पों का आभूषण सजा दिया, यह देखते ही सपत्नी के कानों में सुशोभित बहुत हल्का सुवर्ण का आभूषण भी तुरन्त ही भार हो गया।

टिप्पणी—पति यदि प्रेम द्वारा मामूली चीज भी अपनी प्रियतमा को अपने हाथों देता है तो वही उसका भूषण है, दूसरी चीजें कितनी भी मूल्यवान या भारी हों, उनके सामने वे निर्मूल्य तथा भारी बन जाती हैं। विरोधाभास अलंकार।

अवजितमधुना तवाहमक्ष्णो रुचिरतयेत्यवनम्य लज्जयेव।
श्रवणकुवलयं विलासवत्या भ्रमररुतैरुपकर्णमाचचक्षे ॥६०॥

अर्थ—किसी विलासिनी स्त्री के कानों में भूषित नीला कमल उसके कानों में मानों लज्जित होकर भ्रमरों की गुंजार द्वारा उससे यह कह-सा रहा था कि—मैं अब तुम्हारे नेत्रों की सुन्दरता से पराजित हो गया हूँ।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलंकार।

अवचितकुसुमा विहाय वल्लीर्युवतिषु कोमलमाल्यमालिनीषु।
पदमुपदधिरे कुलान्यलीनां न परिचयो मलिनात्मनां प्रधानम् ॥६१॥

अर्थ—भ्रमर वृन्द उन (रिक्त) लताओं को, जिनसे युवतियों ने सब फूल चुन लिये थे, छोड़कर कोमल मालाओं को धारण करने वाली युवतियों के ऊपर आकर बैठ गये। सच है, मलिन आत्मा अथवा काली देहवालों से चिरकाल का भी परिचय व्यर्थ ही होता है।

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलंकार।

[अब सर्ग के उत्तरार्द्ध में जलक्रीडा का वर्णन करने के लिए कवि ने उसके उपोद्घात में वन-विहार से उत्पन्न अधिक परिश्रम का अगले सात श्लोकों में वर्णन किया है :—]

श्लथशिरसिजपाशपातभारादिव नितरां नतिमद्भिरंसभागैः ।
मुकुलितनयनैर्मुखारविन्दैर्घनमहतामिव पक्ष्मणां भरेण ॥६२॥
अधिकमरुणिमानमुद्वहद्भिर्विकसदशीतमरीचिरश्मिजालैः ।
परिचितपरिचुम्बनाभियोगादपगतकुंकुमरेणुभिः कपोलैः ॥६३॥
अवसितललितक्रियेण बाह्वोर्ललिततरेण तनीयसा युगेन ।
सरसकिसलयानुरञ्जितैर्वा करकमलैः पुनरुक्तरक्तभाभिः ॥६४॥
स्मरसरसमुरःस्थलेन पत्युर्विनिमयसंक्रमिताङ्गरागरागैः ।
भृशमतिशयखेदसंपदेव स्तनयुगलैरितरेतरं निपण्णैः ॥६५॥
अतनुकुचभरानतेन भूयः श्रमजनितानतिना शरीरकेण ।
अनुचितगतिसादनिःसहत्वं कलभकरोरुभिरूरुभिर्दधानैः ॥६६॥
अपगतनवयावकैश्चिराय क्षितिगमनेन पुनर्वितीर्णरागैः ।
कथमपि चरणोत्पलैश्चलद्भिर्भृशविनिवेशवशात्परस्परस्य ॥६७॥
मुहुरिति वनविभ्रमाभिषङ्गादतमि तदा नितरां नितम्बिनीभिः ।
मृदुतरतनवोऽलसाः प्रकृत्या चिरमपि ताः किमुत प्रयासभाजः ६८

अर्थ—वन-विहार के परिश्रम से खुले हुए केश जालों के भार से मानों (रमणियों के) कन्धे नीचे की ओर अत्यन्त झुक गये थे और सघन एवं लम्बी पलकों के भार से मानों नेत्र बन्द-से हो रहे थे, जिससे (उनके) मुखारविन्द (सुशोभित हो रहे थे) प्रेमी के विशेष चुंबन के मर्दन के कारण लगी हुई केसर की धूल (रमणियों के) कपोलों पर से छूट गयी थी, अतएव सूर्य की किरणों के जाल उन पर गुथ पड़ रहे थे और वह अधिक लाल वर्ण के हो गये थे। परिश्रम में थक जाने के कारण उनकी भुजाओं की आलिंगन आदि सुकुमार

क्रियायें भी समाप्त हो गयी थीं और इस प्रकार अत्यन्त कोमल और दुर्बल उनकी दोनों भुजाएँ और अधिक सुन्दर हो गयी थीं तथा उनके कर-कमल मानों सरस नूतन पल्लवों से रगे जाकर द्विगुणित लाल वर्ण के हो गये थे। काम के अनुराग से पतियों के वक्षस्थल (सुन्दरियों के स्तनों के साथ मिलकर) एक दूसरे के अगराग को अदल-बदल चुके थे। इस से रमणियों के दोनो स्तन मानों अत्यन्त परिश्रम के कारण उत्पन्न पसीनों से परस्पर मिल-से गये थे। पहले ही से विशाल स्तनों के भार से उन (रमणियों) के शरीर झुके हुए थे अब अधिक परिश्रम के कारण वह और भी झुक पडे। (पैदल चलने का) अभ्यास न होने के कारण हाथी की सूँड के समान मोटी जाँघों को धारण करने वाली वे रमणियाँ थक कर चलने मे असमर्थ हो गयी थीं। बहुत देर तक धरती तल पर पैदल चलने के कारण उनके चरण कमलो में लगा हुआ नूतन आलता का रंग छूट गया था, किन्तु धरती पर चलने के कारण फिर उनमे परस्पर के बारम्बार के सघट्टन स अथवा देर तक के पाद-विक्षेप से फिर लालिमा आ गयी थी। ऐसे चरण कमलो से वे किसी प्रकार चल रही थीं। बड़े-बडे नितम्बों वाली वे रमणियाँ इस प्रकार के बार-बार के वन विहार करने के कारण अत्यन्त थक गयी थीं। सच है, नितान्त कोमल अगों वाली रमणियाँ स्वभाव से ही आलस्य युक्त होती हैं, और फिर यदि वे देर तक परिश्रम कर लें तो क्या कहना ?

टिप्पणी—६२वे श्लोक म उत्प्रेक्षाओ की ससृष्टि है। ६८ वें में उत्प्रेक्षा है। ६८ व श्लोक में अर्थापत्ति अलकार ह। रमणियो का यह श्रम वणन शृगार रस का सचारी भाव है।

[अब श्रम के अनुभाव पसीन का वणन आग किया गया है—]

प्रथममलघुमौक्तिकाभमासीच्छ्रमजलमुज्ज्वलगण्डमण्डलेपु ।
कठिनकुचतटाग्रपाति पश्चादथ शतशर्करता जगाम तासाम् ६९

अय—तदनन्तर उन रमणियों को जो पसीना हुआ वह पहले उनके गोरे गोरे गालो पर बडी-बडी मोतियों के समान था और फिर बाद में

कठोर स्तन-मण्डलों के अग्रभाग पर गिर कर सैकड़ों विन्दुओं के समान विशीर्ण हो गया।

टिप्पणी—कडी से कडी वस्तु भी किसी अत्यन्त कठोर वस्तु पर गिरकर चूर-चूर हो ही जाती है। पर्याय अलंकार।

[श्रम में भी उनके स्तन-मण्डलों की शोभा नहीं घटी थी—]

निपुलकमपि यौवनोद्धतानां घनपुलकोदयकोमलं चकाशे।
परिमलितमपि प्रियैः प्रकामं कुचयुगमुज्ज्वलमेव कामिनीनाम् ७०

अर्थ—जवानी से इठलाती हुई उन कामिनियों के दोनों स्तन यद्यपि विपुलक अर्थात् विस्तृत थे फिर भी सघन पुलकावली से वे अत्यन्त कोमल और सुशोभित थे। और प्रेमियों ने यद्यपि उन्हें विशेष रूप से परिमलित अर्थात् परिमल की भाँति सुगन्धित कर दिया था फिर भी वे उज्ज्वल ही सुशोभित हो रहे थे।

टिप्पणी—जो विपुलक थे व सान्द्र पुलकावली से अत्यन्त कोमल कैसे थे—यह विरोध है, किन्तु विपुलक का विस्तृत अर्थ करने से विरोध दूर हो जाता है, इसी प्रकार जो परिमलित अर्थात् विशेष रूप से मलिन कर दिए गए थे वे उज्ज्वल कैसे हो सकते थे—यह विरोध है किन्तु परिमलित का सुगन्धित अर्थ करने से विरोध दूर हो जाता है। इस प्रकार दो विरोधाभासों की संसृष्टि।

अविरतकुसुमावचायखेदान्निहितभुजालतयैकयोपकण्ठम्।
विपुलतरनिरन्तरावलग्नस्तनपिहितप्रियवक्षसा ललम्बे ॥७१॥

अर्थ—बार-बार पुष्प चुनने के परिश्रम से थकी हुई कोई रमणी अपने पति के गले में दोनों भुजाएँ डालकर अपने घने स्तन-युगलों द्वारा उसके वक्षस्थल को ढक कर उसका सहारा लिए हुए थी।

अभिमतमभितः कृताङ्गभङ्गा कुचयुगमुन्नतिवित्तमुन्नमय्य।
तनुरभिलषितं क्रमच्छलेन व्यवृणुत वेल्लितबाहुवल्लरीका ॥७२॥

अर्थ—कोई कृशाङ्गी सुन्दरी अपने प्रियतम के सम्मुख अपने विशाल स्तन-युगलों को और ऊँचा करके अँगड़ाई लेती हुई अपनी भुजा

लताओं को फैलाकर थकावट मिटाने के बहाने से, अपनी आलिंगन करने की अभिलाषा प्रकट कर रही थी।

टिप्पणी—यह प्रौढा नायिका थी।

हिमलवसदृशः श्रमोदबिन्दूनपनयता किल नूतनोढवध्वाः।
कुचकलशकिशोरकौ कथंचित्तरलतया तरुणेन पस्पृशाते ॥७३॥

अर्थ—बरफ के कणों के समान पसीने की बूदों को दूर करने के बहाने से एक युवक नायक ने अपनी नव परिणीता वधू के कलश एव घोड़ों के बच्चों के समान उठते हुए दोनों स्तनों को किसी प्रकार ना नू करते हुए भी अत्यन्त चंचलता से स्पर्श कर ही लिया।

टिप्पणी—यह मुग्धा नायिका थी।

गत्वोद्रेकं जघनपुलिने रुद्धमध्यप्रदेशः
क्रामन्नूरुद्रुमभुजलताः पूर्णनाभीह्रदान्तः।
उल्लङ्घ्योच्चैः कुचतटभुवं प्लावयन् रोमकूपान्
स्वेदापूरो युवतिसरितां व्याप गण्डस्थलानि ॥७४॥

अर्थ—युवती-रूपी नदियों के पसीने का जल प्रवाह जघन-रूपी तट प्रदेशों में अधिकता से फैलकर मध्य-प्रदेश अर्थात् कटि और उदर प्रान्त मे फैल गया, फिर जघा-रूपी वृक्षों तथा बाहु-रूपी लताओं को उसने आक्रान्त कर लिया। तदनन्तर नाभी-रूपी तालाब को परिपूर्ण कर,वह ऊचे स्तन-रूपी तटवर्ती भूमि को लांघ कर समस्त रोमछिद्र-रूपी कूपों को लबालब भरते हुए ऊँचे गण्ड-स्थलों (उच्च भूमि भागों तथा कपोल स्थलो) पर पहुँच गया।

टिप्पणी—श्लेषानुप्राणित रूपक अलंकार। मन्दाक्रान्ता छन्द। लक्षण—"मन्दाक्रान्ताम्बुधि रस नगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम्।" नदियों का जल-प्रवाह भी बढ़ कर इसी क्रम से उच्च भूमि भागों पर व्याप्त हो जाता है।

प्रियकरपरिमार्गादङ्गनानां यदाभूत्
पुनरधिकतरैव स्वेदतोयोदयश्रीः ।
अथ वपुरभिषेक्तुं तास्तदाम्भोभिरीषु-
र्वनविहरणखेदम्लानमम्लानशोभाः ॥७५॥

अर्थ—जब स्त्रियों की प्रियतम के कर-स्पर्श के कारण उत्पन्न पसीने की लक्ष्मी और अधिक ही बढ गयी, अर्थात् और अधिक पसीना हो आया उस समय पूर्ण शोभा शालिनी वे सुन्दरियाँ, वन विहार के परिश्रम के कारण थके हुए अपने अगों को सम्पूर्ण रूप से जल द्वारा अभिषिक्त करने की इच्छा करने लगीं ।

टिप्पणी—अर्थात् रमणियाँ अब स्नान करने की इच्छा करने लगीं। वाक्यार्थ हेतुक काव्यलिंग अलकार । मालिनी छन्द ।

श्री माघ कवि कृत शिशुपालवध महाकाव्य में वन-विहार वर्णन नामक सातवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७ ॥

आठवाँ सर्ग

[अब इस सर्ग में कवि ने जल-विहार का वर्णन किया है—]

आयासादलघुतरस्तनैः स्वनद्भिः
श्रान्तानामविकचलोचनारविन्दैः
अभ्यम्भः कथमपि योषितां समूहै-
स्तैरुर्वीनिहितचलत्पदं प्रचेले ॥१॥

अर्थ—(तदनन्तर) वन विहार के परिश्रम से थकी हुई विशाल स्तनों वाली उन रमणियों के नेत्र-कमल मुँदने लगे और किसी प्रकार धरती पर आगे पैर रखती हुई वे जलाशय की ओर चल पड़ीं।

टिप्पणी—इस सर्ग में प्रहर्षिणी छन्द है। लक्षण—"म्नौ ज्रौ गस्त्रिदशयतिः प्रहर्षिणीयम्।" स्वभावोक्ति अलंकार।

यान्तीनां सममसितभ्रुवां नतत्वा-
दंसानां महति नितान्तमन्तरेऽपि ।
संसक्तैर्विपुलतया मिथो नितम्बैः
संबाधं बृहदपि तद्बभूव वर्त्म ॥२॥

अर्थ—पंक्ति-बद्ध होकर जाती हुई काली भौंहों वाली उन रमणियों के कन्धों के झुके होने के कारण यद्यपि एक-दूसरे के बीच में पर्याप्त अन्तर था तथापि विस्तृत होने के कारण जो उनके नितम्ब एक दूसरे से सटे हुए थे, उससे वह मार्ग विस्तृत होने पर भी एकदम संकीर्ण हो गया।

बैठीं। क्यों न हो, दूसरो के गुणों द्वारा अपने गुणो के पराजित होने पर भी कौन ऐसा निर्लज्ज है जो फिर अपने गुणों को प्रकट करता है।

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अल्कार।

श्रीमद्भिर्जितपुलिनानि माधवीना-
मारोहैर्निविडबृहन्नितम्बबिम्बैः।
पाषाणस्खलनविलोलमाशु नूनं
वैलक्ष्याद्ययुरवरोधनानि सिन्धोः ॥ ८ ॥

अर्थ—शोभायुक्त विशाल एव सघन नितम्ब-मण्डलों से युक्त भगवान् श्रीकृष्ण की रमणियों की जघाओं से पराजित तट वाली सिन्धु की रमणियाँ अर्थात् नदियाँ पराजय से लज्जित होने के कारण मानों निश्चय ही पाषाणखण्डों पर गिर-गिर कर चचलता पूर्वक भागने लगीं।

टिप्पणी—दूसरे लोग भी प्रतिद्वन्द्विता से पराजित होकर लज्जा के कारण वेगपूर्वक वहाँ से भाग निकलते हैं। हेतूत्प्रेक्षा।

मुक्ताभिः सलिलरयास्तशुक्तिपेशी-
मुक्ताभिः कृतरुचि सैकतं नदीनाम्।
स्त्रीलोकः परिकलयांचकार तुल्यं
पल्यङ्कैर्विगलितहारचारुभि स्वैः ॥ ९ ॥

अर्थ—यादव रमणियों ने (नदियों के) जलवेग के कारण सीपियों के कोशों के टूट जाने से बाहर निकली हुई मोतियों से जिनकी शोभा बढ़ गई थी—ऐसे नदियों के बालूवाले तट-प्रान्तों को अपनी उन सुन्दर शैय्याओं के समान माना जिनपर मोतियों की मालाएँ टूटकर बिखरी रहती थीं।

टिप्पणी—पूर्णोपमा अल्कार।

आघ्राय श्रमजमनिन्द्यगन्धबन्धुं
निश्वासश्वसनमसक्तमङ्गनानाम् ।
आरण्याः सुमनस ईपिरे न भृङ्गै-
रौचित्यं गणयति को विशेषकामः ॥१०॥

अर्थ—भ्रमरों ने, मार्ग के परिश्रम से थक जाने के कारण सुगन्धि-युक्त यादव रमणियों के मुख से वेग पूर्वक निकलने वाली वायु को बेरोक-टोक सूँघकर उपवन के पुष्पों की इच्छा नहीं की। सच है, ऐसा कौन विशेष कामुक पुरुष होगा जो उचित-अनुचित का विचार करता है। (अर्थात कोई नहीं।)

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलङ्कार।

आयान्त्यां निजयुवतौ वनात्सशङ्कं
बर्हाणामपरशिखण्डिनीं भरेण।
आलोक्य व्यवदधतं पुरो मयूरं
कामिन्यः श्रदधुरनार्जवं नरेषु ॥११॥

अर्थ—अपनी युवती प्रियतमा (मयूरी) के वन से (अकस्मात्) आ जाने पर सशक चित्त होकर मयूर ने अपनी विशाल पूँछों के पीछे दूसरी मयूरी को छिपा लिया। उसे ऐसा करते देखकर यादव-रमणियों ने पुरुषजाति-मात्र में कुटिलता का विश्वास कर लिया। (अर्थात् उन्होंने यह मान लिया कि पुरुष की जाति ऐसी ही कपटी होती है।)

आलापैस्तुलितरवाणि माधवीनां
माधुर्यादमलपतत्रिणां कुलानि।
अन्तर्धामुपययुरुत्पलावलीषु
प्रादुष्यात्क इव जितः पुरः परेण ॥१२॥

अर्थ—भगवान् श्रीकृष्ण की रमणियों की मधुर वाणी से पराजित स्वर वाले हंसों के समूह कमलों के बीच में जाकर छिप गये। (उन्होंने

यह ठीक ही किया—) क्योंकि दूसरे से पराजित होकर कौन ऐसा व्यक्ति है जो विजेता के सम्मुख खडा रह सके।

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलकार।

मुग्धायाः स्मरललितेषु चक्रवाक्या
निःशङ्कं दयिततमेन चुम्बितायाः।
प्राणेशानभि विदधुर्विधूतहस्ताः
सीत्कारं समुचितमुत्तरं तरुण्यः ॥१३॥

अर्थ—प्रियतम द्वारा निर्दयता के साथ चुम्बित और कामकेलि में मुग्ध चकवी के लिए उन यादव रमणियो ने अपने प्रियतमों के सम्मुख अपना हाथ कँपाते हुए शीत्कार (शी शी करना) रूप उचित ही प्रत्युत्तर दिया।

टिप्पणी—चकवी अभी मुग्धा अर्थात् मूढ थी, कामकेलि की पूरी जानकारी उसे नही थी। पति द्वारा चुम्बन के समय जब स्त्रियो का निर्दयतापूर्वक अधर काट लिया जाता है तो वे हाथ कँपाती हुई सी-सी करने लगती है। किन्तु चकवे के निर्दयतापूर्वक अधर के काट लेने पर भी चकवी चुपचाप रही। अतः स्त्री जाति की सहज सहानुभूति से प्रेरित यादव रमणियो ने उस चकवी के लिए उचित उत्तर सी सी करते हुए हाथ कँपाकर दिया। तात्पर्य यह है कि चकवे चकवी का यह कामकेलि उनकी बन गयी। असम्बन्ध में सम्बन्धरूप अतिशयोक्ति अलंकार।

उत्क्षिप्तस्फुटितसरोरुहार्घ्यमुच्चैः
सस्नेहं विहगरुतैरिवालपन्ती।
नारीणामथ सरसी सफेनहासा
प्रीत्येव व्यतनुत पाद्यमूर्मिहस्तैः ॥१४॥

अर्थ—तदनन्तर एक पुष्करिणी (पोखरी) ने समागत यादव रमणियों का स्नेह-पूर्वक [विधिवत सम्मान किया। उसने अपने] विकसित कमलों से अर्घ्य प्रदान करते हुए पक्षियों के कलरव से मानों स्वागतादि के सुन्दर वचन उच्चारित किये तथा फेन से मुस्कराती हुई

मानो अपने चंचल लहर-रूपी हाथों से पाद्य अर्थात् पैर धोने के लिए जल प्रदान किया।

टिप्पणी—रूपकानुप्राणित उत्प्रेक्षालङ्कार की संसृष्टि।

नित्याया निजवसतेर्निरासिरे य-
द्रागेण श्रियमरविन्दतः कराग्रैः।
व्यक्तत्वं नियतमनेन निन्युरस्याः
सापत्न्यं क्षितिसुतविद्विषो महिष्यः ॥१५॥

अर्थ—पृथ्वी के पुत्र नरकासुर के शत्रु भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र की रमणियों ने अपने हाथों के अग्रभागों अर्थात् अंगुलियों अथवा हथेलियों की लालिमा से (अथवा इच्छा से) श्री (शोभा तथा लक्ष्मी) को उनकी नित्य निवास करने की स्थली कमलों से जो निकाल कर बाहर कर दिया, इससे मानों उन्होंने लक्ष्मी के साथ अपना सौतेला भाव प्रकट किया।

टिप्पणी—लक्ष्मी भगवान् की प्रमुख पत्नी है और उनका शाश्वत निवास कमल है। यादव रमणियों ने अपनी हथेलियों की लालिमा से कमलों को श्रीविहीन बना दिया। उसी को कवि उत्प्रेक्षा करता है कि मानो उन्होंने लक्ष्मी को उनके नित्यनिवास से निकालकर बाहर कर दिया। दूसरी स्त्री भी अपनी सपत्नी को क्रुद्ध होकर उसके घर से हाथ पकड़कर निकाल देती है। राग और श्री शब्द में स्थित श्लेष की प्रतिभा से उत्थापित अतिशयोक्ति से अनुप्राणित फलोत्प्रेक्षा अलङ्कार।

आस्कन्दन् कथमपि योषितो न याव-
द्ध्रीमत्यः प्रियकरधार्यमाणहस्ताः।
औत्सुक्यात्त्वरितममूस्तदम्बु ताव-
त्संक्रान्तप्रतिमतया दधाविवान्तः ॥ १६ ॥

अर्थ—डरनेवाली रमणियाँ अपने प्रियतमों द्वारा हाथ पकड़ाकर जब तक किसी प्रकार (सरोवर के जल में) प्रविष्ट नहीं हो रही थीं

तब तक (जल में भीतर दिखाई) पड़ने वाली उनकी परछाईं से वह सरोवर का जल मानो उत्कण्ठा के साथ उन्हें अपने भीतर धारण कर चुका था।

टिप्पणी—स्वरूपोत्प्रेक्षा अलंकार।

ताः पूर्वं सचकितमामस्य गाधं
कृत्वाथो मृदु पदमन्तराविशन्त्यः।
कामिन्यो मन इव कामिनः सरागै-
रङ्गैस्तज्जलमनुरञ्जयांबभूवुः ॥ १७ ॥

अर्थ—वे यादव रमणियाँ कामुक पुरुषों के मन की भाँति उस सरोवर के जल में प्रथम डरती हुई प्रविष्ट हुईं और (आगे प्रविष्ट पुरुष के द्वारा, पक्षान्तर में, दूत के मुख से) फिर थाह पाकर अपने कोमल पद को धीरे से आगे बढ़ा कर (पक्षान्तर में, स्वयं उससे बात चीत कर के) उसके भीतर प्रविष्ट होकर (पक्षान्तर में, रहस्य कर्म में प्रवृत्त होकर) अंगराग से (पक्षान्तर में, अनुराग से) युक्त अपने अंगों द्वारा उसे अनुरंजित करने लगीं (पक्षान्तर में, अनुरक्त करने लगीं)।

टिप्पणी—श्लेष से उत्थापित उपमा अलंकार। स्त्रियाँ पराये कामी पुरुषों के मन के भीतर इसी क्रम से प्रविष्ट होती हैं।

संक्षोभं पयसि मुहुर्महेभकुम्भश्रीभाजा कुचयुगलेन नीयमाने।
विश्लेषं युगमगमद्रथाङ्गनाम्नोरुद्वृत्तः क इह सुखावहः परेषाम् ॥ १८ ॥

अर्थ—(रमणियों के) विशाल हाथी के गण्ड-स्थल के समान शोभा युक्त स्तन-युगलों से बारम्बार जल के सङ्क्षुब्ध किये जाने पर जलाशय के (तटवर्ती) चक्रवाकदम्पति परस्पर वियुक्त हो गये। क्यों न हो, आचारभ्रष्ट लोग दूसरे को कब सुख दे सकते हैं अर्थात् कभी नहीं।

टिप्पणी—'महेभकुम्भश्रीभाजा' में [illegible] अलंकार है। पूरे श्लोक में [illegible] अनुप्राणित अर्थान्तरन्यास है।

आसीना तटभुवि सस्मितेन भर्त्रा
रम्भोरूरवतरितुं सरस्यनिच्छुः ।
धुन्वाना करयुगमीक्षितुं विलासा-
ञ्शीतालुः सलिलगतेन सिच्यते स्म ॥१९॥

अर्थ—शीत से भीत कोई कदली के खम्भों के समान जंघों वाली सुन्दरी रमणी सरोवर में (स्नानार्थ) उतरने की अनिच्छा प्रकट कर रही थी और उसके तट की भूमि पर ही बैठी हुई थी। तब जल के भीतर प्रविष्ट उसके प्रियतम ने हँसते हुए उसका विलास देखने की इच्छा से उसे भिगो दिया जिससे वह अपने दोनों हाथ नचाने लगी।

नेच्छन्ती सममुना सरोऽवगाढुं
रोधस्तः प्रतिजलमीरिता सखीभिः ।
आश्लिक्षद्भयचकितेक्षणा नवोढा
वोढारं विपदि न दूषितातिभूमिः ॥ २० ॥

अर्थ—कोई नव विवाहिता रमणी (लज्जावश) अपने पति के साथ जब सरोवर में प्रविष्ट नहीं होना चाहती थी तब उसकी सखियों ने उसे तट से जल की ओर ढकेल दिया। भय से चकित नेत्रों वाली वह नववधू पति से लिपट गयी। (यह उचित ही हुआ) विपत्ति के समय मर्यादा का तोड़ देना अनुचित नहीं होता।

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलंकार।

तिष्ठन्तं पयसि पुमांसमंसमात्रे
तद्दघ्न तदवयती स्विलात्मनोऽपि ।
अभ्येतुं सुतनुरभीरियेष मौग्ध्या
दाश्लेषि द्रुतममुना निमज्जतीति ॥२१॥

अर्थ—सुन्दरी नायिका केवल कन्धे तक जल में खड़े हुए अपने प्रियतम को देखकर उस जल को अपने भी कंधे तक जानकर मूर्खता-वश निर्भय चित्त से उसके पास चल पड़ी। तब उसके पति ने यह समझकर कि यह डूब जायगी, उस सुन्दरी को शीघ्र ही उठाकर अपने अंगों में लिपटा लिया।

आनाभेः सरसि नतभ्रुवावगाढे
चापल्यादथ पयसस्तरङ्गहस्तैः।
उच्छ्रायि स्तनयुगमध्यरोहि लब्ध-
स्पर्शानां भवति कुतोऽथवा व्यवस्था ॥ २२ ।

अर्थ—नम्र भौंहों वाली सुन्दरी तालाब में जब केवल नाभि पर्यन्त जल में प्रविष्ट हुई थी तभी जल, चञ्चलता वश अपने तरंग-रूपी हाथों से उसके उन्नत स्तन-युगलों पर अधिरोहित हो गया। क्यों न हो, जो लोग (स्त्रियों का एक बार भी) स्पर्श पा जाते हैं, उनके लिए मर्यादा कहाँ रहती है? (अर्थात् कहीं नहीं।)।

टिप्पणी—अभेद मूलक अतिशयोक्ति, रूपक समासोक्ति और अर्थान्तरन्यास अलंकार।

कान्तानां कुवलयमप्यपास्तमक्ष्णोः
शोभाभिर्न मुखरुचाहमेकमेव।
सहर्षादलिविरुतैरितीव गाय-
ल्लोलोर्मौ पयसि महोत्पलं ननर्त ॥२३॥

अर्थ—चचल लहरों से युक्त (सरोवर के) जल में अरविन्द 'रमणियों के मुख की कान्ति से अकेला मैं ही नहीं पराजित हुआ हूँ, किन्तु उनके नयनों की शोभा से नील कमल भी पराजित हो गया है' इस सन्तोष से मानों भ्रमरों के गुञ्जार के रूप में गान के साथ नृत्य करने लगा।

टिप्पणी—[illegible] पराजित [illegible] जब [illegible] जाते [illegible] नहीं पराजित हुआ [illegible] प्रस्तुत और [illegible] उत्प्रेक्षा [illegible] नाचने [illegible] है। [illegible]

त्रस्यन्ती चलशफरीविघट्टितोरू-
वामोरूरतिशयमाप विभ्रमस्य ।
क्षुभ्यन्ति प्रसभमहो विनापि हेतो-
र्लीलाभिः किमु सति कारणे रमण्यः ॥२४॥

अर्थ—चचल शफरी मछली द्वारा जघों पर विद्ध हो जाने से डरी हुई, सुन्दर जाँघों वाली एक सुन्दरी अनेक प्रकार के विलास के नखरे दिखाने लगी । सच है, स्त्रियाँ तो विना किसी कारण के ही अपनी विलास लीलाओं से क्षुब्ध हो जाती हैं और जब कोई कारण हो तो फिर क्या कहना ?

टिप्पणी—अर्थापत्ति अलकार।

आकृष्टप्रतनुभुपुर्लतैस्तरद्भि-
स्तस्याम्भस्तदथ सरोमहार्णवस्य ।
अक्षोभि प्रसृतविलोलबाहुपक्षै-
र्योषाणामुरुभिरुरोजगण्डशैलैः ॥ २५ ॥

अर्थ—तदनन्तर (उन) रमणियों के पतली देह-रूपी लताओं एव फैली हुई विस्तृत बाहु-रूपी पखों से युक्त तैरते हुए विशाल स्तन-रूपी पर्वत से गिरे हुए पत्थर के खण्डों से, उस सरोवर रूपी महासमुद्र का जल क्षुब्ध होने लगा।

टिप्पणी—सागरूपक अलकार ।

गाम्भीर्यं दधदपि रन्तुमङ्गनाभिः
संक्षोभं जघनविघट्टनेन नीतः
अम्भोधिर्विकसितवारिजाननोऽसौ
मर्यादां सपदि विलङ्घयांबभूव ॥ २६ ॥

अर्थ—गभीरता अर्थात् अगाध जल अथवा अविकारी स्वभाव धारण करने पर भी विहार करती हुई रमणियों द्वारा किए गए जघो

के सघर्षण से विकार को प्राप्त एव विकसित कमल मुख वाले उ. सरोवर ने तुरन्त ही सीमा (मर्यादा) का उल्लघन कर दिया।

टिप्पणी—दूसरा पुरुष भी, वह चाहे कितना ही गभीर चित्त का क्यो न हो स्त्रियो के जघा के सघर्षण से तुरन्त ही विकारी हो जाता है तथा उसका मुख विकसित कमल के समान हो जाता है। प्रतीयमान अभेदातिशयोक्ति से अनुप्राणित समासोक्ति अलकार का सकर।

आदातुं दयितमिवावगाढमारा-
दूर्मीणां ततिभिरभिप्रसार्यमाणः।
कस्याश्चिद्विततचलच्छिखाङ्गुलीको
लक्ष्मीवान् सरसि रराज केशहस्तः ॥ २७ ॥

अर्थ—सरोवर मे फैला हुआ एव चचल शिखा-रूपी अगुलियों से सुशोभित किसी सुन्दरी का (हाथ के समान) केशपाश समीप में ही जल के भीतर डूबे हुए अपने प्रियतम को मानों पकड़ने के लिए लहरों के समूहों से चारों ओर फैलकर अधिक सुशोभित हो रहा था।

टिप्पणी—अतिशयोक्ति तथा रूपक का सकर।

उन्निद्रप्रियकमनोरम रमण्याः
स रेजे सरसि वपुः प्रकाशमेव।
युक्तानां विमलतया तिरस्क्रियायै
नाक्रामन्नपि हि भवत्यल जलौघः ॥२८॥

अर्थ—फूले हुए असन अर्थात् बन्धूक के पुष्प के समान अर्थात् सुवर्णवत् गौर वर्णवाली रमणी का सुन्दर शरीर जल मे मग्न होने पर भी प्रकाशित हो रहा था। जल का समूह (अथवा जड अर्थात मूर्खो का समूह ड और ल मे अभेद होने के कारण) ऊपर से आच्छादित करते हुए भी (मूर्ख पक्ष में, गाली-गलौच देते हुए भी) निर्मलता से युक्त पदार्थों को (गुणशील लोगों को) छिपाने में (तिरस्कृत करने में) असमर्थ होता है।

टिप्पणी—निर्मल जल किसी निर्मल पदार्थ को नहीं छिपा पाता। वे रमणियाँ यद्यपि भीतर डूबी हुई थीं फिर भी उनका सारा शरीर बाहर दिखाई पड रहा था। श्लेषमूलक अभेदरूपातिशयोक्ति से अनुप्राणित अर्थान्तरन्यास अलंकार।

किं तावत्सरसि सरोजमेतदारा-
दाहोस्विन्मुखमवभासते युवत्याः।
संशय्य क्षणमिति निश्चिकाय कश्चि-
द्विब्बोकैर्बकसहवासिनां परोक्षैः ॥२९॥

अर्थ—सरोवर में दूर से यह समाने दिखाई पड़ने वाला पदार्थ क्या कमल है अथवा किसी सुन्दरी युवती का मुख सुशोभित हो रहा है—क्षण भर के लिये ऐसा सन्देह करके किसी विलासी पुरुष ने बकुलों के सहवासी कमलों मे अविद्यमान विलासादि क्रियाओं के द्वारा—यह तो रमणी का मुख ही है—ऐसा निश्चय किया।

टिप्पणी—सन्देह अलंकार।

[आगे जलक्रीडा के विविध साधनों का वर्णन किया गया है—]

शृङ्गाणि द्रुतकनकोज्ज्वलानि गन्धाः
कौसुम्भं पृथु कुचकुम्भसङ्गि वासः।
मार्द्वीकं प्रियतमसंनिधानमास-
न्नारीणामिति जलकेलिसाधनानि ॥३०॥

अर्थ—तपाये हुए सुवर्ण से अनुलिप्त सींगे अर्थात् जलकेलि के यन्त्र, सुगन्धित पदार्थ, विशाल स्तनों को ढकने वाली कुसुम्भी रंग की साड़ियाँ, अंगूरी मदिरा तथा प्रियतम का सामीप्य—ये सारी वस्तुएँ उन रमणियों की जलक्रीडा की सामग्री थीं।

टिप्पणी—तुल्ययोगिता अलंकार।

उत्तुङ्गादनिलचलांशुकास्तटान्ता-
च्चेतोभिः सह भयदर्शिनां प्रियाणाम्।

श्रोणीभिर्गुरुभिरतूर्णमुत्पतन्त्य-
स्तोयेषु द्रुततरमङ्गना निपेतुः ॥३१॥

अर्थ—तेज वायु से जिनके वस्त्र उड़ रहे थे—ऐसी वे रमणियाँ, ऊंची तटवर्ती भूमि से, अनर्थ की आशंका करने वाले प्रियतमों चित्त के साथ ही अपने स्थूल नितम्बों से मन्द-मन्द दौड़ती हुई (सरोवर के) जल में वेगपूर्वक कूद पड़ीं।

टिप्पणी—अतिशयोक्ति से उपजीवित सहोक्ति अलंकार।

मुग्धत्वादविदितकैतवप्रयोगा
गच्छन्त्यः सपदि पराजयं तरुण्यः।
ताः कान्तैः सह करपुष्करेरिताम्बु
व्यात्युक्षीमभिसरणग्लहामदीव्यन् ॥ ३२ ॥

अर्थ—मुग्धा होने के कारण वे रमणियाँ छल-कपट से अपरिचित थीं, अतः शीघ्र ही जल-क्रीडा मे पराजित हो गयीं। वे अपने प्रियतमों के साथ हारने पर स्वय रति-दान करने का दाव लगाकर एक दूसरे के ऊपर हाथों से पानी फेंकने का जूआ खेल रही थीं।

टिप्पणी—पदार्थहेतुक काव्यलिंग अलंकार।

योग्यस्य त्रिनयनलोचनानलार्चि-
र्निर्दग्धस्मरपृतनाधिराज्यलक्ष्म्याः।
कान्तायाः करकलशोद्यतैः पयोभि-
र्वक्त्रेन्दोरकृत महाभिषेकमेकः ॥ ३३ ॥

अर्थ—त्रिनेत्र शंकर जी की नयनाग्नि की ज्वाला से दग्ध कामदेव की सेना की आधिपत्य-रूपी लक्ष्मी के योग्य किसी सुन्दरी के मुख-रूपी चद्रमा का, कोई विलासी पुरुष मानों अपनी अञ्जलि रूपी कलश से फेंके हुए जलद्वारा महान् अभिषेक कर रहा था।

टिप्पणी—तात्पर्य यह कि है कोई विलासी एक सुन्दरी रमणी के मुखचन्द्र पर अपनी अंजलि से पानी फेंक रहा था। व्यञ्जनानुप्राणित प्रतीयमानोत्प्रेक्षा का संकर।

> प्रिञ्चन्त्याः कथमपि बाहुमुन्नमय्य
> प्रेयांसं मनसिजदुःखदुर्बलायाः।
> सौवर्णं वलयमवागलत्कराग्रा-
> ल्लावण्यश्रिय इव शेषमङ्गनायाः ॥ ३४ ॥

अर्थ—कामपीड़ा से दुर्बल अङ्गोंवाली कोई सुन्दरी किसी [प्रकार से अपनी बाहुओं को उठाकर अपने प्रियतम को जब भिगो रही थी तब उसके हाथ के अग्रभाग से सुवर्ण का कङ्कण मानों उसकी कांति की लक्ष्मी के अवशेष की भाँति नीचे खिसक कर गिर पड़ा।

टिप्पणी—जातिस्वरूपोत्प्रेक्षा अलङ्कार।

> स्निह्यन्ती दृशमपरा निधाय पूर्णं
> मूर्तेन प्रणयरसेन वारिणेव।
> कंदर्पप्रवणमनाः सखीसिसिक्षा-
> लक्ष्येण प्रतियुवमञ्जलिं चकार ॥३५॥

अर्थ—काम से परवश हुई किसी सुन्दरी ने अपने प्रियतम के प्रति दृष्टि विशेष से स्नेह प्रकाशित करती हुई, सखी को भिगोने की इच्छा के बहाने से, युवक के सम्मुख मानों मूर्तमान प्रणय-रस की भाँति (सरोवर के) जल से अपनी अञ्जलि को पूर्ण किया।

> आनन्दं दधति मुखे करोदकेन
> श्यामाया दयिततमेन सिच्यमाने।
> ईर्ष्यन्त्या वदनमसिक्तमप्यनल्प-
> स्वेदाम्बुस्नपितमजायतेतरस्याः ॥३६॥

अर्थ—प्रियतम के हाथों से फेंके गये जल से भींगकर किसी मध्यम-यौवना सुन्दरी का मुख प्रसन्नता से खिल गया और इस व्यापार को न सहन करनेवाली उसकी सपत्नी का मुख बिना पानी से सींचे ही अत्यंत पसीने के जल से भींग गया।

उद्वीक्ष्य प्रियकरकुड्मलापविद्धै-
र्वक्षोजद्वयमभिषिक्तमन्यनार्याः।
अम्भोभिर्मुहुरसिचद्वधूरमर्षा-
दात्मीयं पृथुतरनेत्रयुग्ममुक्तैः ॥३७॥

अर्थ—प्रियतम के कर-कमलों से फेंके गये जल द्वारा सपत्नी के स्तन-युगलों को अभिषिक्त देखकर एक नायिका अमर्ष के कारण अपने दोनों स्तनों को विशाल नेत्रों से गिराये गये आँसुओं द्वारा निरन्तर सींचने लगी। (अर्थात ईर्ष्या के कारण वह रोने लगी।)

टिप्पणी—वस्तु से अलकार को ध्वनि।

कुर्वद्भिर्मुखरुचिमुज्ज्वलामजस्रं
यैस्तोयैरसिचत वल्लभां विलासी।
तैरेव प्रतियुवतेरकारि दूरा-
त्कालुष्यं शशधरदीधितिच्छटाच्छैः ॥३८॥

अर्थ—मुख की कान्ति को उज्ज्वल करने वाली जिस जल-राशि से विलासी नायक ने अपनी प्रियतमा का निरन्तर सिंचन किया था, चन्द्रमा की किरणों के समूह की भाँति शुभ्र वर्ण की उसी जलराशि से उसने दूर से ही सपत्नी का मुख काला कर दिया।

टिप्पणी—अतिशयोक्ति स उत्थापित असगति का सकर।

रागान्धीकृतनयनेन नामधेय-
व्यत्यासादभिमुखमीरितः प्रियेण।
मानिन्या वपुषि पतन्निसर्गमन्दो
भिन्दानो हृदयमसाहि नोदघजः ॥३९॥

अर्थ—सपत्नी के अनुराग में अन्धे बने प्रियतम ने उसी का (सपत्नी का) नाम लेकर जब नायिका के सम्मुख जल फेंका तब शरीर पर गिरा हुआ वह स्वभाव से ही जड एवं हृदय को विदारित करनेवाला जल-रूपी वज्र उस मानिनी नायिका से नहीं सहा जा सका।

टिप्पणी—निरवयव रूपक।

> प्रेम्णोरः प्रणयिनि सिञ्चति प्रियायाः
> संतापं नवजलविप्रुषो गृहीत्वा।
> उद्धूताः कठिनकुचस्थलाभिघाता-
> दासन्नां भृशमपराङ्गनामधाक्षुः ॥४०॥

अर्थ—प्रियतम द्वारा प्रिया के वक्षस्थल सींचने पर, उसके कठोर स्तनों की चोट से ऊपर उठे हुए जलबिन्दु, उस (अभिषिक्त सुन्दरी) के (शरीरस्थ) ताप को लेकर मानों समीप में ही स्थित उसकी सपत्नी को अत्यन्त जलाने लगे।

टिप्पणी—गम्योत्प्रेक्षा।

> संक्रान्तं प्रियतमवक्षसोऽङ्गरागं
> साध्वस्याः सरसि हरिष्यतेऽधुनाम्भः।
> तुष्टैव सपदि हृतेऽपि तत्र तेपे
> कस्याश्चित्स्फुटनखलक्ष्मणः सपत्न्या ॥४१॥

अर्थ—प्रियतम के वक्षस्थल से (गाढ़ आलिंगन के कारण) लगे हुए इसके कुचों का अंगराग यह जल अभी सम्पूर्णरूप से धो डालेगा—यह सोचकर प्रसन्न होने वाली उस नायिका की सपत्नी ने उसके स्पष्ट नखक्षतों को जब देखा तो संताप से भर गयी।

टिप्पणी—धूप से परेशान होकर जो छाया ढूँढ़ रहा था उसे सामने दावाग्नि का सामना करना पड़ा। विषम अलंकार।

दूतायाः प्रतिसखि कामिनान्यनाम्ना
ह्रीमत्याः सरसि गलन्मुखेन्दुकान्तेः ।
अन्तर्धिं द्रुतमिव कर्तुमश्रुवर्षै-
र्भूमानं गमयितुमीषिरे पयांसि ॥४२॥

अर्थ—सखी के सामने प्रियतम द्वारा सपत्नी का नाम लेकर पुकारे जाने पर किसी रमणी के मुखचन्द्र की कान्ति मलिन हो गयी और वह बहुत ही लज्जित होकर तुरन्त ही जल के भीतर मानों उसे छिपाने के लिए अन्तर्हित हो गयी और इस प्रकार अपनी आँसुओं की वर्षा से वह सुन्दरी मानों सरोवर के जल को बढ़ाने की इच्छा कर रही थी।

टिप्पणी—मरण के दुःख से भी बढ़कर सपत्नी का दुःख है।

सिक्तायाः क्षणमभिषिच्य पूर्वमन्या-
मन्यस्याः प्रणयवता वतानलायाः ।
कालिम्ना समधित मन्युरेव वक्त्रं
प्रापाक्ष्णोर्गलदपशब्दमञ्जनाम्भः ॥४३॥

अर्थ—खेद है कि प्रियतम द्वारा थोड़ी देर तक सपत्नी का अभिषेचन करने के अनन्तर अभिषिक्त किसी सुन्दरी के मुख को उसके क्रोध ने विवर्ण बना दिया और दोनों नेत्रों से चूते हुए कज्जल मिश्रित जल ने उसकी निन्दा प्राप्त की। (अर्थात् मुख तो काला हुआ उसके क्रोध के कारण किन्तु अपयश मिला उसके नेत्रों से चूने वाले कज्जल मिश्रित जल को।)

टिप्पणी—[illegible] अलंकार।

उद्वोढुं कनकविभूषणान्यशक्तः
सध्रीचा वलयितपद्मनालसूत्रः ।

आरूढप्रतिवनिताकटाक्षभारः
साधीयो गुरुरभवद्भुजस्तरुण्याः ॥ ४४ ॥

अर्थ—(सुकुमारता के कारण) सुवर्ण के आभरणों को धारण करने में असमर्थ किसी सुन्दरी को उसके सहचर ने जब मृणाल-तन्तु का कङ्कण पहिना दिया तब सपत्नी के कटाक्षों के भार से उसकी भुजाएँ और भी गौरवशालिनी अथवा भारी हो गयीं।

टिप्पणी—इसमें अतिशयोक्ति से अनुप्राणित विभावना का संकर।

आनद्धप्रचुरपरार्ध्यकिंकिणीको
रामाणामनवरतोदगाहभाजाम्।
नारावं व्यतनुत मेखलाकलापः
कस्मिन्वा सजलगुणे गिरां पटुत्वम् ॥४५॥

अर्थ—निरन्तर जल-क्रीड़ा में विरत रहने वाली रमणियों की अधिक संख्या में सुन्दर किंकिणियों से गूँथी हुई करधनियाँ ध्वनि नहीं कर रही थीं क्योंकि जल से भींगे हुए सूत्र वाले किस मेखलाकलाप में ध्वनि की सामर्थ्य रहती है? अर्थात् किसी में नहीं। (संस्कृत में ड और ल के अभेद से दूसरा अर्थ—जड़ता से युक्त गुण वाले किस पुरुष में वक्तृत्व शक्ति की सामर्थ्य रहती है? अर्थात् किसी में नहीं।)

टिप्पणी—श्लेषमूलाभेदातिशयोक्ति से अनुप्राणित अर्थान्तरन्यास अलंकार।

पर्यच्छे सरसि हृतेंऽशुके पयोभि-
र्लोलाक्षे सुरतगुरावपत्रपिष्णोः।
सुश्रोण्या दलवसनेन वीचिहस्त-
न्यस्तेन द्रुतमकृताञ्जिनी सखीत्वम् ॥४६॥

अर्थ—चारों ओर से अत्यन्त निर्मल उस सरोवर में जल द्वारा नायिका के वस्त्र के स्थान-भ्रष्ट कर देने पर सम्भोग में निपुण उसके

प्रियतम की आँखें जब चचल हो उठी तब लज्जा से युक्त उस नित-म्बिनी के लिए कमलिनी ने तुरन्त ही अपने लहर-रूपी हाथों से पत्ते-रूपी वस्त्र को प्रदान कर उत्तम सखी धर्म का पालन किया।

टिप्पणी—साग रूपक अलकार।

नारीभिर्गुरुजघनस्थलाहताना-
मास्यश्रीविजितनिकासिसारिजानाम्।
लोलत्वादपहरतां तदङ्गरागं
संजज्ञे स कलुष आशयो जलानाम् ॥४७॥

अर्थ—रमणियों द्वारा विशाल जघनस्थलो के सघर्षण से ताडित तथा मुख की शोभा से विकसित कमलों के पराजित कर देने पर, चचलता और तृष्णा से उनके (रमणियों के) अगरागो को अपहरण करने वाले (अर्थात् धोकर दूर करनेवाले) जलों का आशय (आधार) सरोवर (मूर्खों का अन्त करण) कलुषित अर्थात् क्षुब्ध (अप्रसन्न अथवा कामावेश से मलिन) हो गया।

टिप्पणी—जो अपनी वस्तु हरण करता है अपनो को तिरस्कृत तथा ताडित करता है उसके अन्त करण का कलुषित हो जाना स्वाभाविक है।

सौगन्ध्यं दधदपि काममङ्गनाना
दूरत्वाद्गतमहमाननोपमानम्।
नेदीयो जितमिति लज्जयेव तासा-
मालोले पयसि महोत्पल ममज्ज ॥४८॥

अथ—पर्याप्त सुगन्धि (अथवा सम्बन्ध को) धारण करके भी मैं दूर से तो इन रमणियों के मुख के उपमान अर्थात् समानता को प्राप्त करता रहा किंतु अब उनके नितान्त समीप आने पर तो पराजित हो रहा हूँ—ऐसा सोचकर मानों लज्जा से एक कमल चचल जल मे विलीन हो गया।

टिप्पणी—श्लेष मूलातिशयोक्ति तथा हेतूत्प्रेक्षा की समृष्टि।

प्रभ्रष्टैः सरभसमम्भसोऽवगाह-
क्रीडाभिर्विदलितयूथिकापिशङ्गैः ।
आकल्पैः सरसि हिरण्मयैर्वधूना-
मौर्वाग्निद्युतिशकलैरिव व्यराजि ॥४९॥

अर्थ—वेगपूर्वक जलक्रीडा करने के कारण गिरे हुए, विकसित जूही के पुष्प के समान पीले वर्णवाले सुन्दरियों के सुवर्ण के आभूषण, सरोवर में मानों वडवानल की ज्वाला के खण्डों की भाँति सुशोभित हो रहे थे।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलकार।

आस्माकी युवतिदृशामसौ तनोति
च्छायैव श्रियमनपायिनीं किमेभिः ।
मत्वैवं स्वगुणपिधानसाभ्यसूयैः
पानीयैरिति विदधाविरेऽञ्जनानि ॥५०॥

अर्थ—हमारी यह निर्मल कान्ति ही इन रमणियों की आँखों की स्थायी कान्ति को बढ़ाने वाली है, अब इन अंजनों से क्या होगा—ऐसा मानकर ही मानों अपने द्वारा अविष्कृत निर्मलता के गुण को छिपाने के कारण ईर्ष्यालु सरोवर के जल ने (रमणियों के नेत्रो मे लगे हुए) अंजनो को सम्पूर्ण रूप से धो डाला।

टिप्पणी—गम्योत्प्रेक्षा।

निर्धौते सति हरिचन्दने जलौघै-
रापाण्डोर्गतपरभागयाङ्गनायाः ।
अह्वाय स्तनकलशद्वयादुपेये
निच्छेदः सहृदयेव हारयष्ट्या ॥५१॥

अर्थ—जल के वेग द्वारा लालचंदन में धुल जाने पर पाण्डुवर्ण के रमणी के दोनों स्तनकलशों से (सवर्ण होने के कारण) अपने रंग का उत्कर्ष

घट जाने पर मोतियों की माला, मानो सचेतन-सी होकर तुरन्त ही टूट गई।

टिप्पणी—जब स्तनों पर लालचन्दन लगा था तो श्वेत मोतियों की शोभा अच्छी लग रही थी जब चन्दन छूट गया तो स्तन श्वेत हो गये और उन पर श्वेत मोतियों की शोभा फीकी हो गयी। 'सम्भावितस्य चारित्रनाशादतिरिच्यते' यह सोचकर मानो मोतियों की वह माला सचेतन-सी होकर तुरन्त ही टूट गयी। उत्प्रेक्षा और सामान्य अलंकार का संकर।

अन्यूनं गुणममृतस्य धारयन्ती
संफुल्लस्फुरितसरोरुहावतंसा।
प्रेयोभिः सह सरसी निषेव्यमाणा
रक्तत्वं व्यधित वधूदृशां सुरा च ॥५२॥

अर्थ—अमृतरस के सम्पूर्ण गुणों को धारण करती हुई, अपने भीतर विकसित उज्ज्वल कमलों के आभूषणों से युक्त एवं प्रियतमों के साथ सेवित उस पोखरी ने मदिरा की भाँति रमणियों के नेत्रों को लालिमा से युक्त बना दिया।

टिप्पणी—जल में देर तक स्नान करने से रमणियों की आँखें लाल हो गयी थीं कवि ने उसी का वर्णन किया है। पोखरी के सभी विशेषण मदिरा के लिए भी उपयुक्त हैं। मदिरा भी अमृत तथा जल का गुण धारण करती है तथा उसे भी प्रफुल्लित कमल डालकर संस्कृत किया जाता है एवं उसका भी पति-पत्नी साथ ही सेवन करते हैं। उपमा अलंकार।

स्नान्तीनां बृहदमलोदबिन्दुचित्रौ
रेजाते रुचिरदृशामुरोजकुम्भौ।
हाराणां मणिभिरुपाश्रितौ समन्ता-
दुत्पन्नैर्गुणवदुपघ्नकाम्ययेव ॥५३॥

अर्थ—(सरोवर के जल में) स्नान करती हुई सुन्दर नेत्रों वाली रमणियों के विशाल एवं स्वच्छ जल बिन्दुओं से मनोहर स्तन-कलश इस प्रकार

सुशोभित हो रहे थे मानों सूत्र-रहित मुक्ताहारों की मणियों से, वे गुणयुक्त आश्रय की आकांक्षा से चारों ओर से घिरे हुए हों।

टिप्पणी—कमल भी विशाल एवं स्वच्छ जलबिन्दु से सुशोभित होते हैं। श्लेषानुप्राणित अतिशयोक्ति से उपजीवित उत्प्रेक्षा अलंकार।

आरूढः पतित इति स्वसंभवोऽपि
स्वच्छानां परिहरणीयतामुपैति ।
कर्णेभ्यश्च्युतमसितोत्पलं वधूनां
वीचीभिस्तटमनु यन्निरासुरापः ॥५४॥

अर्थ—स्वजन होकर भी यदि कोई उच्चस्थान पर चढ़कर नीचे गिर पड़ता है तो निर्मल लोग (उच्च लोग) उसे त्याग देते हैं। मानों इसी कारणवश (सरोवर की) जल राशि ने रमणियों के कानों से गिरे हुए नीले कमल को अपनी लहरों से उठाकर तट की ओर फेंक दिया।

टिप्पणी—श्लेष मूलातिशयोक्ति तथा विशेष से सामान्य का समर्थन रूप अर्थान्तरन्यास का संकर।

दन्तानामधरमयावकं पदानि
प्रत्यग्रास्तनुमविलेपनां नखाङ्काः ।
आनिन्युः श्रियमवितोयमङ्गनानां
शोभायै विपदि सदाश्रिता भवन्ति ॥५५॥

अर्थ—जल में रमणियों के लाक्षाराग (ओठों में लालिमा के लिए लगायी जाने वाली वस्तु) से रहित अधरों को दाँतों के क्षतों ने तथा अंगराग से रहित शरीरों को नूतन नखक्षतों ने शोभायुक्त बना दिया। क्यों न हो, अभाव के समय में भी जो कोई वस्तु पास में हो वह सज्जनों अथवा सुन्दरों का, ऐश्वर्य ही बढ़ाती है अथवा निरन्तर सेवा में निरत रहनेवाले सेवक विपत्ति काल में भी शोभा बढ़ाते हैं।

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलंकार।

कस्याश्चिन्मुखमनु धौतपत्रलेखं
व्यातेने सलिलभरावलम्बिनीभिः।
किञ्जल्कव्यतिकरपिञ्जरान्तराभि-
श्चित्रश्रीरलमलकाग्रवल्लरीभिः ॥५६॥

अर्थ—(स्नान के कारण अलङ्कृत) पत्रावली के धुल जाने पर किसी रमणी के मुख पर जल के भार से नीचे लटकती हुई, कमल की केसरों से मध्यभाग में पीले वर्ण की एव वल्लरी के समान सुशोभित लहराती केशराशि ने मकरपत्र की शोभा का पर्याप्त सम्पादन किया।

टिप्पणी—निदर्शना अलंकार।

वक्षोभ्यो घनमनुलेपनं यदूना-
मुत्तंसानहरत वारि मूर्धजेभ्यः।
नेत्राणां मदरुचिरक्षतैव तस्थौ
चक्षुष्यः खलु महतां परैरलङ्घ्यः ॥५७॥

अर्थ—सरोवर की जलराशि ने यदुवंशियों के वक्षस्थलों पर से गाढ़े अंगरागों का तथा शिर की अलका पर से पुष्प मालाओं का हरण कर लिया था, किन्तु उनके नेत्रों की मतवाली शोभा पूर्ववत् अक्षत ही बनी हुई थी। क्यों न हो महान् पुरुषों की आँखों में बसनेवाली अर्थात् प्रियवस्तु को दूसरा कौन छीन सकता है?

टिप्पणी—श्लेषमूलातिशयोक्ति से सकीर्ण अर्थान्तरन्यास अलंकार।

यो बाह्यः स खलु जलैर्निरासि रागो
यश्चित्ते स तु तदवस्थ एव तेषाम्।
धीराणां व्रजति हि सर्व एव नान्तः-
पातित्वादभिभवनीयतां परस्य ॥५८॥

अर्थ—उन यदुवंशियों के शरीर के ऊपरी भाग में स्थित जो राग अर्थात् अंगराग था, उसे तो जल ने धो दिया था किन्तु जो राग अर्थात् अनुराग उनके चित्त में था वह पूर्ववत् स्थित ही रहा। क्यों न हो, धीरों के अन्तःकरण में स्थित होकर सभी पदार्थ दूसरों (शत्रुओं) द्वारा अतिक्रमणीय (जानने योग्य) नहीं रह जाते।

टिप्पणी—श्लेषमूलातिशयोक्ति से सतीत अर्थान्तरन्यास अलंकार।

फेनानामुरसिरुहेषु हारलीला
चेलश्रीर्जघनतलेषु शैवलानाम्।
गण्डेषु स्फुटरचनाब्जपत्रवल्ली
पर्याप्तं पयसि विभूषणं वधूनाम् ॥५९॥

अर्थ—(आभूषणों से रहित होने पर भी) उन यादव रमणियों के (सरोवर की) जलराशि में पर्याप्त आभूषण हो गये। स्तनों पर फेनों की माला सुशोभित हुई। सेवारों से जघन-प्रदेशों पर वस्त्रों की तथा कपोलों पर स्पष्ट रूप से विन्यस्त पद्म-पत्र-लता की शोभा हो गयी।

टिप्पणी—वाक्यार्थहेतुक काव्यलिंग अलंकार।

भ्रश्यद्भिर्जलमभि भूषणैर्वधूना-
मङ्गेभ्यो गुरुभिरमज्जि लज्जयेव।
निर्माल्यैरथ ननृतेऽवधीरितानामप्युच्चैर्भवति लघीयसांहि धाष्टर्यम् ॥ ६० ॥

अर्थ—(सरोवर में) रमणियों के अंगों से गिरे हुए सुवर्ण के भारी आभूषण तो मानों गिरने की लज्जा से तुरन्त ही जल में डूब गये किन्तु पहनने के बाद निकाली हुई फूलों की मालाएँ (जल में) इधर-उधर नाचती ही रहीं। उचित ही है, तिरस्कृत होने पर भी तुच्छ लोगों की ढिठाई अधिक हो जाती है।

टिप्पणी—स्त्रियों के अंग से भ्रष्ट होकर महान् पुरुष तो बेचारे शर्म के मारे गिर जाते हैं, किन्तु तुच्छ माला और अधिक ढिठाई दिखाते हुए नाचने लगते हैं। अर्थान्तरन्यास अलंकार।

आमृष्टास्तिलकरुचः स्रजो निरस्ता
नीरक्तं वसनमपाकृतोऽङ्गरागः ।
कामः स्त्रीरनुशयवानिव स्वपक्ष-
व्याघातादिति सुतरां चकार चारूः ॥ ६१ ॥

अर्थ—(सरोवर की) जलराशि ने तिलक की शोभा को धो दिया, मालाओं को हर लिया, वस्त्रों को विरंग कर दिया तथा अंगराग को धो दिया—इस प्रकार से अपने पक्ष की अर्थात् अपने साधन की इन सब वस्तुओं के नाश से क्रुद्ध होकर मानों कामदेव ने उन सब रमणियों को पहले से भी अधिक सुन्दर बना दिया।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि उन सब बाहरी प्रसाधनों के धुल जाने पर उन सुन्दरियों की स्वाभाविक सुन्दरता और भी निखर उठी। उत्प्रेक्षा अलंकार।

शीतार्तिं बलवदुपेयुषेव नीरै-
रासेकाच्छिशिरसमीरकम्पितेन ।
रामाणामभिनवयौवनोष्मभाजो-
राश्लेषि स्तनतटयोर्नवांशुकेन ॥ ६२ ॥

अर्थ—सरोवर के जल से भींगने से मानो अत्यन्त शीतार्त्त होकर शीतलवायु से प्रकम्पित रमणियों के नूतन वस्त्र, उनकी नयी जवानी की गर्मी से युक्त दोनों स्तन-प्रान्तों से चिपक गये।

टिप्पणी—गुणहेतूत्प्रेक्षा अलंकार।
[अब सरोवर से बाहर निकलने का वर्णन किया गया है—]

श्च्योतद्भिः समधिकमात्तमङ्गसङ्गा-
ल्लावण्यं तनुमदिवाम्बु वाससोऽन्तैः ।
उत्तेरे तरलतरङ्गरङ्गलीला
निष्णातैरथ सरसः प्रियाममूहैः ॥ ६३ ॥

अर्थ—इस प्रकार जलक्रीडा के अनन्तर शरीर में सम्पर्क रखने के कारण अर्थात् गीला होने से शरीर से चिपके हुए होने के कारण मानों मूर्तमान सौंदर्य की भाँति अत्यधिक जल की बूँदें चुवाते हुए तथा चचल तरग रूपी रग स्थली के नृत्य में निपुण, वस्त्रों के अचलों से सुशोभित उन सुन्दरियों का समूह सरोवर से बाहर निकला।

दिव्यानामपि कृतविस्मयां पुरस्ता-
दम्भस्तः स्फुरदरविन्दचारुहस्ताम्।
उद्वीक्ष्य श्रियमिव काचिदुत्तरन्ती-
मस्मार्षीज्जलनिधिमन्थनस्य शौरिः ॥ ६४ ॥

अर्थ—अपनी अद्भुत सुन्दरता से देवताओं को भी विस्मय में डालती हुई कोई सुन्दरी सामने ही सरोवर से जब अपने दोनों सुन्दर हाथों में कमल लिए हुए बाहर निकली तो उसे मथते हुए समुद्र के बीच से निकलती हुई लक्ष्मी की भाँति देखकर भगवान् श्रीकृष्ण ने समुद्र-मन्थन के दृश्य का स्मरण किया।

टिप्पणी—उपमा और स्मरण अलकार।

श्लक्ष्णं यत्परिहितमेतयोः किलान्त-
र्धानार्थं तदुदकसेकमक्तमूर्वोः।
नारीणां विमलतरौ समुल्लसन्त्या
भासान्तर्दधतुरुरू दुकूलमेव ॥ ६५ ॥

अर्थ—दोनों जाँघों को ढँकने के लिए रमणियों ने जिन सूक्ष्म और चिकने वस्त्रों को पहन रखा था, वह जल से भींगकर एक दम उनकी जाँघों से चिपक गये थे और इस प्रकार उन वस्त्रों को ही रमणियों की निर्मल और मोटी जाँघों ने अपनी उल्लसित कांति द्वारा स्वय आच्छादित कर लिया था।

टिप्पणी—अतिशयोक्ति और विषम अलकार।

वासांसि न्यवसत यानि योषितस्ताः
शुभ्राभ्रद्युतिभिरहासि तैर्मुदेव ।
अत्याक्षुः स्नपनगलज्जलानि यानि
स्थूलाश्रुस्रुतिभिररोदि तैः शुचेव ॥ ६६ ॥

अर्थ—उन रमणियों ने (स्नान के अनन्तर) जिन वस्त्रों को धारण किया था, श्वेत बादल की कान्ति के समान शुभ्रवर्ण के वे सब वस्त्र मानों आनन्द से हँस रहे थे और स्नान करने से भींगकर जल चुवाते हुए जिन वस्त्रों को उन्होंने छोड़ा था, वे सब मानों शोक से मोटी आँसू चुवाते हुए रो रहे थे।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलङ्कार का संकर।

आर्द्रत्वादतिशयिनीमुपेयिवद्भिः
संसक्तिं भृशमपि भूरियोऽनुभूतेः ।
अङ्गेभ्यः कथमपि वामलोचनानां
विश्लेषो बत नवरक्तकैः प्रपेदे ॥ ६७ ॥

अर्थ—जल से भींगे हुए होने के कारण (प्रेम से सरस होने के कारण) अत्यन्त चिपके हुए (अतिशय आसक्ति से युक्त) नवीन रक्त अर्थात् लाल वस्त्रों को (नवीन अनुरागी को), सुन्दरी रमणियाँ जब बारम्बार निकालने का (निरस्त करने का) यत्न कर रही थीं तब अत्यन्त कठिनाई से वे किसी प्रकार उनके अंगों से अलग हुए।

टिप्पणी—अत्यन्त [illegible] है।

प्रत्यस्तं विलुलितमूर्धजा चिराय
स्नानार्द्रं वपुरुदवापयत् किलैका ।

नाजानादभिमतमन्तिकेऽभिवीक्ष्य
स्वेदाम्बुद्रवमभवत्तरां पुनस्तत् ॥ ६८ ॥

अर्थ—एक कोई सुन्दरी दोनों कंधों पर केशराशि फैलाकर अपने भीगे हुए शरीर को सुखा रही थी। किंतु उसका शरीर प्रियतम को समीप में देखकर फिर पसीने के जल से खूब भींग गया, और इस बात को वह जान भी नहीं सकी।

टिप्पणी—विशेषोक्ति अलंकार।

सीमन्तं निजमनुबध्नती कराभ्या-
मालक्ष्य स्तनतटबाहुमूलभागा ।
भर्त्रान्या मुहुरभिलष्यता निदध्ये
नैवाहो विरमति कौतुकं प्रियेभ्यः ॥ ६९ ॥

अर्थ—कोई सुन्दरी अपने केशपाश को जब हाथों से बाँध रही थी तब उसके बाहुमूल एवं स्तन-प्रदेश दिखाई पड़ रहे थे, और उसका प्रियतम उसे अनुरागपूर्वक बार-बार देख रहा था। यह कितने आश्चर्य की बात है कि (मनुष्य की) अभिलाषा प्रिय विषय से कभी निवृत्त नहीं होती। (अर्थात् वह सदा प्रिय विषयों में नवीन-नवीन प्रीति ढूढा करती है।)

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलंकार।

स्वच्छाम्भःस्नपनविधौतमङ्गमोष्ठ-
स्ताम्बूलद्युतिविशदो विलासिनीनाम् ।
वासश्च प्रतनु विविक्तमस्त्वितीया-
नाकल्पो यदि कुसुमेषुणा न शून्यः ॥ ७० ॥

अर्थ—स्वच्छ जल में स्नान करने से धुला हुआ अर्थात् निर्मल शरीर, ताम्बूल की लालिमा से सुशोभित सुन्दर अधर तथा सूक्ष्म एवं

निर्मल सुन्दर वस्त्र, अथवा एकान्त स्थान—ये सब वस्तुएँ ही विलासिनी स्त्रियों की सुन्दर वेश-भूषा हैं यदि ये कामदेव से शून्य न हों तब।

टिप्पणी—काव्यलिङ्ग अलङ्कार।

इति धौतपुरंध्रिमत्सरान्सरसि मज्जनेन
श्रियमाप्तवतोऽतिशायिनीमपमलाङ्गभासः।
अवलोक्य तदैव यादवानपरवारिराशेः
शिशिरेतररोचिषाप्यपां ततिषु मंक्तुमीषे ॥७१॥

अर्थ—इस प्रकार सरोवर में स्नान करने से जब सुन्दरी रमणियों के चित्त से प्रणय का क्रोध दूर हो गया तथा यदुवंशियों के शरीर की शोभा अत्यन्त बढ़ गयी तब उन्हें देखकर मानो सूर्य नारायण ने भी पश्चिम समुद्र की जलराशि के भीतर मग्न होने की इच्छा की।

टिप्पणी—यह अतिशायिनी वृत्त है। श्लोक के भीतर उसका नाम भी आ गया है। लक्षण — 'ससना भनताऽतिशायिनी भवतिगा दिगश्वैः। उत्प्रेक्षा अलंकार

श्री माघ कवि कृत शिशुपालवध महाकाव्य में जलविहार
वर्णन नामक आठवाँ सर्ग समाप्त ॥८॥

नवाँ सर्ग

[अब कवि सूर्य के अस्त होने का वर्णन करता है —]

अमितापसंपदमथोष्णरुचिर्निजतेजसामसहमान इव ।
पयसि प्रपित्सुरपराम्बुनिधेरधिरोढुमस्तगिरिमभ्यपतत् ॥१॥

अर्थ—तदनन्तर सूर्य मानों अपने तेज की अधिकता को न सहन कर सकने के कारण पश्चिम समुद्र के जल में कूदने की इच्छा से अस्ताचल पर चढने के लिए दौडने लगा।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलंकार । प्रमिताक्षरा छन्द । लक्षण —'प्रमिताक्षरा सजससरुक्ता।' पूरे सर्ग में यही छन्द है ।

गतया पुरः प्रतिगवाक्षमुखं दधती रतेन भृशमुत्सुकताम् ।
मुहुरन्तरालभुवमस्तगिरेः सवितुश्च योषिदमिमीत दृशा ॥२॥

अर्थ—रति-क्रीड़ा के लिए अत्यन्त समुत्सुक कोई सुन्दरी आगे के झरोखे पर नेत्र लगाये हुए अस्ताचल पर्वत और सूर्य के अवकाश स्थल को बारम्बार नाप रही थी।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि खिडकी पर नजर गडाकर वह बार-बार यह नाप रही थी कि अभी एक हाथ दिन बाकी है, अभी एक बित्ता बाकी है। आदि आदि। प्रेय अलंकार।

विरलातपच्छविरनुष्णवपुः परितो विपाण्डु दधदभ्रशिरः ।
अभवद्गतः परिणतिं शिथिलः परिमन्दसूर्यनयनो दिवसः ॥३॥

अर्थ—समाप्ति (वृद्धावस्था) को प्राप्त, विरल आतप की छवि से युक्त (क्षीण कान्ति) उष्णता से रहित शरीर को धारण किए हुए

(श्लेपमा आदि के कारण जिसका शरीर वहुत गर्म नहीं रहता) तथा चारों ओर से सफेद वादल-रूपी (सफेद वालों से युक्त) शिर को धारण किए हुए प्रशान्त (अर्थ ग्रहण करने में असमर्थ) सूर्य-रूपी नयनों से सुशोभित दिन शिथिल हो चला।

टिप्पणी—श्लेपानुप्राणित रूपक अलकार।

अपराह्णशीतलतरेण शनैरनिलेन लोलितलताङ्गुलये।
निलयाय शाखिन इवाह्वयते ददुराकुलाः खगकुलानि गिरः ॥४॥

अर्थ—दिवस के अवसान के समय वहनेवाली अत्यन्त शीतल वायु से चचल लता रूपी अगुलियों से (पक्षियों को) अपने आवास (घोंसलों) में वापस आने के लिए पुकारते हुए वृक्षों को पक्षी गण चहचहाते हुई अस्पष्ट वाणी में मानों उत्तर दे रहे थे (कि हम वापस आ रहे हैं।)

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलकार।

उपसंध्यमास्त तनु सानुमतः शिखरेषु तत्क्षणमशीतरुचः।
करजालमस्तसमयेऽपि सतामुचितं खलूच्चतरमेव पदम् ॥५॥

अर्थ—सन्ध्या के समीप आने पर सूर्य की सूक्ष्म किरणों का समूह तुरन्त पर्वतों के शिखरों पर जाकर टिक गया। सच है, सज्जनों को विनाश के समय भी ऊँचा ही स्थान उचित होता है।

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलकार।

प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ विफलत्वमेति वहुसाधनता।
अवलम्बनाय दिनभर्तुरभून्न पतिष्यतः करसहस्रमपि ॥६॥

अर्थ—दैव के प्रतिकूल होने पर अनेक प्रकार के साधन भी निष्फल हो जाते हैं। (देखो न) गिरते हुए सूर्य के अवलंब के लिए उसकी सहस्र कर-किरणें भी कुछ नहीं कर सकीं।

टिप्पणी—गिरते हुए को रक्षा उसके दोनों हाथ करते हैं, किन्तु भाग्य के प्रतिकूल होने पर अस्तोन्मुख सूर्य के सहस्र हाथ भी कुछ न कर सके। अर्थान्तरन्यास अलकार।

नवकुङ्कुमारुणपयोधरया स्वकरावसक्तरुचिराम्बरया ।
अतिसक्तिमेत्य वरुणस्य दिशा भृशमन्वरज्यदतुषारकरः ॥७॥

अर्थ—उष्णकिरणशाली भास्कर, नवीन कुङ्कुम के समान सन्ध्याकालिक लालवर्ण के मेघों से युक्त (नूतन कुङ्कुम से अनुरंजित लालवर्ण के स्तनों से युक्त) अपनी किरणों के सम्पर्क से मनोहर आकाशवाली (अपने हाथ से पकड़े हुए वस्त्र से सुशोभित) वरुण की दिशा अर्थात् पश्चिम (पर-स्त्री) के साथ अत्यन्त समीपता (आसक्ति) प्राप्तकर बहुत ही लाल वर्ण का (अनुरक्त) हो गया।

टिप्पणी—समासोक्ति अलङ्कार।

गतवत्यराजत जपाकुसुमस्तवकद्युतौ दिनकरेऽवनतिम् ।
बहलानुरागकुरुविन्ददलप्रतिबद्धमध्यमिव दिग्वलयम् ॥८॥

अर्थ—जवाकुसुम के गुच्छों की कान्ति के समान लालवर्ण होकर सूर्य के अस्तोन्मुख होने पर दिङ्मण्डल मानों घनीभूत लालिमा से युक्त पद्मरागमणि के टुकड़ों से मध्य भाग में जटित कङ्कण की भाँति सुशोभित हुआ।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलङ्कार।

द्रुतशातकुम्भनिभमंशुमतो वपुरर्धमग्नवपुषः पयसि ।
रुरुचे विरिञ्चिनखभिन्नबृहज्जगदण्डकैकतरखण्डमिव ॥ ९ ॥

अर्थ—तपाये हुए सुवर्ण के समान कान्तियुक्त बिम्ब के अर्धभाग के समुद्र के जल में डूब जाने पर सूर्य का मण्डल ब्रह्मा के नख द्वारा दो भागों में विभक्त ब्रह्माण्ड के एक खण्ड की भाँति सुशोभित हो रहा था।

टिप्पणी—उपमा अलङ्कार।

अनुरागवन्तमपि लोचनयोर्दधतं वपुः सुखमतापकरम् ।
निरकासयद्रविमपेतवसुं वियदालयादपरदिग्गणिका ॥१०॥

अर्थ—पश्चिम दिशा रूपी वेश्या ने लालिमायुक्त होने पर भी (अनुराग युक्त होने पर भी। शान्त तथा सुन्दर होने के कारण) दोनों नेत्रों के सुखदायी शरीर को धारण करनेवाले, असन्तापदायी (सुखस्पर्श युक्त), रश्मियों से रहित (धन विहीन) सूर्य (प्रेमी) को अपने आकाश-रूपी भवन से बाहर निकाल दिया।

टिप्पणी—धन चूसनेवाली वेश्याएँ गुणरहित धनवान प्रेमी में भी, जब तक सर्वस्व नहीं ले लेती, अत्यन्त अनुराग दिखलाती हैं किन्तु सर्वगुणसम्पन्न प्रेमी को भी धन विहीन होने पर घर से बाहर निकाल देती हैं। रूपक अलंकार।

अभितिग्मरश्मि चिरमाविरमादवधानखिन्नमनिमेषतया।
विगलन्मधुव्रतकुलाश्रुजलं न्यमिमीलदब्जनयनं नलिनी ॥११॥

अर्थ—कमलिनी सूर्य के आकाश मण्डल में सुशोभित होने पर चिरकाल तक उसकी ओर एक टक निहारती रही, किन्तु सूर्य के अस्त हो जाने पर उसने अत्यन्त खिन्न होकर भ्रमरसमूह-रूपी आंसू बहाते हुए अपने कमल-नेत्रों को उसने बंद कर लिया।

टिप्पणी—रूपक अलंकार।

अविभाव्यतारकमदृष्टहिमद्युतिबिम्बमस्तमितभानु नभः।
अवसन्नतापमतमिस्रमभादपदोषतैव विगुणस्य गुणः ॥१२॥

अर्थ—(यद्यपि) सूर्य अस्त हो गया है किन्तु अभी तक नक्षत्र नहीं दिखाई पड़ रहे हैं और न तो चन्द्रमा ही उदित हुआ है गर्मी बिल्कुल नहीं है और न तो अन्धकार ही है—इस प्रकार आकाश की शोभा निराली हो रही है। सचमुच निर्गुणों में किसी दोष का न होना ही गुण है।

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलंकार।

रुचिधाम्नि भर्तरि भृशं विमलाः परलोकमभ्युपगते विविशुः।
ज्वलनं त्विषः कथमिवेतरथा सुलभोऽन्यजन्मनि स एव पतिः ॥१३॥

अर्थ—तेजोनिधान पति सूर्य के परलोक चले जाने पर अर्थात् अस्त हो जाने पर उसकी निर्मल प्रभाशाली कान्तियाँ अर्थात्

करके अग्नि में प्रविष्ट हो गयीं अन्यथा (अग्नि में प्रविष्ट न होने अर्थात् सती न होने पर) दूसरे जन्म में वही सूर्य पति रूप में उन्हें किस प्रकार मिल सकता था ?

टिप्पणी—पहले स्त्रियाँ दूसरे जन्म में उसी पति को प्राप्त करने की आकांक्षा से उसकी मृत्यु के अनंतर अग्नि में प्रविष्ट हो जाती थीं। काव्यलिंग अलंकार।

[अब आगे सन्ध्या का सुन्दर वर्णन किया गया है —]

विहिताञ्जलिर्जनतया दधती विकसत्कुसुम्भकुसुमारुणताम् ।
चिरमुज्झितापि तनुरौज्झदसौ न पितृप्रसूः प्रकृतिमात्मभुवः ॥१४॥

अर्थ—जनता द्वारा प्रणाम की जाती हुई, विकसित कुसुम्भ के पुष्पों के समान लाल रंग से युक्त, पितरों को उत्पन्न करनेवाली, स्वयम्भू भगवान् ब्रह्मा की मूर्तिस्वरूपा यह सन्ध्या चिरकाल से छोड़े जाने पर भी अपने स्वभाव को नहीं छोड़ सकी।

टिप्पणी—भविष्य पुराण की कथा है कि ब्रह्मा ने सन्ध्या का अपनी ही मूर्ति बनाकर और उसी से पितरों की सृष्टि करके उसे छोड़ दिया था। वही प्रातःकाल और सायंकाल—दोनों वेला में आकर लोगों की पूजा-अर्चा प्राप्त करती है—

पितामहः पितॄन् सृष्ट्वा मूर्तिं तामुत्ससर्ज ह ।
सा प्रातःसायमागत्य सन्ध्यारूपेण पूज्यते ॥

विशेषोक्ति अलंकार।

अथ सान्द्रसांध्यकिरणारुणितं हरिहेतिहूति मिथुनं पततोः ।
पृथगुत्पपात विरहार्तिदलद्धृदयसृतासृगनुलिप्तमिव ॥१५॥

अर्थ—(सन्ध्या हो जाने के) अनन्तर सघन एवं प्रगाढ़ सन्ध्या की लाल किरणों से रँगे हुए लाल वर्ण के चक्रवाक दम्पति मानों विरह-वेदना से फटते हुए हृदय से निकले रुधिर से अनुलिप्त की भाँति, अलग-अलग होकर उड़ गये।

टिप्पणी—सन्ध्या के बाद लोक किंवदन्ती के अनुसार चकवाक दम्पति अलग हो जाते हैं। 'हरिहेतिहूति' का अर्थ है भगवान विष्णु के अस्त्र अर्थात् चक्र का सजाधारण करनेवाला चक्रवाक। एक साधारण शब्द के लिए इतनी क्लिष्टकल्पना कवि ही कर सकता है।

निलयः श्रियः सततमेतदिति प्रथितं यदेव जलजन्म तया ।
दिवसात्ययात्तदपि मुक्तमहो चपलाजनं प्रति न चोद्यमदः ॥१६॥

अर्थ—कमल लक्ष्मी का सर्वदा का निवास स्थान है—यह बात प्रसिद्ध है, किन्तु उसे भी सायंकाल के समय लक्ष्मी ने छोड़ दिया। (यह कितने आश्चर्य की बात है कि देवता लोग भी आपत्ति के समय अपने महान् उपकारी का त्याग कर देते है) क्यों न हो, चंचला स्त्रियां विशेष कर लक्ष्मी के लिए ऐसी कृतघ्नता करना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

टिप्पणी—श्लेष मूलातिशयोक्ति से अनुप्राणित अर्थान्तरन्यास अ कार।

दिवसोऽनुमित्रमगमद्विलयं किमिहास्यते बत मयावलया ।
रुचिभर्तुरस्य विरहाधिगमादिति संध्ययापि सपदि व्यगमि ॥१७॥

अर्थ—दिन तो अपने मित्र (सूर्य) के साथ विनाश को प्राप्त हो गया, अब मैं अबला होकर अपने तेजोमय प्रियतम सूर्य के विरह में इस लोक में जीवित रहकर क्या करूंगी—मानों ऐसा सोचकर ही संध्या भी शीघ्र ही परलोक को चली गयी अर्थात् बीत गयी।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलकार।

[अब आगे अन्धकार का वर्णन किया गया है :—]

पतिते पतङ्गमृगराजि निजप्रतिबिम्बरोषित इवाम्बुनिधौ ।
अथ नागयूथमलिनानि जगत्परितस्तमांसि परितस्तरिरे ॥१८॥

अर्थ—सूर्य-रूपी सिंह मानों पश्चिम समुद्र के जल में जब अपने प्रतिबिम्ब को देखकर क्रोध से कूद पड़ा, तब हाथियों के समान काले अन्धकार ने समस्त संसार को आच्छादित कर लिया।

टिप्पणी—पचतंत्र में वर्णित एक कथा के अनुसार एक सिंह अपनी परछाईं को दूसरा सिंह समझकर क्रोध से कूएँ में कूद पड़ा था। रूपकानुप्राणित उत्प्रेक्षा तथा उपमा का संकर।

व्यसरन्नु भूधरगुहान्तरतः पटलं बहिर्बहलपङ्करुचि ।
दिवसावसानपटुनस्तमसो बहिरेत्य चाधिकमभक्त गुहाः ॥१९॥
किमलम्बताम्बरविलग्नमधः किमवर्धतोर्ध्वमवनीतलतः ।
विससार तिर्यगथ दिग्भ्य इति प्रचुरीभवन्न निरधारि तमः ॥२०॥

अर्थ—दिवस का अवसान हो जाने पर अत्यन्त शक्तिशाली वह अन्धकार गाढी कीचड़ के समान काले रंग का था। क्या वह (पर्वत की) गुफाओं के भीतर से आकर बाहर प्रदेश में फैल रहा था अथवा बाहर से जाकर उन गुफाओं में खूब भर रहा था। इस प्रकार निरन्तर सघन होता हुआ वह अन्धकार क्या आकाश में था, जो भूतल पर नीचे उतर रहा था अथवा भूतल पर से ऊपर आकाश में फैल रहा था। वह चारों ओर दिशाओं में इस प्रकार फैल रहा था कि कुछ भी निश्चित नहीं हो पा रहा था कि यह कहाँ से आ गया है ?

टिप्पणी—दोनों में सन्देह अलङ्कार।

स्थगिताम्बरक्षितितले परितस्तिमिरे जनस्य दृशमन्धयति ।
दधिरे रसाञ्जनमपूर्वमतः प्रियवेश्मवर्त्म सुदृशो ददृशुः ॥२१॥

अर्थ—अन्धकार द्वारा आकाश और धरती के तिरोहित कर लेने पर जब चारों ओर लोगों की आँखें देखने की शक्ति से रहित हो गयीं तब सुन्दर नेत्रोंवाली रमणियों ने नूतन रसों से निर्मित दिव्य अंजनों (नूतन अनुराग रूपी अंजनों) को लगा लिया जिससे अपने प्रियतमों के घर का मार्ग उन्हें दिखाई पड़ने लगा।

टिप्पणी—वाक्यार्थहेतुक काव्यलिंग अलङ्कार।

अवधार्य कार्यगुरुतामभवन्न भयाय सान्द्रतमसं तमसम् ।
सुतनोः स्तनौ च दयितोपगमे तनुरोमराजिपथवेपथवे ॥२२॥

अर्थ—अत्यन्त प्रगाढ जो यह भूतलव्यापी अन्धकार था वह सुन्दरी को, प्रियतम के समीप अभिसार करने एवं भोग विलासादि आवश्यक

एवं महान् कार्यों का निश्चय करने के बाद कुछ भी भयभीत नहीं कर सका। तथा उनके उन्नत स्तन-मण्डल भी दुर्बल रोमसमूह के मार्ग अर्थात् उनके उदर एवं मध्य प्रदेश को कंपित नहीं कर सके।

टिप्पणी—कार्यार्थी—विशेषकर कामुक न तो भय को मानता है न क्लेश को गिनता है। तात्पर्य यह है कि उस भीषण अंधकार में ही रमणियाँ अपने प्रियतमो के अभिसार के लिए तैयार हो गयी।

ददृशेऽपि भास्कररुचाह्नि न यः स तमां तमोभिरभिगम्य तताम्।
द्युतिमग्रहीद्ग्रहगणो लघवः प्रकटीभवन्ति मलिनाश्रयतः ॥२३॥

अर्थ—जो नक्षत्र पुंज दिन में सूर्य की कान्ति के कारण नहीं दिखाई पड़ते थे, उन्होंने रात्रि को पाकर अन्धकारों से कान्ति ग्रहण की अर्थात् चमकने लगे। सच है, तुच्छ और लघु लोग नीचों का ही सहारा लेकर प्रकट होते हैं।

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलंकार।

अनुलेपनानि कुसुमान्यबलाः कृतमन्यवः पतिषु दीपशिखाः।
समयेन तेन चिरसुप्तमनोभवबोधनं सममबोधिषत ॥ २४ ॥

अर्थ—रात्रि ने चन्दनादि अनुलेपन, सुगन्धित पुष्प, मार्गों पर दीपक की लौ तथा रमणियों के मन में पति के प्रति क्रोध की भावना—इन सब वस्तुओं को एक साथ ही जगाकर चिरकाल से सोये हुए कामदेव को उत्तेजित कर दिया।

टिप्पणी—अतिशयोक्ति और तुल्ययोगिता का संकर।

[अब आगे चन्द्रोदय का वर्णन किया गया है —]

वसुधान्तनिःसृतमिवाहिपतेः पटलं फणामणिसहस्ररुचाम्।
स्फुरदंशुजालमथ शीतरुचः ककुभं समस्तुरुत माघवनीम् ॥२५॥

अर्थ—तदन्तर धरती के भीतर से निकलते हुए मानो शेषनाग के फन की सहस्रों किरणों की प्रभा के समान सुन्दर कान्तिशाली चन्द्रमा की किरणों का समूह पूर्व दिशा को अलंकृत करने लगा।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि अन्धकार के साथ ही पूर्व के क्षितिज पर चन्द्रमा की किरणों का विस्तार हो गया।

विशदप्रभापरिगतं विरभादुदयाचलव्यवहितेन्दुवपुः।
मुखमप्रकाशदशनं शनकैः सविलासहासमिव शक्रदिशः ॥२६॥

अर्थ—निर्मल कान्ति से व्याप्त, उदयाचल द्वारा चन्द्रमा के परोक्ष में होने से सुशोभित, इन्द्र की दिशा पूर्व का मुख अर्थात् अग्र भाग मानो विलासपूर्वक इस प्रकार मन्द-मन्द मुसकराने लगा कि उसके दाँत नहीं दिखाई पड़ते थे।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलंकार।

कलया तुषारकिरणस्य पुरः परिमन्दभिन्नतिमिरौघजटम्।
क्षणमभ्यपद्यत जनैर्न मृषा गगनं गणाधिपतिमूर्तिरिति॥२७॥

अर्थ—पहले चन्द्रमा की किरणों ने जिसकी अन्धकार-समूह-रूपी जटा को धीरे धीरे विदलित (दूर) कर दिया था—ऐसा यह आकाश महादेव जी की मूर्ति है—इस बात को क्षणभर के लिए लोगों ने सत्य ही समझ लिया।

टिप्पणी—अर्थात कलामात्र चन्द्रमा का उदय हुआ। रूपक अलंकार।

नवचन्द्रिकाकुसुमकीर्णतमः कबरीभृतो मलयजार्द्रमिव।
ददृशे ललाटतटहारि हरेर्हरितो मुखे तुहिनरश्मिदलम् ॥२८॥

अर्थ—नवीन चन्द्र किरण-रूपी पुष्पों से व्याप्त (सुसज्जित) अन्धकार-रूपी केशपाश को धारण करनेवाली पूर्व दिशा के अग्रभाग रूपी मुख पर, उसी के ललाट के समान मनोहर चन्द्रमा का अर्ध-बिम्ब मानो मलयज चन्दन से सुशोभित की भाँति दिखाई पड़ने लगा।

टिप्पणी—एकदेश विवर्ति रूपक तथा गुण स्वरूपोत्प्रेक्षा का संकर।

प्रथमं कलाभवदथार्धमथो हिमदीधितिर्महदभूदुदितः।
दधति ध्रुवं क्रमश एव न तु द्युतिशालिनोऽपि सहसोपचयम् ॥२९॥

अर्थ—चन्द्रमा पहले कलामात्र था, फिर आधा दिखाई पड़ा, तदनन्तर उदित होकर सम्पूर्ण रीति से विशाल दिखाई पड़ा। सच है, तेजस्वी पुरुष क्रमशः ही उन्नत होते हैं, एकाएक नहीं।

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलंकार।

उदमज्जि कैटभजितः शयनादपनिद्रपाण्डुरसरोजरुचा।
प्रथमप्रबुद्धनदराजसुतावदनेन्दुनेव तुहिनद्युतिना ॥ २० ॥

अर्थ—विकसित श्वेत कमल की शोभा धारण करनेवाला चन्द्रमा मानो हरि के जगने के पूर्व ही जगी हुई सिन्धुकन्या लक्ष्मी के मुख-चन्द्र की भाँति, कैटभारि भगवान् विष्णु के शयनस्थल समुद्र से ऊपर उठ गया।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलंकार।

अथ लक्ष्मणानुगतकान्तवपुर्जलधिं विलङ्घ्य शशिदाशरथिः।
परिवारितः परित ऋक्षगणैस्तिमिरौघराक्षसकुलं बिभिदे ॥२१॥

अर्थ—उदय के अनन्तर शुभ लक्षणों (पक्ष में, लक्ष्मण) से समन्वित सुन्दर शरीर धारी, चारों ओर से नक्षत्रपुंजों (पक्ष में, जाम्बवान आदि ऋक्ष गणों) से युक्त चन्द्रमा रूपी रामचन्द्र ने समुद्र को लाँघकर अन्धकार समूह-रूपी राक्षसों का विनाश कर दिया।

टिप्पणी—श्लेषसंकीर्ण सावयव रूपक अलंकार।

उपजीवति स्म सततं दधतः परिमुग्धतां वणिगिवोडुपतेः।
घननीथिवीथिमवतीर्णवतो निधिरम्भसामुपचयाय कलाः ॥२२॥

अर्थ—जलनिधि समुद्र ने, वणिक की भाँति निरन्तर सौन्दर्य (मूर्खता अथवा व्यवहारशून्यता) धारण करनेवाले, मेघमार्ग-रूपी बाजार में उतरे हुए नक्षत्रनाथ चन्द्रमा (धनिक ग्राहक) की सोलहों कलाओं का (सारी पूँजी का) अपनी वृद्धि-प्राप्ति की कामना से पान कर लिया।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि समुद्र ने चन्द्रमा की सोलहों कलाओं का इस प्रकार पान किया जिस प्रकार कोई चतुर व्यापारी बाजार में आनेवाले मूर्ख तथा लोक-व्यवहार शून्य ग्राहक की सारी पूंजी हड़प लेता है। श्लेष संकीर्ण उपमा अलंकार।

रजनीमवाप्य रुचमाप शशी सपदि व्यभूषयदसावपि ताम्।
अविलम्बितक्रममहो महतामितरेतरोपकृतिमच्चरितम् ॥२३॥

अर्थ—रात्रि के सान्निध्य से चन्द्रमा की शोभा बढ़ी और चन्द्रमा ने भी रात्रि की शोभा में वृद्धि कर दी। बड़े लोगों का यह स्वभाव ही होता है कि वे एक-दूसरे का उपकार किया करते हैं।

टिप्पणी—अन्योन्य तथा अर्थान्तरन्यास अलंकार—दोनों का अंगांगिभाव से संकर।

दिवसं भृशोष्णरुचिपादहतां रुदतीमिवानवरतालिरुतैः।
मुहुरामृशन् मृगधरोऽग्रकरैरुदशिश्वसत् कुमुदिनीवनिताम् ॥२४॥

अर्थ—मृगांक चन्द्रमा ने, दिनभर सूर्य की किरणों (पैरों) से अत्यंत ताड़ित होकर मानों निरन्तर होनेवाले भ्रमरों के गुंजन से रुदन-सी करती हुई (सरोवरों में) स्थित कुमुदिनी-रूपी वनिता को अपने हाथों के अग्रभाग (किरणों) से बारबार छूकर आश्वस्त किया।

टिप्पणी—किसी पर-पुरुष द्वारा पैरों से ताड़ित रोती हुई अपनी स्त्री को पुरुष अपने हाथों से उठाकर आश्वासित करता ही है। श्लेष, रूपक और उत्प्रेक्षा का संकर।

प्रतिकामिनीति ददृशुश्चकिताः स्मरजन्मघर्मपयसोपचिताम्।
सुदृशोऽभिभर्तृ शशिरश्मिगलज्जलबिन्दुमिन्दुमणिदारुवधूम् ॥२५॥

अर्थ—सुन्दर नेत्रों वाली रमणियों ने अपने पति के समीप, चन्द्रमा की किरणों के स्पर्श से जल की बूँदें छोड़ती हुई चन्द्रकांत मणि की बनी हुई स्त्री की मूर्तियों को कामपीड़ा से उत्पन्न पसीने की बूँदों से व्याप्त सपत्नी समझकर चकित भीत दृष्टि से देखा।

टिप्पणी—भ्रान्तिमान अलंकार।

अमृतद्रवैर्विदधदब्जदृशामपमार्गमोषधिपतिः स्म करैः ।
परितो विसर्पि परितापि भृशं वपुषोऽवतारयति मानविषम् ॥२६॥

अर्थ—चन्द्रमा-रूपी औषधिपति अर्थात् वैद्य (चन्द्रमा का नाम भी औषधिपति है) ने अमृत से सिंचित किरण-रूपी अपने हाथों से, कमल-नयनी रमणियों के अगो को सिंचित कर, (शरीर में) सर्वत्र व्याप्त उनके अत्यन्त सन्तापकारी मान-रूपी विष को शरीर से दूर कर दिया।

टिप्पणी—जिस प्रकार कोई प्रवीण मन्त्रज्ञाता अथवा वैद्य किसी विषाक्त व्यक्ति के शरीर से किसी रस विशेष से अपने हाथो को भिगोकर शरीर भर में व्याप्त दाहक विष को उतार देता है उसी प्रकार सुन्दरियो के मान रूपी विष को चन्द्रमा ने भी अपनी किरणो से उतार दिया। अर्थात् चन्द्रोदय के बाद मानिनियो का मान स्वत दूर हो गया। रूपक और उपमा अलकार।

अमलात्मसु प्रतिफलन्नभितस्तरुणीकपोलफलकेषु मुहुः ।
विससार सान्द्रतरमिन्दुरुचामधिकावभासितदिशां निकरः ॥२७॥

अर्थ—दिशाओं को अधिकाधिक प्रकाशित करनेवाली चन्द्रमा की कान्ति अर्थात् किरणे सुन्दरियों के निर्मल कपोल स्थलो पर बार-बार पडकर प्रतिबिम्बित होने लगीं और इससे उनका प्रकाश अतिशय प्रगाढ़ हो गया।

टिप्पणी—अतिशयोक्ति अलकार।

उपगूढवेलमलघूर्मिभुजैः सरितामचुक्षुभदधीशमपि ।
रजनीकरः किमिव चित्रमदो यदुरागिणा गणमनङ्गलघुम् ॥२८॥

अर्थ—रजनीकर चन्द्रमा ने, अपनी लबी लहर-रूपी भुजाओ से तट का आलिगन करनेवाले, नदियों के स्वामी समुद्र को भी क्षुब्ध कर दिया। अत यदि उसने काम के आवेग से धैर्य रहित विलासी यदुवशियो को क्षुब्ध किया तो इसम आश्चर्य की क्या बात थी? अर्थात् कुछ भी आश्चर्य नहीं।

टिप्पणी—अर्थापत्ति अलकार

भवनोदरेषु परिमन्दतया शयितोऽलसः स्फटिकयष्टिरुचः ।
अवलम्ब्य जालकमुखोपगतानुदतिष्ठदिन्दुकिरणान्मदनः ॥३९॥

अर्थ—अत्यंत क्षीण होकर (अकेला) घर के भीतर सोता हुआ आलसी कामदेव, खिडकी के छिद्रों से भीतर प्रवेश करती हुई, स्फटिक की छडी की भाँति कान्तियुक्त चन्द्रमा की किरणों का अवलंब लेकर मानों उठ खडा हुआ।

टिप्पणी—जिस प्रकार कोई आलस्य से युक्त असमय बुड्ढा अपने कमरे के भीतर सुस्त पडा रहता है और छडी का सहारा लेकर उठ पडता है उसी प्रकार कामदेव भी चन्द्रमा कि किरणों का स्पर्श पाकर उठ खडा हुआ। अतिशयोक्ति, उपमा और उत्प्रेक्षा का संकर।

अविभावितेषु विषयः प्रथमं मदनोऽपि नूनमभवत्तमसा ।
उदिते दिशः प्रकटयत्यमुना यदयमधाम्नि धनुराचकृषे ॥४०॥

अर्थ—निश्चय ही कामदेव भी चन्द्रोदय से पूर्व, अंधकार के कारण अपने बाणों का लक्ष्य नहीं देख पा रहा था, क्योंकि ज्योंही चन्द्रमा उदित हुआ और दिशाएँ प्रकट हो गयीं त्यों ही उसने अपना धनुष खींच लिया।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलंकार।

अवकाशमाशु हृदये सुदृशां गमिते विकासमुदयाच्छशिनः ।
कुमुदे च पुष्पधनुषो धनुषश्चलितः शिलीमुखगणोऽलभत ॥४१क॥

अर्थ—चन्द्रमा के उदय से विकसित सुन्दर नेत्रोंवाली रमणियों के हृदयों में तथा कुमुदों में, शिलीमुख वृन्दों अर्थात् कामदेव के बाणों तथा भ्रमरों ने, कामदेव के धनुष से तथा पुष्पों से निकल-निकलकर शीघ्र ही स्थान प्राप्त किया।

युगपद्विकासमुदयाद्गमिते शशिनः शिलीमुखगणोऽलभत ।
द्रुतमेत्य पुष्पधनुषो धनुषः कुमुदेऽङ्गनामनसि चावसरम् ॥४१ख॥

अर्थ—पुष्पधनु अर्थात् कामदेव के पुष्पमय धनुष तथा पुष्पों से निकलकर शिली-मुख अर्थात् बाणों तथा भ्रमरों के समूहों ने चन्द्रमा के उदय के साथ ही विकसित एव उन्मीलित रमणियों के हृदय तथा कुमुदों में स्थान प्राप्त कर लिया।

टिप्पणी—४१ के सख्यक श्लोक मल्लिनाथ का टीका में नही है। इन दोनों श्लोकों के भावार्थ एक ही हैं और दोनों में तुल्ययोगिता अलकार है।

ककुभां मुखानि सहसोज्ज्वलयन् दधदाकुलत्वमधिकं रतये।
अदिदीपदिन्दुरपरो दहनः कुसुमेषुमत्रिनयनप्रभवः॥४२॥

अर्थ—दिशाओं के मुख को तुरन्त ही उद्भासित करते हुए तथा रति (सभोग तथा कामदेव की पत्नी) के लिए अधिकाधिक उत्सुकता अथवा भय मिश्रित विह्वलता उत्पन्न करते हुए मुनिवर अत्रि (के) नेत्र से उत्पन्न (त्रिनेत्र शकर के नेत्र से न उत्पन्न होने वाले) इस दूसरे अग्नि चन्द्रमा ने कामदेव को अधिकाधिक जलाया।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि चन्द्रोदय से रमणियों की कामाग्नि उत्तेजित हो उठी।

इति निश्चितप्रियतमागतयः सितदीधितावुदयवत्यबलाः।
प्रतिकर्म कर्तुमुपचक्रमिरे समये हि सर्वमुपकारि कृतम्॥४३॥

अर्थ—इस प्रकार चन्द्रमा के उदय हो जाने पर रमणियों ने अपने-अपने प्रियतम के आगमन के का निश्चित समय जानकर साज-शृगार करना शुरू कर दिया, क्योंकि समय पर किया गया सब कार्य उपकारी होता है।

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलकार।

सममेकमेव दधतुः सुतनोरुरु हारभूषणमुरोजतटौ।
घटते हि संहततया जनितामिदमेव निर्विवरता दधतोः॥४४॥

अर्थ—सुन्दरियों के स्तनप्रान्तों ने केवल एक विशाल हार को मूल्यवान आभूषण के रूप मे समान रूप से धारण किया। परस्पर

मेलने से अथवा एक मल होने से उत्पन्न अन्तर अथवा छिद्र के अभाव से युक्त उन दोनों ही के लिए यह समभागिता ही उचित प्रतीत होती थी।

कदलीप्रकाण्डरुचिरोरुतरौ जघनस्थलीपरिसरे महति ।
रशनाकलापकगुणेन वधूर्मकरध्वजद्विरदमाकलयत् ॥४५॥

अर्थ—रमणियों ने अपने कदली के स्तम्भ के समान सुन्दर जघा-रूपी वृक्षों से सुशोभित विस्तृत जघन-प्रदेश-रूपी स्थलों में करधनियों के समूह रूपी रज्जु से कामदेव-रूपी हाथी को बाध दिया।

टिप्पणी—अर्थात् करधनिया के बाध लेने पर रमणियाँ काम से अत्यन्त उद्दीप्त हो उठी। सागरूपक अलकार।

अधरेष्वलक्तकरसः सुदृशां विशदं कपोलभुवि लोध्ररजः ।
नवमञ्जनं नयनपङ्कजयोर्विभिदे न शङ्खनिहितात्पयसः ॥ ४६ ॥

अर्थ—सुन्दर नेत्रोंवाली रमणियों के होठों पर लगे हुए आलते का रग, कपोलों पर सुशोभित लोध्र-पुष्प के रज तथा नेत्र-कमलों में लगे हुए नवीन अजन शख मे रखे हुए दूध की भाँति अभिन्न रूप में सुशोभित हो रहे थे।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार शख में रखा हुआ दूध श्वेत रग की समानता के कारण अभिन्न दिखाई पडता है उसी प्रकार सुन्दरियों के अगों पर सुशोभित वे वस्तुएँ समान वर्ण के कारण अभिन्न रूप से सुशोभित हो रही थी। निदर्शना अलकार।

स्फुरदुज्ज्वलाधरदलैर्विलसद्दशनांशुकेशरभरैः परितः ।
धृतमुग्धगण्डफलकैर्विबभुर्विकसद्भिरास्यकमलैः प्रमदाः ॥ ४७ ॥

अर्थ—रमणियाँ चचल एवं निर्मल ओष्ठ-रूपी पत्तों से युक्त, चमकते हुए दाँतों की किरण रूपी केसरों से सुशोभित, तथा अत्यन्त मनोहर कपोलस्थल रूपी-कर्णिका (कटोरे के आकार की वह वस्तु जो

पुष्पदलों का आधार होती है) से अलकृत मुख-रूपी कमलों से अत्यन्त शोभा पा रही थीं।

टिप्पणी—अर्थात् इस प्रकार सुशोभित वे रमणिया सरोवर की भाति दिखाई पड रही थीं। सागरूपक अलकार।

भजते विदेशमधिकेन जितस्तदनुप्रवेशमथवा कुशलः।
मुखमिन्दुरुज्ज्वलकपोलमतः प्रतिमाच्छलेन सुदृशामविशत् ॥४८॥

अर्थ—अपने प्रवल प्रतिद्वन्द्वी से पराजित व्यक्ति परदेश भाग जाता है, अथवा यदि वह व्यवहारकुशल होता है तो उसी की शरण मे चला जाता है। इसीलिए चन्द्रमा ने उज्ज्वल कपोलों वाले सुदरियों के मुख में प्रतिबिम्ब के बहाने से प्रवेश कर लिया।

टिप्पणी—काव्यलिंग तथा अपह्नव अलकार का सकर।

ध्रुवमागताः प्रतिहतिं कठिने मदनेषवः कुचतटे महति।
इतराङ्गवन्न यदिदं गरिमग्लपितावलग्नमगमत्तनुताम् ॥४९॥

अर्थ—निश्चय ही कामदेव के वाण उन रमणियों के विशाल एवं कठोर स्तन-प्रदेशों से प्रतिहत होकर (चोट के वाद का धक्का खाकर) लौट गये थे, क्योंकि अपने भार से मध्य प्रदेश (कटि एव उदर भाग) को कृश वनानेवाला उनका स्तनप्रदेश, दूसरे अगों की भाँति दुर्बल नहीं हुआ था।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि काम वाण से व्यथित रमणियों के दूसरे अग अत्यन्त दुर्वल हो गये थे केवल विशाल स्तनो में दुर्वलता नही थी। कवि उसी की उत्प्रेक्षा कर रहा है कि मानो कामदेव के वाण उन विशाल एव कठोर स्तनो से प्रतिघात पाकर लौट गये थे।

न मनोरमास्वपि विशेषविदा निरचेष्ट योग्यमिदमेतदिति।
गृहमेष्यति प्रियतमे सुदृशो वसनाङ्गरागसुमनःसु मनः ॥५०॥

अर्थ—प्रियतम अपने घर मे आनेवाला है—इस (आनन्ददायी वात) से जो सुन्दरियाँ वहुत निपुण थीं, उनका मन, अत्यन्त सुन्दर

हने पर भी वस्त्र अंगराग तथा पुष्पादि प्रसाधन सामग्रियों के सम्बन्ध में 'यह सुन्दर है, यह अच्छा है'—ऐसा निश्चय नहीं कर पा रहा था।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि व यह निश्चय नहीं कर पाती थी कि कौन-सा वस्त्र पहनू कौन-सा अगराग लगाऊँ और किस पुष्प की माला बनाऊँ। अतिशयोक्ति और यमक का ससृष्टि।

वपुरन्वलिप्त परिरम्भसुखव्यवधानभीरुकतया न वधूः।
क्षममस्य वाढमिदमेव हि यत्प्रियसंगमेष्वनवलेपमदः ॥५१॥

अर्थ—रमणियों ने आलिंगन के सुख में बाधा डालने के भय से अपने शरीर में अनुलेपन नहीं किया। (उन्होंने यह ठीक ही किया क्योंकि) प्रियतम के समागम के अवसर पर उनके शरीर का अनुलेप (चन्दनादि अङ्गराग एव गर्व) रहित रहना ही अधिक उचित था।

टिप्पणी—श्लेषानुप्राणित अर्थान्तरन्यास अलकार।

निजपाणिपल्लवतलस्खलनादभिनासिकाविवरमुत्पतितैः।
अपरा परीक्ष्य शनकैर्मुमुदे मुखवासमास्यकमलश्वसनैः ॥५२॥

अर्थ—कोई सुन्दरी अपने पाणिपल्लवों के अभिघात से ऊपर नासिका के छिद्रों की ओर उठती हुई अपने कमल-मुख की वायु द्वारा अपने मुख की सुगन्धि की धीरे से परीक्षा कर बहुत प्रसन्न हुई।

टिप्पणी—यह वासकसज्जा नायिका थी। स्वभावोक्ति अलकार।

विधृते दिवा सवयसा च पुरः परिपूर्णमण्डलविकाशभृति।
हिमधाम्नि दर्पणतले च मुहुः स्वमुखश्रियं मृगदृशो ददृशुः ॥५३॥

अर्थ—आकाश में परिपूर्ण मण्डल से सुशोभित चन्द्रमण्डल में तथा आगे सखी के हाथ में सुशोभित गोलाकार दर्पण में, हरिण के समान नेत्रोंवाली सुन्दरियों ने बारम्बार अपने मुख की शोभा देखी।

टिप्पणी—निदर्शना, यथासख्य तथा तुल्ययोगिता अलकार का सकर।

अर्थ—'हे सखि! तुम अपना सन्देश बताओ' अपनी सखी के इस प्रकार कहने पर सुन्दर नेत्रों वाली कोई रमणी लज्जा के कारण कुछ भी नहीं कह सकी, प्रत्युत वह कामदेव के तीक्ष्ण बाणों से निरन्तर दुर्बल किये गये अपने अंगों की ओर ही अपलक देखती रही।

टिप्पणी—यह भी कलहान्तरिता मध्यमा नायिका थी।

[नायिका द्वारा इस प्रकार पति-सन्देश कहने पर दूतियों ने जो कुछ किया, उसका वर्णन कवि कर रहा है—]

ब्रुवते स्म दूत्य उपसृत्य नरान्नरवत्प्रगल्भमतिगर्भगिरः।
सुहृदर्थमीहितमजिह्मधियां प्रकृतेर्विराजति विरुद्धमपि ॥ ६२ ॥

अर्थ—लज्जाविहीन, बुद्धिशाली तथा वचन-चातुरी में निपुण दूतियाँ नायकों के पास पहुँच कर पुरुषों की भाँति बातें करने लगीं। (यह उचित ही था) क्योंकि अपने मित्रों के लिए सरल बुद्धि वालों का प्रकृति-विरुद्ध भी आचरण शोभा पाता है।

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलंकार।

[अब नीचे के सात श्लोकों में कोई दूती किसी नायक से प्रार्थना करती है—]

मम रूपकीर्तिमहरद्भुवि यस्तदनु प्रसक्तहृदयेयमिति।
त्वयि मत्सरादिव निरस्तदयः सुतरां चिरोति खलु तां मदनः ॥६३॥
तव सा कथासु परिघट्टयति श्रवणं यदङ्गुलिमुखेन मुहुः।
घनता ध्रुवं नयति तेन भवद्गुणपूगपूरितमतृप्ततया ॥६४॥
उपताप्यमानमलघूष्मभिः श्वसितैः सितेतरसरोजदृशः।
द्रवतां न नेतुमधरं क्षमते नवनागवल्लिदलरागरसः ॥६५ ॥
दधति स्फुटं रतिपतेरिषवः शिततां यदुत्पलपलाशदृशः।
हृदयं निरन्तरबृहत्कठिनस्तनमण्डलावरणमप्यभिदन् ॥ ६६ ॥
कुसुमादपि स्मितदृशः सुतरां सुकुमारमङ्गमिति नापरथा।
अनिशं निजैरकरुणः करुणं कुसुमैरुपतापति यद्विशिखैः ॥ ६७ ॥

विपतां निषेचितमपक्रियया समुपैति सर्वमिति सत्यमदः ।
अमृतस्रुतोऽपि विरहाद्भवतो यदमू दहन्ति हिमरश्मिरुचः ॥६८॥
उदितं प्रियां प्रति सहार्दमिति श्रद्धीयत प्रियतमेन वचः ।
विदितेङ्गिते हि पुर एव जने सपदीरिताः खलु लगन्ति गिरः ॥६६॥

अर्थ—"धरती पर मेरे सौन्दर्य की कीर्ति हरने वाला जो पुरुष है, उसी (पुरुष) में इस सुन्दरी रमणी का हृदय लगा हुआ है—इस विचार से तुम्हारे ऊपर द्वेष बुद्धि रखनेवाले निर्दय कामदेव ने ही मानों तुम्हारी सुन्दरी को अत्यन्त क्षीण कर दिया है। तुम्हारी चर्चा होते समय वह तुम्हारी सुन्दरी जो अपनी अगुली के अग्रभाग से अपने कानों को खुजलाती है तो उससे ऐसा मालूम होता है, मानो वह तुम्हारी चर्चा से अतृप्त होकर ही तुम्हारे गुण-समूहो की कथाओ से भरे हुए अपने कान को निश्चय ही खूब दबा-दबा कर सघन रूप से भरती है। (अर्थात् कानों को ठूँस ठूँस कर खूब भर लेना चाहती है।) आन्त-रिक सन्ताप की अधिकता से युक्त गरम-गरम सांसों से झुलसे हुए नीले कमल की कान्ति के समान सुन्दर नेत्रों वाली उस सुन्दरी के ओंठ नूतन-ताम्बूल की ललिमा के रस को नहीं धारण कर रहे है। (अर्थात् बेचारी की गरम सांसों से ओठ सूखे रहते हैं) निश्चय ही कामदेव के बाण बड़े तेज होते हैं, क्योंकि अत्यन्त सघन एव कठोर स्तन-मण्डल-रूपी आवरण के रहने पर भी वे (तुम्हारी) कमलदल-नयनी सुन्दरी के हृदय को भेदते ही है। इसमें तनिक भी असत्य नहीं है कि (तुम्हारी) विकसित (कमल) नयनी सुन्दरी का शरीर कुसुम से भी अत्यन्त कोमल है, क्योंकि निर्दयी कामदेव अपने कुसुम के बाणों से उसे उत्तप्त कर रहा है। विपरीत प्रयोग करने से अमृत जैसी वस्तुएँ भी विष की भांति हो जाती हैं—यह बात सत्य है। क्योंकि अमृत बहाने वाली चन्द्रमा की किरणें भी तुम्हारे वियोग मे तुम्हारी उस सुन्दरी को जला रही हैं।" प्रियतमा के विषय में दूती ने जब प्रियतम से इस प्रकार की बातें कहीं तो उसने इन सब बातो पर विश्वास कर लिया। क्यो न विश्वास करता, पहले ही से हृदय की बातों को समझने

वाले से जब कोई बात कही जाती है तो वह उस बात को तुरत ही समझ जाता है।

टिप्पणी—६२ वें श्लोक में प्रत्यनीक तथा हेतूत्प्रेक्षा का सकर। ६५ वें में अतिशयोक्ति। ६६ वें में उत्प्रेक्षा। ६७ वें में उ प्रेक्षा अर्थान्तरन्यास तथा ६९ वें में अर्थान्तरन्यास अलकार। यह कल्हान्तरिता नायिका थी। यह वर्णन विप्रलम्भ शृगार का सुन्दर उदाहरण है।

दयिताहृतस्य युवभिर्मनसः परिमूढतामिव गतैः प्रथमम्।
उदिते ततः सपदि लब्धपदैः क्षणदाकरेऽनुपदिभिः प्रयये ॥७०॥

अर्थ—चन्द्रोदय से पूर्व अपने चित्त को चुरानेवाली रमणियों के मार्ग को न जाननेवाले युवक अब चन्द्रोदय हो जाने पर तत्क्षण ही उनका मार्ग जान गये और तब मानों प्रियतमाओं द्वारा चुराये गये अपने चित्त को खोजते हुए वे चल पड़े।

[युवक जब अपने-अपने इष्ट स्थानों पर पहुच गये तब क्या हुआ ?]

निपपात संभ्रमभृतः श्रवणादसितभ्रुवः प्रणदितालिकुलम्।
दयितावलोकनविकस्वरनयनप्रसरप्रणुन्नमिव वारिरुहम् ॥७१॥

अर्थ—(सहसा प्रियतम के घर पर आकर उपस्थित हो जाने पर स्वागत के लिए उठने की) शीघ्रता करती हुई किसी श्यामल भौंहों वाली सुन्दरी के गूंजते हुए भ्रमरों के समूहों से युक्त कानों का कमल मानों प्रियतम के दर्शन से विकसित नेत्रों के प्रसार से प्रेरित होकर नीचे गिर पड़ा।

टिप्पणी—यह हृष्टा नायिका थी।

उपनेतुमुन्नतिमतेव दिवं कुचयोर्युगेन तरसा कलिताम्।
रभसोत्थितामुपगतः सहसा परिरभ्य कश्चन वधूमरुधत् ॥७२॥

अर्थ—एकाएक सुन्दरी के कक्ष में आया हुआ कोई युवक शीघ्रता-पूर्वक उठती हुई अपनी उस प्रियतमा को, जो मानों अपने उन्नत-स्तनों

से ऊपर आकाश को पकडने के लिए इसी की ओर उठती जा रही थी, तत्काल वेगपूर्वक आलिंगन करके रोक लिया।

टिप्पणी—यह भी हृष्टा नायिका थी।

अनुदेहमागतवतः प्रतिमां परिणायकस्य गुरुमुद्वहता।
मुकुरेण वेपथुभृतोऽतिभरात् कथमप्यपाति न वधूकरतः ॥७३॥

अर्थ—(सुन्दरी के) शरीर के पीछे की ओर से आनेवाले पति की भारी परछाई से युक्त दर्पण, काँपती हुई किसी नव विवाहिता रमणी के हाथों से, अत्यन्त भार युक्त होने पर भी किसी तरह नीचे नहीं गिरा।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि कोई नव विवाहिता सुन्दरी दर्पण देख रही थी। पीछे से उसका प्रियतम आ गया। दर्पण में उसकी भारी परछाई देखकर वह लज्जा से काँप उठी। हाथ भारी हो गया किन्तु दृढतापूर्वक पकड़ जाने के कारण दर्पण किसी तरह नीचे नहीं गिरा। अतिशयोक्ति अलंकार।

अवनम्य वक्षसि निमग्नकुचद्वितयेन गाढमुपगूढवता।
दयितेन तत्क्षणचलद्रशनाकलकिंकिणीरवमुदासि वधूः ॥ ७४ ॥

अर्थ—नीचे की ओर झुककर पति के गाढ आलिंगन करने से पति के वक्षस्थल पर रमणी के स्तन-युगल आकर सट गये और उसकी करधनी की घटियाँ सुन्दर शब्द करने लगीं। इस प्रकार प्रियतम ने अपनी सुन्दरी को ऊपर उठा लिया।

टिप्पणी—स्वभावोक्ति अलंकार।

कररुद्धनीवि दयितोपगतौ गलितं त्वरानिरहितासनया।
क्षणदृष्टहाटकशिलासदृशस्फुरदूरुभित्ति वसनं ववसे ॥ ७५ ॥

अर्थ—प्रियतम के (सहसा) आ जाने पर शीघ्रतापूर्वक आसन छोड़कर उठती हुई किसी सुन्दरी का वस्त्र जब छूट गया तब उसने तुरन्त अपने हाथों से नीवी को पकड लिया। इस प्रकार क्षण भर के लिए सुवर्ण की शिला के समान उसकी चमकती हुई दोनों जाँघे दिखाई पड़ गयीं और फिर उसने अपनी साडी पहन ली।

टिप्पणी—उपमा अलंकार।

पिदधानमन्वुपगम्य दृशौ व्रुवते जनाय वद कोऽयमिति ।
अभिधातुमध्यवससौ न गिरा पुलकैः प्रियं नववधूर्न्यगदत् ॥७६॥

अर्थ—पीछे से आकर दोनों आँखों को मूदने वाले (प्रियतम) को 'बताओ, यह कौन है ?' सखी के ऐसा पूछने पर कोई नवविवाहिता सुन्दरी (लज्जावश) वाणी द्वारा नहीं बतला सकी किन्तु अपनी पुलकावली द्वारा उसने बतला दिया (कि यह हमारे प्रियतम ही हैं)।

टिप्पणी—सूक्ष्म अलंकार ।

उदितोरुसादमतिवेपथुमत्सुदृशोऽभिभर्तृ विधुरं त्रपया ।
वपुरादरातिशयशंसि पुनः प्रतिपत्तिमूढमपि वाढमभूत् ॥ ७७ ॥

अर्थ—पति के सामने आजाने पर लज्जावश दोनों जाँघों के निश्चेष्ट हो जाने तथा अंगों के अत्यन्त कंपित हो जाने से सुन्दर नेत्रों वाली रमणी का शरीर यद्यपि सत्कार में मूढ हो चुका था किन्तु फिर भी वह (मुख की लालिमा आदि लक्षणों से पति के प्रति) अत्यन्त आदर प्रकट कर रहा था।

परिमन्थराभिरलघूरुभरादधिवेश्म पत्युरुपचारविधौ ।
स्खलिताभिरप्यनुपदं प्रमदाः प्रणयातिभूमिमगमन्गतिभिः ॥७८॥

अर्थ—रमणियाँ घरों में अपने प्रियतम के प्रति समादर करने में जब प्रवृत्त हुईं तो विशाल जाँघों के भार से अलसायी हुई उनकी गति पद-पद पर स्खलित होने लगी, किन्तु इस प्रकार भी वे प्रेम की पराकाष्ठा को प्राप्त हो रही थीं।

टिप्पणी—स्त्रियाँ की यह स्वाभाविक गति पति का सुखदान करनेवाली थी।
विरोधाभास अलंकार।

मधुरामतन्नु ललितं च दृशोः सुकरप्रयोगचतुरं न मनः ।
प्रकृतिस्थमेव निपुणागमितं स्फुटनृत्तलीलमभवत्सुतनोः ॥७९॥

अर्थ—ऊपर उठी हुई सुन्दर भौंहों से युक्त नेत्रों की सुचेष्टा तथा हाथों के अभिनय के साथ चतुराई भरी बातें करने का ढंग यद्यपि सुन्दरी के स्वभाव में ही था तथापि ऐसा मालूम देता था जैसे वह किसी निपुण आचार्य द्वारा सिखाई गयी नृत्य लीला का स्पष्ट अभिनय कर रही हो।

टिप्पणी—निदर्शना अलंकार।

[सपत्नी का नाम लेकर पुकारे जाने पर कोई नायिका अपने प्रियतम से उलाहना दे रही है—]

तदयुक्तमङ्ग तव विश्वसृजा न कृतं यदीक्षणसहस्रतयम्।
प्रकटीकृता जगति येन खलु स्फुटमिन्द्रताद्य मयि गोत्रभिदा ॥८०॥
न विभावयत्यनिशमक्षिगतामपि मां भवानतिसमीपतया।
हृदयस्थितामपि पुनः परितः कथमीक्षते बहिरभीष्टतमाम् ॥८१॥
इति गन्तुमिच्छुमभिधाय पुरः क्षणदृष्टिपातविकसद्वदनाम्।
स्वकरावलम्बनविमुक्तगलत्कलकाञ्चि काचिदरुणत्तरुणः ॥८२॥

अर्थ—"हे प्रियतम! विधाता ने जो तुम्हें सहस्र नेत्रोंवाला नहीं बनाया, यह अनुचित ही हुआ, क्योंकि मेरे विषय में तो स्पष्ट ही 'गोत्रभित्' (अर्थात् गोत्रभेदी पति तथा पर्वत भेदी इन्द्र) बनकर तुमने इस संसार में अपनी इन्द्रता प्रकट कर दी है। निरन्तर आँखों में गड़ी होने पर भी अत्यन्त समीप होने के कारण तुम मुझे नहीं पहचानते, (अर्थात् द्वेष के कारण तुम मुझे देखना भी नहीं चाहते) और (दूसरी ओर) हृदय में बसने पर भी अपनी प्रियतमा को तुम सर्वत्र बाहर भी किस प्रकार देखते हो?" (यह बड़े आश्चर्य की बात है)—ऐसा कहकर पति के समीप से जाने की इच्छुक कोई सुन्दरी नायक की आँखों के चमकाने से तुरन्त ही प्रसन्नमुखी हो गयी और पति के हाथों के पकड़े जाने से उसकी करधनी का बंधन टूट गया, जिससे करधनी मधुर शब्द करती हुई नीचे गिर पड़ी और इस प्रकार वह पति द्वारा जाने से रोक ली गयी।

टिप्पणी—यह भी कलहान्तरिता नायिका थी। प्रथम श्लोक में 'गोत्रभिद्' शब्द में श्लेष है। पति के घर जाने पर पत्नी का गोत्र बदल जाता है, अतः पति का एक नाम गोत्रभिद् भी है। गोत्र पर्वत को भी कहते हैं। पुराणों की कथा के अनुसार पूर्वकाल में सभी पर्वत पक्षधारी होते थे लोक-कल्याण की कामना से इन्द्र ने उनके पक्ष काट डाले। अतः इन्द्र का नाम भी 'गोत्रभिद्' हुआ। नायिका के कथन का तात्पर्य यह है कि तुम्हें मेरा गोत्रभेदी अर्थात् पति बनाकर विधाता ने इन्द्रता तो दे दी किन्तु उसने तुम्हें इन्द्र की भाँति सहस्र आँखें तो नहीं दीं, यही अनुचित हुआ। ८१ वें श्लोक में विरोधाभास अलंकार।

अपयाति सरोषया निरस्ते, कृतकं कामिनि चुक्षुवे मृगाक्ष्या।
कलयन्नपि सव्यथोऽवतस्थेऽशकुनेन स्खलितः किलेतरोऽपि ॥८३॥

अर्थ—इधर क्रुद्धा मृगनयनी ने तिरस्कृत पति को बाहर जाते देखकर बनावटी ढङ्ग से जब छींक दिया तब उधर नायक उसके इस कृत्रिम व्यवहार को जानते हुए भी अपशकुन के भय से गमन को स्थगित करने की भाँति खेद प्रकट करता हुआ रुक गया।

टिप्पणी—यह भी कलहान्तरिता नायिका थी किन्तु दम्पति में समानानुराग था।

आलोक्य प्रियतममंशुके विनीवीं यत्तस्थे नमितमुखेन्दु मानवत्या।
तन्नून पदमवलोकयांनभूवे मानस्य द्रुतमपयानमास्थितस्य ॥८४॥

अर्थ—किसी मानवती सुन्दरी का प्रियतम को देखने पर नव नीवी-बन्धन छूट गया और वह अपने मुख-चन्द्र को नीचे की ओर झुकाकर खड़ी हो गयी तो ऐसा मालूम हुआ मानो वह शीघ्र ही गये हुए अपने मान (गर्व) के पद चिह्नों को देख रही हो।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि प्रियतम को देखते ही मानवती सुन्दरी का मान भाग गया, उसका नीवी-बन्धन छूट गये और वह लज्जा से नीचे मुख करके खड़ी हो गया। उत्प्रेक्षा अलंकार।

सुदृशः मरगव्यलीकतप्तस्तरसाश्लिष्टवतः सर्वानतोष्मा।
कथमप्यभवत्स्मरानलोष्णः स्तनभारो न नवपन्कः प्रियस्य ॥८५॥

अर्थ—प्रियतम के ताजे अर्थात् नूतन अपराध के कारण सतप्त, जवानी की गर्मी से सतप्त, तथा कामाग्नि से (तीन प्रकार से) सतप्त होने पर भी मनोहर नेत्रो वाली सुन्दरियो के स्तन-मण्डल तुरन्त ही वेगपूर्वक आलिंगन करनेवाले प्रियतम के नखों (के घाव) से (पता नहीं क्यों तनिक भी) सन्तप्त नहीं हुए।

टिप्पणी—जो तीन प्रकार स पहले स ही सन्तप्त थे वह नखो के घाव से क्यों नही सतप्त हुए—यह आश्चर्य की बात है। अतिशयोक्ति अलकार।

दधत्युरोजद्वयमुर्वशीतलं भुवो गतेव स्वयमुर्वशी तलम्।
बभौ मुखेनाप्रतिमेन काचन श्रियाधिका तां प्रति मेनका च न ॥८६॥

अर्थ—विशाल एव उष्ण स्तन-युगलों को धारण करने वाली कोई सुन्दरी, मानों धरती तल पर आई हुई साक्षात् उर्वशी की भाँति अपने अनुपम मुख से अत्यन्त सुशोभित हुई। उसके सामने मेनका नाम की अप्सरा भी सौन्दर्य में अधिक नहीं थी।

टिप्पणी—दानो पदा में यमक की ससृष्टि तथा अतिशयोक्ति है। वशस्थ छद।

इत्थं नारीर्घटयितुमलं कामिभिः काममास-
न्प्रालेयांशोः सपदि रुचयः शान्तमानान्तरायाः।
आचार्यत्वं रतिषु विलसन्मन्मथश्रीविलासा
ह्रीप्रत्यूहप्रशमकुशलाः शीधवश्चक्रुरासाम् ॥८७॥

अर्थ—इस प्रकार शीघ्र ही मान-रूपी विघ्न को शान्त करने वाली चन्द्रमा की किरणों ने (दूतियों की भाँति) उन रमणियों को नायकों के साथ मिलाने में पर्याप्त सफलता प्राप्त की तथा कामदेव की शोभा और विलास को प्रकाशित करनेवाली एव लज्जा-रूपी विघ्न को दूर करने में निपुण मदिरा ने (विश्वस्त सखी की भाँति) उन्हे रतिक्रीडा का उपदेश किया।

टिप्पणी—प्रथम दो पदो में चन्द्र किरणा के साथ दूती की समासोक्ति तथा उत्तरार्ध के दोनो पदा में मदिरा में आचार्यत्व के आरोप से परिणाम अलकार है।

दसवें सग में मद्यपान तथा रतिक्रीडा के वर्णन का यह प्रस्ताव है। मन्दाक्रान्ता छन्द। लक्षण — मन्दाक्रान्ता जलधि षड गैम्भौं न तौ तौ गुरुचत्।"

।माघ कविकृत शिशुपालवध महाकाव्य में प्रदोष वर्णन नामक नवाँ सर्ग समाप्त।

—०—

दसवाँ सर्ग

[ऊपर बताया गया है कि मदिरा ने रमणियो का रति क्रीडा का उपदेश किया, फलत इस पूरे सर्ग में मदिरापान का वर्णन कवि ने किया है—]

सज्जितानि सुरभीण्यथ यूनामुल्लसन्नयनवारिरुहाणि ।
आययुः सुघटितानि सुरायाः पात्रतां प्रियतमावदनानि ॥१॥

अर्थ—तदन्तर सुसज्जित, सुगन्धियुक्त एव खिले हुए कमल (से) की भाँति सुशोभित तथा अत्यन्त सुन्दर प्रियतमाओं के मुख ही कामुक युवकों के सुरापात्र बन गये ।

टिप्पणी—सुरा के पात्र भी खूब सुसज्जित सुगधित तथा खिल हुए कमला से युक्त हाते हैं । मदिरा के पात्र में कमल डाल दने से उसकी तीव्रता तथा सुगन्धि और बढ जाती हैं । परिणाम तथा श्लेष सकीर्ण उपमा अलकार । इस सर्ग में स्वागता छन्द है । लक्षण — स्वागतेति रनभा गुरुयुग्मम् ॥

सोपचारमुपशान्तविचारं सानुतर्षमनुतर्षपदेन ।
ते मुहूर्तमथ मूर्तमपीप्यन् प्रेम मानमपधूय वधूः स्वाः ॥२॥

अर्थ—तदनन्तर उन कामुक युवकों ने प्रार्थनापूर्वक शान्त चित्त एव नि शक भाव से बडी तृष्णा के साथ अपनी प्रियतमाओं का मान दूरकर उन्हें क्षण भर के लिए, मदिरा के बहाने से अपने मूर्तमान प्रेम का विधिवत् पान कराया ।

कान्तकान्तवदनप्रतिबिम्बे भग्नबालसहकारसुगन्धौ ।
स्वादुनि प्रणदितालिनि शीते निर्ववार मधुनीन्द्रियवर्गः ॥३॥

अर्थ—प्रियतम के मुख के प्रतिबिम्ब से युक्त, नूतन आम के कोमल पल्लवों के डालने से सुगन्धित, सुस्वादु, भ्रमरों के गुंजार से समन्वित,

अर्थ—कामोत्तेजना के साथ कोई विलासी युवक जब उत्तेजक प्रेयसी के मुख का (अधर का) पान कर रहा था, तब उसके द्वारा एक बार पी गयी मदिरा ही उलटे क्षणभर के लिए उसकी उपदंश बन गयी।

टिप्पणी—मदिरा पान के समय जो नमकीन पदार्थ या चटनी आदि खाये जाते हैं, उन्हें उपदंश कहते हैं। साधारण मद्यप रमणी के अधरपान को ही उपदंश बनाते किन्तु यहं उल्टे मदिरा को ही उपदंश बनाये हुए था। तात्पर्य यह है कि एक बार मदिरा का स्वाद लेकर वह प्रेयसी के अधरपान में ही निरत हो गया था। अतिशयोक्ति अलंकार।

पीतशीधुमधुरैर्मिथुनानामाननैः परिहृतं चषकान्तः।
व्रीडया रुददिवालिनिरावैर्नीलनीरजमगच्छदधस्तात् ॥११॥

अर्थ—मदिरा पान के कारण अत्यन्त सुन्दर यादव स्त्री-पुरुषों के मुखों से पराजित होकर सुरापात्र में डाला गया नीलकमल मानों लज्जित होकर भ्रमरों के गुंजार के बहाने रुदन करता हुआ नीचे बैठ गया।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि यादव स्त्री पुरुषों ने प्याला की मदिरा तो पी ली और कमल-पत्र छोड़ दिये। परिणाम से अनुप्राणित उत्प्रेक्षा अलंकार।

[अब मदिरा पान के कारण उत्पन्न अनुभावों का वर्णन कवि करता है—]

प्रातिभं त्रिसरकेण गतानां वक्रवाक्यरचनारमणीयः।
गूढसूचितरहस्यसहासः सुभ्रुवां प्रववृते परिहासः ॥१२॥

अर्थ—तीन बार के मदिरा पान से उत्पन्न प्रचण्ड नशा से मतवाली सुन्दरियाँ अत्यन्त प्रगल्भ (लज्जारहित) हो गयीं। उनके सुन्दर वाक्य अट सट निकलने लगे। पहले जिन बातों को वे लज्जा के कारण मन में छिपाये रहती थीं, उन्हें अब नशा के कारण प्रकाशित करने लगीं तथा उपहास क्रीडा में निरत हो गयीं।

टिप्पणी—मदिरा तीन बार पीने पर अपना व्यापक प्रभाव डालती है। तीन बार पीकर वे रमणियाँ अत्यन्त उन्मत्त हो गयीं और अट सट बकने लगीं।

हावहारि हसितं वचनानां कौशलं दृशि विकारविशेषाः।
चक्रिरे भृशमृजोरपि वध्वाः कामिनेव तरुणेन मदेन ॥१३॥

अर्थ—तरुण विलासी की भाँति उस उत्कट मदिरा की नशा ने अत्यन्त सरल रमणियों में भी विलास के हाव-भाव, हँसी, वचन की निपुणता तथा आँखों में कटाक्ष आदि विशेष विकार उत्पन्न कर दिये।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार कोई विलासी युवक स्थूल रमणी में भी इन काम चेष्टाओं को उत्पन्न कर देता है, उसी प्रकार मदिरा की उत्कट नशा ने भी उन्हें बना दिया। जब सीधी सरल रमणियों का यह हाल हुआ तो जो प्रौढा थीं, उनका क्या पूछना था? उपमा और समुच्चय का संकर।

अप्रसन्नमपराद्धरि पत्यौ कोपदीप्तमुररीकृतधैर्यम्।
चालितं नु शमितं नु वधूनां द्रावितं नु हृदयं मधुवारैः ॥ १४॥

अर्थ—अपराधी पति के प्रति कलुषित, क्रोध के कारण जलते हुए तथा कठिनता धारण करने वाले रमणियों के हृदयों को या तो इस मदिरा पान ने धो दिया था, या शांत कर दिया था, या द्रवित कर दिया था।

टिप्पणी—यथासंख्य एवं संदेहालंकार का संकर।

सन्तमेव चिरमप्रकृतत्वादप्रकाशितमदिद्युतदङ्गे।
विभ्रमं मधुमदः प्रमदानां धातुलीनमुपसर्ग इवार्थम् ॥१५॥

अर्थ—मदिरा की उस उत्कट नशा ने स्त्रियों के अंगों में विद्यमान, किन्तु चिरकाल तक अप्रयुक्त होने के कारण अप्रकाशित विलास को इस प्रकार प्रकट कर दिया जैसे धातु में विद्यमान अर्थों को उपसर्ग प्रकट कर देता है।

टिप्पणी—जिस प्रकार उपसर्ग धातु में छिपे हुए उस अर्थ को प्रकाशित करता है जो चिरकाल से अप्रयुक्त होने के कारण अप्रकट रहता है उसी प्रकार मदिरा के नशे ने रमणियों में चिरकाल से विद्यमान किन्तु अप्रकट विलास भाव को प्रकट कर दिया। उपमा अलंकार।

सानदोषपदमुक्तमुपेता स्रस्तमाल्यवसनाभरणेषु।
गन्तुमुत्थितमकारणतः स्म द्योतयन्ति मदविभ्रममासाम् ॥१६॥

अर्थ—अधूरे वाक्य बोलना, गिरते हुए माला, वस्त्र एवं आभूषणों की ओर उपेक्षित भाव रखना तथा बिना किसी कारण के उठकर चले जाने की कोशिश करना—ये सब चेष्टाएँ रमणियों के (उत्कट) मद-विकार को प्रकट करने लगीं।

मद्यमन्दविगलत्त्रपमीषच्चक्षुरुन्मिषितपक्ष्म दधत्या।
वीक्ष्यते स्म शनकैर्नववध्वा कामिनो मुखमधोमुखयैव ॥१७॥

अर्थ—मदिरापान के कारण धीरे-धीरे लज्जा के दूर होने से किसी नववधू के नेत्र विकसित हो गये, उसकी भौंहें खिल गयीं और वह नीचे मुख किये हुए ही अपने प्रियतम के मुख को तिरछी नजर से देखने लगी।

या कथंचन सखीवचनेन प्रागभिप्रियतमं प्रजगल्भे।
व्रीडजाड्यमभजन्मधुपा सा स्वां मदात्प्रकृतिमेति हि सर्वः ॥१८॥

अर्थ—जो सुन्दरी बड़ी कठिनाई के साथ सखी की प्रेरणा से मदिरा पान के पूर्व अपने प्रियतम के सम्मुख कुछ धृष्टता की बातें कर चुकी थी, वह अब मदिरा पान करने के अनन्तर लज्जित हो गयी क्योंकि सभी लोग नशे में अपना सहज स्वभाव प्रकट करते हैं।

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलंकार।

छादितः कथमपि त्रपयान्तर्यः प्रियं प्रति चिराय रमण्याः।
वारुणीमदनिशङ्कमथाविश्चक्षुषोऽभवदसाविव रागः ॥१९॥

अर्थ—रमणियों के हृदय के भीतर अपने प्रियतमों के प्रति जो राग (विषय सुखेच्छा) चिर काल से लज्जा के कारण छिपा हुआ था मानो वही राग (लालिमा) इस मदिरा पान की नशा से निःशंक होकर नेत्रों से प्रकट हो रहा था।

टिप्पणी—[illegible] अनुप्राणित उत्प्रेक्षा अलंकार। कवि ने "आविः" और "अभवत्" के बीच में छन्दोभंग के भय से "चक्षुषः" शब्द को बैठा दिया है। [illegible] है।

आगतानगणितप्रतियातान् वल्लभानभिसिसारयिषूणाम् ।
प्रापि चेतसि सविप्रतिसारे सुभ्रुवामवसरः सरकेण ॥२०॥

अर्थ—प्रियतम सकेत-स्थलों पर स्वय आ गये थे और उन्हें लौटने की चिन्ता नहीं थी। अत उनके पास अभिसार करने की इच्छुक सुन्दरी रमणियों के पश्चात्ताप युक्त चित्त मे मदिरा पान ने (पर्याप्त) अवकाश प्राप्त कर लिया था।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि स्वय अभिसार करने की सुविधा के लिए रमणियो ने पर्याप्त मद्य-पान किया। समाधि अलकार।

मा पुनस्तमभिसीसरमागस्कारिणं मदविमोहितचित्ता ।
योषिदित्यभिललाप न हालां दुस्त्यजः खलु सुखादपि मानः ॥२१॥

अर्थ—नशा से "उन्मत्तचित हो कर मैं अब पुन उस अपराधी के पास नहीं जाऊगा—" ऐसा सोचकर किसी सुन्दरी ने मदिरा पान करने की इच्छा नहीं की। (ठीक ही है) स्वाभिमान तो सुख से भी बढ़कर दुस्त्याज्य होता है।

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलकार।

ह्रीविमोहमहरद्दयितानामन्तिकं रतिसुखाय निनाय ।
सप्रसादमिव सेवितमासीत्सद्य एव फलदं मधु तासाम् ॥२२॥

अर्थ—मन की सहज प्रसन्नता के साथ पी गयी मदिरा उन रमणियों को शीघ्र ही फल देने वाली हो गयी थी। उनको लज्जा-जनित मूढता को उसने दूर कर दिया था तथा सम्भोग-सुख के लिए उन्हे अपने प्रियतमों के समीप लाकर पहुँचा दिया था।

टिप्पणी—वाक्यार्थहेतुक काव्यलिंग अलकार।

दत्तमात्तमदनं दयितेन व्याप्तमातिशयिकेन रसेन ।
सस्वदे मुखसुरं प्रमदाभ्यो नाम रूढिमपि च व्युदपादि ॥२३॥

अर्थ—रमोत्तेजना से युक्त प्रियतम द्वारा दी गयी अतएव अत्यन्त स्वादु से भरी हुई मुख की मदिरा प्रमदाओ अर्थात् रमणियों को खूब

रुचिकर प्रतीत हुई तथा उसने उनके 'प्रमदा' (अर्थात् अधिक मस्ती से युक्त) नाम को सार्थक बना दिया।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि रमणियो का 'प्रमदा' यह नाम पहले व्यर्थ ही था, इस मदिरा ने ही उन्हें विशेष मस्त बनाकर उनके इस नाम को चरितार्थ कर दिया। वाक्यार्थहेतुक काव्यलिंग अलंकार।

लब्धसौरभगुणो मदिराणामङ्गनास्यचषकस्य च गन्धः।
मोदिताळिरितरेतरयोगादन्यतामभजतातिशयं नु ॥२४॥

अर्थ—परस्पर मिल जाने के कारण अधिक सुगन्धित, भ्रमरों को आनन्दित करनेवाली मदिरा तथा रमणियों के मुखरूपी प्यालों की सुगन्ध परस्पर मिलजाने से अपूर्वता तथा अतिशयता को प्राप्त हुई अर्थात् मदिरा की सुगन्ध उन सुन्दरियों के मुख की सुगन्ध से मिलकर और भी अपूर्व हो गयी।

मानभङ्गपटुना सुरतेच्छां तन्वता प्रथयता दृशि रागम्।
लेभिरे सपदि भावयतान्तर्योषितः प्रणयिनेव मदेन ॥२५॥

अर्थ—मान भग करने में निपुण, सभोग की इच्छा को तीव्रतर बनानेवाली, नेत्रों मे राग अर्थात् लालिमा तथा प्रेम को लानेवाली तथा अन्त करण को राग युक्त बनानेवाली मदिरा की नशा ने प्रियतमों की भाँति उन रमणियों को प्राप्त (अपने में विभोर) कर लिया।

टिप्पणी—श्लेषमूलातिशयोक्ति से सकीर्ण उपमा अलकार।

पानधौतनवयावकरागं सुभ्रुवो निभृतचुम्बनदक्षाः।
प्रेयसामधररागरसेन स्वं किलाधरमुपालि रञ्जुः ॥ २६ ॥

अर्थ—सखियों के समीप में ही गूढ चुम्बन लेने में सुचतुर सुन्दरियो ने मदिरापान के कारण अपने अधरों के लाक्षारस के धुल जाने पर प्रियतम के अधरो मे लगी हुई लाक्षा के रस से उन्हें रंग लिया।

टिप्पणी—मीलन अलकार।

अर्पितं रमितवत्यपि नामग्राहमन्ययुवतेर्दयितेन।
उज्झति स्म मदमप्यपिबन्ती वीक्ष्य मद्यमितरा तु ममाद ॥२७॥

अर्थ—प्रियतम द्वारा सपत्नी का नाम लेकर दी गयी मदिरा को पीकर भी कोई सुन्दरी मतवाली नहीं हुई और उधर दूसरी रमणी अर्थात् उसकी सपत्नी उस मदिरा को बिना पिये ही केवल उसे देखकर ही मतवाली बन गयी।

टिप्पणी—पूर्वार्द्ध में विशेषोक्ति तथा उत्तरार्द्ध में विभावना अलङ्कार।

अन्ययान्यवनितागतचित्तं चित्तनाथमभिशङ्कितवत्या।
पीतभूरिसुरयापि न मेदे निर्वृतिर्हि मनसो मदहेतुः॥ २८॥

अर्थ—पति को अन्य रमणी में अनुरक्त चित्त जानकर किसी सुन्दरी ने यद्यपि प्रचुरमात्रा में मदिरा पी ली थी, किन्तु फिर भी वह मतवाली नहीं हुई। (सच है,) मन की प्रसन्नता ही मतवालेपन का कारण होती है।

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलङ्कार।

कोपवत्यनुनयानगृहीत्वा प्रागथो मधुमदाहितमोहा।
कोपित विरहखेदितचित्ता कान्तमेव कलयन्त्यनुनिन्ये॥ २९॥

अर्थ—पहले क्रुद्ध होकर जिस मानवती ने अपने प्रियतम के अनुनयों को ठुकरा दिया था वही सुन्दरी अब मदिरा के नशे से मोहित एवं उसके विरह से खिन्न होकर अपने उसी प्रियतम को स्वयं मना रही थी।

टिप्पणी—यह कलहान्तरिता नायिका थी।

कुर्वता मुकुलिताक्षियुगानामङ्गसादमवसादितवाचाम्।
ईर्ष्ययेव हरता ह्रियमासां तद्गुणैः स्वयमकारि मदेन॥ ३०॥

अर्थ—दोनों नेत्रों को मूँदे हुए उन रमणियों की वाणी पर्याप्त मदिरा पान के कारण कुण्ठित हो गयी थी। इस अवस्था में मानों मदिरा के नशे ने ईर्ष्या से उनके अंगों को शिथिल कर, लज्जा को दूर हटाकर उसके समस्त कार्यों को स्वयं ही पूरा कर दिया था।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि मानों लज्जा से जो कि स्त्रियों का सहज आभूषण है ईर्ष्या रखकर मदिरा ने स्वयं उसके सब कार्य सम्पादित कर दिये थे।

गण्डभित्तिषु पुरा सदृशीषु व्याञ्जि नाञ्चितदृशां प्रतिमेन्दुः ।
पानपाटलितकान्तिषु पश्चाल्लोध्रचूर्णतिलकाकृतिरासीत् ॥ ३१ ॥

अर्थ—सुन्दर नेत्रों वाली रमणियों की अपने समान रंग की कपोल-स्थली पर चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब मदिरापान के पहले नहीं दिखाई पडता था, किन्तु मदिरापान के अनन्तर उसके नशे से कपोलों की कान्ति के रक्तवर्ण हो जाने पर वही चन्द्रमा का बिम्ब अब लोध्र के पराग से बने हुए तिलक की आकृति की भांति सुशोभित होने लगा।

टिप्पणी—सामान्य और निदर्शना अलंकार का संसृष्टि।

उद्धतैरिव परस्परसङ्गादीरितान्युभयतः कुचकुम्भैः ।
योषितामतिमदेन जुघूर्णुर्विभ्रमातिशयपुंषि वपूंषि ॥ ३२ ॥

अर्थ— गर्व से युक्त उद्धत कुचकुम्भों के परस्पर के संघर्षण के कारण मानों दोनों ओर से प्रेरित अर्थात् आकृष्ट होकर अतिशय विलास युक्त रमणियों के शरीर अत्यंत मस्ती के साथ घूमने लगे।

टिप्पणी—दो उद्धता के संघर्ष में तटस्थ पीडित होता ही है।

चारुता वपुरभूषयदासां तामनूननवयौवनयोगः ।
तं पुनर्मकरकेतनलक्ष्मीस्तां मदो दयितसंगमभूषः ॥ ३३ ॥

अर्थ—उन यादव रमणियों के शरीर को सुन्दरता ने अलंकृत किया, उस सुन्दरता को उन रमणियों के विकसित यौवन की सम्पत्ति ने विभूषित किया, उस विकसित यौवन की सम्पत्ति को कामदेव के विलास ने आभूषित किया और उस कामदेव के विलास को प्रियतम के समागम से विभूषित उन रमणियों की मस्ती ने अलंकृत किया।

टिप्पणी—एकावली अलंकार।

क्षीबतामुपगतास्वनुवेलं तासु रोषपरितोषवतीषु ।
अग्रहीन्नु सशरं धनुरुज्झामास नूज्झितनिषङ्गमनङ्गः ॥ ३४ ॥

अर्थ—मदिरा की मस्ती में डूबी हुई एवं प्रतिक्षण क्रोध तथा परितोष धारण करनेवाली रमणियों पर क्या कामदेव ने अपना बाण समेत

धनुष धारण कर लिया था अथवा तरकस रहित अपने धनुष को उतार लिया था (जो ये क्षणभर में ही क्रुद्ध तथा क्षण भर में ही सन्तुष्ट होती थीं)।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा और यथासंख्य अलंकार का संकर।

शङ्कयान्ययुवतौ वनिताभिः प्रत्यभेदि दयितः स्फुटमेव।
न क्षमं भवति तत्त्वविचारे मत्सरेण हतसंवृतिचेतः॥ ३५॥

अर्थ—रमणियों ने सपत्नी के साथ अपने प्रियतम के समागम की शङ्का से युक्त होकर उन्हें स्पष्ट रूप से उलाहना दिया। (यह ठीक ही था।) ईर्ष्या में जिसका चित्त जलता रहता है, वह तत्त्वविचार करने में असमर्थ होता ही है।

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलंकार।

आननैर्विचकसे हृषिताभिर्वल्लभानभि तनूभिरभावि।
आर्द्रतां हृदयमाप च रोषो लोलति स्म वचनेषु वधूनाम्॥३६॥

अर्थ—प्रियतमों के सम्मुख पहुँचकर रमणियों के मुख प्रफुल्लित हो उठे, अंग पुलकित हो गये, हृदय द्रवीभूत हो गये तथा वाणी से क्रोध दूर हो गया।

टिप्पणी—समुच्चय अलंकार।

रूपमप्रतिविधानमनोज्ञं प्रेम कार्यमनपेक्ष्य विकासि।
चाटु चाकृतकसंभ्रममासां कार्मणत्वमगमन्रमणेषु॥ ३७॥

अर्थ—सहज सुन्दर मनोहर स्वरूप, निःस्वार्थ बढ़ता हुआ प्रेम तथा बिना बनावट के ही चाटुकारी भरी प्रिय वाणी—रमणियों की ये समस्त वस्तुएँ प्रियतमों के लिए वशीकरण बन गयीं।

टिप्पणी—परिणाम अलंकार।

लीलयैव सुतनोस्तुलयित्वा गौरवाढ्यमपि लावणिकेन।
मान्यमन्तिगत वदनेन क्रीतमेव हृदयं दयितस्य॥ ३८॥

अर्थ—मान को दूर करने में निपुण (तौल में झाँसा पट्टी करने में निपुण) लावण्य युक्त अर्थात् परम सुन्दर रमणियों के मुख ने (लवण के व्यापारी ने) अत्यन्त गभीरता से युक्त (भारी, वजनी) होने पर भी प्रियतम के हृदय को लीलापूर्वक अर्थात् हल्के रूप में (अनायास ही) कम तौलकर खरीद लिया।

टिप्पणी—नमक के वे व्यापारी जो ग्रामों में फेरी लगाते हैं और पुराने टाट, रस्सी या गूदड के बदले नमक बेचते हैं वे झाँसा पट्टी की तौल में बड़े निपुण होते हैं और ग्राहक की सवासेर वस्तु को सेरभर ही तौलकर खरीद लेते हैं। समासोक्ति द्वारा कवि ने इसी अर्थ को नायिका के उन परम सुन्दर मुखों के साथ जोड दिया है जो प्रियतम के गभीर हृदय का अनायास ही खरीद लेते हैं। तात्पर्य यह है कि सुन्दरी रमणियों के मुख देखकर बड़े-बड़े धैर्यशील नायक भी विचलित हो गये। समासोक्ति अलंकार।

[मद के अनुभावों के पश्चात् अब कवि संभोग क्रिया का वर्णन करता है—]

स्पर्शभाजि विशदच्छविचारौ कल्पिते मृगदृशां सुरताय।
संनतिं दधति पेतुरजस्रं दृष्टयः प्रियतमे शयने च ॥ ३९ ॥

अर्थ—स्पर्श में सुख देनेवाले, निर्मल कान्ति से मनोहर (स्वेतता से मनोहर) रमण के लिए सजायी गयी (आये हुए) तथा सब प्रकार से मन के अनुकूल प्रियतम और पलँग पर पड़ी हुई शैय्या की ओर मृगनयनी रमणियों की आँखें निरन्तर लग गयीं।

टिप्पणी—तुल्ययोगिता अलंकार।

यूनि रागतरलैरपि तिर्यक्पातिभिः श्रुतिगुणेन युतस्य।
दीर्घदर्शिभिरकारि वधूनां लङ्घनं न नयनैः श्रवणस्य ॥४०॥

अर्थ—अनुराग से चंचल अर्थात् दर्शनोत्सुक (राग-द्वेष से चचल) एवं प्रियतम पर तिरछे पड़नेवाले (कुटिल वृत्तिवाले) तथा दूर तक देखने वाले (भविष्य के प्रति सचेत रहने वाले) रमणियों के नेत्रों ने शब्दों को ग्रहण करने की निपुणता से युक्त कानों का (शास्त्रों का) अतिक्रमण नहीं किया।

टिप्पणी—कवि का तात्पर्य यह है कि मद्यपान से मतवाली सुरत-सभोग के लिए लालायित रमणियों के नेत्र विलास को कल्पना में कानों तक फैले हुए थे। राग-द्वेष से युक्त होकर भी शास्त्रज्ञ विद्वान् शास्त्रों का अतिक्रमण नहीं करते। श्लेष से अनुप्राणित समासोक्ति अलंकार।

संकथेच्छुरभिधातुमनीशा संमुखी न च बभूव दिदृक्षुः।
स्पर्शनेन दयितस्य नतभ्रूरङ्गसङ्गचपलापि चकम्पे ॥४१॥

अर्थ—नम्र भौंहोंवाली कोई सुन्दरी पति से सभाषण करने की इच्छा रखकर भी बोलने में असमर्थ रही, देखने की इच्छुक होकर भी उसके सम्मुख नहीं आ सकी, शरीर के स्पर्श के लिए चचल हो कर भी उसके स्पर्श से काँप उठी।

टिप्पणी—यह मुग्धा नायिका थी।

[अब आलिंगन का वर्णन कवि करता है—]

उत्तरीयविनयात्त्रपमाणा रुन्धती किल तदीक्षणमार्गम्।
आवरिष्ट विकटेन विवोढुर्वक्षसैव कुचमण्डलमन्या ॥४२॥

अर्थ—किसी सुन्दरी ने स्तनों को ढँकनेवाली चोली के खींच लिए जाने पर लज्जित होकर प्रियतम के दृष्टि-पथ को रोकने के बहाने से उसके विशाल वक्षस्थल को ही अपना आवरण बना लिया।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि प्रियतम ने ज्योंही उसकी चोली खींची वह उसके वक्षस्थल से जाकर चिपक गयी। मीलनालंकार।

अंशुकं हृतवता तनुबाहुस्वस्तिकापिहितमुग्धकुचाग्रा।
भिन्नशङ्खवलयं परिणेत्रा पर्यरम्भि रभसादचिरोढा ॥४३॥

अर्थ—साडी के अचल को खींचते हुए प्रियतम ने, अपनी पतली बाहुओं द्वारा स्वस्तिक के समान चिह्न बनाते हुए अपने दोनों सुन्दर स्तनों के अग्रभाग को ढकनेवाली नववधू का, शीघ्रता से गाढ़ आलिंगन कर लिया। उसके इस मधुर व्यापार में सुन्दरी का शख निर्मित कंकण टूट गया।

यत्प्रियव्यतिकराद्वनितानामङ्गजेन पुलकेन बभूवे ।
अपि तेन भृशमुच्छ्वसिताभिर्नीविभिः सपदि बन्धनमोक्षः ॥५१॥

अर्थ—प्रियतमो के समागम से रमणियो के अगो मे पुलकावली जो उत्पन्न हुई (पुत्र जो उत्पन्न हुआ) सो उससे उनकी अत्यन्त दृढ़ता से बधी हुई नीवी के (वदियो के) बधन तुरन्त ही छूट गये।

टिप्पणी—अभ्युदय के अवसर पर अथवा पुत्रादि के उत्पन्न होने पर राजा लोग वन्दियो का बन्धनमुक्त कर ही देते है। समासोक्ति अलकार।

[अब चुम्बनक्रीडा का वर्णन है—]

ह्रीभरादवनतं परिरम्भे रागवानवटुजेष्ववकृष्य ।
अर्पितोष्ठदलमाननपद्मं योषितो मुकुलिताक्षमधासीत् ॥५२॥

अर्थ—आलिंगन मे उत्पन्न लज्जा-रूपी भार से अवनत, अपने मुख पर रखे हुए ओष्ठो के दलो से युक्त सुन्दरी के मुखरूपी कमल का, अनुरागी पति ने चोटी खींचकर अपने नेत्रो को बद करके पान किया।

टिप्पणी—रूपक अलकार।

पल्लवोपमितिसाम्यसपक्षं दष्टवत्यधरबिम्बमभीष्टे ।
पर्यकूजि सरुजेव तरुण्यास्तारलोलवलयेन करेण ॥५३॥

अर्थ—पल्लवो की समानता को धारण करनेवाले अधरबिम्ब के प्रियतम द्वारा काट लिये जाने पर तरुणी के झनझनाते हुए कंकणों से युक्त हाथ ने मानों व्यथा के साथ शोर मचाया।

टिप्पणी—हाथ ने इस लिए शोर मचाया कि वह भी करपल्लव था तथा उधर ओष्ठपल्लव को काटा गया था। अपनी बिरादरी पर सकट पड़ने पर सभी चिल्लाते है। जो मित्र या बिरादरी के दुख से दुखी होता है वही सच्चा मित्र है। उत्प्रेक्षा।

केनचिन्मधुरमुल्बणरागं बाष्पतप्तमधिकं निरहेतु ।
ओष्ठपल्लवमपास्य मुहूर्तं सुभ्रुवः सरसमक्षि चुचुम्बे ॥५४॥

अर्थ—किसी रसिक नायक ने मधुर, अत्यंत लाल तथा विरह-वेदना की भाप से जलते हुए सुन्दरी के ओष्ठपल्लव को छोड़कर उसके अत्यन्त सरस शीतल नेत्रों का ही कुछ समय तक चुम्बन किया।

टिप्पणी—काव्यलिंग अलंकार।

[ऊपर के श्लोकों में अभी तक रति-क्रीडा के बाह्यप्रकारों का वर्णन कवि ने किया है, अब आगे के श्लोकों में भीतरी सुरत-क्रिया का वर्णन किया है—]

रेचितं परिजनेन महीयः केवलाभिरतदंपति धाम।
साम्यमाप कमलासखविष्वक्सेनसेवितयुगान्तपयोधेः ॥५५॥

अर्थ—परिवार के लोगों से शून्य, केवल सुरत-क्रीडा में निरत दम्पती से युक्त उस महान् क्रीडा भवन ने, लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु से आश्रित प्रलयकालिक समुद्र की समानता को प्राप्त किया।

टिप्पणी—प्रलय काल का विशेषण अत्यन्त निर्जनता को प्रकट करने के लिए है। उपमा अलंकार।

आवृतान्यपि निरन्तरमुच्चैर्योषितामुरसिजद्वितयेन।
रागिणामित इतो विमृशद्भिः पाणिभिर्जगृहिरे हृदयानि ॥ ५६ ॥

अर्थ—उन्नत स्तन-युगलों से सघन रूप में आच्छादित होने पर भी रमणियों के वक्षस्थल अथवा हृदयों को इधर-उधर ढूँढनेवाले विलासी पतियों के हाथों ने पकड़ ही लिया।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि प्रियतमा ने दोनों सघन स्तन-कलशों के बीच में अपने हाथ डालकर रमणियों के हृदय-स्पर्श कर लिए।

कामिनामसकलानि विभुग्नैः स्वेदवारिमृदुभिः करजाग्रैः।
अक्रियन्त कठिनेषु कथंचित्कामिनी कुचतटेषु पदानि ॥५७॥

अर्थ—पसीने के पानी से कोमल होजाने के कारण टेढ़े विलासियों के नखों के अग्रभागों ने कामनियों के कठिन कुच स्थलों पर किसी प्रकार अधूरे ही नखक्षत बनाये।

टिप्पणी—कठिन वस्तु पर कोमल वस्तु का प्रभाव कठिनता से होता ही है। अतिशयोक्ति अलंकार।

सोष्मणः स्तनशिलाशिखराग्रादात्तधर्मसलिलैस्तरुणानाम्।
उच्छ्वसत्कमलचारुषु हस्तैर्निम्ननाभिसरसीषु निपेते॥ ५८॥

अर्थ--(योवन की) गरमी से युक्त स्तन-रूपी शिला के शिखरों के ऊपरी भाग से पसीने मे लथपथ होकर नायकों के हाथ विकसित, कमल की भाँति मनोहर रमणियों के नाभी-रूपी महान् सरोवर मे कूद पड़े।

टिप्पणी—पर्वत के शिखर पर गर्मी मे व्याकुल व्यक्ति का सरोवर में कूदना उचित ही है। तात्पर्य यह है कि नायकों ने पहले रमणियों के स्तनो का स्पर्श किया और फिर नाभि-प्रदेश का स्पर्श किया। रूपक अलकार।

आमृशद्भिरभितो वलिवीचीर्लोलमानविततान्गुलिहस्तैः।
सुभ्रुवामनुभवात्प्रतिपेदे मुष्टिमेययिति मध्यमभीष्टैः॥ ५९॥

अर्थ—लहरों के समान शोभित रमणियों की त्रिवली को चारों ओर से ढूढ़ते हुए चचल एव विस्तृत अगुलियों वाले हाथों से प्रियतमों ने सुन्दरियों के मध्य भाग मे "मुट्ठी बराबर ही इसकी कमर है"—ऐसा ज्ञान प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा प्राप्त किया।

टि पणी—अतिशयोक्ति अलकार।

प्राप्य नाभिनदमज्जनमाशु प्रस्थितं निवसनग्रहणाय।
औपनीविकमरुन्ध किल स्त्री वल्लभस्य करमात्मकराभ्याम्॥६०॥

अर्थ—(रमणियों के) नाभि-रूपी नद मे स्नान कर शीघ्र ही वस्त्र खींचने के लिए उद्यत प्रियतमों के हाथों को नीवि के समीप आने पर रमणियों ने अपने हाथों से रोक दिया।

टिप्पणी—स्नान करने पर पहनने के लिए जल्दी में भूल से किसी दूसरे का वस्त्र खींचने पर रोका ही जाता है। तात्पर्य यह है कि प्रियतम ने जब साड़ी की गाठ छोड़ने के लिए हाथ बढ़ाया तो रमणी ने उसे पकड़ लिया।

कामिनः कृतरतोत्सवकालक्षेपमाकुलवधूकरसङ्गि।
मेखलागुणविलग्नमभूयां दीर्घसूत्रमकरोत्परिधानम॥ ६१॥

अर्थ—(प्रियतम के हाथों को दूर करने में) व्यग्र रमणी के हाथों से पकड़ा हुआ, करधनी की रस्सी से बहुत लपेटकर बँधा हुआ तथा सुरत-केलि में विलम्ब पहुँचाने वाला (रमणियों का) वस्त्र कामियों की ईर्ष्या का पात्र बन गया।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि नीवि बन्धन को छोड़ने में तनिक भी विलम्ब कामियों के लिए असह्य हो गया। काव्यलिङ्ग अलङ्कार।

अम्बरं विनयतः प्रियपाणेर्योषितश्च करयोः कलहस्य।
वारणामिव विधातुमभीक्ष्णं कक्ष्यया च वलयैश्च शिशिञ्जे ॥६२॥

अर्थ—(प्रियतमा के) वस्त्रों को खोलने में लगे हुए प्रियतम के हाथों के साथ निषेध करती हुई प्रियतमा के हाथों का जो कलह हुआ, मानों उसे बंद करने के लिए ही रमणी की करधनी तथा कंकण ने खूब शोर मचाया।

टिप्पणी—दो के विवाद होने पर अड़ोस-पड़ोस के रहनेवाले चिल्लाते ही हैं। उत्प्रेक्षा।

ग्रन्थिमुद्ग्रथयितुं हृदयेशे वाससः स्पृशति मानधनायाः।
भ्रूयुगेण सपदि प्रतिपेदे रोमभिश्च सममेव विभेदः ॥ ६३ ॥

अर्थ—प्रियतम द्वारा वस्त्र की गाँठ खोलने के लिए शरीर-स्पर्श किये जाने पर मानवती रमणी के दोनों भौंहों तथा रोमावली ने तुरन्त एक साथ ही विभेद अर्थात् वक्रता तथा हर्ष की प्राप्ति की।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि यद्यपि मानवती होने से भौंहें टेढ़ी हो गयी किन्तु कामिनी होने के कारण उसे रोमाञ्च भी हो आया। अतिशयोक्ति से अनुप्राणित समुच्चय का सङ्कर।

आशु लङ्घितवतीष्टकराग्रे नीविमर्धमुकुलीकृतदृष्ट्या।
रक्तवैणिकहताधरतन्त्रीमण्डलक्वणितचारु चुकूजे ॥६४॥

अर्थ—पति के हाथों के अग्रभाग अर्थात् अंगुलियों के शीघ्रता के साथ नीवीबन्धन को पार कर जाने पर (जघा के मूलभाग में पहुँच

जाने पर आनन्दातिरेक से) आँखों को अधमुँदी करके कोई रमणी स्वयं गाने में निपुण-वीणावादक द्वारा बजायी गयी वीणा के स्वर-समूह की भाँति सुन्दर स्वर में अपने कण्ठ से कोई अव्यक्त ध्वनि करने लगी।

टिप्पणी—यह अव्यक्त ध्वनि रति काल में होती है। उपमा अलंकार।

आयताङ्गुलिरभूदतिरिक्तः सुभ्रुवां कृशिमशालिनि मध्ये।
श्रोणिषु प्रियकरः पृथुलासु स्पर्शमाप सकलेन तलेन ॥ ६५ ॥

अर्थ—प्रियतम का विस्तृत अंगुलियों वाला हाथ रमणी के दुर्बल उदर प्रान्त पर पहुँचकर अधिक हो जाता था किन्तु वही उसके विस्तृत नितम्बप्रदेश पर पहुँच कर अपने सम्पूर्ण तल से केवल उसका स्पर्श मात्र कर रहा था।

टिप्पणी—अतिशयोक्ति अलंकार।

चक्रुरेव ललनोरुषु राजीः स्पर्शलोभवशलोलकराणाम्।
कामिनामनिभृतान्यपि रम्भास्तम्भकोमलतलेषु नखानि ॥६६॥

अर्थ—उरु भाग के स्पर्श के लोभ से चंचल हाथवाले विलासी युवकों के (चत के लिए) बिना लगाये हुए भी नखों ने कदली के खम्भे के समान अतिशय सुकुमार रमणियों की जाँघों पर खरोंचें लगा दीं।

टिप्पणी—काव्यलिंग अलंकार।

ऊरुमूलचपलेक्षणमधन् यैर्वतंसकुसुमैः प्रियमेताः।
चक्रिरे सपदि तानि यथार्थं मन्मथस्य कुसुमायुधनाम ॥ ६७ ॥

अर्थ—इन रमणियों ने अपनी जाँघों के मूल भाग में चंचल दृष्टि वाले युवकों को अपने कान में विभूषित कुसुमों से जो आहत किया सो वे ही कर्ण कुसुम तुरन्त कामदेव के 'कुसुमायुध' नाम को चरितार्थ करने लगे।

टिप्पणी—परिणाम अलंकार।

धैर्यमुल्बणमनोभवभावा वामतां च वपुरर्पितवत्यः ।
व्रीडितं ललितसौरतधार्ष्ट्यास्तेनिरेऽभिरुचितेषु तरुण्यः ॥६८॥

अर्थ—तरुणियाँ यद्यपि उत्कट कामविकारों से ग्रस्त थीं फिर भी प्रियतमों के साथ उदासीनता दिखा रही थीं। अपने शरीर को यद्यपि सपूर्ण रूप से समर्पित कर चुकी थीं फिर भी रति से प्रतिकूलता दिखा रही थीं। सुरत-क्रीडा में यद्यपि उनकी धृष्टता स्पष्ट ही थी, फिर भी लज्जा का नाट्य कर रही थीं।

टिप्पणी—तरुणियों में यह कृत्रिमता रहती ही है। विरोधाभास तथा समुच्चय अलकार।]

पाणिरोधमविरोधितवाञ्छं भर्त्सनाश्च मधुरस्मितगर्भाः ।
कामिनः स्म कुरुते करभोरूर्हारि शुष्करुदितं च सुखेऽपि ॥६९॥

अर्थ—हथेली के वहि भाग के समान जाँघोंवाली कोई सुन्दरी विलासी प्रियतम के मनोरथों का विरोध न करते हुए उसके हाथों को (नीवी बधन खोलने से) रोक रही थी, तथा सुमधुर मुस्कराहट के साथ उसे फटकार रही थी, और (अधरदशन करने पर) सुख की अनुभूति में भी ऊपर से दिखाने के लिए शुष्क रुदन कर रही थी।

वारणार्थपदगद्गदवाचामीर्ष्यया मुहुरपत्रपया च ।
कुर्वते स्म सुदृशामनुकूलं प्रातिकूलिकतयैव युवानः ॥ ७० ॥

अर्थ—ईर्ष्या और निर्लज्जता के साथ बार-बार गद्गद स्वर में "रहने दो, बस करो" इत्यादि निषेध वाचक शब्दों का प्रयोग करने वाली सुन्दरी के साथ प्रतिकूल व्यवहार करके ही विलासियों ने उनके अनुकूल आचरण किया।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि विलासियों का प्रतिकूल आचरण ही सुन्दरियों के नितान्त अनुकूल था। विरोधाभास अलकार।

अन्यकालपरिहार्यमजस्रं तद्द्वयेन विदधे द्वयमेव ।
धृष्टता रहसि भर्तृषु ताभिर्निर्दयत्वमितरैरबलासु ॥ ७१ ॥

अर्थ—सुरत-क्रीडा को छोड़कर दूसरे समय में सदा के लिए जो दो कार्य दम्पती के लिए त्याज्य थे, इस समय वे ही दो कार्य वे करने लगे। (वे दोनों कार्य यह थे—) एकान्त में अबलाएँ पतियों के साथ निर्लज्जता का व्यवहार करने लगीं और पति रमणियों के साथ निर्दयता का।

टिप्पणी—तुल्ययोगिता।

वाहुपीडनकचग्रहणाभ्यामाहतेन नखदन्तनिपातैः।
वोधितस्तनुशयस्तरुणीनामुन्मिमील विशदं विषमेषुः ॥ ७२ ॥

अर्थ—तरुणियों के अंगों में सोया हुआ कामदेव (पतियों के) वाहुपीडन, निर्दय आलिंगन, केशग्रहण, नखक्षत, दन्तदशन आदि व्यापारों से निधडक जाग कर उठ खड़ा हुआ।

टिप्पणी—किसी अत्यन्त सोये हुए को जगाने के लिए यही क्रियाएँ की जाती है। समासोक्ति अलकार।

कान्तया सपदि कोऽप्युपगूढः प्रौढपाणिरपनेतुमियेष।
संहतस्तनतिरस्कृतदृष्टिर्भ्रष्टमेव न दुकूलमपश्यत् ॥ ७३ ॥

अर्थ—कान्ता रमणी द्वारा तुरन्त ही आलिंगित कोई युवक अपने चचल हाथों से रमणी की साडी को अगों पर से हटाना चाहता था, जिससे कामिनी के अत्यन्त अविरल स्तनों से उसकी आँखें ढँक ली गयी थीं, अत पहले ही से खिसकी हुई साड़ी को वह नहीं देख सका।

टिप्पणी—पदार्थहेतुक काव्यलिंग तथा अतिशयोक्ति का सकर।

आहतं कुचतटेन तरुण्याः साधु सोढममुनेति पपात।
त्रुट्यतः प्रियतमोरसि हारात्पुष्पवृष्टिरिव मौक्तिकवृष्टिः॥ ७४ ॥

अर्थ—सुन्दरी के स्तनतट के आघातों को इस (वक्षस्थल) ने भली भाँति सहन कर लिया है—मानो इसी कारण से नायक के वक्षस्थल पर (रमणी के) टूटे हुए मुक्ताहार से पुष्पवृष्टि के समान मोतियों की वृष्टि हुई।

टिप्पणी—पराक्रमी पर पुष्पवृष्टि की जाती ही है। उत्प्रेक्षा अलकार।

सीत्कृतानि मणितं करुणोक्तिः स्निग्धमुक्तमलमर्थवचांसि ।
हासभूषणरवाश्च रमण्याः कामसूत्रपदतामुपजग्मुः ॥ ७५ ॥

अर्थ—तरुणियों के सीत्कार (दाँतों से काटने पर सी सी करने की आवाज) कण्ठरव (रमण के समय स्त्रियों के गले से निकली हुई विचित्र आवाज) करुण उक्ति (दया करो, छोड़ दो आदि वाक्य)' स्नेह भरे वाक्य (तुम मेरे हृदय हो, प्राण हो आदि वाक्य) निषेध-सूचक वाक्य (बस करो, छोड़ो आदि वाक्य) तथा हसी और आभूषणों की आवाज—ये सब मानों वात्स्यायन के कामशास्त्र के पदों को सार्थक-से कर रहे थे।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलकार ।

उद्धतैर्निभृतमेकमनेकैश्छेदवन्मधुरमाशमविरामैः ।
श्रूयते स्म मणितं कलकाञ्चीनूपुरध्वनिभिरक्षतमेव ॥७६॥

अर्थ—सुन्दरी रमणियों के सूक्ष्म, अकेले तथा रुक-रुक कर होने वाले रति के अवसर के कण्ठरव करधनी तथा नूपुर के उद्धत, एक ही साथ अनेक ध्वनियों से युक्त तथा लगातार होने वाले मधुर स्वरों से छिप नहीं रहे थे अर्थात् वे तब भी पृथक् ही सुनाई पड़ रहे थे।

टिप्पणी—अतद्गुण अलकार ।

ईदृशस्य भवतः कथमेतल्लाघवं मुहुरतीव रतेषु ।
क्षिप्तमायतमदर्शयदुर्व्यां काञ्चिदाम जघनस्य महत्त्वम् ॥ ७७ ॥

अर्थ—"हे जघन ! आप जैसे विशाल एवं महान् का रति के अवसर पर बारम्बार यह लाघव एवं उत्पतन कैसे हो रहा है" ऐसा कहते हुए मानों रति के अवसर पर धरती पर गिरी हुई रमणी की करधनी की लंबी लड़ें रमणी के जघनप्रदेश की विशालता दिखला रही थीं।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलकार ।

प्राप्यते स्म गतचित्रकचित्रैश्चित्रमार्द्रनखलक्ष्म कपोलैः ।
दधिरेऽध रभसच्युतपुष्पाः स्वेदबिन्दुकुसुमान्यलकान्ताः ॥७८॥

अर्थ—रति-क्रिया की धकमधुक्की में यद्यपि रमणी के कपोलों पर बने हुए चित्र आदि पुँछ गये थे, फिर भी उनमें नूतन नख-क्षत के चिह्न बन गये थे। और रति के वेग में केशराशि में अलंकृत पुष्प यद्यपि गिर गये थे फिर भी उन्होंने पसीने की बूँद-रूपी कुसुम धारण कर लिए थे।

टिप्पणी—रूपक अलकार।

यद्यदेव रुरुचे रुचिरेभ्यः सुभ्रुवो रहसि तत्तदकुर्वन्।
आनुकूलिकतया हि नराणामाक्षिपन्ति हृदयानि तरुण्यः ॥७९॥

अर्थ—नायकों को उस एकान्त में रतिक्रीडा के अवसर पर जो जो रुचा रमणियों ने वह सब किया। (क्यों न होता ऐसा—) अनुकूल चलकर ही तो तरुणियाँ तरुणों का हृदय अपनी ओर खींचती हैं।

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलकार।

प्राप्य मन्मथरसादतिभूमिं दुर्वहस्तनभराः सुरतस्य।
शश्रमुः श्रमजलार्द्रललाटश्लिष्टकेशमसितायतकेश्यः ॥८०॥

अर्थ—दुर्वह अर्थात् विशाल स्तनों के भार से युक्त, लंबी काली केशराशि से सुशोभित वे रमणियाँ सुरतक्रीडा की चरम सीमा को जब प्राप्त हुईं तब पसीने की बूँदों से भींगे हुए उनके ललाट पर उनकी केशराशि चिपक गयी तथा वे अत्यन्त श्रांत हो गयीं।

टिप्पणी—प्रेय अलकार।

[अब रति-क्रीडा की समाप्ति का वर्णन है—]

संगताभिरुचितैश्चलितापि प्रागमुच्यत चिरेण सखीव।
भूय एव समगंस्त रतान्ते ह्रीर्वधूभिरसहा विरहस्य ॥ ८१ ॥

अर्थ—परिचित प्रियतमों के साथ सभोग-क्रीडा में निरत रमणियों ने रतिक्रीडा के पूर्व चली गयी लज्जा को सखी की भाँति बहुत समय तक तो त्याग दिया था किन्तु रति के पश्चात् वही लज्जा मानों उनके विरह को सहने में असमर्थ-सी होकर (सखी की भाँति) पुनः आकर उनसे मिल गयी।

टिप्पणी—तात्पय यह है कि रति क्रीडा के अनन्तर रमणियाँ लज्जा से अभिभूत हो गयी। उपमा अलकार।

प्रेक्षणीयकमिव क्षणमासन् ह्रीविभङ्गुरविलोचनपाताः।
संभ्रमद्रुतगृहीतदुकूलच्छाद्यमानवपुषः सुरतान्ताः ॥ ८२॥

अर्थ—रतिक्रीडा के अनन्तर लज्जा से रमणियों के नेत्र सकुचित हो गये और वे घबराकर शीघ्रता के साथ अपनी साडी से अपना अग ढकने लगीं। इस प्रकार उस समय की अवस्था नाटक के दृश्य के समान हो गयी।

टिप्पणी—नाटक में दृश्य के अनन्तर जैसे यवनिका का पतन होता है वैसा ही रतिक्रीडा के अनन्तर का व्यापार भी होता है। उपमा अलकार।

अप्रभूतमतनीयसि तन्वी काञ्चिधाम्नि पिहितैकतरोरु।
क्षौममाकुलकरा विचकर्ष क्रान्तपल्लवमभीष्टतमेन ॥ ८३ ॥

अर्थ—प्रियतम द्वारा किसी कृशागी सुन्दरी का वस्त्र के अंचल के खींचने पर जब विशाल करधनी का स्थल अर्थात् ऊरु-प्रदेश उघाड हो गया तो वह अपने चचल हाथों से एक ऊरुभाग को ढकने वाले अपने दुकूल को खींचने लगी।

टिप्पणी—पदार्थहेतुक काव्यलिङ्ग अलकार।

मृष्टचन्दनविशेषकभक्तिभ्रष्टभूषणकदर्थितमाल्यः।
सापराधइव मण्डनमासीदात्मनैव सुदृशामुपभोगः ॥ ८४ ॥

अर्थ—चन्दनों के बनाये गये कपोल के तिलक तथा तमाल पत्र की रचना के छूट जाने, आभूषणों के नीचे गिर जाने एवं पुष्पमालाओं के मसल जाने के कारण अपराधी बनकर मानो सभोग (अपना अपराध मिटाने के लिए) उन सुन्दरियों का अलकार स्वयमेव बन गया था।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलकार।

योषितः पतितकाञ्चनकाञ्चौ मोहनातिरभसेन नितम्बे।
मेखलेव परितः स्म विचित्रा राजते नवनखक्षतलक्ष्मी ॥८५॥

अर्थ—रतिक्रीडा के वेग में सोने की करधनी रमणी के नितम्ब-प्रदेश से नीचे गिर गयी थी और अब उस पर चारों ओर से विचित्र रूप में नखक्षतों की शोभा ही मानो करधनी के समान विराज रही थी।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलंकार।

भातु नाम सुदृशां दशनाङ्कः पाटलो धवलगण्डतलेषु।
दन्तवाससि समानगुणश्रीः संमुखोऽपि परभागमवाप ॥८६॥

अर्थ—लालवर्ण के दन्त-क्षत सुन्दरियों के श्वेत कपोलतलों पर भिन्न रंग के होने के कारण पृथक् दिखायी पड रहे थे, किन्तु अधरों पर समान रंग की शोभा अर्थात् रक्तवर्ण के होने के कारण सम्मुखस्थ होने पर भी गुणों का उत्कर्ष प्राप्त कर रहे थे अथवा पृथक् नहीं दिखाई पड रहे थे।

टिप्पणी—विरोधाभास, तद्गुण, श्लेष तथा अतिशयोक्ति का संकर।

सुभ्रुवामधिपयोधरपीठं पीडनैस्त्रुटितवत्यपि पत्युः।
मुक्तमौक्तिकलघुर्गुणशेषा हारयष्टिरभवद्गुरुरेव ॥८७॥

अर्थ—सुन्दरियों के कुच-स्थलों पर पति के आलिंगन एवं मर्दन आदि से टूटी हुई मोतियों की माला यद्यपि हल्की हो गयी थी और उसका गुण मात्र (बीच का सूत्रमात्र) शेष था तथापि वह गौरवयुक्त अर्थात् श्लाघ्य बनी हुई थी।

टिप्पणी—विरोधाभास अलंकार।

विश्रमार्थमुपगूढमजस्रं यत्प्रियैः प्रथमरत्यवसाने।
योषितामुदितमन्मथमादौ तद्द्वितीयसुरतस्य बभूव ॥८८॥

अर्थ—प्रथम रति की समाप्ति पर परिश्रम को दूर करने के लिए प्रियतम ने सुन्दरियों का जो निरन्तर आलिंगन किया था वही अब कामदेव को उत्तेजित करने वाला उनका आलिंगन द्वितीय रतिक्रीडा का आरम्भ बन गया।

टिप्पणी—कार्यान्तर अलंकार।

आस्तृतेऽभिनवपल्लवपुष्पैरप्यनारतरताभिरताभ्यः ।
दीयते स्म शयितुं शयनीये न क्षणः क्षणदयापि वधूभ्यः ॥८९॥

अर्थ—निरन्तर रतिक्रीडा मे निरत रमणियों को, उत्सव सुख को देने वाली क्षणदा अर्थात् रात्रि ने भी, नूतन पल्लवों तथा पुष्पों से सुसज्जित शैय्या में क्षण मात्र के लिए भी नहीं सोने दिया।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि रमणियाँ रात्रि भर रतिक्रीडा म निरत रहीं। क्षणदा ने भी क्षण अर्थात् विश्राम नही लेने दिया। विरोधाभास अलकार।

योषितामतितरां नखलूनं गात्रमुज्ज्वलतया न खलूनम् ।
क्षोभमाशु हृदयं नयदूनां रागवृद्धिमकरोन्न यदूनाम् ॥९०॥

अर्थ—अत्यन्त नखक्षतों से व्याप्त उज्ज्वलता अर्थात् गोराई से युक्त रमणियों के सुन्दर शरीर यदुवंशियों के चित्त मे तुरन्त विकार पैदा करके उनके अनुराग की वृद्धि को तनिक भी कम नहीं कर रहे थे (प्रत्युत अधिकाधिक बढ़ाते ही जाते थे)।

टिप्पणी—यमक और काव्यलिंग अलकार।

इति मदमदनाभ्यां रागिणः स्पष्टरागा-
ननवरतरतश्रीसङ्गिनस्तानवेक्ष्य ।
अभजत परिवृत्तिं साथ पर्यस्तहस्ता
रजनिरवनतेन्दुर्लज्जयाधोमुखीव ॥९१॥

अर्थ—इस प्रकार मदिरा तथा कामदेव से स्पष्ट अनुराग वाले एवं निरन्तर रतिक्रीडा की सम्पत्ति के लम्पट अर्थात् रति में अति लीन विलासी युवकों एव विलासिनी रमणियों को देखकर मानो अपने हस्त (नक्षत्र विशेष नीचे चल पड़ा) को चला कर तथा लज्जा से चन्द्रमुख को नीचे का ओर झुकाकर (चन्द्रमा भी नीचे आ गया) रजनी परम निवृत्ति को प्राप्त हो गयी अर्थात् रात बीत गयी।

टिप्पणी—स्त्रियों का स्वभाव ही है कि वे सुरतक्रीडा में निमग्न किसी दम्पति को देखकर हाथों को हिलाती हुई लज्जा से अपना मुख नीचे कर लेती हैं और वहाँ से दूर हट जाती हैं। तात्पर्य यह है कि धीरे धीरे रात बीतने लगी, हस्तनक्षत्र आकाश में से नीचे आ गया और चन्द्रमा पश्चिम दिशा में लटक गया।

श्री माघ कवि कृत शिशुपालवध महाकाव्य में प्रदोष-वर्णन नामक दसवाँ अध्याय समाप्त ॥१०॥

पूर्वार्द्ध समाप्त

उत्तरार्द्ध

ग्यारहवाँ सर्ग

[प्रभात के आगमन की प्रस्तावना पूर्व सर्ग के अन्तिम श्लोक में कवि ने की है, अब इस सर्ग में प्रभात का वर्णन किया जा रहा है —]

श्रुतिसमधिकमुच्चैः पञ्चमं पीडयन्तः
सततमृषभहीनं भिन्नकीकृत्य षड्जम् ।
प्रणिजगदुरकाकुश्रावकस्निग्धकण्ठाः
परिणतिमिति रात्रेर्मागधा माधवाय ॥१॥

अर्थ—प्रातःकाल स्तुति पाठ करने वाले वन्दीजनों ने, जो दूर तक जाने वाली विकार रहित मधुर ध्वनि में गाने में निपुण थे, अधिक श्रुतियों से युक्त षड्ज् स्वर को बिना मिलाये हुए, पचम स्वर को छोड़कर तथा वीणावादन के साथ (अथवा सदैव) ऋषभ स्वर से विहीन आलाप में रात्रि के बीत जाने (एवं प्रभात के आगमन) का वर्णन भगवान् श्रीकृष्ण के लिए इस प्रकार किया।

टिप्पणी—महानुभावों को प्रातःकाल जगाने के लिए बन्दीजन उनके शिविर के समीप स्तुतिपाठ अथवा प्रभात के आगमन का वर्णन करते थे। इस श्लोक में कवि ने अपने विशिष्ट संगीत ज्ञान का परिचय दिया है। कवित्व की दृष्टि से इसका सौन्दर्य कुछ अधिक नहीं है। श्रुति कहते हैं स्वरों के आरम्भिक अवयव को। उसके सम्बन्ध में यह कहा गया है —

प्रथमश्रवणाच्छब्दः श्रूयते ह्रस्वमात्रिकः ।
सा श्रुतिः संपरिज्ञया स्वरावयवलक्षणा ॥

षड्ज, पञ्चम और मध्यम में चार चार श्रुतियाँ होती हैं, जैसा कि कहा गया है —

चतुश्चतुश्चतुश्चैव षड्जमध्यमपञ्चमा ।
द्वे द्वे निषादगान्धारौ, त्रीस्त्रीनृषभधैवतौ ॥

मयूर की वाणी षड्ज तथा कोकिल का कूजना पचम स्वर में होना है एव ऋषभ स्वर में साड हुँकडता है। सगीत शास्त्र के नियमो के अनुसार प्रातःकाल के समय इन तीनो स्वरो को निषिद्ध माना गया है। पचम के सम्बन्ध में तो भरत मुनि ने यहाँ तक कहा है —

प्रभाते सुतरां निन्द्य ऋषभ पञ्चमोऽपि च।
जनयेत् प्रधन ह्यक्षा पञ्चत्व पञ्चमोऽपि च॥
पञ्चमस्य विशेषोऽय कथित पूर्वसूरिभि।
प्रगे प्रगीतो जनयेत् दशनस्य विपर्ययम्॥

अर्थात् पचम तथा ऋषभ स्वर प्रातःकाल में वर्जित हैं। पचम स्वर के गान से मृत्यु भी हो सकती है। कुछ विद्वानो का मत है कि प्रातःकाल में पचम के गान से दाँत टेढ़े हो जाते हैं। तात्पर्य यह है कि बन्दीजनो ने ऋषभ, पचम तथा षड्ज स्वर को छोड कर मयूर आलाप में प्रातःकाल का इस प्रकार वर्णन किया। इस सर्ग में मालिनी छन्द है, जिसका लक्षण है —

ननमयययुतेय मालिनी भोगिलोकै।

छन्द में वृत्यनुप्रास अलकार है।

[बन्दीजनो ने किस प्रकार रात्रि के बीतने एव प्रभात के आगमन का वर्णन किया। कवि ने इसी का पूरे सर्ग में वर्णन किया है —]

रतिरभसविलासाभ्यासतान्तं न याव-
न्नयनयुगममीलत्तावदेवाहतोऽसौ।
रजनिविरतिशंसी कामिनीनां भविष्य-
द्विरहविहितनिद्राभङ्गमुच्चैर्मृदङ्ग:॥२॥

अर्थ—सुरत-क्रीडा की उत्सुकता से बारम्बार के विलास में लीन होने के कारण खिन्न कामियो के दोनो नेत्र अभी तक बन्द भी नहीं हो पाये थे कि तभी रजनी के बीतने की सूचना देने वाला मृदङ्ग कामियो की निद्रा को भावी विरह की चिन्ता से भंग करता हुआ उच्चस्वर में बज उठा।

टिप्पणी—समासहेतुक काव्यलिङ्ग अलकार।

स्फुटतरमुपरिष्टादल्पमूर्तेर्ध्रुवस्य
स्फुरति सुरमुनीनां मण्डलं व्यस्तमेतत् ।
शकटमिव महीयः शैशवे शार्ङ्गपाणे-
श्चपलचरणकाब्जप्रेरणोत्तुङ्गिताग्रम् ॥३॥

अर्थ—क्षीण काय अर्थात् कठिनाई से दिखाई पड़नेवाले ध्रुव नक्षत्र के ऊपर अत्यन्त स्पष्ट रूप से विस्तृत रूप में फैला हुआ यह सप्तर्षि-मण्डल भगवान् शार्ङ्गपाणि के (अर्थात् तुम्हारे) बचपन के छोटे-छोटे चरण-कमलों से ऊपर उठाये हुए विशाल शकटासुर के शरीर की भाँति चमक रहा है।

टिप्पणी—भगवान् श्रीकृष्ण ने बचपन में शकटासुर नामक राक्षस को मार कर उसके विशाल शरीर को अपने छोटे छोटे पैरों पर उठा लिया था। उपमा अलंकार।

प्रहरकमपनीय स्वं निदिद्रासतोच्चैः
प्रतिपदमुपहूतः केनचिज्जागृहीति ।
मुहुरविशदवर्णां निद्रया शून्यशून्यां
ददद्पि गिरमन्तर्बुध्यते नो मनुष्यः ॥४॥

अर्थ—अपने पहरे के समय को बिता कर सोने के इच्छुक किसी पहरेदार ने जब अपने जोड़ीदार को "उठो, जागो" ऐसा बारम्बार उच्च स्वर में पुकारा तब वह निद्रा के मारे अस्पष्ट स्वर में अट-सट बातें तो बीच-बीच में बोलता रहा किन्तु तब भी भीतर से (अन्तःकरण से) नहीं जाग सका।

टिप्पणी—स्वभावोक्ति अलंकार। इसमें विरोधाभास भी है।

विपुलतरनितम्बाभोगरुद्धे रमण्याः
शयितुमनधिगच्छञ्जीवितेशोऽवकाशम् ।
रतिपरिचयनश्यन्नैद्रतन्द्रः कथंचि-
द्गमयति शयनीये शर्वरीं किं करोतु ॥५॥

अर्थ—रमणी के नितम्ब प्रदेश के अतिविस्तार से सम्पूर्ण शैय्या के छेंक उठने के कारण उसका स्वामी, उस पर सोने का स्थान न पाकर बारम्बार भोग विलास के द्वारा अपनी निद्रा के आलस्य को दूर करता हुआ बड़े कष्ट से रात्रि बिता रहा था। इसके अतिरिक्त वह (बेचारा) कर ही क्या सकता था ?

टिप्पणी—काव्यलिंग और अतिशयोक्ति का संकर।

क्षणशयितविबुद्धाः कल्पयन्तः प्रयोगा-
नुदधिमहति राज्ये काव्यवद्दुर्विगाहे।
गहनमपररात्रप्राप्तबुद्धिप्रसादाः
कवय इव महीपाश्चिन्तयन्त्यर्थजातम् ॥६॥

अर्थ—क्षणभर तक शयन कर के फिर तुरन्त ही उठे हुए राजा लोग कवियों की भाँति रात के पिछले पहर में बुद्धि के अत्यन्त निर्मल हो जाने पर समुद्र के समान (एक ओर घोड़ों आदि से, दूसरी ओर रस भाव आदि से) गभीर एवं काव्य के समान कठिनाई से प्रवेश करने योग्य राज्य के सम्बन्ध मे साम, दाम आदि प्रयोगों का निर्वाचन कर (कवि पक्ष में, अर्थ, गुण और साधु शब्दों का निर्वाचन कर)' दुष्प्राप्य त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ और काम, (पक्ष मे, वाच्य, लक्ष्य और व्यंग, की चिन्ता कर रहे हैं।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार कवि लोग रात्रि के पिछले प्रहर में जागकर समुद्र के समान गंभीर तथा दुर्विगाह काव्य रचना की चिन्ता में लग जाते हैं और उत्तम अर्थ एवं उत्तम शब्द के प्रयोग पर विचार कर वाच्य, लक्ष्य, व्यंग्य इत्यादि गहन अर्थों की चिन्ता करते हैं, उसी प्रकार राजा लोग भी रजनी के पिछले प्रहर में जागकर राज्य की चिन्ता में लगकर साम दामादि उपायों पर विचार करते हुए धर्म, अर्थ एवं काम की चिन्ता कर रहे हैं। पूर्णोपमा अलंकार।

चिरतरशयनान्तादुत्थितं दानपङ्क-
प्लुतबहुलशरीरं शाययत्येष भूयः।
मृदुचलदपरान्तोदीरितान्दूनिनादं
गजपतिमधिरोहः पक्षकव्यत्ययेन ॥७॥

अर्थ—भूतल-रूपी शय्या से उठा हुआ जो महाकाय गजपति जल तथा कीचड़ से लथफथ हो रहा था, और धीरे-धीरे चलते हुए जिसके पिछले पैरों में बंधी जंजीर शब्द कर रही थी, उसे हाथीवान दूसरी करवट में सुला रहा था।

टिप्पणी—स्वभावोक्ति अलंकार।

द्रुततरकरदक्षाः क्षिप्तवैशाखशैले
दधति दधनि धीरानारवान्वारिणीव।
शशिनमिव सुरौघाः सारमुद्धर्तुमेते
कलशिमुदधिगुर्वीं वल्लवा लोडयन्ति ॥८॥

अर्थ—अत्यन्त चपल हाथोंवाले अहीर मक्खन निकालने के लिए पर्वत की भाँति विशाल मथानी को डालकर गंभीर शब्द करती हुई समुद्र के समान गभीर मटकी में स्थित दही को इस प्रकार मथ रहे हैं जैसे चपल हाथोंवाले देवताओं ने चन्द्रमा रूपी सार वस्तु को निकालने के लिए मन्दराचल पर्वत को मथानी बनाकर कलकल शब्द करते हुए समुद्र के जल को मथा था।

टिप्पणी—पूर्णोपमा अलंकार।

अनुनयमगृहीत्वा व्याजसुप्ता पराची
रुतमथ कृकवाकोस्तारमाकर्ण्य कल्ये।
कथमपि परिवृत्ता निद्रयान्धा किल स्त्री
मुकुलितनयनैवाश्लिष्यति प्राणनाथम् ॥९॥

अर्थ—प्रियतम की रति-प्रार्थना को अस्वीकार कर के छलपूर्वक दूसरी ओर मुंह कर के सोई हुई कोई सुन्दरी प्रभात के समय मुर्गे की तीव्र आवाज सुनकर अंग तोड़ने के बहाने से फिर पति के सम्मुख हो गयी है, और नींद से आँखे मूँद कर मानों बिना जाने ही अपने प्रियतम से आकर लिपट गयी है।

टिप्पणी—यह कलहान्तरिता नायिका थी।

गतमनुगतवीणैरेकतां वेणुनादैः
कलमविकलतालं गायकैर्बोधहेतोः।

असकृतनवगीतं गीतमाकर्णयन्तः
सुखमुकुलितनेत्रा यान्ति निद्रां नरेन्द्राः ॥१०॥

अर्थ—वीणा के साथ-साथ बजते हुए वेणु के स्वर में एकता को प्राप्त करनेवाले, सुन्दर एवं मधुर करताल की ध्वनि से युक्त, सोये हुए राजाओं को जगाने के लिए वैतालिकों द्वारा अनेक बार गाये हुए अश्रुतपूर्व अथवा अनिन्द्य गीतों को सुनते हुए राजा लोग आँखें मूँद कर सो रहे हैं।

टिप्पणी—वृत्यनुप्रास अलङ्कार।

परिशिथिलितकर्णग्रीवमामीलिताक्षः
क्षणमयमनुभूय स्वप्नमूर्ध्वज्ञुरेव।
रिरसयिषति भूयः शष्पमग्रे विकीर्णं
पटुतरचपलौष्ठः प्रस्फुरत्प्रोथमश्वः ॥११॥

अर्थ—यह अश्व अपने कानों और कन्धे को ढीला कर दोनों घुटनों को ऊँचा उठा—अर्थात् खडे-खडे ही दोनों आँखें बन्द कर क्षण मात्र के लिए तो सो गया था किन्तु फिर ग्रास लेने में समर्थ अपने दोनों ओठों को चलाकर नथुने को फड़काता हुआ आगे पडी हुई घास को फिर खाने की इच्छा कर रहा है।

टिप्पणी—घोडे बडे सवेर जग जाते हैं। उत्तम घोडों का यही लक्षण है कि वे कभी धरती पर नहीं बैठते, खडे-खडे ही सो जाते हैं और उनका सोना कोई देख पाता है कोई नहीं देख पाता। स्वभावोक्ति अलंकार।

उदयमुदितदीप्तिर्याति यः संगतौ मे
पतति न वरमिन्दुः सोऽपरामेष गत्वा।
स्मितरुचिरिव सद्यः साभ्यसूयं प्रभेति
स्फुरति विशदमेषा पूर्वकाष्ठाङ्गनायाः ॥१२॥

अर्थ—"जो चन्द्रमा मेरी सङ्गति में रह कर पूर्ण प्रकाशयुक्त होकर उदयाचल (अभ्युदय) को प्राप्त हुआ था, वही अब अपरा अर्थात् पश्चिम दिशा (परायी स्त्री) के साथ गमन करके पतित हो रहा है

अर्थात् नीचे गिर रहा है, यह उचित नहीं हुआ"—मानों इस प्रकार की ईर्ष्या करने वाली पूर्व दिशा रूपी नायिका के मन्द हास्य की कान्ति के समान उसकी प्रभा निर्मलता प्राप्त कर रही है।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि पूर्व दिशा में प्रभा का थोड़ा-थोड़ा उदय हो रहा है। जब कोई नायक किसी दूसरी रमणी के साथ समागम कर के अप्रतिष्ठा प्राप्त करता है तो उसकी प्रधान नायिका ईर्ष्या से हँसती ही है। उत्प्रेक्षा अलंकार।

चिररतिपरिखेदप्राप्तनिद्रासुखानां
चरममपि शयित्वा पूर्वमेव प्रबुद्धाः।
अपरिचलितगात्राः कुर्वते न प्रियाणा-
मशिथिलभुजचक्राश्लेषभेदं तरुण्यः ॥१३॥

अर्थ—बाद में शयन करने पर भी पति से पूर्व उठने वाली रमणियाँ अपने अंगों को बिल्कुल नहीं हिला-डुला रही हैं और बहुत देर तक रति-क्रीडा के परिश्रम से क्लान्त होने के कारण निद्रा-सुख में निमग्न प्रियतमों की गोद में पड़ी हुई अपने गाढ आलिंगन को तनिक भी नहीं ढीला कर रही हैं।

टिप्पणी—पतिव्रता स्त्रियों का यह धर्म ही है कि वे पति के सोने के पश्चात् सोती हैं और उनके उठने के पूर्व ही उठती हैं।

कृतधवलिमभेदैः कुङ्कुमेनेव किंचि-
न्मलयरुहरजोभिर्भूषयन्पश्चिमाशाम्।
हिमरुचिररुणिम्ना राजते रज्यमानै-
र्जरठकमलकन्दच्छेदगौरैर्मयूखैः ॥१४॥

अर्थ—चन्द्रमा अस्तकालिक लालिमा से लोहित वर्ण एवं कठोर पके हुए मृणाल अर्थात् कमल नाल के टुकड़ों की भाँति श्वेत रंग की अपनी किरणों से, कुंकुम के मिश्रण द्वारा जिसकी श्वेतता को कुछ दूर कर दिया गया है—ऐसी चन्दन की धूलि से (अपनी प्रेयसी) पश्चिम दिशा का शृंगार कर रहा है।

टिप्पणी—जिस प्रकार कोई विलासी कुंकुम मिश्रित चन्दन के पाउडर से अपनी प्रेयसी का श्रृंगार करता है, उसी प्रकार अपनी श्वेत-रक्तिम किरणों से चन्द्रमा भी पश्चिम दिशा का श्रृंगार कर रहा है। उपमा अलंकार।

दधदसकलमेकं खण्डितामानमद्भिः
श्रियमपरमपूर्णामुच्छ्वसद्भिः पलाशैः।
कलरवमुपगीते षट्पदौघेन धत्तः
कुमुदकमलषण्डे तुल्यरूपामवस्थाम् ॥१५॥

अर्थ—कुमुदों तथा कमलों के समूह इस समय एक समान शोभा धारण कर रहे हैं। इधर कुमुदसमूह मुकुलित होनेवाली अपनी पंखुड़ियों से अर्ध मुकुलित हो गये हैं, और इस प्रकार उनकी शोभा कुछ कम हो गयी है तथा उधर विकास को प्राप्त होने वाली पखुड़ियों से कमल अपनी अपूर्ण शोभा को प्राप्त कर रहे हैं।

टिप्पणी—काव्यलिंग अलकार।

मदरुचिमरुणेनोद्गच्छता लम्भितस्य
त्यजत इव चिराय स्थायिनीमाशु लज्जाम्।
वसनमिव मुखस्य स्रंसते संप्रतीदं
सितकरकरजालं वासवाशायुवत्याः ॥१६॥

अर्थ—इस समय चन्द्रमा का यह किरण जाल सूर्य के सारथी अरुण द्वारा मद रुचि अर्थात् लालिमा को प्राप्त करने के कारण अपनी चिर-स्थायिनी लज्जा को तुरन्त त्यागने वाली पूर्व दिशा-रूपी नायिका के मुख पर से मानों घूँघट की भाँति नीचे हट रहा है।

टिप्पणी—मदिरा के स्वाद को प्राप्त करने वाली रमणियों का मुख लाल हो जाता है, वे निर्लज्ज हो जाती हैं तथा घूँघट हटा देती हैं। निदर्शना तथा उत्प्रेक्षा का सकर।

अविरतरतलीलायासजातश्रमाणा-
मुपशममुपयान्तं निःसहेऽङ्गेऽङ्गनानाम्।

पुनरुपसि विविक्तैर्मातरिश्वावचूर्ण्य
ज्वलयति मदनाग्नि मालतीनां रजोभिः ॥१७॥

अर्थ—निरन्तर की गयी रति-क्रीडा के परिश्रम से शिथिलित रमणियों के असमर्थ अंगों में शान्ति को प्राप्त होने वाली कामाग्नि को प्रात काल के समय यह वायु पुनः निर्मल एव सूखे हुए मालती के पुष्पों के पराग से उद्दीप्त कर रहा है।

टिप्पणी—बुझती हुई अग्नि को चूर्ण डालकर उद्बुद्ध किया ही जाता है। तात्पर्य यह है कि प्रातःकाल के मालती के पुष्पो की सुगन्धि से युक्त वायु के स्पर्श से पुन काम की वासना उत्पन्न होने लगी।

अनिमिषमविरामा रागिणां सर्वरात्रं
नवनिधुवनलीलाः कौतुकेनातिवीक्ष्य।
इदमुदवसितानामस्फुटालोकसंप-
न्नयनमिव सनिद्रं घूर्णते दैपमर्चिः ॥१८॥

अर्थ—सूर्य के प्रकाश के कारण मन्द ज्योति से युक्त यह सामने की दीपशिखा रात भर निरन्तर विलासी युवकों एव विलासिनियों की नयी-नयी रति क्रीडा को उत्सुकतापूर्वक निर्निमेष भाव से खूब देखने के कारण मानों निद्रा के वश में हुए इन घरों के नेत्र के समान घूम रही है।

टिप्पणी—रात भर जागने वाले की आख चडवाती ही है। उत्प्रेक्षा अलकार।

निकचकमलगन्धैरन्धयन्भृङ्गमालाः
सुरभितमकरन्दं मन्दमावाति वातः।
प्रमदमदनमाद्यद्यौवनोद्दामरामा-
रमणरभसखेदस्वेदविच्छेददक्षः ॥१९॥

अर्थ—हर्ष और काम वासना से उन्मत्त एवं यौवन से गर्वित रमणियों के सुरत-व्यापार के वेग में होने वाले परिश्रम से उत्पन्न पसीन की बूदों को दूर करने में निपुण यह प्रभातकालिक वायु

विकसित कमलों की सुगन्धि से भ्रमरवृन्द को अन्धा बनाता हुआ एवं मकरन्दों को सुगन्धि युक्त बनाता हुआ, धीरे-धीरे बह रहा है।

टिप्पणी—इससे वायु की शीतलता, मन्दता एवं सुगन्धियुक्तता सिद्ध होती है। वृत्त्यनुप्रास अलंकार।

लुलितनयनताराः क्षामवक्त्रेन्दुबिम्बा
रजनय इव निद्राक्लान्तनीलोत्पलाक्ष्यः।
तिमिरमिव दधानाः स्रंसिनः केशपाशा-
नवनिपतिगृहेभ्यो यान्त्यमूर्वारवध्वः ॥२०॥

अर्थ—निद्रा के कारण जिनकी आंख की कनीनिका कलुषित हो गयी है, (रात्रि के पक्ष मे, अप्रसन्न नक्षत्रों से युक्त) रति-क्रीडा के कारण चन्द्र बिम्ब के समान जिनका मुख मलिन हो गया है (पक्ष में, प्रभात हो जाने के कारण मुख के समान चन्द्रबिम्ब मलिन हो गया है) उनींदी होने के कारण नील कमल के समान जिनकी आंखें क्लान्त हो गयी हैं (पक्ष में, आंख के समान नील कमल मुकुलित हो गये हैं) ऐसी ये वेश्याएं अन्धकार के समान काली अपनी केशराशि को (पक्ष में, केशराशि के समान काले अन्धकार को) रात्रि के समान, धारण किये हुए राजाओं के शिविरों से बाहर निकल रही हैं।

टिप्पणी—श्लेष अलंकार।

शिशिरकिरणकान्तं वासरान्तेऽभिसार्य
श्वसनसुरभिगन्धिः सांप्रतं सत्वरेव।
व्रजति रजनिरेषा तन्मयूखाङ्गरागैः
परिमलितमनिन्द्यैरम्बरान्तं वहन्ती ॥२१॥

अर्थ—यह रजनी दिवस की समाप्ति पर चन्द्रमा-रूपी कान्त के साथ अभिसार करके सम्प्रति मनोहर सुगन्धि युक्त निःश्वास से वासित किरण-रूपी अंगराग से म्लान अपने वस्त्रों को संभालती हुई आकाश की ओर शीघ्रता के साथ चली जा रही है।

टिप्पणी—जो अभिसारिका रात्रि के समय अपने प्रियतम के साथ अभिसरण करती है, वह प्रात:काल होने के पूर्व ही अपने अंगराग से व्याप्त एवं सुगन्धित वस्त्रों को सँभालती हुई शीघ्र ही अपने घर की ओर वापस भागती जाती है। एकांगो रूपक।

नवकुमुदवनश्रीहासकेलिप्रसङ्गा-
दधिकरुचिरशेषामप्युषां जागरित्वा।
अयमपरदिशोऽङ्के मुञ्चति स्रस्तहस्तः
शिशयिषुरिव पाण्डुं म्लानमात्मानमिन्दुः ॥२२॥

अर्थ—अधिक कान्ति युक्त यह चन्द्रमा नूतन कुमुद वन की कान्ति की हास्य-केलि में आसक्त होने के कारण सम्पूर्ण रात्रि जागकर, मानो अब सोने की इच्छा से अपने हस्त (हस्त नक्षत्र और किरणों) को ढीला कर पश्चिम दिशा की गोद में अपने पाण्डुवर्ण के क्लान्त शरीर को गिरा रहा है।

टिप्पणी—चतुर नायक रात भर अपनी प्रेयसी रमणी के साथ विहार कर जब थक जाते हैं तो इसी प्रकार दूसरी के अंक में जाकर सो जाते हैं। उत्प्रेक्षा और समासोक्ति का संकर।

सरभसपरिरम्भारम्भसंरम्भभाजा
यदधिनिशमपास्तं वल्लभेनाङ्गनायाः।
वसनमपि निशान्ते नेष्यते तत्प्रदातु
रथचरणविशालश्रोणिलोलेक्षणेन ॥२३॥

अर्थ—रात्रि के समय शीघ्रतापूर्वक आलिंगन करने के प्रबल इच्छुक प्रियतम ने रमणी का जो वस्त्र छीन लिया था, उसे प्रातःकाल हो जाने पर भी, रथ के चक्र के समान विशाल सुन्दरी के नितम्बस्थल को देखने के लोभ से वह नहीं लौटा रहा है।

टिप्पणी—काव्यलिंग अलंकार।

सपदि कुमुदिनीभिर्मीलितं हा क्षपापि
क्षयमगमदपेतास्तारकास्ताः समस्ताः।

इति दयितकलत्रश्चिन्तयन्नङ्गमिन्दु-
र्वहति कृशमशेषं भ्रष्टशोभं शुचेव ॥२४॥

अर्थ—हाय! शीघ्र ही ये कुमुदिनियाँ संकुचित हो गयीं अर्थात् मूर्च्छित हो गयीं, रात्रि भी क्षीण हो गयी और सब तारायें भी विलीन हो गयीं। मानों इस प्रकार के शोक से स्त्रियों का प्यारा चन्द्रमा अत्यन्त दुर्बल और शोभा विहीन शरीर वाला बन गया है।

टिप्पणी—पत्नियों को प्राणों के समान प्यार करने वाला पति उनके निधन पर शोकाभिभूत होकर अशोभन एवं दुर्बल हो ही जाता है। उत्प्रेक्षा अलंकार।

व्रजति विषयमक्ष्णामंशुमाली न याव-
त्तिमिरमखिलमस्तं तावदेवारुणेन।
परपरिभवि तेजस्तन्वतामाशु कर्तुं
प्रभवति हि विपक्षोच्छेदमग्रेसरोऽपि ॥२५॥

अर्थ—जब तक अंशुमाली भास्कर आँखों के सम्मुख नहीं आ जाता तब तक सारथी अरुण समस्त अन्धकार को दूर कर देता है। (यह ठीक ही है, क्योंकि) शत्रुओं को पराजित करनेवाले तेजस्वी लोगों के अग्र-गामी (सेवक) भी शत्रुओं का शीघ्र ही विनाश करने में समर्थ होते है।

टिप्पणी—कालिदास कृत रघुवंश के पंचमसर्ग का ७१वां श्लोक ठीक इसी आशय का है। अर्थान्तरन्यास अलंकार।

विगततिमिरपङ्कं पश्यति व्योम याव-
द्धुवति विरहखिन्नः पक्षती यावदेव।
रथचरणसमाह्वस्तावदौत्सुक्यनुन्ना
सरिदपरतटान्तादागता चक्रवाकी ॥२६॥

अर्थ—जब तक चक्रवाक प्रिया के विरह-दुःख से दुःखित होकर आकाश को अन्धकार शून्य देख उड़ने के लिए अपने पंखों को फड़फड़ाता है तब तक नदी के किनारे से उत्सुकता से भरी हुई चक्र-वाकी उसके समीप आकर पहुँच जाती है।

टिप्पणी—कवि प्रसिद्धि के अनुसार चक्रवाक दम्पती रात्रि में वियुक्त होकर दो के दो तटों पर रहते हैं और प्रातः होते ही एक दूसरे से मिलने के लिए बेहद्र हो जाते हैं। ऊर्जस्वी अलंकार।

मुदितयुवमनस्कास्तुल्यमेव प्रदोषे
रुचमदधुरुभय्यः कल्पिता भूषिताश्च।
परिमलरुचिराभिर्न्यक्कृतास्तु प्रभाते
युवतिभिरुपभोगान्नीरुचः पुष्पमालाः ॥२७॥

अर्थ—रात्रि के समय रमणियाँ और पुष्पमालाएँ—ये दोनों ही तरुणों के चित्तों को प्रसन्न करनेवाली तथा सभोग के लिए सुसज्जित होकर एक समान शोभा धारण कर रहीं थीं, कि तु प्रभात के समय (रतिक्रीडा की धक्कामुकी मे) कान्तिहीन मालाएं, सभोग की सुगन्धि से मनोहर रमणियों द्वारा तिरस्कृत कर दी गयी हैं।

टिप्पणी—व्यतिरेक अलकार।

विलुलितकमलौघः कीर्णवल्लीवितानः
प्रतिवनमवधूताशेषशाखिप्रसूनः।
क्वचिदयमनवस्थः स्थास्नुतामेति वायु-
र्वधूकुसुमविमर्दोद्गन्धिवेश्मान्तरेषु ॥२८॥

अर्थ—प्रत्येक वन में कमलों के समूहों को हिलाने-डुलानेवाली लताओं के वितानों को अस्त व्यस्त करनेवाली तथा सम्पूर्ण पुष्प वाले वृक्षों को कँपानेवाली वायु कहीं पर भी न रुककर रमणियों और पुष्पों के सघर्षण से उत्पन्न उत्कट सुगन्ध से भरे हुए इन भीतरी कक्षों में आकर स्थिर हो गयी है।

टिप्पणी—अतिशयोक्ति अलकार।

नखपदवलिनाभीसंधिभागेषु लक्ष्यः
क्षतिषु च दशनानामङ्गनायाः सशेषः।
अपि रहसि कृताना वाग्विहीनोऽपि जातः
सुरतविलसिताना वर्णको वर्णकोऽसौ ॥२९॥

अर्थ—नख द्वारा किये गये क्षतों पर, त्रिवलियों में, नाभि पर, शरीर के अन्यान्य संधि भागों पर तथा दांतों के क्षतों पर कुछ कुछ लगे रहने के कारण दिखाई पड़नेवाला रमणियों का यह अंगराग यद्यपि वाणी विहीन है, तथापि एकान्त में की गयी रतिक्रीडाओं को प्रकट कर रहा है।

टिप्पणी—विरोधाभास अलंकार।

प्रकटमलिनलक्ष्मा मृष्टपत्रावलीकै-
रधिगतरतिशोभैः प्रत्युषः प्रोषितश्रीः।
उपहसित इवासौ चन्द्रमाः कामिनीनां
परिणतशरकाण्डापाण्डुभिर्गण्डभागैः ॥३०॥

अर्थ—चिह्नित पत्रावली के धुल जाने पर भी सम्भोग की शोभा से युक्त एवं पके हुए सरकण्डे के समान विशेष शुभ्र कांति धारण करनेवाले कामिनियों के कपोल-स्थल मानो प्रातःकाल के समय शोभा-विहीन होने के कारण जिसका कलंक स्पष्ट दिखाई पड़ रहा है—ऐसे चन्द्रमा का उपहास सा कर रहे हैं।

टिप्पणी—निष्कलंक लोग कलंकवालों का उपहास करते ही हैं। उत्प्रेक्षा अलंकार।

[आगे के पांच श्लोकों में कोई खण्डिता नायिका रातभर बाहर रह कर सवेरे आनेवाले अपराधी नायक को फटकार बता रही है—]

सकलमपि निकामं कामलोलान्यनारी-
रतिरभसविमर्दैर्भिन्नवत्यङ्गरागे।
इदमतिमहदेवाश्चर्यमाश्चर्यधाम्न-
स्तव खलु मुखरागो यन्न भेदं प्रयातः ॥३१॥

प्रकटतरमिमं मा द्राक्षुरन्या रमण्यः
स्फुटमिति सविशङ्कं कान्तया तुल्यवर्णः।

चरणतलसरोजाक्रान्तिसंक्रान्तयासौ

वपुषि नखविलेखो लाक्षया रचितस्ते ॥३२॥

तदवितथमवादीर्यन्मम त्वं प्रियेति

प्रियजनपरिभुक्तं यद्दुकूलं दधानः ।

मदधिवसतिमागाः कामिनां मण्डनश्री-

र्व्रजति हि सफलत्वं वल्लभालोकनेन ॥३३॥

नवनखपदमङ्गं गोपयस्यंशुकेन

स्थगयसि पुनरोष्ठं पाणिना दन्तदष्टम् ।

प्रतिदिशमपरस्त्रीसङ्गशंसी विसर्प-

न्नवपरिमलगन्धः केन शक्यो वरीतुम् ॥३४॥

इति कृतवचनायाः कश्चिदभ्येत्य बिभ्य-

द्गलितनयनवारेर्याति पादावनामम् ।

करुणमपि समर्थं मानिनां मानभेदे

रुदितमुदितमस्त्रं योषितां विग्रहेषु ॥३५॥

अर्थ—"काम के वेग से चचल सपत्नी के साथ सभोग करने के सघर्ष से तुम्हारे शरीर में लगा हुआ अगराग सम्पूर्णतया छूट गया है, किन्तु आश्चर्य के निधान तुम्हारे मुख का रग जो नहीं दूर हुआ—यह महान् आश्चर्य की बात है। अत्यन्त स्पष्ट रूप से दिखाई पडने वाले इन नखक्षतों को हमारी दूसरी सपत्निया, साफ साफ न देखें —ऐसा सोच कर आशका के साथ तुम्हारी उस प्रियतमा ने, इस तुम्हारे शरीर मे अपने चरण-कमल के आघात द्वारा जो लाख का रग लगा दिया है वही समानरग वाले तुम्हारे इन नखक्षतों को छिपा रहा है। तुम जो यह कहा करते हो कि 'तुम मेरी प्रिया हो'' यह बात झूठ नहीं है, क्योंकि तुम अपनी उस प्रियतमा द्वारा पहने गये वस्त्र को ही पहन कर जो मेरे निवास पर आये हो—(उसी से यह सिद्ध होता है। क्योंकि) कामी पुरुषों के अलकारों की शोभा प्रिया के दर्शन से ही सफल होती है। (व्यग म

वह कह रही है कि यदि मैं तुम्हारी प्रिया न होती तो तुम अपने अलंकार को मुझे क्यों दिखाते? मेरा ऐसा सम्मान क्यों करते अर्थात् यह मेरे दिल के जलाने की घटना मेरे सामने क्यों उपस्थित होती?) तुम अपने नूतन नखक्षतों वाले अंगों को वस्त्र में छिपा रहे हो, दन्तक्षत वाले ओष्ठों को वारवार हाथ से ढक रहे हो; किन्तु प्रत्येक दिशा में फैलती हुई पराई स्त्री के समागम की सूचना देने वाली इस नूतन विमर्द सुगन्ध (रति की गन्ध) को भला तुम कैसे छिपा सकोगे?"—पति से इस प्रकार की तिरस्कार पूर्ण बातें कर के जब कोई प्रेयसी रोने लगी तब उसका नायक डरते-डरते उसके समीप आकर उसके पैरों पर गिरकर उसे प्रसन्न करने की चेष्टा करने लगा। (ठीक ही है) प्रणयकलह में सुन्दरी का करुण रुदन ही अहकारी नायक के अहकार को दूर करने में समर्थ अस्त्र के समान होता है।

टिप्पणी—३१वें श्लोक में विरोधाभास, ३२वें में सामान्य, ३३वें में अर्थान्तरन्यास, ३४वें में काव्यलिंग तथा ३५ वें में भी अर्थान्तरन्यास अलकार हैं। यह खण्डिता नायिका थी।

मदमदनविकासस्पष्टधाष्टर्योदयानां
रतिकलहविकीर्णैर्भूषणैरर्चितेषु।
विदधति न गृहेषूत्फुल्लपुष्पोपहारं
विफलविनययत्नाः कामिनीनां वयस्याः॥ ३६॥

अर्थ—मद और काम-वासना के विकास के कारण उत्पन्न धृष्टता से युक्त कामिनियों के रति-रूपी कलह में इधर-उधर बिखरे हुए आभूषणों से सुशोभित घरों में सखियाँ अपने अधिकार के यत्नों में विफल होकर उनकी पुष्पों से पूजा नहीं कर रही हैं।

टिप्पणी—उदात्त अलङ्कार।

करजदशनचिह्नं नैशमङ्गेऽन्यनारी-
जनितमिति सरोषामीर्ष्यया शङ्कमानाम्।
स्मरसि न खलु दत्तं मत्तयैतत्त्वयैव
स्त्रियमनुनयतीत्थं व्रीडमानां विलासी॥ ३७॥

अर्थ—किसी युवक के अंगों में विद्यमान रात्रि के नखक्षतों एवं दन्तक्षतों को सपत्नी द्वारा किया गया समझ कर जब उसकी वधू क्रोध युक्त हो गयी तब—"मद की मस्ती में आकर तुम्हीं ने ये नखक्षत और दन्तक्षत किये थे, क्या तुम्हें अब स्मरण नहीं है"—इस प्रकार की बातों से उसके विलासी नायक ने उसे लज्जित करके मना लिया।

कृतगुरुतरहारच्छेदमालिङ्ग्य पत्यौ
परिशिथिलितगात्रे गन्तुमापृच्छमाने ।
विगलितनवमुक्तास्थूलबाष्पाम्बुबिन्दु-
स्तनयुगमबलायास्तत्क्षणं रोदितीव ॥ ३८ ॥

अर्थ—नायक ने नायिका का ऐसा गाढ आलिंगन किया कि नायिका का विशाल मुक्ताहार टूट गया। इस प्रकार का आलिंगन कर जब नायक शिथिलित अंगों वाला होकर प्रियतमा से अपने (बाहर) जाने के लिए पूछा तब उसी क्षण सुन्दरी के स्तन-युगल मानों टूटे हुए हार के नूतन मुक्ता-रूपी बड़े-बड़े आँसू चुवाते हुए रोने-से लगे।

टिप्पणी—रूपक और उत्प्रेक्षा का संकर।

बहु जगद पुरस्तात्तस्य मत्ता किलाहं
चकर च किल चाटु प्रौढयोषिद्वदस्य ।
विदितमिति सखीभ्यो रात्रिवृत्तं विचिन्त्य
व्यपगतमदयाह्नि व्रीडितं मुग्धवध्वा ॥ ३९ ॥

अर्थ—दिन में जब मदिरा का नशा उतर गया और उसकी सखियों ने उसे बतलाया तो नववधू, जो अभी मुग्धा थी, अपने रात्रि के वृत्तान्त को सोचकर बहुत लज्जित हो गयी कि अरे! मैंने रात में मतवाली होकर प्रियतम के सामने बहुत-सी अट-पट बातें की हैं तथा बड़ी आयु की स्त्रियों के समान उसकी बड़ी चाटुकारी भी की है।

टिप्पणी—श्लेष अलंकार।

अरुणजलजराजीमुग्धहस्ताग्रपादा
बहुलमधुपमालाकज्जलेन्दीवराची ।
अनुपतति विरावैः पत्रिणां व्याहरन्ती
रजनिमचिरजाता पूर्वसंध्या सुतेव ॥ ४० ॥

अर्थ--लाल कमलों की पंक्ति-रूपी सुन्दर हथेलियों एवं पदतलों से युक्त, अनेक भ्रमर पंक्ति-रूपी कज्जल से सुशोभित, नीले कमल के समान सुन्दर नेत्रोंवाली तथा पक्षियों के कलरव मे बातें करती हुई यह प्रभातकाल की सन्ध्या थोड़े दिनों की कन्या की भाँति अपनी माता रजनी के पीछे-पीछे दौड़ने लगी है।

टिप्पणी—उपमा अलंकार ।

प्रतिशरणमशीर्णज्योतिरग्न्याहितानां
विधिविहितविरिब्धैः सामिधेनीरधीत्य ।
कृतगुरुदुरितौघध्वंसमध्वर्युवर्यै-
र्हुतमयमुपलीढे साधु सांनाय्यमग्निः ॥ ४१॥

अर्थ—अग्नि का आधान करने वाले अग्निहोत्रियों के प्रत्येक घर मे प्रचण्ड ज्वाला के साथ अग्नि जलने लगी है। उसमें श्रेष्ठ पुरोहित ब्राह्मण लोग शास्त्रानुमोदित उदात्त, अनुदात्त, स्वरित स्वरों के उच्चारण के साथ गंभीर पापों के नाश करने वाले, समिधा छोड़ने के मंत्रों का पाठ करके सम्यक् प्रकार से हवि डालने लगे हैं और अग्नि की लपटें उसका आस्वादन करने लगी हैं।

टिप्पणी—वृत्त्यनुप्रास अलंकार ।

अकृतनपनिर्धानामास्यमुद्रश्मिदन्तं
मुहुरपिहितमोष्ठैर्वर्चर्गलस्यमन्त्रैः ।
अनुकृतिमनुवेलं घट्टितोद्धट्टितस्य
व्रजति नियमभाजां मुग्धमुक्तापुटस्य ॥ ४२ ॥

अर्थ--नियमानुसार मन्त्रों का जाप करने वाले तपस्वी लोग जब ओष्ठ्य अक्षरों का उच्चारण करते हैं तब उनके मुख का भीतरी भाग बार बार खुलता और बन्द हो जाता है, और जब अन्य अक्षरों का उच्चारण करते हैं तब मुख के भीतर का भाग खुल जाता है, और उनके दाँतों की स्वच्छ किरणें चारों ओर फैल जाती हैं। इस प्रकार उनका मुख बार-बार ठीक उसी तरह खुलता और बन्द होता है जिस तरह सीपी का मुँह खुलता और बन्द होता है।

टिप्पणी—उपमा अलंकार।

नवकनकपिशङ्गं वासराणां विधातुः
ककुभि कुलिशपाणेर्भाति भासां वितानम्।
जनितभुवनदाहारम्भमम्भांसि दग्ध्वा
ज्वलितमिव महाब्धेरूर्ध्वमौर्वानलार्चिः ॥ ४३ ॥

अर्थ—वज्रपाणि इन्द्र की दिशा पूर्व में नूतन सुवर्ण के समान पीत वर्ण की दिनकर सूर्य की किरणों का जाल इस प्रकार सुशोभित हो रहा है मानो महासमुद्र की समस्त जलराशि को जला कर अब जगत् को जलाने की इच्छा से ऊपर फैली हुई बडवानल की ज्वाला जल रही हो।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलंकार।

विततपृथुवरत्रातुल्यरूपैर्मयूखैः
कलश इव गरीयान्दिग्भिराकृष्यमाणः।
कृतचपलविहङ्गालापकोलाहलाभि-
र्जलनिधिजलमध्यादेष उत्तार्यतेऽर्कः ॥ ४४ ॥

अर्थ—चारों ओर फैली हुई मोटी रस्सी के समान किरणों से ऊपर नीचे जाने वाले विशाल घट के समान यह सूर्य, दिशा रूपी रमणियों द्वारा, चचल पक्षियों के कलरव रूपी कोलाहल के साथ मानो समुद्र के जल के भीतर से बाहर निकाला जा रहा है।

टिप्पणी—कई स्त्रियाँ जब बड़े घट को कूए से निकालती हैं तो उस समय मोटी रस्सी लगाती हैं तथा शोर मचाती हैं। यहाँ सूर्य ही वह महान् घट है, दिशाएं रमणियाँ हैं। प्रातःकाल की लंबी किरणें मोटी रस्सियाँ हैं, चचल पक्षियों का कलरव कोलाहल है और पूर्व का क्षितिज उदय समुद्र का जल है। रूपक और उत्प्रेक्षा का संकर।

पयसि सलिलराशेर्नक्तमन्तर्निमग्नः
स्फुटमनिशमतापि ज्वालया वाडवाग्नेः।
यदयमिदमिदानीमङ्गमुद्यन्दधाति
ज्वलितखदिरकाष्ठाङ्गारगौरं विवस्वान् ॥४५॥

अर्थ—यह प्रभातकालिक सूर्य रात्रि के समय समुद्र के जल के भीतर डूब कर निश्चय ही वडवानल की ज्वाला से निरन्तर दग्ध हुआ है, क्योंकि इस समय उदय होते ही यह खदिर के अंगार की भाँति अत्यन्त लाल रंग का शरीर धारण किये हुए है।

अतुहिनरुचिनासौ केवलं नोदयाद्रिः
क्षणमुपरिगतेन क्ष्माभृतः सर्व एव।
नवकरनिकरेण स्पष्टबन्धूकसून-
स्तबकरचितमेते शेखरं बिभ्रतीव ॥ ४६ ॥

अर्थ—क्षण काल तक ऊपर स्थित होने वाले सूर्य से केवल यह उदयाचल ही बन्धूक के पुष्पों से नहीं सुशोभित हो रहा है किन्तु ये सभी पर्वत उसकी नूतन किरणों के समूहों के पतन से मानो खिले हुए बन्धूक के पुष्प के स्तबकों से सुशोभित शेखर अर्थात् केशों को सजाने की माला धारण किये हुए के समान हैं।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलंकार।

उदरशिपरिगूढ़न्याङ्गणेष्वेप रिङ्गन्
सकमलमुखहासं वीक्षितः पद्मिनीभिः।
विततमृदुकराग्रः शब्दयन्त्या वयोभिः
परिपतति दिवोऽङ्कं हेलया बालसूर्यः ॥४७॥

अर्थ—यह उदयकालिक बालसूर्य उदयाचल के विस्तृत शिखरों के आँगन में घूमता हुआ, पद्मिनियों द्वारा कमल-रूपी मुख के हास्य के साथ देखा जाता हुआ, मानों पक्षियों के कलरव में बुलाती हुई अपनी माता (आकाश) की गोद में, अपने कोमल करों के अग्र भाग को फैलाता हुआ लीला पूर्वक हँसते-डोलते चला जा रहा है।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि प्रभात का सूर्य धीरे धीरे आकाश में ऊपर चढ़ रहा है। श्लेषमूलक अतिशयोक्ति से अनुप्राणित रूपक अलंकार। रूपक का बहुत सुन्दर उदाहरण है। बालक भी जब इसी प्रकार आँगन में खेलता है तो बहुत-सी सुन्दरियाँ उसे देखती हैं, और उसकी माँ 'आ जाओ बेटा, इधर आओ' ऐसा कहकर अपनी गोद में उसे बुलाती है और वह सुन्दर बालक अपने कोमल हाथों को आगे बढ़ाता हुआ हँसते-खेलते अपनी माता की गोद में आ विराजता है।

क्षणमयमुपविष्टः क्ष्मातलन्यस्तपादः
प्रणतिपरमवेक्ष्य प्रीतमह्नाय लोकम्।
भुवनतलमशेषं प्रत्यवेक्षिष्यमाणः
क्षितिधरतटपीठादुत्थितः सप्तसप्तिः ॥ ४८ ॥

अर्थ—यह सूर्य क्षण भर के लिए (उदयाचल-रूपी सिंहासन पर) आसीन होकर धरती तल पर अपने चरणों को रख रहा है, और फिर प्रणाम करते हुए सन्तुष्ट लोगों को देखकर तुरन्त ही समग्र भूतल को देखते हुए उदयाचल के तट-रूपी सिंहासन से (अथवा सिंहासन के समान उदयाचल के तट-प्रान्त से) उठकर खड़ा हो गया है।

टिप्पणी—जिस प्रकार कोई महाराज सिंहासन पर बैठकर थोड़ी देर तक प्रणत जनों का आदर देकर तुरन्त ही अपने सम्पूर्ण राज्य को देखने के लिए चल पड़ता है उसी प्रकार सूर्य ने भी पहले धरती पर अपने पैर रखे (किरणें फैलायीं) और फिर प्रणत लोगों को सन्तुष्ट कर समग्र धरातल को देखने की इच्छा से उदयाचल के सिंहासन से उत्थान कर दिया। यह समासोक्ति अलंकार का सुन्दर उदाहरण है।

परिणतमदिराभं भास्करेणांशुबाणै-
स्तिमिरकरिघटायाः सर्वदिक्षु क्षतायाः।

रुधिरमिव वहन्त्यो भान्ति बालातपेन
छुरितमुभयरोधोवारितं वारि नद्यः ॥ ४९ ॥

अर्थ—नदियाँ प्रात काल की धूप से मिश्रित होने के कारण पुरानी मदिरा के समान लाल वर्ण के अपने दोनों तटों के बीच में अवरुद्ध अपने जल को मानो सभी दिशाओं मे सूर्य द्वारा किरण-रूपी बाणों से आहत अन्धकार रूपी हाथियों के रक्त की भांति बहाती हुई शोभा दे रही हैं।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा और रूपक।

दधति परिपतन्त्यो जालवातायनेभ्य-
स्तरुणतपनभासो मन्दिराभ्यन्तरेषु।
प्रणयिषु वनिताना प्रातरिच्छत्सु गन्तुं
कुपितमदनमुक्तोचतनाराचलीलाम् ॥ ५० ॥

अर्थ—झरोखों की जालियों से होकर कमरों के भीतर प्रवेश करने वाली बाल सूर्य की किरण, प्रात काल बाहर जाने के इच्छुक रमणियों के प्रियतमों के ऊपर, क्रुद्ध कामदेव द्वारा फेंके गये, एव तेज से जाज्वल्यमान बाण की शोभा धारण कर रही है।

टिप्पणी—निदर्शना अलकार।

अधिरजनि वधूभिः पीतमैरेयरिक्तं
कनकचषकमेतद्रोचनालोहितेन।
उदयदहिमरोचिर्ज्योतिषाक्रान्तमन्त
र्मधुन इव तथैवापूर्णमद्यापि भाति ॥५१ ॥

अर्थ—रात्रि के समय रमणियों द्वारा मदिरा के पी लिए जाने के कारण खाली हुआ यह सुवर्ण का प्याला (मदिरा पात्र) भीतर से गोरोचन के समान लाल वर्ण की उदयकालीन सूर्य की किरणों के पड़ने के कारण मानो अब भी उसी प्रकार मदिरा से पूर्ण की भांति, दिखाई पड़ रहा है।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा और भ्रान्तिमान का सकर।

सितरुचि शयनीये नक्तमेकान्तमुक्तं
दिनकरकरसङ्गव्यक्तकौसुम्भकान्ति ।
निजमिति रतिबन्धोर्जानतीमुत्तरीयं
परिहसति सखी स्त्रीमाददाना दिनादौ ॥५२॥

अर्थ—रात्रि के समय शैय्या पर उतार कर रखे गये पति के श्वेत रग के दुपट्टे को, प्रभात के समय सूर्य की किरणों के सम्पर्क से कुसुम्भ रग के हो जाने के कारण अपना दुपट्टा समझ कर ग्रहण करती हुई नायिका का, उसकी सखी परिहास कर रही है।

टिप्पणी—भ्रान्तिमान् अलङ्कार ।

प्लुतमिव शिशिरांशोरंशुभिर्यन्निशासु
स्फटिकमयमराजद्राजताद्रिस्थलाभम् ।
अरुणितमकठोरैर्वेश्म काश्मीरजाम्भः-
स्नपितमिव तदेतद्भानुभिर्भाति भानोः ॥५३॥

अर्थ—(चूना से पुते हुए होने के कारण) कैलास पर्वत के तट प्रान्त की भाँति जो भवन रात्रि में चन्द्रमा की चाँदनी मे घुलकर स्फटिक शिला से बने हुए के समान सुशोभित हो रहे थे, वही (अब प्रातःकाल हो जाने पर) सूर्य की कोमल किरणों से रक्त वर्ण के होकर मानों केसर मिश्रित जल से पुते हुए के समान दिखाई पड रहे हैं।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलकार ।

सरसनखपदान्तर्दष्टकेशप्रमोकं
प्रणयिनि विदधाने योषितामुल्लसन्त्यः ।
विदधति दशनानां सीत्कृताविष्कृताना-
मभिनवरविभासः पद्मरागानुकारम् ॥५४॥

अर्थ—प्रियतम द्वारा रमणियों के ताजे नखक्षतों में लगे हुए बालों के निकालने पर उनके व्यथासूचक सीत्कार से बाहर निकले हुए दाँतों

पर चमकती हुई बाल सूर्य की नूतन किरणें पद्मरागमणि का अनुकरण कर रहीं है।

टिप्पणी—काव्यलिंग और उपमा का संकर।

> अविरतदयिताङ्गासङ्गसंचारितेन
> छुरितमभिनवासृक्कान्तिना कुङ्कुमेन।
> कनकनिकषरेखाकोमलं कामिनीनां
> भवति वपुरवाप्तच्छायमेवातपेऽपि ॥ ५५ ॥

अर्थ—निरन्तर प्रियतम के अंगों के सम्पर्क के कारण फैली हुई नूतन रक्त के समान लाल रंग की केसर से रंगा हुआ रमणियों का शरीर, कसोटी पर खिंची हुई सुवर्ण की रेखा की भाँति मनोहर हो गया है और वह इस धूप में (भी) छाया अर्थात् शोभा को प्राप्त कर रहा है।

टिप्पणी—उपमा, निदर्शना और काव्यलिंग का संकर।

> सरसिजवनकान्तं बिभ्रदभ्रान्तवृत्तिः
> करनयनसहस्रं हेतुमालोकशक्तेः।
> अखिलमतिमहिम्ना लोकमाक्रान्तवन्तं
> हरिरिव हरिदश्वः साधु वृत्रं हिनस्ति ॥ ५६ ॥

अर्थ—कमलवनों के प्रियतम, सहस्र किरणों वाले तथा आकाश में विचरण करने वाले सूर्य ने अपना तेज समग्र संसार में फैलाते हुए लोकव्यापी अन्धकार का उसी प्रकार विनाश कर दिया है जैसे पूर्वकाल में कमलवन के सदृश सुन्दर, सहस्र नेत्रों वाले तथा स्वर्गमण्डल में निवास करने वाले देवराज इन्द्र ने अपनी महिमा को समस्त संसार में फैलाते हुए त्रैलोक्य को सतानेवाले वृत्रासुर का विनाश कर दिया था।

टिप्पणी—उपमा और [illegible]।

> अवतमसभिदायै भास्वताभ्युद्गतेन
> प्रसभमुडुगणोऽसौ दर्शनीयोऽप्यपास्तः।
> निरवधिनृगिरीन्द्रैर्न तदीयाश्रयेण
> [illegible] ॥ ५७ ॥

अर्थ—अन्धकार के विनाश के लिए उदित सूर्य ने देखने योग्य तारागणों को भी बलपूर्वक भगा दिया है। (उनका यह कार्य उचित ही है, क्योंकि) शत्रुओं का समूल विनाश करने के लिए जो इच्छुक हो, उसे शत्रु के आश्रय से अभ्युदय प्राप्त करनेवालों का भी विनाश करना चाहिए।

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलंकार।

प्रतिफलति करौघे संमुखावस्थितायां
रजतकटकभित्तौ सान्द्रचन्द्रांशुगौर्याम्।
बहिरभिहतमद्रेः संहतं कंदरान्त-
र्गतमपि तिमिरौघं घर्मभानुर्भिनत्ति ॥ ५८ ॥

अर्थ—उष्णांशु सूर्य ने सम्मुख स्थित (गुफाओं की) सघन चन्द्रिका के समान श्वेत रंग की चाँदी की दीवालों पर अपनी किरणों के प्रतिफलित होने के कारण बाहर के अन्धकार को दूर कर गुफाओं के भीतर के निविड अन्धकार को भी दूर कर दिया है।

टिप्पणी—अतिशयोक्ति अलंकार।

बहिरपि विलसन्त्यः काममानिन्यिरे यः
दिवसकररुचोऽन्तं ध्वान्तमन्तर्गृहेषु।
नियतविषयवृत्तेरप्यनल्पप्रताप-
क्षतसकलविपक्षस्तेजसः स स्वभावः ॥ ५९ ॥

अर्थ—बाहर रहकर भी सूर्य की किरणों ने गृहों के भीतर के सघन अन्धकार को भी नष्ट कर दिया है। तेजस्वी का यह स्वभाव ही है कि वह एक नियत स्थान पर रहकर भी अपने विपुल प्रताप से समस्त शत्रुओं का विनाश कर देता है।

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलंकार।

चिरमतिरसलौल्याद्बन्धनं लम्भितानां
पुनरयमुदयाय प्राप्य धाम स्वमेव।

दलितदलकपाटः षट्पदानां सरोजे
सरभस इव गुप्तिस्फोटमर्कः करोति ॥ ६० ॥

अर्थ—यह सूर्य पुन अपने उदय अथवा वृद्धि के लिए स्थान अथवा तेज को प्राप्त कर, अत्यन्त मकरन्द पान की आसक्ति के कारण कमल-सम्पुट के बन्धन म बहुत काल स फसे हुए भ्रमरों को, मानों शीघ्रता के साथ उनके कमल दल रूपी कपाटों को तोडकर, बन्धन से मुक्त कर रहा है।

टिप्पणी—जैसे कोइ पद भ्रष्ट राजा पुन अपने पद का प्राप्त कर स्वय आकर अपने परिजनो को कारागार का फाटक तोड कर मुक्त करता है उसी प्रकार सूर्य ने भी प्रभात के समय अपने परिजन भ्रमरो को कमल के सपुटो को तोड कर मानो कारामुक्त कर दिया है। उत्प्रेक्षा अलकार।

युगपदयुगसप्तिस्तुल्यसख्यैर्मयूखै-
र्दशशतदलभेदं कौतुकेनाशु कृत्वा।
श्रियमलिकुलगीतैर्लालिता पङ्कजान्त-
र्भवनमधिशयानामादरात्पश्यतीव ॥ ६१ ॥

अर्थ—विषमसंख्यक अर्थात् सात घोडो के रथ पर चढ़ने वाले भास्कर एक साथ ही अपनी सहस्र किरणों से कमलों के शतदलों को शीघ्रतापूर्वक कुतूहल के साथ भिन्न करके अर्थात् विकसित करके, भ्रमर वृन्दों द्वारा सत्कृत कमल के मध्य में निवास करने वाली लक्ष्मी को मानो आदर के साथ देख रहे हैं।

टिप्पणी—जिस प्रकार कोइ नायक एकान्त में प्राप्त नायिका को देखता है उसी प्रकार मानो सूर्य भी कमलश्री को देख रहे हैं। उत्प्रेक्षा अलकार।

उदयमिव कराग्रैरेष निष्पीड्य सद्यः
शशधरमहरादौ गगनादुष्णरश्मिः।
अवकिरति नितान्तं कान्तिनिर्यासमन्द-
सुतनवजलपाण्डु पुण्डरीकोदरेषु ॥ ६२ ॥

बहुतरगुणदर्शनादभ्युपेतात्पदोषः कृती
तव वरद करोतु सुप्रातर्महामयं नायकः ॥६७॥

अर्थ—हे वरदायी भगवान्। समस्त संसार को उद्बोधित करने तथा समस्त अन्धकार का विनाश करने के कारण अनेक प्रकार के गुणों से युक्त एवं कुमुद वृन्द तथा नक्षत्रों की शोभा को नाश करने तथा विलासी दम्पतियों को वियुक्त करने के कारण स्वल्प दोष से युक्त यह कृतकार्य दिन नायक सूर्य भगवान आप का सुप्रभात करें।

टिप्पणी—इस प्रकार वन्दी जनों ने प्रभात के समय भगवान् श्रीकृष्ण को जगाने के लिए स्तुतिपाठ किया। यह महामालिका छन्द है। जिसका लक्षण है :—"यदिह न युगल ततोनैदरेफैर्महामालिका"।

श्री माघकवि कृत शिशुपालवध महाकाव्य में प्रभात वर्णन नामक ग्यारहवाँ सर्ग समाप्त ॥ ११ ॥

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलंकार।

च्युतमतुहिनधाम्नि प्रोष्य भूयः पुरस्ता-
दुपगतवति पाणिग्राहवद्दिग्वधूनाम्।
द्रुततरमुपयाति स्रंसमानांशुकोऽसा-
वुपपतिरिव नीचैः पश्चिमान्तेन चन्द्रः॥ ६५॥

अर्थ—दिशारूपी वधुओं के पति के समान उष्णांशु भास्कर के, कुछ काल के लिए प्रवास करने के पश्चात् पुनः सम्मुखस्थ पूर्व दिशा में आ जाने पर यह चंद्रमा जार की भाँति गलितकिरण (वस्त्रों को गिराकर) होकर एवं नम्र बनकर (झुककर) पश्चिम दिशा के द्वार से शीघ्र ही भाग रहा है।

टिप्पणी—नायिका के पति के पूर्व दिशा से अथवा सामने के द्वार से आ जाने पर उसके घर से जारपति पीछे की खिड़की से तुरन्त ही झुककर अपने कपड़े लत्ते को गिराता हुआ भाग ही जाता है। उपमा अलंकार।

प्रलयमखिलतारालोकमह्नाय नीत्वा
श्रियमनतिशयश्रीः सानुरागां दधानः।
गगनसलिलराशिं रात्रिकल्पावसाने
मधुरिपुरिव भास्वानेष एकोऽधिशेते॥ ६६॥

अर्थ—तारा गणों के लोक को शीघ्र ही नष्ट कर प्रातःकाल की रक्तश्री अर्थात् लालिमा को धारण किये हुए अत्यन्त शोभाशाली सूर्य भगवान् रात्रि के बीत जाने पर समुद्र सदृश आकाश में उसी प्रकार अकेले सुशोभित हो रहे हैं जिस प्रकार समस्त संसार को शीघ्र ही नष्ट कर अनुरक्त लक्ष्मी को साथ लेकर अत्यन्त बलशाली मधुदैत्य के शत्रु भगवान् विष्णु प्रलय काल के अन्त में समुद्र तल पर सुशोभित होते हैं।

टिप्पणी—उपमा अलंकार।

कृतसकलजगद्विबोधोऽवधूतान्धकारोदयः
च्युतिकुमुदतारकश्रीर्नियोगं नयन्कामिनः।

बहुतरगुणदर्शनादभ्युपेतात्पदोषः कृती
तव वरद करोतु सुप्रातमह्वामयं नायकः ॥६७॥

अर्थ—हे वरदायी भगवान्! समस्त संसार को उद्बोधित करने तथा समस्त अन्धकार का विनाश करने के कारण अनेक प्रकार के गुणों से युक्त एवं कुमुद वृन्द तथा नक्षत्रों की शोभा को नाश करने तथा विलासी दम्पतियों को वियुक्त करने के कारण स्वल्प दोष से युक्त यह कृतकार्य दिन नायक सूर्य भगवान आप का सुप्रभात करें।

टिप्पणी—इस प्रकार वन्दी जनों ने प्रभात के समय भगवान् श्रीकृष्ण को जगाने के लिए स्तुतिपाठ किया। यह महामालिका छन्द है। जिसका लक्षण है —'यदिह न युगलं ततोविदरेफैर्महामालिका'।

श्री माघकवि कृत शिशुपालवध महाकाव्य में प्रभात वर्णन नामक ग्यारहवाँ सर्ग समाप्त ॥ ११ ॥

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलंकार।

चरमतुहिनधाम्नि प्रोष्य भूयः पुरस्ता-
दुपगतवति पाणिग्राहवद्दिग्वधूनाम्।
द्रुततरमुपयाति स्रंसमानांशुकोऽसा-
वुपपतिरिव नीचैः पश्चिमान्तेन चन्द्रः॥ ६५ ॥

अर्थ—दिशारूपी वहुओं के पति के समान उष्णांशु भास्कर के, कुछ काल के लिए प्रवास करने के पश्चात् पुनः सम्मुखस्थ पूर्व दिशा में आ जाने पर यह चद्रमा जार की भाँति गलितकिरण (वस्त्रों को गिराकर) होकर एवं नम्र बनकर (झुककर) पश्चिम दिशा के द्वार से शीघ्र ही भाग रहा है।

टिप्पणी—नायिका के पति के पूर्व दिशा से अथवा सामने के द्वार से आ जाने पर उसके घर से जारपति पीछे की खिड़की से तुरन्त ही झुककर अपने कपड़े लत्ते का गिराता हुआ भाग ही जाता है। उपमा अलंकार।

प्रलयमखिलतारालोकमह्नाय नीत्वा
श्रियमनतिशयश्रीः सानुरागां दधानः।
गगनसलिलराशिं रात्रिकल्पावसाने
मधुरिपुरिव भास्वानेष एकोऽधिशेते॥ ६६ ॥

अर्थ—तारा गणों के लोक को शीघ्र ही नष्ट कर प्रातः काल की रक्तश्री अर्थात् लालिमा को धारण किये हुए अत्यन्त शोभाशाली सूर्य भगवान् रात्रि के बीत जाने पर समुद्र सदृश आकाश में उसी प्रकार अकेले सुशोभित हो रहे हैं जिस प्रकार समस्त संसार को शीघ्र ही नष्ट कर अनुरक्त लक्ष्मी को साथ लेकर अत्यन्त यशशाली मधुदैत्य के शत्रु भगवान् विष्णु प्रलय काल के अन्त में समुद्र तल पर सुशोभित होते हैं।

टिप्पणी—उपमा अलंकार।

कृतमरुलजगद्विबोधोऽप्रभूतान्धकारोदयः
क्षयितकुमुदतारकश्रीर्वियोगं नयन्कामिनः।

बहुतरगुणदर्शनादभ्युपेतात्पदोषः कृती
तव वरद करोतु सुप्रातमह्नामयं नायकः ॥६७॥

अर्थ—हे वरदायी भगवान्। समस्त संसार को उद्‌बोधित करने तथा समस्त अन्धकार का विनाश करने के कारण अनेक प्रकार के गुणों से युक्त एवं कुमुद वृन्द तथा नक्षत्रों की शोभा को नाश करने तथा विलासी दम्पतियों को वियुक्त करने के कारण स्वल्प दोष से युक्त यह कृतकार्य दिन नायक सूर्य भगवान आप का सुप्रभात करें।

टिप्पणी—इस प्रकार बन्दी जनों ने प्रभात के समय भगवान् श्रीकृष्ण को जगाने के लिए स्तुतिपाठ किया। यह महामालिका छन्द है। जिसका लक्षण है :—"यदिह न युगल ततोनेदरेफैर्महामालिका"।

श्री माघकवि कृत शिशुपालवध महाकाव्य में प्रभात वर्णन नामक ग्यारहवाँ सर्ग समाप्त ॥ ११ ॥

बारहवाँ सर्ग

[पूर्व सर्ग में प्रभात का वर्णन कर कवि अब इस सर्ग में भगवान् श्रीकृष्ण के प्रभातकालिक प्रस्थान का वर्णन कर रहा है—]

इत्थं रथाश्वेभनिषादिनां प्रगे गणो नृपाणामथ तोरणाद्बहिः ।
प्रस्थानकालक्षमवेषकल्पनाकृतक्षणक्षेपमुदैक्षताच्युतम् ॥ १ ॥

अर्थ—इस प्रकार जब प्रात काल हो गया और सूर्य उदित हो गये तब रथों, अश्वों और गजों पर सवार राजाओं के समूह शिविर के प्रवेशद्वार से बाहर प्रयाण काल के योग्य वेश-भूषा की रचना में थोड़ी देर करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण की प्रतीक्षा करने लगे।

टिप्पणी—काव्यलिंग अलंकार। इस पूरे सर्ग में उपजाति छन्द है।

स्वच्छं सुपत्रं कनकौज्ज्वलद्युति जवेन नागाञ्जितवन्तमुच्चकैः ।
आरुह्य तार्क्ष्यं नभसीव भूतले ययावनुद्धातसुखेन सोऽध्वना ॥२॥

अर्थ—भगवान् श्रीकृष्ण सुन्दर धुरीवाले (पक्ष में सुन्दर अंगों वाले) अच्छे घोड़ों से युक्त (सुन्दर पंखों वाले) सुवर्ण की रचना से परिष्कृत (सुवर्ण के समान कान्तिवाले) अपनी तेज चाल से गजराजों (सर्पों) को पछाड़ देने वाले अपने रथ (गरुड) पर आरूढ होकर आकाश की भाँति भूतल के मार्ग पर भी, ऊँचाई-नीचाई की बाधा से रहित होकर चले।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार भगवान् आकाश मार्ग में बिना किसी बाधा के गरुड पर चढ़कर चलते थे उसी प्रकार रथ पर चढ़कर धरती पर भी बिना किसी बाधा के चले। रथ के [illegible] विशेषण [illegible] के साथ गरुड के साथ भी अन्वित करने पड़ते हैं। [illegible] और [illegible] ।

हस्तस्थिताखण्डितचक्रशालिनं द्विजेन्द्रकान्तं श्रितवक्षसं श्रिया ।
सत्यानुरक्तं नरकस्य जिष्णवो गुणैर्नृपाः शार्ङ्गिणमन्वयासिषुः ॥३॥

अर्थ—भगवान् श्रीकृष्ण के चलने पर दूसरे राजा लोग भी उनके पीछे-पीछे चल पड़े। श्रीकृष्ण के हाथ में अखण्डित सुदर्शन चक्र था इन राजाओं के हाथों में अखण्डित 'चक्रों' के चिह्न थे। श्रीकृष्ण द्विजराज अर्थात् चन्द्रमा के समान सुन्दर थे तो ये राजा लोग द्विज-राजों अर्थात् उत्तम ब्राह्मणों के प्यारे थे। श्रीकृष्ण के हृदय में लक्ष्मी विराजमान थीं तो इन राजाओं के वक्षस्थल भी शोभा सम्पन्न थे। श्रीकृष्ण अपनी प्रिया सत्यभामा में अनुरक्त थे तो ये सब भी सत्य आचरण में प्रेम रखनेवाले थे। भगवान् श्रीकृष्ण ने नरकासुर को पराजित किया था तो इन राजाओं ने भी अपने शुभ कर्मों द्वारा नरक को जीत लिया था। इस प्रकार इन राजाओं ने केवल प्रयाण में ही भगवान श्रीकृष्ण का अनुसरण नहीं किया था, प्रत्युत गुणों में भी वे यथाशक्ति उनका अनुकरण कर रहे थे।

टिप्पणी—शब्दश्लेष अलंकार।

शुक्लैः सतारैर्मुकुलीकृतैः स्थुलैः कुमुद्वतीनां कुमुदाकरैरिव।
च्युष्टं प्रयाणं च वियोगवेदनाविदूननारीकमभूत्समं तदा॥ ४॥

अर्थ—उस समय भगवान् श्रीकृष्ण के प्रयाण का अवसर एवं प्रभात का आगमन—यह दोनों ही एक दूसरे के समान हो गये। प्रभात के समय जलाशय के कुमुद श्वेत वर्ण के थे, कणिका से युक्त थे, मुकुलित हो गये थे तथा रमणियों की विरह वेदना से युक्त थे। इसी प्रकार भग-वान् श्रीकृष्ण के प्रयाण के समय श्वेत वर्ण के तम्बूओं से युक्त थे, जिनमें डोरियाँ लगी थीं और जो समेटे जाने के कारण विलासिनी रमणियों की विरह-वेदना के सताप से युक्त थे। इस प्रकार ये दोनों ही अवसर उस कुमुदिनी भरे स्थल के लिए बराबर ही दुःखदायी हुए।

टिप्पणी—श्लेष और उपमा का संकर।

दत्तिक्षमारः स्म विडम्बयन्नभः समुत्पतिष्यन्तमगेन्द्रमुच्चकैः।
आकुञ्चितप्रोहनिरूपितक्रमं करेणुरारोहयते निषादिनम्॥ ५॥

अर्थ—शरीर के प्रथम भाग को ऊपर करके मानो आकाश को लाँघने का इच्छुक एवं विशाल पर्वत का अनुकरण करनेवाला

विशाल गजराज अपने पिछले पैरों को झुकाकर अपने ऊपर उसी के सहारे चढ़ने वाले महावत को चढ़ाने लगा।

टिप्पणी—स्वभावोक्ति अलंकार।

स्वैरं कृतास्फालनलालितान्पुरः स्फुरत्तनूदर्शितलाघवक्रियाः।
वङ्क्षावलग्नैकसवल्गपाणयस्तुरंगमानारुरुहुस्तुरंगिणः॥ ६॥

अर्थ—अश्वारोहियों ने पहले धीरे से प्यार के साथ अश्वों की गर्दनों पर अपने हाथ फेर दिये, और तब अश्वों ने भी पूरे शरीर को हिलाकर अपनी त्वरा प्रकट की। तदनन्तर हाथ में लगाम लेकर और उसे काठी पर रखकर शीघ्रता एवं चतुरता के साथ वे अश्वारोही अश्वों की पीठ पर चढ़ गये।

टिप्पणी—स्वभावोक्ति अलंकार।

अहाय यावन्न चकार भूयसे निषेदिवानासनबन्धमध्वने।
तीव्रोत्थितास्तावदसह्यरंहसो विशृङ्खलं शृङ्खलकाः प्रतस्थिरे॥७॥

अर्थ—ऊंट के सवार जब तक विशाल दूरी को तय करने के लिए शीघ्रता के साथ दृढ़ आसन जमाकर बैठ भी नहीं पाये थे कि इसी बीच में वे शीघ्रगामी ऊंट वेग से उठकर नकेल की कोई परवा बिना किए ही शीघ्रता से चल पड़े।

टिप्पणी—स्वभावोक्ति अलंकार।

गण्डोज्ज्वलामुज्ज्वलनाभिचक्रया विराजमानां नवयोदरश्रिया।
कश्चित्सुखं प्राप्तुमनाः सुसारथी रथीं युयोजाविधुरां वधूमिव॥८॥

अर्थ—कोई रथी (कामी) सुख के साथ यात्रा करने के लिए (आनन्द प्राप्ति के लिए) सारथी के साथ (सहायक के साथ) दृढ एवं मनोहर नाभि चक्रों से युक्त (गौर नाभि मण्डल से सुशोभित), सुन्दर चिह्नों से विभूषित (मनोहर कपोलों वाली), नूतन मध्यभाग की शोभा से समलंकृत (नव यौवन की उदर कान्ति से विभूषित), एवं धुरी से समन्वित (चतुरता से युक्त) रथ को नववधू के समान जोतने लगा।

टिप्पणी—रत्न के विशेषण नववधू के लिए भी उपयुक्त हो गये। शब्दश्लेष एवं अर्थश्लेष अलंकार।

उत्थातुमिच्छन्विधृतः पुरो बलान्निधीयमाने भरभाजि यन्त्रके।
अर्धोज्झितोद्गारविमिश्रफेनिलं स्वनाम निन्ये रवणः स्फुटार्थताम्॥६

अर्थ—अधिक रोने वाला रवण अर्थात् ऊँट भारी बोझ से युक्त काठी के पीठ पर रखे जाने के समय बलपूर्वक उठकर जब चलने लगा तब ऊँटहारे ने उसकी नकेल से उसके मुख को दृढ़तापूर्वक खींच लिया। ऐसा करने पर ऊँट मुख से आधी चबाई हुई नीम आदि की पत्तियों के रस को बाहर बहाने के साथ-साथ जोर जोर से बलबलाने लगा और इस प्रकार वह अपने 'रवण' नाम को चरितार्थ करने लगा।

टिप्पणी—स्वभावोक्ति अलंकार।

नस्याग्रहीतोऽपि धुनन्विषाणयोर्युगं ससूत्कारविवर्तितत्रिकः।
गोणीं जनेन स्म निधातुमुद्धृतामनुक्षणं नोक्षतरः प्रतीच्छति॥१०

अर्थ—नाथ की रस्सी के पकड़े रहने पर भी अपनी दोनों सींगों को हिलाता हुआ बैल 'सू सू' करते हुए अपने चूतड़ को इधर-उधर घुमाने लगा और इस प्रकार पीठ पर रखने के लिए मनुष्यों द्वारा उठायी गयी काठी को उसने अपने ऊपर नहीं रखने दिया।

टिप्पणी—स्वभावोक्ति अलंकार।

नानाविधाविष्कृतसामजस्वरः सहस्रवर्त्मा चपलैर्दुरध्ययः।
गान्धर्वभूयिष्ठतया समानतां स सामवेदस्य दधौ बलोदधिः॥११॥

अर्थ—उस समय भगवान् श्रीकृष्ण की सेना का वह विशाल समुद्र सामवेद की समानता धारण कर रहा था। वह सैन्य-समुद्र विविध प्रकार के हाथियों के स्वर से समन्वित था, सहस्रों मार्गों से चल रहा था, अश्वों की अधिकता के कारण चपल लोगों के लिए भी दुर्गम था। इसी प्रकार सामवेद भी अनेक प्रकार के रथन्तर साम स्वरों से युक्त है, सहस्र शाखाओं वाला है तथा गान्धर्व गान की अधिकता के कारण चपलमति के लोगों के लिए दुर्गम है।

टिप्पणी—श्लेष और उपमा का सङ्कर

प्रत्यन्यनागं चलितस्त्वरावता निरस्य कुण्ठं दधताप्यमङ्कुशम् ।
मूर्धानमूर्ध्वायितदन्तमण्डलं धुवन्नरोधि द्विरदो निषादिना ॥१२॥

अर्थ—दूसरे प्रतिद्वन्द्वी हाथी की ओर दौडने पर दन्तमण्डलो समेत मुख को ऊपर फैलाये हुए गजराज को पीलवान ने शीघ्रता के साथ पहले कुण्ठित अकुश को निकाल कर जब अन्य तीक्ष्ण अकुश से मारा तब वह रुक गया और अपने शिर को हिलाने लगा।

टिप्पणी—स्वभावोक्ति अलकार।

संमूर्च्छदुच्छृङ्खलशङ्खनिःस्वनः स्वनः प्रयाते पटहस्य शार्ङ्गिणि ।
सत्त्वानि निन्ये नितरां महान्त्यपि व्यथां द्वयेषामपि मेदिनीभृतां १३

अर्थ—भगवान् श्रीकृष्ण के प्रस्थान करने पर जब उनके सर्व व्यापी उच्छृखल ध्वनि वाले पाचजन्य शख का स्वर हुआ और नगाडे बजे तब बड़े-बडे विपक्षी राजाओं और पर्वतों—दोनो ही मे रहने वाले विशाल पराक्रम एव धैर्य और सिंहादि जीव जन्तु भाग गये और वे अत्यन्त व्यथित हो गये।

कालीयकक्षोदविलेपनश्रियं दिशद्दिशामुल्लसदंशुमद्द्युति ।
खातं खुरैर्मुद्गभुजां विपप्रथे गिरेरधः काञ्चनभूमिजं रजः ॥१४॥

अर्थ—दिशाओं म कुकुम के चूर्ण के लेपन की शोभा को धारण कराती हुई, उदीयमान सूर्य के समान शोभायुक्त, घोडों की खुरों स उठायी गयी उस सुवर्ण मयी भूमि की धूल रैवतक पर्वत के निचले भागों पर छा गयी।

मन्द्रैर्गजाना रथमण्डलस्वनैर्निजुह्नुवे तादृशमेव बृंहितम् ।
तारैर्बभूवे परभागलाभतः परिस्फुटैस्तेषु तुरंगहेषितैः ॥१५॥

अर्थ—अत्यन्त गभीर रथ के चक्रो की आवाज से बिल्कुल समान होने के कारण हाथियों की चिग्घाड तो उसी मे छिप गयी किन्तु उच्च स्वर से होने वाली घोडों की हिनहिनाहट भिन्न होने के कारण उस रथ हाथियो की आवाज म भी स्पष्ट रूप स पृथक सुनाई पड रही थी।

अन्वेतुकामोऽवमताङ्कुशग्रहस्तिरोगतं साङ्कुशमुद्वहञ्शिरः।
स्थूलोच्चयेनागमदन्तिकागतां गजोऽग्रयाताग्रकरः करेणुकाम् ॥१६॥

अर्थ—समीप आने वाली हथिनी के पीछे-पीछे चलने का इच्छुक कोई हाथी पीलवान की कोई परवाह न कर अङ्कुश के लगने से अपने शिर को तिरछा किये हुए अपनी सूंड को आगे फैलाकर बहुत धीरे-धीरे चल रहा था।

यान्तोऽस्पृशन्तश्चरणैरिवावनिं जवात्प्रकीर्णैरभितः प्रकीर्णकैः।
अद्यापि सेनातुरगा सविस्मयैरलूनपक्षा इव मेनिरे जनैः ॥१७॥

अर्थ—वेग से भूतल को स्पर्श किये बिना ही अत्यन्त द्रुतगति में दौड़ते हुए सेना के तुरङ्गों को, उनके दोनों ओर फैले हुए कण्ठ के आभूषण एवं चामरों के कारण आज भी लोग विस्मयान्वित होकर पक्ष वाले घोड़ों की तरह मान रहे थे।

टिप्पणी—यह प्रसिद्धि है कि अश्व पहले पक्षधारी होते थे, पीछे किसी कारण से अप्रसन्न होकर देवताओं ने उनके पक्ष काट दिए थे।

ऋज्वीर्दधानैरवतत्य कंधराश्चलावचूडाः कलघर्घरारवैः।
भूमिर्महत्यप्यविलम्बितक्रमं क्रमेलकैस्तत्क्षणमेव चिच्छिदे ॥१८॥

अर्थ—अपनी सीधी गरदनों को आगे फैलाये हुए एवं गले में बंधी हुई चंचल घण्टियों को बजाते हुए, ऊंटों ने अपने शीघ्रता भरे डगों से लंबे मार्ग को क्षण भर में तय कर लिया।

टिप्पणी—स्वभावोक्ति अलंकार।

तूर्णं प्रणेत्रा कृतनादमुच्चकैः प्रणोदितं वेसरयुग्यमध्वनि।
आत्मीयनेमिक्षतसान्द्रमेदिनीरजश्चयाक्रान्तिभयादिवाद्रवत् ॥१६

अर्थ—सारथी द्वारा चलने के लिए प्रेरित करने, पर उच्च स्वर करती हुई खच्चरों की गाड़ियाँ मार्ग पर अपने ही चक्रों से उठी हुई धरती की सघन धूल के आक्रमण के भय से, खच्चरों के भीत होने के कारण बड़ी तेजी से दौड़ने लगीं।

व्यावृत्तवक्त्रैरखिलैश्चमूचरैर्व्रजद्भिरेव क्षणमीक्षिताननाः।
चलद्दरीयंस्तनकम्प्रकञ्चुकं ययुस्तुरंगाधिरुहोऽवरोधिकाः ॥२०॥

अर्थ—अन्तःपुर में रहनेवाली रमणियाँ जब तुरगों पर चढ़कर चलीं तब उनके विशाल स्तन हिलने-डुलने लगे, जिससे उनकी चोली भी ऊपर से हिलने लगी। उस समय सम्पूर्ण सैनिक पीछे मुँह फेर-फेर कर थोड़ी देर के लिए उनका मुख देखने लगे थे।

पादैः पुरः कूबरिणां विदारिताः प्रकाममाक्रान्ततलास्ततो गजैः ।
भग्नोन्नतानन्तरपूरितान्तरा बभुर्भुवः कृष्टसमीकृता इव ॥२१॥

अर्थ—रथों के चक्रों से पहले विदीर्ण की गयी और पश्चात् हाथियों के पैरों से दबकर समान की गई वह भूमि ऐसी सुशोभित हो रही थी जैसे पहले हल चलाकर जोत देने के पश्चात् पाटा फेरकर एक समान कर दी गयी हो।

टिप्पणी—उपमा अलंकार।

दुर्दान्तमुत्कूल्य निरस्तसादिनं सहासहाकारमलोकयज्जनः ।
पर्याणतः स्रस्तमुरोविलम्बिनस्तुरंगमं प्रद्रुतमेकया दिशा ॥२२॥

अर्थ—छाती पर ढीली होने के कारण लटकती हुई जीनपोश से सवार के खिसक जाने के कारण, एक दुर्विनीत घोड़ा जब भड़क कर अपनी पीठ पर से सवार को नीचे गिरा कर एक दिशा की ओर तेजी से भागा तो, लोग हा हा हा हा करके हँसते हुए उसे देखने लगे।

टिप्पणी—स्वभावोक्ति अलंकार।

भूभृद्भिरप्यस्खलिताः स्खलन्तीरपह्नुवाना सरितः पृथूरपि ।
अन्वर्थसंज्ञैव परं त्रिमार्गगा ययावसंख्यैः पथिभिश्चमूरसौ ॥२३॥

अर्थ—अत्यन्त उन्नत भूभृतों (पहाड़ों तथा राजाओं) से भी जिसकी गति नहीं रोकी जा सकी—ऐसी विशाल यमुना प्रभृति नदियों को भी अपनी तेज धारा में छिपाती हुई, अपने त्रिपथगा नाम को चरितार्थ करने के लिए तीन मार्गों से बहने वाली गंगा की भाँति वह यादव सेना भी असंख्य मार्गों से चलकर, बड़े-बड़े राजा महाराजाओं से भी अप्रतिहत गति होकर एवं बड़ी-बड़ी नदियों को लाँघकर अपने नाम को चरितार्थ करती हुई चली जा रही थी।

टिप्पणी—[illegible]

त्रस्तौ समासन्नकरेणुसूत्कृतान्नियन्तरि व्याकुलमुक्तरज्जुके ।
क्षितावरोधाङ्गनमुत्पथेन गां विलङ्घ्य लघ्वीं करभौ बभञ्जतुः ॥२४॥

अर्थ—समीपस्थ हाथी के सूँ-सूँ शब्दों से डरे हुए खच्चरों ने घबराए हुए सारथी के हाथों से लगाम को छुड़ा लिया और रथपर बैठी हुई स्त्रियों को गिराकर ऊबड़-खाबड़ भूमि पर दौड़ते हुए अपने छोटे रथ को तोड़-फाड़ डाला।

टिप्पणी—काव्यलिंग और स्वभावोक्ति का संकर।

स्रस्ताङ्गसंधौ विगताक्षपाटवे रुजा निकामं विकलीकृते रथे ।
आप्तेन तक्ष्णा भिषजेव तत्क्षणं प्रचक्रमे लङ्घनपूर्वकः क्रमः ॥२५॥

अर्थ—रथ के चक्कों के जोड़ों के खुल जाने से (पक्ष में, हाथ पैर की सन्धियों के शून्य हो जाने से) धुरी के नष्ट हो जाने पर (नेत्र-ज्योति क्षीण हो जाने पर) जब कोई स्यन्दन (शरीर) टूट जाने के कारण (रोग से) बिल्कुल बेकाम हो गया तब निपुण बढ़ई ने वैद्य की भाँति उसी क्षण दौड़कर (उपवास कराकर) उसको ठीक ठाक करने का उपक्रम किया।

टिप्पणी—ज्वरादि में निपुण वैद्य लोग पहले उपवास ही कराते हैं। श्लेष अलंकार।

धूर्भङ्गसंक्षोभविदारितोष्ट्रिकागलन्मधुप्लावितदूरवर्त्मनि ।
स्थाणौ निषङ्गिण्यनसि क्षणं पुरः शुशोच लाभाय कृतक्रयो वणिक् ॥२६॥

अर्थ—किसी टीले से टकराकर जब एक गाड़ी की धुरी टूट गयी और उसमें रखा गया मिट्टी का बना मदिरा का पात्र टूट गया तो उससे गिरी हुई मदिरा से दूर तक की धरती सींच उठी। मदिरा की यह दुर्दशा देखकर उसको लाभ के लिए खरीदनेवाला बनिया थोड़ी देर के लिए शोक में पड़ गया।

टिप्पणी—काव्यलिंग [illegible]।

भेरीभिराक्रुष्टमहागुहामुखो ध्वजांशुकैस्तर्जितकन्दलीवनः ।
उत्तुङ्गमातङ्गजिताश्लघूपलो बलैः स पश्चात्क्रियते स्म भूधरः ॥२७॥

अर्थ—सेना की भेरियों की झंकार से विशाल गुफाओं में तीव्र वायु के प्रवेश से होनेवाले शब्द दब गये थे सेना की पताकाओं के वस्त्रों से कदली के पत्तों की प्रतिष्ठा घट गयी थी और मतवाले हाथियों से बड़ी-बड़ी शिलाएं पराजित हो गयी थीं। इस प्रकार सेना द्वारा वह रैवतक पर्वत पीछे कर दिया गया।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि रैवतक को लांघकर सेना आगे बढ़ गयी, किन्तु ऊपर के विशेषणों से यह प्रतीत होता है कि सेना ने सब प्रकार से रैवतक को मात कर दिया था। श्लेष मूलातिशयोक्ति और काव्यलिंग का संकर।

वन्येभदानानिलगन्धदुर्धराः क्षणं तरुच्छेदविनोदितक्रुधः।
व्यालद्विपा यन्तृभिरुन्मदिष्णवः कथंचिदारादपथेन निन्यिरे ॥२८॥

अर्थ—जंगली हाथियों के मद-जल से सुगंधित वायु को सूँघकर क्रोधान्ध एवं कठिनाई से वश में करने योग्य सेना के हाथी थोड़ी देर तक वृक्षों को तोड़-ताड़ कर अपना क्रोध दूर करने लगे। इस प्रकार अत्यन्त मदोन्मत्त उन दुष्ट हाथियों को महावत लोग बड़ी कठिनाई के साथ दूर-दूर से—विना मार्ग की भूमि से ले चलने लगे।

टिप्पणी—स्वभावोक्ति और काव्यलिंग का संकर।

तैर्वैजयन्तीवनराजिराजिभिर्गिरिप्रतिच्छन्दमहामतङ्गजैः।
सह्यः ससर्पञ्जनतानदीशतैर्भुवो बलैरन्तरयांबभूविरे ॥२९॥

अर्थ—वन पंक्तियों की भांति पताकाओं से सुशोभित, पर्वत के समान विशाल आकार के गजराजों तथा सैकड़ों नदियों के समान पंक्तियों में बद्ध जन-समूह से युक्त सेनाओं ने बहुत-सी भूमि पार कर ली।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि सेना ने न केवल रैवतक पर्वत को ही पार कर दिया, प्रत्युत बहुत सा मैदानी भाग भी उसने तय कर लिया। श्लेषमूलाभेदातिशयोक्ति से उत्थापित पदार्थहेतुक काव्यलिंग अलंकार।

तस्थे मुहूर्तं हरिणीविलोचनैः सदृशि दृष्ट्वा नयनानि योषिताम्।
मत्वाथ सत्रासमनेकविभ्रमक्रियाविकाराणि मृगैः पलाय्यत ॥३०॥

अर्थ—हरिणियों के नेत्रों के समान रमणियों के नेत्रों को देखकर

कुछ कृष्णसार मृग थोड़ी देर तक खड़े ही रह गये। किन्तु इसके अनन्तर उनके नेत्रो मे विविध प्रकार के विलास-क्रिया एव काम-विकारो को देखकर वे डर के मारे भाग खड़े हुए।

टिप्पणी—पहले तो उन्हें अपनी प्रियतमा हरिणा का भ्रम हुआ अत खडे हो गये किन्तु विलास विकारो को देखकर जब भ्रम दूर हो गया तब भाग खडे हुए। सन्देह अलंकार।

निम्नानि दुःखादवतीर्य सादिभिः सयत्नमाकृष्टकशाः शनैःशनैः।
उत्तेरुरुत्तालखुरारवं द्रुताः श्लथीकृतप्रग्रहमर्वतां व्रजाः ॥३१॥

अर्थ—अश्वारोहियों ने उतार के स्थानो पर यत्नपूर्वक लगामों को खींच कर जकड़ रखा था अत घोड़े बड़ी कठिनाई से धीरे-धीरे उस ढालू जमीन पर उतर रहे थे, किन्तु मैदान में पहुँचने पर सवारों द्वारा लगाम के शिथिल कर देने पर वे शीघ्रतापूर्वक अपनी खुरों से गंभीर टप-टप शब्द करते हुए दौड़ने लगे।

टिप्पणी—स्वभावोक्ति अलंकार।

अध्यध्वमारूढवतैव केनचित्प्रतीक्षमाणेन जनं मुहुर्धृतः।
दाक्ष्य हि सद्यः फलदं यदग्रतश्चखाद दासेरयुवा वनावलीः ॥३२॥

अर्थ—चतुरता शीघ्र ही फल देने वाली होती है। बीच मार्ग में ही ऊंट के सवार ने धीरे धीरे पीछे आते हुए अपने साथी की प्रतीक्षा में जो अपने तरुण ऊंट को (थोड़ी देर के लिए) खड़ा कर दिया तो वह (उतनी ही देर में) सामने की झाड़ी पर पत्ते खाने लगा। (अर्थात् चतुर लोग अपने तनिक भी समय को व्यर्थ नहीं गवाते।)

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलंकार।

शौरेः प्रतापोपनतैरितस्ततः समागतैः प्रश्रयनम्रमूर्तिभिः।
एकातपत्रा पृथिवीभृतां गणैरभूद्बहुच्छत्रतया पताकिनी ॥३३॥

अर्थ—भगवान श्रीकृष्ण की वह सेना, उनके तेज से वशीकृत होने के कारण इधर उधर के देशों से आए हुए विनय और नम्रता की मूर्ति बने हुए बहुत से राजाओं के समूहों से असंख्य छत्रोंवाली हो गयी थी और इस प्रकार वह केवल एक छत्रमयी दिखाई पड रही थी।

टिप्पणी—अर्थात् सेना भर में केवल छात ही छात दिखायी पड रहे थे और कुछ भी नही । विरोधाभास अलकार ।

आगच्छतोऽनुचि गजस्य घण्टयोः स्वनं समाकर्ण्य समाकुलाङ्गनाः।
दूरादपावर्तितभारवाहणाः पथोऽपससुस्त्वरितं चमूचराः ॥ ३४ ॥

अथ—पीछे से आनवाले मतवाले गजराज के घण्टा की आवाज सुनकर रमणियां व्याकुल हो गयीं अत सेना के कर्मचारी ऊँट आदि वाहनो को दूर हटाकर तुरन्त ही गजराज क मार्ग से दूर हो गये।

टिप्पणी—स्वभावोक्ति अलकार ।

ओजस्विवर्णोज्ज्वलवृत्तशालिनः प्रसादिनोऽनुज्झितगोत्रसंविदः ।
श्लोकानुपेन्द्रस्य पुरः स्म भूयसो गुणान्समुद्दिश्य पठन्ति वन्दिनः ३५

अथ—वन्दीजन भगवान् श्रीकृष्ण के गुणों की प्रशसा के अनक श्लोक आगे आगे गाते चल रहे थे। वे जो गीत गा रहे थे वे भगवान् श्रीकृष्ण के नितान्त अनुरूप ही थे। जैस भगवान् श्रीकृष्ण तेजस्वी वर्ण अर्थात् क्षत्रिय जाति के उज्ज्वल चरित्रों से सुसम्पन्न थे वैसे ही वदीजनों के श्लोक भी समासबहुल शब्दावली से युक्त ओजोगुण व्यजक तथा सुन्दर वसन्ततिलका आदि छन्दों से सुशोभित थे। भगवान् श्रीकृष्ण जैसे अपने जनों पर अनुग्रह करने वाले थे तो वैसे ही वे श्लोक भी प्रसाद गुण युक्त थे। जिस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण को अपने कुल तथा आचार की मर्यादा का सदैव ध्यान रहता था उसी प्रकार वे श्लोक भी भगवान् श्रीकृष्ण के वश की प्रशसा स पूर्ण थे।

टिप्पणी—श्लेषानुप्राणित तुल्ययोगिता अलकार ।

निःशेषमाक्रान्तमहीतलो जलैश्चलन्समुद्रोऽपि समुज्झति स्थितिम् ।
ग्रामेषु सैन्यैरकरोदवारितैः किमव्यवस्थां चलितोऽपि केशवः ॥३६॥

अथ—चलते हुए अर्थात् प्रलयकाल म क्षुब्ध होकर समुद्र भी अपनी जलराशि स समग्र भूमण्डल को व्याप्त कर अपनी मर्यादा का उल्लघन कर देता है, किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण ने चलते हुए भी अपने असख्य सैनिकों द्वारा समग्र भूमण्डल को आक्रान्त करके क्या ग्रामों

में तनिक भी कहीं अव्यवस्था होने दी ? अर्थात् कहीं भी तनिक अव्यवस्था नहीं हुई।

टिप्पणी—व्यतिरेक अलकार।

कोशातकीपुष्पगुलुच्छकान्तिभिर्मुखैर्विनिद्रोल्बणबाणचक्षुषः।
ग्रामीणवध्वस्तमलक्षिता जनैश्चिरं वृतीनामुपरि व्यलोकयन्॥३७

अर्थ—परवल के पुष्पों के गुच्छों के समान पीली कान्ति वाली ग्रामीण वधुएँ फूली हुई भिण्टी के फूलों के समान अपने विशाल नेत्रों से उन भगवान् श्रीकृष्ण को छिप-छिपकर काँटे की बेढ़ों के ऊपर से बडी देर तक बारम्बार निहार रही थीं।

टिप्पणी—उपमा और स्वभावोक्ति का सकर।

गोष्ठेषु गोष्ठीकृतमण्डलासनान्सनादमुत्थाय मुहुः स वल्गतः।
ग्राम्यानपश्यत्कपिशं पिपासतः स्वगोत्रसंकीर्तनभावितात्मनः॥३८

अर्थ—भगवान् श्रीकृष्ण ने गोचर भूमि पर बैठे हुए उन गोपालों को देखा जिनमे से कुछ मण्डलाकार बैठे हुए गप्पें लडा रहे थे, कुछ उच्च स्वर में बारम्बार उछल-कूद मचाते हुए अट्टहास कर रहे थे कुछ बार-बार मदिरा पान करने की इच्छा प्रकट कर रहे थे और कुछ अपना अर्थात् कृष्ण का नाम जपने में मन लगा रहे थे।

टिप्पणी—स्वभावोक्ति अलकार।

पश्यन्कृतार्थैरपि वल्लवीजनो जनाधिनाथं न ययौ वितृष्णताम्।
एकान्तमौग्ध्यानवबुद्धविभ्रमैः प्रसिद्धविस्तारगुणैर्विलोचनैः॥३९॥

अर्थ—अत्यन्त सरल स्वभाव की होने के कारण जो (गोपियाँ) विलास के विकारों से परिचित थीं और इसी से केवल विस्तार का ही प्रसिद्ध गुण जिनमें था, ऐसी अपनी आँखों से वे गोपियाँ जननायक भगवान श्रीकृष्ण को एकबार देखकर एव कृतार्थ होकर भी तृप्त नहीं हो सकीं।

टिप्पणी—विशेषोक्ति अलकार।

प्रीत्या नियुक्ताँल्लिहती स्तनंधयान्निगृह्य पारीमुभयेन जानुनोः।
वर्धिष्णुधाराध्वनि रोहिणीः पयश्चिरं निदध्यौ दुहतः स गोदुहः॥४०

अर्थ—अपने ही बाए पैर में बधे हुए स्तन पान करने वाले छोटे-छोटे बछडो को प्रेम के साथ जीभ से चाटती हुई गौओं को तथा अपने दोनो घुटनो के मध्यभाग में दोहनी रख कर, घर-घर की मधुर ध्वनि मे दूध को बढाने वाली धारा के साथ गौओं को दुहते हुए गोपालों को भगवान श्रीकृष्ण बडी देर तक देखते रहे।

टिप्पणी—स्वभावोक्ति अलकार।

अभ्याजतोऽभ्यागततूर्णतर्णकान्निर्याणहस्तस्य पुरो दुधुक्षतः।
वर्गाद्गवां हुंकृतिचारु निर्यतीमरिर्मधोरैक्षत गोमतल्लिकाम् ॥४१॥

अर्थ—पैर बाँधने की रस्सी लेकर दुहने के लिए सम्मुख आये हुए गोपाल को देखकर जब स्तनपान की जल्दी मचाता हुआ छोटा बछडा भी सामने आ गया तो उधर से गौओं के बीच में से मनोहर हुँकार करती हुई गौ भी बाहर निकल पडी। उस प्रशसनीय एव सुशोभित गो को भगवान् श्रीकृष्ण थोड़ी देर तक निहारते रहे।

टिप्पणी—स्वभावोक्ति अलकार।

स व्रीहिणां यावदपासितु गताः
शुकान्मृगैस्तावदुपद्रुतश्रियाम्।
कैदारिकाणामभितः समाकुलाः
सहासमालोकयति स्म गोपिकाः ॥ ४२ ॥

अर्थ—धान के खेतों की रखवाली करने वाली स्त्रियाँ जब तक (एक कोने पर लगे हुए) तोतों को उडाने के लिए जाती थीं तब तक उस धान को (दूसरे कोने मे) मृगों के समूह आ आकर चरने लगते थे। इस प्रकार चारों ओर से व्याकुल हुई धान की रखवाली करने वाली उन स्त्रियों को मन्द-मन्द मुस्कराते हुए भगवान् श्रीकृष्ण ने देखा।

टिप्पणी—वार्त्ता अलकार।

व्यासेद्धुमस्मानवधानतः पुरा
चलत्यसावित्युपकर्णयन्नसौ।

गीतानि गोप्याः कलमं मृगव्रजो
न नूनमत्तीति हरिर्व्यलोकयत् ॥ ४३ ॥

अर्थ—भगवान् श्रीकृष्ण ने धान खाने की चेष्टा से विहीन (मेंड़ के के पास ही) खड़े हुए हरिणों के समूह को देखकर अपने मन में इस प्रकार का तर्क किया कि धान रखाने वाली स्त्रियों के मधुर गीतों को सुनते हुए ये मृग समूह निश्चय ही धान तो नहीं खा रहे हैं; क्योंकि वे यह सोच रहे होंगे कि यदि हम धान खाने लगेंगे तो हमें भगाने के लिए ये गीतों पर से ध्यान हटाकर हमारी ओर दौड़ पड़ेंगी। (और इस प्रकार इनके मधुर गीत सुनने के सौभाग्य से हम वंचित हो जायँगे।)

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलंकार।

लीलाचलस्त्रीचरणारुणोत्पलस्खलत्तुलाकोटिनिनादकोमलः ।
शौरेरुपानूपमपाहरन्मनः स्वनान्तरादुन्मदसारसारवः ॥ ४४ ॥

अर्थ—जलप्राय देशों में, लीलापूर्वक चलती हुई रमणी के लाल कमल के समान चरणों से गिरे हुए नूपुरों के स्वर के समान मधुर मतवाले हंसों के स्वरों ने भगवान श्रीकृष्ण के चित्त को दूसरी ध्वनियों से हटा कर अपनी ओर खींच लिया।

टिप्पणी—उपमा और काव्यलिंग का संकर।

उच्चैर्गतामस्खलितां गरीयसीं तदातिदूरादपि तस्य गच्छतः ।
एके समूहुर्बलरेणुसंहतिं शिरोभिराज्ञामपरे महीभृतः ॥ ४५ ॥

अर्थ—उस समय अत्यन्त दूर से जाते हुए भगवान् श्रीकृष्ण की, अत्यन्त ऊँचाई को प्राप्त (स्वर्गलोक तक व्याप्त), कभी न टूटने वाली, अत्यन्त गंभीर सेनाओं द्वारा उड़ायी गयी धूल को एक ओर कुछ पर्वतों ने तथा दूसरी ओर (ऐसे ही विशेषणों से युक्त) आज्ञाओं को राजाओं ने अपने शिखरों पर (शिरों पर) धारण किया।

टिप्पणी—श्लेष प्रतिभोत्थापित तुल्ययोगिता अलंकार।

प्रायेण नीचानपि मेदिनीभृतो जनः समेनैव पथाधिरोहति ।
सेना मुरारेः पथ एव सा पुनर्महामहीध्रानपरितोऽप्यरोहयत ॥४६॥

अर्थ—प्रायः कम ऊँचे पर्वतों पर भी सर्वसाधारण लोग सुगम मार्ग से ही चढ़ते है; किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण की वह सेना तो ऊंचे-ऊँचे पर्वतों पर ही मार्ग के समान चारों ओर से चढ़ती हुई चली जा रही थी।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि पर्वतो की ऊचाई से सेना के गमन में कोई बाधा नही पडी। व्यतिरेक अलकार।

दन्ताग्रनिर्भिन्नपयोदमुन्मुखाः शिलोच्चयानारुरुहुर्महीयसः ।
तिर्यकटप्लाविमदाम्बुनिम्नगाविपूर्यमाणश्रवणोदरं द्विपाः ॥ ४७ ॥

अर्थ—हाथी अपने मुखों को ऊपर कर दाँतों के अग्र भागों से बादलों को फाड़ते हुए बड़े-बड़े शिखरों पर चढ़ते चले जा रहे थे, उस समय उनके मुँह के तिरछे हो जाने से गण्डस्थलों से जो मद धारा निकल रही थी उससे उनके कान तथा पेट भींग गये थे।

टिप्पणी—स्वभावोक्ति अलकार।

योतन्मदाम्भःकणकेन केनचिज्जनस्य जीमूतकदम्बकद्युता ।
नगेन नागेन गरीयसोच्चकैररोधि पन्थाः पृथुदन्तशालिना ॥४८॥

अर्थ—चूते हुए मदजल के कणों से युक्त, मेघमालाओं के समान कान्ति वाले विशाल दाँतों से सुशोभित एवं उच्चकाय वाले एक गजराज ने सैनिकों का मार्ग जिस प्रकार से रोक दिया था, उस प्रकार से कोई पर्वत भी उनका मार्ग अबतक नहीं रोक सका था।

टिप्पणी—हाथी के समस्त विशेषण पर्वत के साथ भी घटित होते है। व्यतिरेक अलकार।

भग्नद्रुमाश्चक्रुरितस्ततो दिशः समुल्लसत्केतनकाननाकुलाः ।
पिष्टाद्रिपृष्ठास्तरसा च दन्तिनश्चलद्भिरङ्गाचलदुर्गमा भुवः ॥४९॥

अर्थ—हाथियों ने मार्ग के चारों ओर के वृक्षों को तोड़ डाला और चमकती हुई सेना की पताका-रूपी वन पंक्तियों से सभी दिशाओं को व्याप्त कर दिया, अपने बल से पर्वत के शिखरों के पृष्ठभाग को पीस डाला तथा चलते हुए अपने शरीर-रूपी पर्वतों से सारी भूमि को एकदम दुर्गम बना दिया।

टिप्पणी—रूपक अलकार।

आलोकयामास हरिर्महीधरानधिश्रयन्तीर्गजताः परःशताः ।
उत्पातवातप्रतिकूलपातिनीरुपत्यकाभ्यो बृहतीः शिला इव ।।५०।।

अर्थ—भगवान् श्रीकृष्ण ने पर्वतों पर चढती हुई सैकडो से अधिक हाथियों की पंक्तियों को, समीपवर्ती पर्वत की घाटियों से मानों वायु के बवडर के कारण प्रतिकूल दिशा अर्थात् नीचे से ऊपर जाती हुई स्थूल शिलाओं के समान देखा।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलंकार ।

शैलाधिरोहाभ्यसनाधिकोद्धुरैः पयोधरैरामलकीवनाश्रिताः ।
त पर्वतीयप्रमदाश्चचायिरे विकासविस्फारितविभ्रमेक्षणाः ।।५१।।

अर्थ—पर्वतों पर नित्य चढने के अभ्यास से अधिक उन्नत स्तनों वाली, आंवला के वन में बैठी हुई पहाडी रमणियों ने विस्मय के कारण विस्तृत एवं विलास के विकारों से युक्त नेत्रों से भगवान् श्रीकृष्ण को देखा।

टिप्पणी—स्वभावोक्ति और वृत्यनुप्रास का संसृष्टि ।

सावज्ञमुन्मील्य विलोचने सकृदयं मृगेन्द्रेण सुषुप्सुना पुनः ।
सैन्यान्न यातः समयापि विव्यथे कथं सुराजंभवमन्यथाथवा ।।५२।।

अर्थ—अवज्ञा के साथ एक बार क्षण भर के लिए अपनी आँखों को खोलकर सोते हुए मृगेन्द्र ने फिर मूंद लिया और इस प्रकार अत्यन्त समीपसे जाती हुई सेना से वह तनिक भी नहीं डरा। यदि वह इसी प्रकार से डर जाया करता तो मृगों के राजा होने का गौरव कैसे प्राप्त करता ?

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलंकार ।

उत्सेधनिर्धूतमहीरुहां ध्वजैर्जनानरुद्धोद्धतसिन्धुरंहसाम् ।
नागैरधिक्षिप्तमहाशिलं मुहुर्बलं बभूवोपरि तन्महीभृताम् ।। ५३ ।।

अर्थ—गजराजों द्वारा ऊंचे-ऊंचे शिखरों को निरस्तर करनेवाली भगवान श्रीकृष्ण की सेना, क्षणभर में पताकाओं की ऊँचाई से वृक्षों को पराजित कर तथा सैनिकों द्वारा नदियों के उद्धत प्रवाह को अवरुद्ध करके उनसे युक्त अनेक पर्वतों के ऊपर चढ़ गयी ।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि सेना ने अनेक पर्वतों के बीच से शीघ्रतापूर्वक अपना मार्ग तय किया। इत्पोत्थापित काव्यलिङ्ग अलङ्कार।

श्मश्रूयमाणे मधुजालके तरोर्गजेन गण्डं कषता विधूनिते।
क्षुद्राभिरक्षुद्रतराभिराकुलं विदश्यमानेन जनेन दुद्रुवे ॥ ५४ ॥

अर्थ—वृक्ष की दाढ़ी के समान उसी की एक डाल में लगा हुआ मधु का छत्ता जब वृक्ष में गजराज के अपना गण्डस्थल खुजलाने के कारण धक्का लगने से हिल गया तो उसमें से निकल निकल कर मधु की बड़ी-बड़ी मक्खियाँ लोगों को काटने लगीं और लोग भय से व्याकुल होकर भागने लगे।

टिप्पणी—उपमा और स्वभावोक्ति की समृष्टि।

नीते पलाशिन्युचिते शरीरवद्गजान्तकेनान्तमदान्तकर्मणा।
संचेरुरात्मान इवापरं क्षणात्क्षमारुहं देहमिव प्लवंगमाः ॥ ५५ ॥

अर्थ—शरीर की भाँति चिरकाल से परिचित वृक्ष को दुर्दान्त व्यापार करने वाले यमराज के समान-जब एक हाथी ने तोड़ दिया तब जीवात्मा की भाँति उस पर रहने वाले बन्दर दूसरे शरीर की भाँति दूसरे वृक्ष पर तुरन्त ही चढ़ गये।

टिप्पणी—जिस प्रकार यमराज द्वारा एक शरीर के नष्ट होने पर जीवात्मा दूसरे शरीर में प्रविष्ट हो जाता है उसी प्रकार बन्दरों ने भी पूर्व परिचित वृक्ष के हाथी द्वारा तोड़ दिए जाने पर दूसरे वृक्ष को अपना अड्डा बना लिया। उपमा अलङ्कार।

प्रह्वानतीव क्वचिदुद्धतिश्रितः क्वचित्प्रकाशानथ गह्वरानपि।
साम्यादपेतानिति वाहिनी हरेस्तदाति क्रामद्गिरीन्गुरूनपि ॥५६॥

अर्थ—कहीं पर अत्यन्त नीच (नम्र), कहीं पर अत्यन्त ऊँचे (उद्धत), कहीं पर प्रकाशयुक्त (स्पष्ट व्यवहार वाले) और कहीं पर अत्यन्त दुर्गम (गूढ़ व्यापार में निरत)—इस प्रकार अति विषम स्वरूप वाले (विषम व्यवहार करनेवाले) महान पर्वतों को भी (पूज्यों को भी) लाँघती हुई उस समय भगवान श्रीकृष्ण की सेना चली जा रही थी।

टिप्पणी—ऐसे गुरुजनों का परित्याग करना ही चाहिए जो सामने कुछ और पीठ पीछे कुछ और हों। श्लेषमूलातिशयोक्ति से उत्थापित विरोधाभास का संकर।

स व्याप्तवत्या परितोऽपथान्यपि स्वसेनया सर्वपथीनया तया।
अम्भोभिरुल्लङ्घिततुङ्गरोधसः प्रतीपनाम्नीः कुरुते स्म निम्नगाः॥५७॥

अर्थ—भगवान् श्री कृष्ण ने, चारों ओर से सभी दिशाओं में बिना मार्ग से भी चलती हुई अपनी सम्पूर्ण सेना के, एक साथ ही नदी में प्रवेश करने के कारण, जल के ऊपर बढ़ जाने से अपने ऊँचे तटों को आक्रान्त करने वाली निम्नगा अर्थात् नदियों का, उल्टा अर्थात् ऊपर जानेवाली नाम बना दिया।

टिप्पणी—अतिशयोक्ति अलंकार।

यावद्व्यगाहन्त न दन्तिनां घटास्तुरंगमैस्तावदुदीरितं खुरैः।
क्षिप्तं समीरैः सरितां पुरः पतज्जलान्यनैषीद्रज एव पङ्कताम्॥५८॥

अर्थ—जब तक हाथियों का समूह नदियों के जल के भीतर उतर-कर उसे नहीं आलोडित कर पाया था तब तक तुरगों की खुरों से उठी हुई एवं वायु द्वारा उड़ाई गई धूल ने ही पहले नदियों के जल को पङ्किल बना दिया।

टिप्पणी—अतिशयोक्ति अलंकार।

रन्तुं क्षतोत्तुङ्गनितम्बभूमयो मुहुर्व्रजन्तः प्रमदं मदोद्धताः।
पङ्कं करापाकृतशैवलांशुकाः समुद्रगाणामुदपादयन्निभाः॥५९॥

अर्थ—क्रीड़ा के लिए दाँतों द्वारा तटवर्ती उन्नत प्रदेशों को विदारित करने वाले (पक्ष में, रमण के लिए नखों द्वारा ऊँचे नितम्ब-स्थल को क्षत-पूर्ण करने वाले) बार-बार हर्ष को प्राप्त होकर, मदजल से उन्मत्त (मदिरापान से उन्मत्त) हाथियों ने, अपनी सूँड़ से वस्त्र के समान नीले सेवारों को दूर हटाकर (विलासी पुरुष ने, अपने हाथ से नीले वस्त्रों को दूर हटाकर) समुद्र की पत्नियों अर्थात् नदियों में कीचड़ ही कीचड़ कर दिया (कलुषित कर दिया)।

टिप्पणी—जिस प्रकार मदिरा से उन्मत्त विलासी पुरुष परायी स्त्रियों के पास रमण के लिए जाकर उनके नितम्बों पर नखक्षत करते हैं और अत्यन्त हर्षित

होकर अपने हाथों से उनका वस्त्र हटाकर उन्हें कलुषित करते हैं उसी प्रकार हाथियों ने भी नदियों को पंकिल बना दिया। इसमें भेदातिशयोक्ति से उत्थापित समासोक्ति अलंकार। पक्षान्तर में अश्लीलता दोष है।

रुग्णोरुरोधः परिपूरिताम्भसः समस्थलीकृत्य पुरातनीर्नदीः ।
कूलंकषौघाः सरितस्तथापराः प्रवर्तयामासुरिभा मदाम्बुभिः ॥६०॥

अर्थ—हाथियों ने (नदियों के) विशाल तटों को तोड़कर (उनकी मिट्टी से) जल को परिपूर्ण कर, पहले ही से बहती हुई नदियों को तो समतल बना दिया था और अपने मद-जलों से उनके दोनों ओर के किनारों पर बहनेवाली नयी नदियाँ बना दी थीं।

टिप्पणी—इससे भगवान श्रीकृष्ण की सेना की विशाल गज सम्पत्ति का पता लगता है। अतिशयोक्ति अलंकार।

पद्मैरनन्वीतवधूमुखद्युतो गता न हंसैः श्रियमातपत्रजाम् ।
दूरेऽभवन्भोजबलस्य गच्छतः शैलोपमातीतगजस्य निम्नगाः ॥६१॥

अर्थ—कमल सेना के साथ की रमणियों के मुख की शोभा को नहीं प्राप्त कर सके, हंस छत्रों की शोभा से पराजित हो गये, पर्वत सेना के हाथियों की समानता नहीं कर सके—इस प्रकार जाती हुई भगवान् श्रीकृष्ण की सेना से नदियाँ बहुत दूर ही रह गयीं।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि नदियों को छोड़कर सेना बहुत दूर हो गयी नदियाँ यदि समीप होतीं तो उन्हें लज्जा हो होती। इसमें मूलातिशयोक्ति से उत्थापित काव्यलिंग अलंकार।

स्निग्धाञ्जनश्यामतनूभिरुन्नतैर्निरन्तराला करिणां कदम्बकैः ।
सेना सुधाक्षालितसौधसंपदा पुरा महिम्ना परभागमाप सा ॥६२॥

अर्थ—गाढ़े कज्जल के समान काले शरीर वाले विशाल हाथियों के समूहों से सकुलित वह भगवान् श्रीकृष्ण की सेना सफेद चूने से पुते हुए महलों से युक्त अनेक नगरियों को लाँघकर दूर चली गयी अथवा उनसे अधिक उत्कृष्टता को प्राप्त हुई।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि भगवान् श्रीकृष्ण की सेना बड़े-बड़े विशाल महलों वाली अनेक नगरियों के बीच से गुजरती हुई बहुत दूर निकल गयी। श्लथमूलातिशयोक्ति से उत्थापित काव्यलिंग अलंकार।

प्रासादशोभातिशयालुभिः पथि प्रभोर्निवासाः पटवेश्मभिर्बभुः।
नूनं सहानेन वियोगविक्लवा पुरः पुरश्रीरपि निर्ययौ तदा ॥६३॥

अर्थ—मार्ग में भगवान् श्रीकृष्ण का निवास बड़े-बड़े महलों की शोभा को तिरस्कृत करने वाले तम्बुओं में था। वह तम्बू ऐसे मालूम हो रहे थे मानों उनमें द्वारकापुरी से भगवान के प्रयाण काल के समय वियोग से विह्वल होकर द्वारकापुरी की लक्ष्मी ही निकल कर आ गयी थी।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलंकार।

वर्त्म द्विपाना विरुवन्त उच्चकैर्वनेचरेभ्यश्चिरमाचचक्षिरे।
गण्डस्थलाघर्षगलन्मदोदकद्रवद्रुमस्कन्धनिलायिनोऽलयः ॥६४॥

अर्थ—गजराजों के गण्डस्थलों के खुजलाने के कारण लगे हुए मद-जल से गीले वृक्षों के तनों पर बैठे हुए एवं उच्च स्वर में गुंजार करते हुए भ्रमर-वृन्द मानों वनचरों से उन सेना के गजराजों के ऊँचे शरीर की नाप चिरकाल तक बतला रहे थे।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलंकार।

आयामवद्भिः करिणां घटाशतैरधःकृताट्टालकपङ्क्तिरुच्चकैः।
दूर्व्यजितोदग्रगृहाणि सा चमूरतीत्य भूयांसि पुराण्यवर्तत ॥६५॥

अर्थ—दीर्घकाय हाथियों के सैकड़ों समूहों से अटारियों की पंक्तियों की उंचाई को तिरस्कृत करनेवाली भगवान श्रीकृष्ण की सेना अपने ऊंचे तम्बुओं से उत्तम भवनों का परिहास करते हुए, अनेक नगरों को टांक कर आगे बढ़ गया।

टिप्पणी—तात्पर्य केवल इतना ही है कि अन्यान्य अनेक समृद्ध नगरों से होकर वह सेना बहुत दूर चली गयी और उसकी ऊँचाई शोभा उन नगरों से भी निराली थी। श्लथमूलातिशयोक्ति से उत्थापित काव्यलिंग अलंकार।

ऊपर की ओर फैलाकर निश्चल किए हुए घोड़ों ने सम्मुखस्थ तट पर दृष्टि रखकर यमुना को पार किया। उस समय उनकी पूँछ जल के भीतर बिखरी हुई दिखाई पड़ती थी।

तीर्त्वा जवेनैव नितान्तदुस्तरां नदीं प्रतिज्ञामिव तां गरीयसीम्।
शृङ्गैरपस्कीर्णमहत्तटीभुवामशोभतोच्चैर्नदितं ककुद्मताम्॥ ७४॥

टिप्पणी—उपमा और स्वाभावोक्ति अलंकार।

अर्थ—नितान्त दुस्तरणीय यमुना को अत्यन्त कठिनाईपूर्वक पालन करने योग्य प्रतिज्ञा की भाँति, वेग से पार कर साँडों ने उसके तट के विस्तृत प्रदेश को अपनी सींगों से ओंड़ डाला तथा उच्चस्वर से घोर नाद किया।

टिप्पणी—स्वभवोक्ति अलंकार।

सीमन्त्यमाना यदुभूभृतां बलैर्बभौ तरद्भिर्गवलासितद्युतिः।
सिन्दूरितानेकपकंकणाङ्किता तरङ्गिणी वेणिरिवायता भुवः॥७५॥

अर्थ—तैरती हुई यादवी सेना यमुना को दो भागों में बटी हुई केश-राशि की भाँति बना रही थी। भैंसों की सींगों की भाँति श्यामल कांति वाली वह बीच में सिंदूर से अलंकृत हाथी-रूपी कङ्कणों से जो सुशोभित हो रही थी सो वह ऐसी दिखाई पड़ रही थी मानों पृथ्वी की विस्तृत वेणी है।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलंकार।

अव्याहतक्षिप्रगतैः समुच्छ्रितानुज्झितद्राघिमभिर्गरीयसः।
नाव्यं पयः केचिदतारिषुर्भुजैः क्षिपद्भिरूर्मीनपरैरिवोर्मिभिः॥७६॥

अर्थ—यद्यपि यमुना का जल (गहरा होने के कारण) नाव से ही पार करने योग्य था किन्तु कितने लोग हाथों ही से तैर कर पार हो गये। तैरते समय उनकी न रुकनेवाली, शीघ्र चलनेवाली, बहुत बड़ी-बड़ी तथा उन्नत बाहें लहरों को चीरती हुई ऐसी सुशोभित हो रही थीं, मानों वे भी लहरें ही हैं।

टिप्पणी—लहरों और भुजाओं के लिए [illegible] विशेषण विभक्ति विपरिणाम [illegible] दोनों ही में समान अन्वित होते हैं। उत्प्रेक्षा अलंकार।

विदलितमहाकूलासुच्चैर्वां विषाणविघट्टनै-
रलघुचरणाकृष्टग्राहां विपाणिभिरुन्मदैः ।
सपदि सरितं सा श्रीभर्तुर्बृहद्रथमण्डल-
स्खलितसलिलामुल्लङ्घ्यैनां जगाम वरूथिनी ७७

अर्थ—लक्ष्मी के पति भगवान् श्रीकृष्ण की वह सेना यमुना नदी को तुरन्त ही पार कर उस पार चली गयी। (उस समय यमुना की विचित्र दशा हो गयी थी—) बैलों की सींगों के आघात से यमुना के ऊँचे किनारे टूट-फूट गये थे। मतवाले हाथियों के विशाल पैरों से खिचकर कितने मकर आदि जलचर जल के बाहर आ गये थे एव बड़े-बडे रथों के चक्कों के आघात से यमुना का जल विक्षुब्ध हो गया था।

टिप्पणी—हरिणी छन्द। लक्षण —"भवति हरिणीन्सौ म्रौ स्लौ गो रसाम्बुधिविष्टपै ।" काव्यलिंग अलकार ।

श्री माघ कविकृत शिशुपालवध महाकाव्य मे प्रयाण
वर्णन नामक बारहवाँ सर्ग समाप्त ।

—०—

तेरहवाँ सर्ग

यमुनामतीतमथ शुश्रुवानमुं तपसस्तनूज इति नाधुनोच्यते ।
स यदाचलन्निजपुरादहर्निशं नृपतेस्तदादि समचारि वार्तया ॥१॥

अर्थ—यमुना पार हो जाने के अनन्तर धर्मराजपुत्र युधिष्ठिर ने केवल इतना ही नहीं सुना कि अभी-अभी यमुना को पार कर के भगवान् श्रीकृष्ण आ गये हैं, प्रत्युत भगवान जब से अपनी द्वारिकापुरी से चले थे, तब से लेकर आज तक के, रात-दिन के सारे सवाद उन्हे बराबर मिला करते थे ।

टिप्पणी—इस पूरे सर्ग में मजुभाषिणी वृत्त है जिसका लक्षण है —'सजसा जगौ भवति मजुभाषिणी ।'

यदुभर्तुरागमनलब्धजन्मनः प्रमदादमानिव पुरे महीयसि ।
सहसा ततः स सहितोऽनुजन्मभिर्वसुधाधिपोऽभिमुखमस्य निर्ययौ २

अर्थ—तदनतर वसुधा के स्वामी धर्मराजपुत्र युधिष्ठिर यदुपति भगवान् श्रीकृष्ण के आगमन का सवाद सुनकर प्रसन्नता से इतने अधिक फूल उठे कि अपनी उस विशाल नगरी में भी वह नहीं समा सके और मानों इसीलिये तुरन्त ही अपने छोटे भाइयों के साथ वे भगवान् श्रीकृष्ण के सम्मुख आ कर पहुँच गये।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलङ्कार ।

रभसप्रवृत्तकुरुचक्रदुन्दुभिध्वनिभिर्जनस्य वधिरीकृतश्रुतेः ।
समगादि वक्तृभिरभीष्टसंकथाप्रकृतार्थशेषमथ हस्तसंज्ञया ॥ ३ ॥

अर्थ—भगवान् श्रीकृष्ण के आगमन के हर्ष से कुरुवंशियों की सेना में नगाड़ों की ऐसी गभीर ध्वनि होने लगी कि नगर निवासियों के कान बहरे हो गये। इस स्थिति मे श्रोताओं के बिल्कुल कुछ भी न सुन

सकने के कारण वक्ताओं ने आरम्भ की हुई अपनी आवश्यक वार्ता के शेषांश को हाथों के इशारों से प्रकट किया।

टिप्पणी—काव्यलिंग अलंकार।

अपदान्तरं च परितः क्षितिक्षितामपतन्द्रुतभ्रमितहेमनेमयः।
जविमारुताञ्चितपरस्परोपमक्षितिरेणुकेतुवसनाः पताकिनः॥४॥

अर्थ—सुवर्ण की नेमि (हाल) से विमण्डित एवं वेग से घूमनेवाले राजाओं के रथों के तेजी के साथ दौड़ने से वायु के वेग से ऊपर उठी हुई धरती की धूल तथा पताकाएँ एक दूसरे के समान शोभित होने लगीं। चारों ओर से वे राजाओं के रथ इतनी अधिक संख्या में दौड़ने लगे कि धरती पर पैर रखने का भी अवकाश नहीं रह गया।

द्रुतमध्वनन्नुपरिपाणिवृत्तयः पणवा इवाश्वचरणक्षता भुवः।
ननृतुश्च वारिधरधीरवारणध्वनिहृष्टकूजितकलाः कलापिनः॥५॥

अर्थ—घोड़ों की खुरों से पीड़ित होकर पृथ्वीतल हाथ द्वारा ऊपर से बजाये जानेवाले मृदङ्ग की भाँति जब शीघ्रता से शब्दायमान होने लगा तो बादलों के गंभीर गर्जन के समान हाथियों की आवाज से सुप्रसन्न मयूरवृन्द मधुर गंभीर ध्वनि में गूँजते हुए नाचने लगे।

टिप्पणी—उपमा अलंकार।

व्रजतोरपि प्रणयपूर्वमेकतामसुरारिपाण्डुसुतसैन्ययोस्तदा।
रणे निपाणिभिरनुक्षणं मिथो मदमूढबुद्धिषु विवेकिता कुतः॥६॥

अर्थ—उस अवसर पर यदुपति भगवान श्रीकृष्ण तथा कुरुपति राजा युधिष्ठिर की सेनाएँ जब परस्पर प्रीतिपूर्वक एक साथ चलने लगीं तब दोनों सेनाओं के हाथी प्रतिक्षण परस्पर क्रोध प्रकट करने लगे। (क्या न ऐसा होता) मद से मूढ़ बुद्धिवालों में कार्याकार्य का विवेक रहता ही कहाँ है?

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलंकार।

अवलोक एव नृपतेः स्म दूरतो रभसाद्रथादवतरीतुमिच्छतः।
अवतीर्णवान्प्रथममात्मना हरिर्विनयं विशेषयति संभ्रमेण सः॥७॥

गाढ आलिंगन से डर कर भगवान् श्रीकृष्ण के मुख पर आरूढ हो गयीं थीं।

टिप्पणी—डरे हुए लोग नीचे से ऊपर चढ ही जाते हैं। श्लेषमूलातिशयोक्ति से उत्थापित पर्याय तथा उत्प्रेक्षा का सकर।

शिरसि स्म जिघ्रति सुरारिबन्धने छलवामनं विनयवामनं तदा।
यशसेव वीर्यविजिताभरद्रुमप्रसवेन वासितशिरोरुहे नृपः ॥१२॥

अर्थ—राजा युधिष्ठिर ने असुरराज बलि को बाँधने के लिए कपट-वामन वेषधारी एव सम्प्रति विनय से वामन वेष (विनम्र) धारी भगवान् श्रीकृष्ण के उस शिर को सूँघा जो पराक्रम से जीतकर लाये गये मानों पारिजात के पुष्प-रूपी यश से सुवासित केश-राशि से विमण्डित था।

टिप्पणी—पौराणिक कथाओ के अनसार पूर्वकाल म भगवान् श्रीकृष्ण ने सत्यभामा को प्रसन्न करने के लिए बलपवक इन्द्र लोक स पारिजात को उखाडकर अपने भवन में लगा लिया था। उत्प्रेक्षा अलकार।

सुखवेदनाहृषितरोमकूपया शिथिलीकृतेऽपि वसुदेवजन्मनि।
कुरुभर्तुरङ्गलतया न तत्यजे विकसत्कदम्बनिकुरम्बचारुता ॥१३॥

अर्थ—भगवान् श्रीकृष्ण के आलिंगन के अनन्तर पृथक् हो जाने पर भी, आलिंगन के (असीम) सुख के अनुभव से रोमकूपों के प्रफुल्ल हो जाने के कारण कुरुराज युधिष्ठिर के अगों मे बहुत देर तक विकसित कदम्ब के कुसुम समूहों की शोभा बनी ही रही। अर्थात् वे बड़ी देर तक रोमांच युक्त बने ही रहे।

टिप्पणी—विभावना और निदर्शना का सकर।

इतरानपि क्षितिभुजोऽनुजन्मनः प्रमनाः प्रमोदपरिफुल्लचक्षुषः।
स यथोचितं जनसभाजनोचितः प्रसभोद्धृतासुरसभोऽसभाजयत् १४

अर्थ—सर्व साधारण के सम्मान के योग्य एवं बलपूर्वक असुर समूहों का विनाश करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण ने प्रसन्नतापूर्वक आनन्दातिरेक से सुप्रसन्न नेत्रों वाले भीम, अर्जुन आदि राजा युधिष्ठिर के अनुजों को यथायोग्य आलिंगनादि द्वारा सम्मानित किया।

समभेत्य तुल्यमहसः शिलाघना-
न्घनपक्षदीर्घतरबाहुशालिनः ।
परिशिश्लिषुः क्षितिपतीन्क्षितीश्वराः
कुलिशात्पुरेव गिरयो गिरीनिव ॥१५॥

अर्थ—इन्द्र द्वारा वज्र प्रहार करने से पूर्व जिस प्रकार एक पर्वत दूसरे पर्वतों का आलिंगन करते थे उसी प्रकार समान तेजस्वी, शिला के समान दृढ एवं पक्ष के समान विशाल बाहुओं से सुशोभित राजाओं का, उनके समान ही अन्य राजाओं ने आ-आकर प्रेमपूर्वक आलिंगन किया ।

टिप्पणी—पुराणों में पर्वतों के पक्षधारी होने की चर्चा अति प्रसिद्ध है । उपमा अलंकार ।

इभकुम्भतुङ्गकठिनेतरेतरस्तनभारदूरविनिवारितोदराः ।
परिफुल्लगण्डफलकाः परस्परं परिरेभिरे कुकुरकौरवस्त्रियः ॥१६॥

अर्थ—जिनके स्तनमण्डल हाथी के कुम्भस्थल के समान ऊंचे एवं एक दूसरे से सटे हुए होने के कारण उदरस्थली को पृथक् किए हुए थे तथा जिनके कपोलस्थल हर्ष से प्रफुल्ल हो रहे थे—ऐसी वे यादव रमणियाँ और पाण्डव रमणियाँ एक दूसरे का आलिंगन करने लगीं ।

रथवाजिपत्तिकरिणीसमाकुलं
तदनीकयोः समगत द्वयं मिथः ।
दधिरे पृथक्करिण एव दूरतो
महतां हि सर्वमथवा जनातिगम् ॥१७॥

अर्थ—रथ, घोड़े, पैदल और हथिनियों से संकीर्ण वे दोनों सेनाएँ एक दूसरे से मिलकर खड़ी हो गईं किन्तु हाथियों को दूर ही अलग-अलग खड़ा किया गया । (यह ठीक ही किया गया था) क्यों कि बड़े लोगों के सब काम सर्वसाधारण से कुछ विचित्र ही होते हैं ।

टिप्पणी—हाथियों का एक साथ इसलिए नहीं खड़ा किया गया था कि कहीं वे आपस में लड़ न पड़ें। अर्थान्तरन्यास अलंकार।

अधिरुह्यतामिति महीभृतोदितः कपिकेतुनार्पितकरो रथं हरिः।
अवलम्बितैलविलपाणिपल्लवः श्रयति स्म मेघमिव मेघवाहनः १८

अर्थ—धर्मराज युधिष्ठिर के यह कहने पर कि 'रथ पर चढ़िए' भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से अपना हाथ मिलाये हुए, कुबेर से हाथ मिलाये हुए देवराज इन्द्र की भाँति अपने मेघाकार स्यन्दन पर समारूढ़ हुए।

टिप्पणी—उपमा अलंकार।

रथमास्थितस्य च पुराभिवर्तिनस्तिसृणां पुरामिव रिपोर्मुरद्विपः।
अथ धर्ममूर्तिरनुरागभावितः स्वयमादित प्रवयणं प्रजापतिः ॥१९॥

अर्थ—रथ पर आरूढ़ हो जाने के अनन्तर भगवान् के इन्द्रप्रस्थ की ओर अभिमुख होने पर धर्मराज युधिष्ठिर ने अनुराग में लीन होकर स्वयमेव घोड़ों की लगाम को इस प्रकार पकड़ा जिस प्रकार पूर्व काल में त्रैलोक्य पितामह ब्रह्मा त्रिपुरासुर पर अभियान करने वाले शंकर के रथ के घोड़ों की लगाम को पकड़ा था। •

टिप्पणी—उपमा और अतिशयोक्ति अलंकार।

शनकैरथास्य तनुजालकान्तरस्फुरितक्षपाकरकरोत्कराकृतिः।
पृथुफेनकूटमिव निम्नगापतेर्मरुतश्च सूनुरधुनात्प्रकीर्णकम् ॥२०॥

अर्थ—वायुपुत्र भीम भगवान् श्रीकृष्ण के ऊपर, सूक्ष्म छिद्रों वाली खिड़की के भीतर से प्रवेश करनेवाली चन्द्रमा की किरणों के समूह की भाँति दिखायी पड़ने वाले चमर को, समुद्र स्थित फेन के विशाल पुंज की भाँति धीरे-धीरे डुला रहे थे।

टिप्पणी—उपमा अलंकार।

निकसत्कलायकुसुमासितद्युतेरलघूड्पाण्डु जगतामधीशितुः।
यमुनाह्रदोपरिगहंसमण्डलद्युतिजिष्णु जिष्णुरभृतोष्णवारणम् २१

अर्थ—अर्जुन फूले हुए कलाय के पुष्प के समान नीले वर्ण वाले भगवान् श्रीकृष्ण के ऊपर विशाल नक्षत्र की भाँति शुभ्र वर्ण एवं यमुना के कुण्ड के ऊपर सुशोभित हँसों की पंक्तियों की शोभा को जीतने वाला श्वेत-छत्र धारण किए हुए थे।

टिप्पणी—उपमा अलंकार ।

पवनात्मजेन्द्रसुतमध्यवर्तिना नितरामरोचि रुचिरेण चक्रिणा ।
दधतेव योगमुभयग्रहान्तरस्थितिकारितं दुरुधराख्यमिन्दुना ॥२२॥

अर्थ—पवनपुत्र भीम और इन्द्रपुत्र अर्जुन के बीच में अवस्थित मनोहर आकृति वाले भगवान् श्रीकृष्ण सूर्य के अतिरिक्त अन्य दो ग्रहों के मध्य में स्थित होने के कारण उत्पन्न 'दुरुधरा' नामक योग पर अवस्थित चन्द्रमा की भाँति नितान्त सुशोभित हो रहे थे।

टिप्पणी—ज्योतिष शास्त्र में चन्द्रमा जब सूर्य के अतिरिक्त किन्हीं अन्य दो ग्रहों के मध्य में स्थित होता है तब दुरुधरा योग होता है। उपमा अलंकार।

यमिनं चितेरयनयाभिनिवेशिनं नियमो यमश्च नियतं यतिं यथा ।
विजयश्रिया वृतमिवार्कमारुतावनुसस्रतुस्तमथ दस्रयोः सुतौ ॥२३॥

अर्थ—भीम और अर्जुन के रथ पर बैठ जाने के अनन्तर, जिस प्रकार भाग्य तथा नीति व्यसनविहीन राजा का, यम और नियम आचारनिष्ठ यती का अनुसरण करते हैं, उसी प्रकार शत्रु पर विजय प्राप्ति के इच्छुक भगवान् श्रीकृष्ण के पीछे सूर्य और वायु की भाँति दस्र अर्थात् अश्विनी कुमारों के पुत्र नकुल और सहदेव ने अनुसरण किया ।

टिप्पणी—मालोपमा अलंकार।

मुदितैस्तदेति दितिजन्मनां रिपावविनीयसम्भ्रमविकासिभक्तिभिः ।
उपसेदिवद्भिरुपदेष्टरीव तैर्ददृशे विनीतमविनीतशासिभिः ॥२४॥

अर्थ—उस समय अत्यन्त प्रमुदित तथा निष्कपट आदर से अपनी अनन्य भक्ति प्रकट करने वाले एवं दुष्टों को शासित करता था।

पाण्डव भगवान् श्रीकृष्ण के समीप, गुरु के समीप विद्यमान शिष्यों की भाति परम विनीत भाव से बैठे हुए थे।

टिप्पणी—उपमा अलकार।

गतयोरभेदमिति सैन्ययोस्तयोरथ भानुजह्नुतनयाम्भसोरिव ।
प्रतिनादितामरविमानमानकैर्नितरां मुदा परमयेव दध्वने ॥२५॥

अर्थ—इस प्रकार चलती हुई दोनों सेनाएँ जब गगा और यमुना के जल प्रवाह की भाँति मिलकर एक हो गयीं तब मगल की सूचना देने-वाली दुन्दुभियाँ प्रसन्न होकर अत्यन्त गभीर स्वर मे इस प्रकार बजने लगीं मानों भगवान् श्रीकृष्ण को देखने के लिए आकाश मार्ग में उपस्थित देवताओं के विमान परस्पर टकरा रहे हों।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलकार।

मखमीक्षितुं क्षितिपतेरुपेयुषां परितः प्रकल्पितनिकेतनं बहिः ।
उपरुध्यमानमिव भूभृतां बलैः पुटभेदनं दनुसुतारिरैक्षत ॥२६॥

अर्थ—महाराज युधिष्ठिर का यज्ञ देखने के लिए समागत राजाओं की सेनाओं द्वारा, नगर के बाहर बनाए गए शिविरों से घिरे हुए आगे विद्यमान इन्द्रप्रस्थ को भगवान् श्रीकृष्ण ने इस प्रकार देखा मानों उसे चारों ओर से शत्रुओं ने घेर लिया हो।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलकार।

प्रतिनादपूरितदिगन्तरः पतन्पुरगोपुरं प्रति स सैन्यसागरः ।
रुरुचे हिमाचलगुहामुखोन्मुखः पयसां प्रवाह इव सौरसैन्धवः २७

अर्थ—घोर प्रतिध्वनि से दिशाओं को परिपूर्ण करते हुए वह सेना-रूपी समुद्र इन्द्रप्रस्थ के प्रवेश द्वार की ओर बढ़ता हुआ, हिमाचल की गुफा की ओर उन्मुख गंगा जल के प्रवाह की भाँति सुशोभित हुआ।

टिप्पणी—उपमा अलकार।

अगच्छदुगृहीतमहुदेहसंभवस्तदसौ विभक्तनवगोपुरान्तरम् ।
पुरुषः पुरं प्रविशति स्म पञ्चभिः सममिन्द्रियैरिव नरेन्द्रसूनुभिः २८

अर्थ—लोक की रक्षा के लिए अनेक बार मत्स्य, कूर्मादि नव शरीरों को धारण करने वाले, (पक्ष में, अपने कर्मानुसार अनेक योनि में विविध शरीर धारण करनेवाले) पुराण पुरुष भगवान श्रीकृष्ण ने (जीवात्मा ने) अलग-अलग बने हुए नव प्रवेश-द्वारों से शोभित (नव सख्यक इन्द्रियों के नव द्वारों से युक्त) इन्द्रप्रस्थ नगरी में पाचों इन्द्रियों के समान पांच राजपुत्रों (पाण्डवों) के साथ प्रवेश किया।

टिप्पणी—जिस प्रकार उपर्युक्त विशेषणों से युक्त जीवात्मा पूर्व शरीर को पाचों इन्द्रियों के साथ नये शरीर में प्रवेश करता है, उसी प्रकार पाचों राजपुत्रों के साथ भगवान श्रीकृष्ण ने इन्द्रप्रस्थ में प्रवेश किया। श्लेष और उपमा का संकर।

तनुभिस्त्रिनेत्रनयनानवेक्षितस्मरविग्रहद्युतिभिरयुतन्नराः।
प्रमदाश्च यत्र खलु राजयक्ष्मणः परतो निशाकरमनोरमैर्मुखैः २९

अर्थ—जिस (इन्द्रप्रस्थ) नगरी के पुरुष शंकर के तीसरे नेत्र द्वारा देखने के पूर्व कामदेव की शोभा से समलंकृत थे तथा जिसकी स्त्रियों का मुख क्षय रोग होने से पूर्व चन्द्रमा की भाँति सुशोभित था। (ऐसी इन्द्रप्रस्थ नगरी में भगवान श्रीकृष्ण प्रविष्ट हुए।

टिप्पणी—उपमा अलंकार।

अवलोकनाय सुरविद्विषो द्विषः पटहप्रणादनिहितोपहूतयः।
अवधीरितान्यकरणीयसत्वराः प्रतिरथ्यमीयुरथ पौरयोषितः ॥३०॥

अर्थ—(भगवान श्रीकृष्ण के पुरी-प्रवेश कर लेने के) अनन्तर मानो बजी हुई दुन्दुभि की गंभीर ध्वनियों से पुकारी गयी नगर रमणियाँ असुरों के शत्रु भगवान् श्रीकृष्ण को देखने के लिए दूसरे सभी कामों को छोड़ कर, प्रत्येक सड़क और गली में आ-आकर उपस्थित हो गयीं।

टिप्पणी—स्वभावोक्ति।

[अब अठारह श्लोकों में रमणियों का शृंगार वर्णन है।]

अभिवीक्ष्य सामिकृतमण्डनं यतीः कररुद्धनीविगलदंशुकाः स्त्रियः
दधिरेऽधिभित्ति पटहप्रतिस्वनैः स्फुटमट्टहासमिव सौधपङ्क्तयः ३१

अर्थ—कुछ स्त्रियाँ आधा ही शृंगार किये हुए थीं कि इसी बीच (भगवान् के नगर में आने का समाचार सुनकर) चल पड़ीं। उनकी साड़ी

खिसकी जा रही थी जिसे सभालने के लिए वे अपने हाथों से नीवि पकड़े हुए थीं। उन्हें इस अवस्था मे देखकर मानो अटारियों की पंक्तियाँ भीत पर प्रतिध्वनित होनेवाली तुरुही की गभीर ध्वनि से अट्टहास करती हुई परिहास करने लगी।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलकार।

रभसेन हारपदवत्तकाञ्चयः प्रतिमूर्धजं निहितकर्णपूरकाः।
परिवर्तिताम्बरयुगाः समापतन्वलयीकृतश्रवणपूरकाः स्त्रियः ॥३२॥

अर्थ—शीघ्रता के कारण किसी रमणी ने मुक्तामाला के स्थान पर करधनी पहन ली थी, किसी ने केशों पर कान के आभूषण पहन लिये थे, किसी ने ओढ़ने के दुपट्टे को पहनकर पहनने की साड़ी ओढ़ ली थी, किसी ने स्तनों को ढकनेवाली चोली को जघो मे पहन लिया था तो किसी ने कान के कुण्डल को कंकण के स्थान पर पहन लिया था। इस प्रकार वे रमणियाँ त्वरा म दौड़ने लगी थीं।

टिप्पणी—भ्रान्तिमान अलकार।

च्यतनोदपास्य चरणं प्रसाधिकाकरपल्लवाद्रसनशेन काचन।
द्रुतयावकैकपदचित्रितावनिं पदवीं गतेव गिरिजा हरार्धताम् ॥३३॥

अर्थ—एक सुन्दरी भगवान श्रीकृष्ण को देखने की शीघ्रता में अपना शृङ्गार करनेवाली दूती के करपल्लवों से अपने पैर को छुड़ाकर भगवान् शकर की अर्धाङ्गिनी पार्वती की भाँति गीले यावक से रंग गये एक पैर से धरतीतल को रंगती हुई आकर खड़ी हो गयी।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि उसका अभी तक एक ही पैर रंगा गया था। भगवान् श्रीकृष्ण के आ जाने के सवाद को सुनकर उसे इतना भी धैर्य नहीं रहा कि दूसरा पैर भी रंगा लेती। उपमा अलकार।

व्यचलन्विशङ्कटकटीरकस्थलीशिखरस्खलन्मुखरमेखलाकुलाः।
भवनानि तुङ्गतपनीयसङ्क्रमक्रमणक्वणत्कनकनूपुराः स्त्रियः ॥३४॥

अर्थ—विशाल जघनस्थली के शिखर पर इधर उधर लगने के कारण बजती हुई करधनी से परेशान की भाँति, एवं (अटारियों की) ऊँची ऊँची सुवर्ण की सीढ़ियों पर चढ़ते समय झनझनाते हुए नूपुरों को बजाती हुई वे रमणियाँ ऊँची-ऊँची अटारियों के ऊपर चढ़ गयीं।

टिप्पणी—वृत्यनुप्रास अलंकार ।

अधिरुक्ममन्दिरगवाक्षमुल्लसत्सुदृशो रराज मुरजिद्दिदृक्षया ।
वदनारविन्दमुदयाद्रिकन्दराविवरोदरस्थितमिवेन्दुमण्डलम् ॥३५॥

अर्थ—भगवान् श्रीकृष्ण को देखने की इच्छा से सुवर्ण की बनी अँटारियों के झरोखों पर विराजमान किसी सुन्दरी रमणी का मुखकमल, उदयाचल की गुफा के मध्य भाग मे सुशोभित चन्द्रमण्डल की भाँति हो रहा था ।

टिप्पणी—उपमा अलंकार ।

अधिरूढया निजनिकेतमुच्चकैः पवनावधूतवसनान्तयैकया ।
विहितोपशोभमुपयाति माधवे नगरं व्यरोचत पताकयेव तत् ॥३६॥

अर्थ—अपनी ऊँची अँटारी पर चढ़ी हुई किसी सुन्दरी की साडी का अँचल वायु के वेग से उड रहा था, इससे ऐसा मालूम पड रहा था मानों वह इन्द्रप्रस्थ नगरी भगवान् श्रीकृष्ण के शुभागमन के उपलक्ष में सजायी गयी पताका से सुशोभित हो रही है ।

टिप्पणी—अर्थात् वह सुन्दरी सुसज्जित इन्द्रप्रस्थ नगरी की पताका के समान सुशोभित हो रही थी । उत्प्रेक्षा अलंकार ।

करयुग्मपद्ममुकुलापवर्जितैः प्रतिवेश्म लाजकुसुमैरवाकिरन् ।
अवदीर्णशुक्तिपुटमुक्तमौक्तिकप्रकरैरिव प्रियरथाङ्गमङ्गनाः ॥३७॥

अर्थ—प्रत्येक घर के सामने सुन्दरियों ने मुकुलित कमल के सम्पुट की भाँति अपनी अञ्जलियों द्वारा फेंके गये अतएव मानों सीपी के सम्पुट से निकली हुई मोतियों के गुच्छों की भाँति श्वेत पुष्पों के समान धान के लावों से चक्रपाणि भगवान् श्रीकृष्ण का सुन्दर स्वागत किया ।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलंकार ।

हिममुक्तचन्द्ररुचिरः सपद्मको मदयन्द्विजाञ्जनितमीनकेतनः ।
अभवत्प्रसादितसुरो महोत्सवः प्रमदाजनस्य स चिराय माधवः ॥३८॥

अर्थ—शिशिर ऋतु के बीत जाने पर उदय होने वाले सुशोभित चन्द्रमा के समान मनोहर (पक्ष में, उक्त चन्द्रमा से अधिक मनोहर) श्रीसम्पन्न

(कमलों से उक्त) अपने शुभ दर्शन से ब्राह्मणों को हर्षित करने वाले (कोकिल आदि पंक्तियों को आनन्दित करने वाले) प्रद्युम्न के पिता (कामोद्दीपक) एवं देवताओं को प्रसन्न करनेवाले (मदिरा को अधिक उन्मादक एवं निर्मल बनाने वाले) भगवान् माधव अर्थात् श्रीकृष्ण (वसन्त ऋतु) स्त्रियों के लिए चिरकाल तक महोत्सव स्वरूप बन गये।

टिप्पणी—श्लेष से संकीर्ण उपमा।

धरणीधरेन्द्रदुहितुर्भयादसौ विषमेक्षणः स्फुटममूर्न पश्यति।
मदनेन वीतभयमित्यधिष्ठिताः क्षणमीक्षते स्म स पुरोविलासिनीः॥३९

अर्थ—भगवान शंकर हिमवान की पुत्री पार्वती के भय से (सपत्नी की आशंका से) इन नगर-रमणियों की ओर नहीं देखेंगे—मानों इसी विश्वास से कामदेव ने निर्भय होकर उन रमणियों में अपना आश्रय बना लिया था। इस प्रकार उन परम सुन्दरी नागरिक रमणियों को थोड़ी देर तक भगवान् श्रीकृष्ण देखते रहे।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि भगवान् श्रीकृष्ण को देखकर वे पुरसुन्दरियाँ कामातुर हो गयी थीं। गम्योत्प्रेक्षा।

विपुलेन सागरशयस्य कुक्षिणा भुवनानि यस्य पपिरे युगक्षये।
मदविभ्रमासकलया पपे पुनः स पुरस्त्रियैकतमयैकया दृशा॥४०॥

अर्थ—प्रलय के समय सागर में शयन करने वाले जिन भगवान् कृष्ण की विशाल कुक्षि ने समस्त भुवनों को अपने भीतर धारण किया था वही भगवान् एक नगर-सुन्दरी के मद-विलास से तिरछी हुई एक आँख से पी लिये गये।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि एक सुन्दरी ने अपने तिरछे नेत्र से तृष्णापूर्वक भगवान् को देखा। अधिक अलंकार।

अधिकोन्नमद्घनपयोधरं मुहुः प्रचलत्कलापिकलशङ्कुरस्वना।
अभिकृष्णमङ्गुलिमुखेन काचनद्रुतमेककर्णविवरं व्यघट्टयत्॥४१॥

अर्थ—एक सुन्दरी भगवान् श्रीकृष्ण के सम्मुख खड़ी होकर अपनी अँगुली के अग्रभाग से अपने कान के छेद को जब जल्दी-जल्दी खुजलाने लगी तब भुजा के अधिक ऊपर उठा लेने से उसके सघन स्तन

और भी ऊचे हो गये तथा नाचते हुए मयूर की ध्वनि के समान उसके ककण मधुर शब्द करने लगे।

टिप्पणी—उपमा अलकार।

परिपाटलाब्जदलचारुणासकृच्चलिताङ्गुलीकिसलयेन पाणिना।
सशिरःप्रकम्पमपरा रिपुं मधोरनुदीर्णवर्णनिभृतार्थमाह्वयत् ॥४२॥

अर्थ—एक कोई सुन्दरी लालवर्ण के कमल के पत्तो के समान मनोहर, बार-बार चलती हुई, किसलय के समान सुन्दर अँगुलियों से युक्त एक हाथ के इशारे से, अपने शिर को हिलाती हुई भगवान् श्रीकृष्ण को, औरो को मालूम न हो—इसलिए किसी स्पष्ट वाक्य का उच्चारण किये बिना ही बुला रही थी।

टिप्पणी—विलास भाव और उपमा अलकार।

नलिनान्तिकोपहितपल्लवश्रिया व्यवधाय चारु मुखमेकपाणिना।
स्फुरदङ्गुलीविवरनिःसृतोल्लसद्दशनप्रभाङ्कुरमजृम्भतापरा ॥४३॥

अर्थ—एक दूसरी सुन्दरी, कमल के पुष्प के समीप रहनेवाले पत्तो की भाँति सुशोभित अपने एक हाथ से अपने सहज सुन्दर मुख को ढककर जब जभाई लेने लगी तो उसकी गोरी गोरी अगुलियों के अन्तराल से निकली हुई छोटे-छोटे दातों की कान्तियाँ अत्यन्त सुन्दर दिखाई पडने लगीं।

टिप्पणी—अतिशयोक्ति अलकार।

वलयार्पितासितमहोपलप्रभाबहुलीकृतप्रतनुरोमराजिना।
हरिवीक्षणाक्षणिकचक्षुषान्यया करपल्लवेन गलदम्बरं दधे ॥४४॥

*अर्थ—भगवान् श्रीकृष्ण को स्थिर दृष्टि से देखने में अत्यन्त ध्यान-*मग्न एक सुन्दरी ने अपनी नीचे खिसकती हुई साडी को अपने हाथों मे पकड रखा था। उस समय उसकी कलाई मे सुशोभित कगण में जड़े हुए नीलम की कान्ति से उसकी सूक्ष्म रोमावलि अत्यन्त सघन मालूम पड रही थी।

टिप्पणी—यह ना[illegible] भाव है। श्लोक में [illegible] अलकार का व्यजना है।

निजसौरभभ्रमितभृङ्गपक्षतिव्यजनानिलक्षयितघर्मवारिणा ।
अभिशौरि काचिदनिमेषदृष्टिना पुरदेवतेव वपुषा व्यभाव्यत ॥४५॥

अर्थ—एक कोई सुन्दरी रमणी भगवान् श्रीकृष्ण के सम्मुख निर्निमेष नेत्रों से, अपने शरीर की सुगन्धि से इधर-उधर मँडराते हुए भ्रमरों के परारूपी व्यजनों की हवा से अपने पसीने को दूर कर रही थी। इस प्रकार अपने सुन्दर शरीर से वह सुन्दरी इन्द्रप्रस्थ नगरी की अधिष्ठात्री देवी के समान सुशोभित हो रही थी।

टिप्पणी—देवता लोग भी चन्दन के समान सुरभित शरीरवाले निर्निमेष नयन तथा स्वेद रहित होते हैं। यह पद्मिनी जाति की सुन्दरी थी जिसका यह लक्षण बताया गया है —कमलमुकुलमृद्वी फुल्लराजीव गन्धि सुरतपयसि यस्याः सौरभं दिव्यमङ्गम्। ४० वें श्लोक से लेकर ४५वें श्लोक तक वर्णित ये उपर्युक्त छहों नायिकाएँ प्रौढ़ा थीं। कवि ने इनके सौन्दर्य वर्णन में औचित्य की सीमा बहुत कुछ भुला दी है। भगवान् श्रीकृष्ण के आगमन को लेकर इन्द्रप्रस्थ में जो चहल पहल मची थी उसमें इस प्रकार के इशारों से बुलाने आदि की विलास कल्पना कुछ अच्छी नहीं मालूम देती।

अभियाति नः सतृष एष चक्षुषी हरिरित्यखिद्यत नितम्बिनीजनः।
न निवेद यः सततमेनमीक्षते न वितृष्णतां व्रजति सोऽप्यसावपि ४६

अर्थ—वे सुन्दरी रमणियाँ यह कह कह कर मानों खेद प्रकट करने लगीं कि हमारे नेत्र सतृष्ण ही बने रहे और यहाँ भगवान् चले भी गये। किन्तु वे (रमणियाँ) यह नहीं जानतीं थीं कि जो लोग भगवान् श्रीकृष्ण को बराबर देखते रहते हैं वह भी पूर्ण तृप्ति नहीं प्राप्त करते।

टिप्पणी— प्रथम से उत्थापित उत्प्रेक्षा अलङ्कार।

अकृतस्वसद्मगमनादरः क्षणं लिपिकर्मनिर्मित इव व्यतिष्ठत ।
गतमच्युतेन सह शून्यतां गतः प्रतिपालयन्मन इवाङ्गनाजनः ॥४७

अर्थ—वे रमणियाँ मानों भगवान् श्रीकृष्ण के साथ जाने वाले अपने मन की प्रतीक्षा करती हुई जहाँ की तहाँ खड़ी ही रह गयीं। और अपने भवन की ओर लौटने की इच्छा छोड़ कर क्षणभर के लिए चित्रलिखित सी हो गयीं।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलकार।

अलसैर्मदेन सुदृशः शरीरकैः स्वगृहान्प्रति प्रतिययुः शनैः शनैः।
अलघुप्रसारितविलोचनाञ्जलिद्रुतपीतमाधवरसौघनिर्भरैः ॥४८॥

अर्थ—अत्यन्त फैलायी गयी नेत्र-रूपी अजलियों से तुरन्त माधव (भगवान् श्रीकृष्ण, मदिरा) रूपी रस के प्रवाह को पान करने के कारण भारी एव आलस्य युक्त स्वल्प शरीरों वाली वे सुन्दरी रमणियाँ धीरे-धीरे अपने घर की ओर वापस लौट पडीं।

टिप्पणी—स्वय स्वल्प आकार की वस्तु यदि द्रव पदार्थों से खूब भर दी जाती है तो वह भारी हो ही जाती है। श्लेषमूलातिशयोक्ति से उत्थापित काव्यलिंग का सकर।

नवगन्धवारिविरजीकृताः पुरो घनधूपधूमकृतरेणुविभ्रमाः।
प्रचुरोद्धतध्वजविलम्बिवाससः पुरवीथयोऽथ हरिणातिपेतिरे ४९

अर्थ—नगर-प्रवेश के अनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण ने सुगन्धि-मिश्रित जल के छिडकने से धूलि रहित, अविरल अगुरु की धूप के धूम से धूल का भ्रम पैदा करने वाली, अधिक सख्या मे खडे हुए स्तम्भों पर सुसज्जित लबी-चोडी पताकाओं से सुशोभित नगरी की सडकों को पार किया।

टिप्पणी—भ्रान्तिमान् अलकार।

उपनीय बिन्दुसरसो मयेन या मणिदारु चारु किल वार्षपर्वणम्।
विदधेऽवधूतसुरसद्मसंपदं समुपासदत्सपदि संसदं स ताम् ॥५०॥

अर्थ—असुरशिल्पी मय ने बिन्दुसर के समीप से वृषपर्वा नामक असुरसम्राट् के सभा भवन से मणिमय स्तम्भ आदि सामग्रियों को लाकर जिस सभामडप का निर्माण किया था और जो देवराज इन्द्र की ससद् की शोभा को तिरस्कृत करने वाली थी उसी सभामण्डप में (भगवान् श्रीकृष्ण आदि) शीघ्र ही पहुँच गये।

टिप्पणी—महाभारत की कथा के अनुसार खाण्डवदाह के अवसर पर पाण्डवो ने असुरशिल्पी मय को अग्नि में जलने से बचा लिया था उसी उपकार के बदले में जब पाण्डवो को गद्दी मिली तब मय ने बिन्दु सरोवर के समीप वृषपर्वा नामक

असुरसम्राट् के सभा भवन के निर्माण से बचाये हुए जिन मणिमय स्तम्भों आदि को छिपा रखा था, उसी से युधिष्ठिर के लिए एक सुन्दर सभामण्डप का निर्माण किया था। उदात्त अलकार।

[नीचे के दस श्लोको म कवि ने सभा भवन का वर्णन किया है—]

अधिरात्रि यत्र निपतन्नभोलिहां कलधौतधौतशिलवेश्मनां रुचौ।
पुनरप्यवापदिव दुग्धवारिधिक्षणगर्भवासमनिदाघदीधितिः ॥५१॥

अर्थ—रात्रि के समय आकाश को चूमने वाली जिस सभा की इमारत में लगी हुई चाँदी के समान शुभ्र वर्ण की स्फटिक मणि की शिलाओं पर किरणों के पडने से चन्द्रमा ऐसा दिखाई पडता है, मानो पुन कुछ काल के लिए वह क्षीर समुद्र के गर्भ मे विराज रहा है।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलकार।

लयनेषु लोहितकनिर्मिता भुवः शितिरत्नरश्मिहरितीकृतान्तराः।
जमदग्निसूनुपितृतर्पणीरपो वहति स्म या विरलशैवला इव ॥५२॥

अर्थ—उस सभा भवन के कक्षों म बीच बीच मे नील मणि की किरणों के पडने से हरे रंग की पद्मराग मणि से बनी हुई फर्श परशुराम के पितरों को तृप्त करने वाली उस रक्त राशि की शोभा धारण कर रही थी जिसम बीच-बीच मे सेवार दिखाई पडते हों।

टिप्पणी—प्रसिद्धि है कि क्षत्रिय राजा द्वारा अपने पिता की हत्या किए जाने से क्रोधान्ध परशुराम ने क्षत्रियो के रक्त से पाच सरोवर भर दिये थे और उन्ही से अपने पितरो का तर्पण किया था। उपमा अलकार।

विशदाश्मकूटघटिताः क्षपाकृतः क्षणदासु यत्र च रुचैकतां गताः।
गृहपङ्क्तयश्चिरमतीयिरे जनैस्तमसीव हस्तपरिमर्शसूचिताः ५३

अर्थ—उस सभा भवन की गृह-पक्तियाँ स्फटिक की शिलाओं द्वारा बनाये जाने के कारण रात्रि में चन्द्रमा की किरणों से एक रग की हो जाने से (उजेली रात मे भी) अन्धेरी रात की भाँति लोगों द्वारा हाथ से स्पर्श करके देर मे पार की जाती थीं।

टिप्पणी—सामान्य अलंकार।

निलयेषु नक्तमसिताश्मनां चयैर्बिसिनीवधूपरिभवस्फुटागसः।
मुहुरत्रसद्भिरपि यत्र गौरवाच्छशलाञ्छनांशव उपांशु जघ्निरे॥५४॥

अर्थ—उस सभा भवन में रात्रि के समय, मानों बावली की पद्मिनी-रूपी रमणियों का तिरस्कार करने (सकुचित कराने) के कुकृत्य से स्पष्ट अपराध करने वाली चन्द्रमा की किरणों को, निर्दोष होने से निर्भीक एवं विकसित इन्द्रनील मणि की किरणें अपने गौरव से एकान्त में पाकर छिपा लेती थीं अथवा मार डालती थीं।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि सभा भवन में लगे हुए प्रचुर नीलम की किरणों से चन्द्रमा की किरण छिप जाती थी। स्त्रियों को लाञ्छित करने में सहायक कुटनियाँ अथवा जारों को एकान्त में ही छिपाया अथवा मारा जाता है। विरोध, श्लेष और एकांगी रूपक का संकर।

सुखिनः पुरोऽभिमुखतामुपागतैः प्रतिमासु यत्र गृहरत्नभित्तिषु।
नवसंगमैरविमुखः प्रियाजनैः प्रमदं त्रपाभरपराङ्मुखैरपि॥५५॥

अर्थ—उस सभा भवन में प्रियतमों के साथ नवीन समागम होने के कारण नववधुएँ यद्यपि लज्जा से दूसरी ओर मुँह करके खड़ी होती थीं, किन्तु उसकी रत्नजटित दीवालों पर प्रतिबिम्ब के पड़ने से वे प्रियतमों के सम्मुख ही दिखाई पड़ती थीं। उस समय उन पराङ्मुख लज्जाशील रमणियों के साथ भी उनके प्रियतम परम हर्ष प्राप्त करते थे।

टिप्पणी—विरोधाभास अलंकार।

तृणवाञ्छया मुहुरवाञ्चिताननान्निचये च यत्र हरिताश्मवेश्मनाम्।
रसनाग्रलग्नकिरणाङ्कुराञ्जना हरिणान्गृहीतकवलानिवैक्षत॥५६॥

अर्थ—उस सभा भवन में हिरणों के समूह मरकत मणि से बने भवनों के समीप घास चरने की इच्छा से जब बार-बार मुँह को नीचे की ओर झुकाते थे, तो जीभ के अग्रभाग में लगने वाली नूतन अंकुरों के समान मरकत की किरणों से वे ऐसे दिखाई पड़ते थे मानों सचमुच ही मुख में घास का कवल उठाये हुए हों।

टिप्पणी—भ्रान्तिमान् और उत्प्रेक्षा का सकर।

विपुलालवालभृतवारिदर्पणप्रतिमागतैरभिविरेजुरात्मभिः।
यदुपान्तिकेषु दधतो महीरुहः सपलाशराशिमिव मूलसंहतिम् ५७

अर्थ—उस सभा भवन के समीप में लगे हुए वृक्ष समूह, अपने विशाल आलवालों (थाल्हा, मूल जलाधार) में भरे हुए जल-रूपी दर्पण में प्रतिबिंबित होकर अपने ही शरीर से इस प्रकार दिखाई पडते थे मानो उनकी जडो में ही पत्ते लगे हुए हों।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलकार।

उरगेन्द्रमूर्धरुहरत्नसंनिधेर्मुहुरुन्नतस्य रसितैः पयोमुचः।
अभवन्यदङ्गणभुवः समुच्छ्वसन्नववालवायजमणिस्थलाङ्कुराः ५८

अर्थ—सर्पो के शिर की मणियो के समीप होने के कारण बार-बार ऊँचे उठे हुए मेघों के गरजने से उस सभाभवन का आगन नूतन वैदूर्य मणि के स्थलीय अकुरों से व्याप्त हो जाता था।

टिप्पणी—कवियो की प्रसिद्धिया भी विचित्र होती है। ऐसा विश्वास है कि सर्पमणि जहा समीप होती है वहा मेघ सदा गरजते रहते है और जब मेघ गरजते रहते है तब वदय मणियों में अकुर उत्पन्न होते है। उदात्त अलकार।

नलिनी निगूढसलिला च यत्र सा स्थलमित्यधःपतति या सुयोधने।
अनिलात्मजप्रहसनाकुलाखिलक्षितिपक्षयागमनिमित्ततां ययौ ५६

अर्थ—उस सभाभवन मे कमलिनी के नीचे जल ऐसा छिपा हुआ था कि दुर्योधन ने उस पर स्थल की भ्रान्ति से जब पैर रखा तब वह गिर पडा। उसके इस पतन पर भीमसेन ने जब अट्टहास किया तो व्याकुल हुए धरती के सम्पूर्ण राजाओ की सेना के विनाश का कारण *महाभारत मच गया। इस प्रकार उस सत्यानाशी महाभारत का* निमित्त वही सभा भवन बना था।

टिप्पणी—उदात्त अलकार।

हसितुं परेण परितः परिस्फुरत्करवालकोमलरुचावुपेचितैः।
उदकर्पि यत्र जलशङ्कया जनैर्मुहुरिन्द्रनीलभुवि दूरमम्बरम् ।।६०।

अर्थ—उस सभाभवन मे चारों ओर चमकती हुई तलवार की धार के समान नीली कान्तिवाली इन्द्रनील मणि की फर्श पर बने स्थलों को, दूसरे लोग जब हँसने के लिये आगन्तुकों को नहीं बताते थे तो वे आगन्तुक वहाँ पहुँच कर जल के भ्रम से दूर से ही अपना वस्त्र ऊपर उठा लेते थे।

टिप्पणी—भ्रान्तिमान् अलकार।

अभितः सदोऽथ हरिपाण्डवौ रथादमलांशुमण्डलसमुल्लसत्तनू।
अवतेरतुर्नयननन्दनौ नभः शशिभार्गवावुदयपर्वतादिव ॥६१॥

अर्थ—तदन्तर तेज पुञ्ज से विभासमान शरीर वाले, जनता के नेत्रों को आनन्द देने वाले भगवान् श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर सभा-भवन के सम्मुख रथ से इस प्रकार नीचे उतरे जैसे उपर्युक्त विशेषताओं से युक्त चन्द्रमा और शुक्र आकाश मे उदयाचल से अवतीर्ण होते है।

टिप्पणी—उपमा अलकार।

तदलक्ष्यरत्नमयकुड्यमादरादभिधातरीत इत इत्यथो नृपे।
धवलाश्मरश्मिपटलाविभावितप्रतिहारमाविशदसौ सदः शनैः ६२

अर्थ—रथ से उतरने के अनन्तर जब धर्मराज युधिष्ठिरने आदर-पूर्वक कहा कि—इधर से आइए, इधर से, तब न दिखाई पडने वाली पूर्वोक्त दीवालों से युक्त उस सभाभवन मे भगवान् श्रीकृष्ण ने धीरे-धीरे प्रवेश किया, जिसके द्वार शुभ्र स्फटिक मणि की किरणों के समूह से नहीं दिखायी पड़ रहे थे।

टिप्पणी—अतिशयोक्ति अलकार।

नवहाटकेष्टकचितं ददर्श स क्षितिपस्य पस्त्यमथ तत्र संसदि।
गगनस्पृशां मणिरुचां चयेन यत्सदनान्युदहसयत नाकिनामपि ६३

अर्थ—सभाभवन में प्रवेश करने के अनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण ने उसी सभाभवन मे विद्यमान, नूतन सुवर्ण की ईंटों से बनाये गये राजा युधिष्ठिर के भवन को देखा, जो अपनी आकाश को स्पर्श करने वाली मणियों के किरण-पुञ्जों से देवताओं के भवनों का भी परिहास कर रहा था।

टिप्पणी—अतिशयोक्ति अलंकार।

उदयाद्रिमूर्ध्नि युगपच्चकासतोर्दिननाथपूर्णशशिनोरसंभवाम्।
रुचिमासने रुचिरधाम्नि बिभ्रतावलघुन्यथ न्यपदतां नृपाच्युतौ ६४

अर्थ—(राजा युधिष्ठिर का भवन देखने के) अनन्तर उदयाचल के शिखर पर एक साथ विराजमान सूर्य एवं पूर्ण चन्द्रमा की असम्भव शोभा को धारण करने वाले राजा युधिष्ठिर तथा भगवान् श्रीकृष्ण-चन्द्र उज्ज्वल एवं प्रकाश से युक्त विशाल सिंहासन पर (एक साथ) समासीन हुए।

टिप्पणी—अतिशयोक्ति अलंकार।

सुतरां सुखेन सकलक्लमच्छिदा सनिदाघमङ्गमिव मातरिश्वना।
यदुनन्दनेन तदुदन्वता पयः शशिनेव राजकुलमाप नन्दथुम् ६५

अर्थ—महाराज युधिष्ठिर का सम्पूर्ण राजपरिवार, सम्पूर्ण दुःखों को दूर करनेवाले यदुनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण को पाकर इस प्रकार अत्यन्त आनन्द में विभोर हो गया जिस प्रकार ग्रीष्म की ज्वाला से सतप्त अंग शीतल वायु को पाकर तथा समुद्र का जल चंद्रमा को पाकर।

टिप्पणी—मालोपमा अलंकार।

अनवद्यवाद्यलयगामि कोमलं
नवगीतमप्यनवगीततां दधत्।
स्फुटसात्त्विकाङ्गिकमनृत्यदुज्ज्वलं
सविलासलासिकविलासिनीजनः ॥६६॥

अर्थ—विलास से युक्त नर्तकियाँ उत्तमोत्तम वाद्यों के स्वर के साथ नवीन-नवीन गीतों को सुन्दर ढंग से गाती हुई एवं अपने मानसिक, वाचिक एवं आंगिक भावों को प्रकट करती हुई कोमल अर्थात् मधुर एवं उद्धत नृत्य करने लगीं।

टिप्पणी—नृत्य और नृत्त के सम्बन्ध में नीचे की कारिकाएं स्मरण करने योग्य हैं —

भावाश्रयं तु नृत्यं स्यान्नृत्तं ताललयाश्रयम्।

आद्य पदार्थाभिनयो मार्गो दशा तया परम् ॥
मधुरोद्धतभेदेन तदद्वय द्विविध पुन ।
लास्यताण्डवरूपेण नाटकाद्युपकारकम् ॥ दशरूपक ।

अर्थात् नृत्य उसे कहते है जो भावात्मक होता है, तथा जो ताल और लय के अनुसार होता है उसे नृत्त कहते है। नृत्य द्वारा पदार्थाभिनय होता है। दूसरा अर्थात् नृत्त देशज होता है। मधुर और उद्धत भेद से फिर ये दोनो दो प्रकार के होते हैं तथा लास्य और ताण्डव रूप से नाटकादि म सहायक होते है।

सकले च तत्र गृहमागते हरौ नगरेऽप्यकालमहमादिदेश सः ।
सततोत्सवं तदिति नूनमुन्मुदो रभसेन विस्मृतमभून्महीभृतः ॥६७

अथ—राजा युधिष्ठिर ने भगवान् श्रीकृष्ण के इन्द्रप्रस्थ पधारने पर समग्र नगर मे अकाल महोत्सव मनाने का आदेश दे दिया था। ऐसा मालूम पडता था कि भगवान् श्रीकृष्ण के आगमन के हर्षातिरेक में वे यह भूल गये थे कि उनका नगर तो सर्वदा ही उत्सव सम्पन्न बना रहता है।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलंकार।

हरिराकुमारमखिलाभिधानवित्स्वजनस्य वार्तमयमन्वयुङ्क्त च ।
महतीमपि श्रियमवाप्य विस्मयः सुजनो न विस्मरति जातु किंचन ६८

अथ—सभी लोगों का नाम जाननेवाले भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने स्वजनों से बचपन से लेकर अब तक की आरोग्य की बातें पूछीं। (क्यों न पूछते, यह उनके योग्य ही था) क्योंकि विशाल सम्पत्ति पाकर भी निरहंकार रहनेवाले सुजन लोग कदापि कोई बात नहीं भूलते।

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलंकार।

मर्त्यलोकदुरवापमवाप्तरसोदयं
नूतनत्वमतिरक्ततयानुपदं दधत् ।
श्रीपतिः पतिरसाववनेश्च परस्पर
सकथामृतमनेकमसिस्वदतामुभौ ॥६९॥

अर्थ—लक्ष्मी के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण तथा पृथ्वी के स्वामी राजा युधिष्ठिर—दोनों उस समय परस्पर अनेक प्रकार के उत्कृष्ट रस से युक्त, मनुष्य लोक के लिए दुर्लभ, अत्यन्त स्नेह सिक्त होने के कारण प्रत्येक पद में नूतनता से संपृक्त सभाषण-रूपी अमृत रस का आस्वादन करते रहे।

टिप्पणी—रूपक अलंकार। रमणीयक वृत्त। लक्षण—"रानन्द्रिनर-रै रुदित रमणीयकम्॥

श्री माघकविकृत शिशुपालवध महाकाव्य में श्रीकृष्ण समागम नामक तेरहवाँ सर्ग समाप्त॥ १३॥

चौदहवाँ सर्ग

तं जगाद गिरमुद्गिरन्निव स्नेहमाहितविकासया दृशा।
यज्ञकर्मणि मनः समादधद्वाग्विदां वरमकद्वदो नृपः ॥१॥

अर्थ—सत्यवादी राजा युधिष्ठिर ने अपने यज्ञ की क्रियाओं में चित्त को भली भांति लगाकर प्रसन्नता प्रकट करने वाली अपनी आंखों से मानों स्नेह उड़ेलते हुए सुन्दर वचन बोलने वालों एवं वचन के मर्मों को समझने वालों म श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्ण से यह बात कही—

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा और वृत्यनुप्रास की संसृष्टि। इस सर्ग में रथोद्धता छन्द है। लक्षण—'रान्नराविह रथोद्धता लगौ'।

[नीचे के दस श्लोकों में युधिष्ठिर ने वही बात कही जिसका प्रथम छन्द में संकेत किया गया है—]

लज्जते न गदितः प्रियं परो वक्तुरेव भवति त्रपाधिका।
व्रीडमेति न तव प्रियं वदन्ह्रीमतान्नभवतैव भूयते ॥२॥

अर्थ—हे भगवन्! कोई भी मनुष्य चाटुकारी की बातें सुनने पर लज्जित नहीं होता वरन् चाटुकारी करने वाला ही लज्जित होता है, किन्तु आप की प्रशंसा करने वाला तो लज्जित नहीं होता किन्तु उसे सुनकर आप ही लज्जित हो जाते हैं।

तोषमेति वितथैः स्तवैः परस्ते च तस्य सुलभाः शरीरिभिः।
अस्ति न स्तुतिवचोऽनृतं तव स्तोत्रयोग्य न च तेन तुष्यसि ॥३॥

अर्थ—आपको छोड़कर दूसरे लोग झूठी प्रशंसाओं से सन्तुष्ट हो जाते हैं और उनके लिए वे झूठी प्रशंसाएं लोगों को सुगमता से मिल भी जाती हैं। किन्तु हे स्तुतियों के स्वामी! आपके लिए तो कोई भी स्तुति वचन झूठा हो ही नहीं सकता, मालूम होता है, इसीलिए आप स्तुतियों से प्रसन्न नहीं होते।

टिप्पणी—व्यतिरेक अलकार।

यद्यपि प्रियमयं तव ब्रुवन्न ब्रजत्यनृतवादितां जनः।
संभवन्ति यददोषदूषिते सार्व सर्वगुणसंपदस्त्वयि ॥४॥

अर्थ—यह जन (मैं) आपकी प्रशसा की बहुत-सी बातें करते हुए भी मिथ्यावादी नहीं हो रहा है। हे समस्त जगत के कल्याणकर्त्ता! सब प्रकार के अवगुणों से रहित आपसे ही तो सब प्रकार के गुणों की सम्पदा उत्पन्न होती है।

टिप्पणी—काव्यलिंग अलकार।

सा विभूतिरनुभावसंपदां भूयसी तव यदायतायति।
एतदूढगुरुभार भारतं वर्षमद्य मम वर्तते वशे ॥५॥

अर्थ—हे विश्वम्भर! यह भारतवर्ष जो चिरकाल तक के लिए मेरे अधीन हो गया है उसमें आप के ही अतिशय सामर्थ्य की विशेष महिमा है।

टिप्पणी—अतिशयोक्ति अलकार।

[इस प्रकार भगवान् का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर अब अपने कार्य के सम्बन्ध में राजा युधिष्ठिर निवेदन करते हैं—]

सप्ततन्तुमधिगन्तुमिच्छतः कुर्वनुग्रहमनुज्ञया मम।
मूलतामुपगते प्रभो त्वयि प्रापि धर्ममयवृक्षता मया ॥६॥

अर्थ—हे भगवन्! मैं यज्ञ करना चाहता हूँ अत. उसके लिए आप अनुज्ञा प्रदान कर मुझे अनुगृहीत करें। मूल में आप ही को प्राप्त कर के ही मैंने धर्ममय वृक्ष का पद प्राप्त किया है।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार मूल अर्थात् जड के न होने से वृक्ष कुछ देर भी नहीं ठहर सकता, उसी प्रकार मूल में आपके अनुग्रह के बिना मेरी धर्मरूपी वृक्षता नहीं ठहर सकती। महाभारत में भगवान् श्रीकृष्ण की मूलता एव युधिष्ठिर की धर्मवृक्षता की चर्चा इस प्रकार की गयी है—

युधिष्ठिरो धर्ममयो महाद्रुमः स्कन्धोऽर्जुनो भीमसेनोऽस्य शाखा।
माद्रीपुत्रौ पुष्पफले समृद्धे मूलं कृष्णो ब्रह्म च ब्राह्मणाश्च।

संभृतोपकरणेन निर्मलां कर्तुमिष्टिमभिवाञ्छता मया ।
त्वं समीरण इव प्रतीक्षितः कर्षकेण वलजान्पुपूषता ॥७॥

अर्थ—उस निर्मल यज्ञ को करने की आकांक्षा से सभी साधनों को एकत्र करके मैं, गुराव को ओसाने के लिए वायु की प्रतीक्षा करने वाले किसान की भाँति आप की प्रतीक्षा कर रहा था ।

वीतविघ्नमनघेन भाविता संनिधेस्तव मखेन मेऽधुना ।
को विहन्तुमलमास्थितोदये वासरश्रियमशीतदीधितौ ॥८॥

अर्थ—अब आप के समीप होने से मेरा यह यज्ञ विघ्न-बाधाओं से रहित तथा निर्दोष सम्पन्न होगा । क्योंकि उष्णरश्मि सूर्यनारायण के उदित रहने पर दिन की शोभा को कौन दूर कर सकता है ? (अर्थात् कोई नहीं ।)

टिप्पणी—दृष्टान्त अलंकार ।

स्वापतेयमधिगम्य धर्मतः पर्यपालयमवीवृधं च यत् ।
तीर्थगामि करवै विधानतस्तज्जुषस्व जुहवानि चानले ॥९॥

अर्थ—हे प्रभो ! जिस धन को क्षात्रधर्म पूर्वक प्राप्त कर के मैंने एकत्र किया है और बढ़ाया है उसे मैं विधिपूर्वक ब्राह्मणों के अधीन करूँगा तथा अग्नि में हवन करूगा । आप उसका सेवन करें ।

टिप्पणी—अर्थात् अग्नि में डाला हुआ भी तो तुम्हारे ही मुख में जायगा ।

पूर्वमङ्ग जुहुधि त्वमेव वा स्नातवत्यवभृथे ततस्त्वयि ।
सोमपायिनि भविष्यते मया वाञ्छितोत्तमवितानयाजिना ॥१०॥

अर्थ—अथवा हे प्रियवर ! पहले तुम ही हवन करो । सोमपान कर तुम्हारे यज्ञ की समाप्ति होने पर अवभृथस्नान कर लेने के बाद मैं अपना उत्तम राजसूय यज्ञ आरम्भ करूगा ।

टिप्पणी—यह युधिष्ठिर का विनयशीलता का सुन्दर प्रमाण है ।

किं विधेयमनया विधीयतां त्वत्प्रसादजितयार्थसंपदा ।
शाधि शासक जगत्त्रयस्य मामाश्रवोऽस्मि भवतः सहानुजः ॥११॥

अर्थ—अथवा हे प्रभो! आप के ही अनुग्रह से प्राप्त इस धन-सम्पत्ति का और दूसरा क्या उपयोग होगा? आप ही पहले इसका सदुपयोग करें। हे तीनों लोकों के स्वामी! मुझे मेरे कर्त्तव्य की शिक्षा दीजिये। अपने सभी भाइयों समेत मैं आप की आज्ञा के अधीन हूँ।

टिप्पणी—उक्त दोनों श्लोकों में प्रेय अलंकार है।

तं वदन्तमिति विष्टरश्रवाः श्रावयन्नथ समस्तभूभृतः।
व्याजहार दशनांशुमण्डलव्याजहारशबलं दधद्वपुः ॥१२॥

अर्थ—तदनन्तर इस प्रकार की बातें करते हुए राजा युधिष्ठिर से, समस्त राजाओं को सुनाते हुए, अपने उज्वल दाँतों की किरणों के मण्डल रूपी मोतियों की माला के छल से चित्र-विचित्र दिखाई पड़ने वाले शरीर को धारण करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण ने यह बात कही—

टिप्पणी—अपह्नव अलंकार।

सादिताखिलनृपं महन्महः संप्रति स्वनयसंपदैव ते।
किं परस्य स गुणः समश्नुते पथ्यवृत्तिरपि यद्यरोगिताम् ॥१३॥

अर्थ—हे राजन्! सम्प्रति तुम्हारे तेज ने अपनी नीति की महिमा से ही समस्त राजाओं को अपने वश में कर लिया है।* (इसमें मेरा कोई अनुग्रह नहीं है, क्योंकि) यदि कोई मनुष्य पथ्य से रहने के कारण ही आरोग्य लाभ करता है तो उसमें वैद्य का क्या निहोरा है?

टिप्पणी—यह युधिष्ठिर द्वारा कही गयी पाँचवें श्लोक की बात का उत्तर भगवान् ने दिया है। दृष्टान्त अलंकार।

त्वत्पुराजि भवति स्थिते पुनः कः क्रतुं यजतु राजलक्षणम्।
उद्धृतौ भवति कस्य वा भुवः श्रीवराहमपहाय योग्यता ॥१४॥

अर्थ—अतः सब प्रकार से सुयोग्य आप जैसे राजा के रहते हुए दूसरा कौन ऐसा है जो क्षत्रिय राजाओं के सर्वथा योग्य राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान कर सकता है (अर्थात् कोई नहीं)। भला इस धरती को ऊपर उठाने की क्षमता श्रीवराह को छोड़ कर भला अन्य किस पुरुष में है? (अर्थात् किसी में नहीं।)

टिप्पणी—इस श्लोक में युधिष्ठिर द्वारा कहे गये दसवें श्लोक का उत्तर है दृष्टान्त अलकार ।

शासनेऽपि गुरुणि व्यवस्थितं कृत्यवस्तुषु नियुङ्क्ष्व कामतः ।
त्वत्प्रयोजनधनं धनंजयादन्य एष इति मा च मावगाः ॥१५॥

अर्थ—हे युधिष्ठिर ! मैं आप के अत्यन्त दुष्कर आदेशों में भी लगा रहूँगा, आप मुझे करणीय कार्यों मे अपनी इच्छा के अनुसार जहाँ चाहें वहाँ नियुक्त करें । आप के कार्य ही मेरे परम कर्त्तव्य हैं। आप मुझे धनजय से तनिक भी भिन्न न मानें ।

टिप्पणी—इस श्लोक में युधिष्ठिर के सवाद के सातवें श्लोक का उत्तर है। अतिशयोक्ति और काव्यलिग का अगागिभाव से सकर ।

यस्तवेह सवने न भूपतिः कर्म कर्मकरवत्करिष्यति ।
तस्य नेष्यति वपुः कबन्धतां बन्धुरेष जगतां सुदर्शनः ॥१६॥

अर्थ—जो राजा आपके इस राजसूय यज्ञ में भृत्य के समान कार्य न करेगा उसके शरीर को जगत् का हितैषी रूप मेरा यह सुदर्शन चक्र शिर से विहीन कर देगा।

टिप्पणी—यह युधिष्ठिर के सवाद के आठवें श्लोक का उत्तर है। रूपक अलकार ।

इत्युदीरितगिरं नृपस्त्वयि श्रेयसि स्थितवति स्थिरा मम ।
सर्वसंपदिति शौरिमुक्तवानुद्वहन्मुदमुदस्थित क्रतौ ॥१७॥

अर्थ—इस प्रकार की बात कहने के अनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण से युधिष्ठिर ने कहा—'मेरे कल्याणकारी कार्यों में आप के उपस्थित रहने पर मेरी समस्त सम्पत्ति स्थिर रहेगी।' ऐसा कहकर युधिष्ठिर आनन्दित चित्त से यज्ञ के समारम्भ में प्रवृत्त हो गये ।

[आगे के पतीस श्लोकों द्वारा यज्ञ का अनेक प्रकार से वर्णन किया गया है—]

आननेन शशिनः कलां दधद्दर्शनक्षयितकामविग्रहः ।
आप्लुतः स विमलैर्जलैरभूदष्टमूर्तिधरमूर्तिरष्टमी ॥१८॥

अर्थ—मुख द्वारा चन्द्रमा की शोभा धारण कर, (शिव पक्ष में, मस्तक पर शशिखण्ड धारण कर) दार्शनिक ज्ञान से काम और क्रोध

को नष्ट कर (दृष्टि से कामदेव का शरीर नष्टकर) और निर्मल जल से स्नान कर (गंगा जल से सिक्त) राजा युधिष्ठिर अष्टमूर्तिधारी शंकर की आठवीं मूर्ति अर्थात् राजसूय यज्ञ के यजमान बन गये।

टिप्पणी—शिव की आठ मूर्तियाँ यह कही जाती हैं। (१) पृथ्वी, (२)जल, (३) पवन, (४) अग्नि, (५) आकाश, (६) चन्द्रमा, (७) सूर्य और (८) यजमान। श्लेष अलङ्कार।

तस्य सांख्यपुरुषेण तुल्यतां बिभ्रतः स्वयमकुर्वतः क्रियाः।
कर्तृता तदुपलम्भतोऽभवद्वृत्तिभाजि करणे यथर्त्विजि ॥१६॥

अर्थ—होम आदि क्रियाओं (पुण्य-पाप कर्मों) को स्वयं न करते हुए, (उदासीन रहते हुए) सांख्य शास्त्र में बताये गए आत्मा की समानता धारण करने वाले राजा युधिष्ठिर को, अन्तःकरण अर्थात् बुद्धि के समान, हवनादि यज्ञ कर्म कराते हुए, पुरोहितों द्वारा-यह मेरा यज्ञ हो रहा है, इस प्रकार की भावना से कर्त्तापन की प्राप्ति हुई।

टिप्पणी—सांख्य शास्त्र के मत से आत्मा पुण्य-पाप कुछ भी नहीं करता, वह सदा निष्क्रिय और निर्विकार रहता है, बुद्धि ही सब कार्य करती है, किन्तु कर्त्तापन की प्राप्ति पुरुष अर्थात् आत्मा को ही होती है, उसी प्रकार राजा युधिष्ठिर यद्यपि होम आदि यज्ञीय विधानों में सम्मिलित नहीं हुए थे, फिर भी पुरोहितों द्वारा सब अनुष्ठानों के कर्त्ता वही थे। अर्थात् पुरोहित यज्ञ कर रहे थे और राजा युधिष्ठिर सब देख रहे थे। उपमा अलङ्कार।

शब्दितामनपशब्दमुच्चकैर्वाक्यलक्षणविदोऽनुवाक्यया।
याज्यया यजनकर्मिणोऽत्यजन्द्रव्यजातमपदिश्य देवताम् ॥२०॥

अर्थ—मीमांसा शास्त्र में पारङ्गत ऐसे यज्ञकर्त्ता पुरोहित लोग, जिनके उच्चारण में कभी अशुद्धियाँ नहीं होती थीं, उच्च स्पष्ट स्वर से याज्या श्रुति का उच्चारण कर आवाहित देवताओं को लक्ष्य कर के अग्नि में आहुतियाँ छोड़ने लगे।

टिप्पणी—यज्ञ के मन्त्रों के उच्चारण में विशेष निपुणता होनी चाहिए अन्यथा अनर्थ की आशंका रहती है। कहा जाता है कि एक बार इन्द्र के शत्रु वृत्रासुर ने अपनी अभ्युदय-कामना से यज्ञ कराया, किन्तु पुरोहितों द्वारा मन्त्रों के स्वर का विपर्यय

रर देने से उसी बेचारे का सत्यानाश हो गया। आचार्य पाणिनि ने मत्रों के उच्चारण के सम्बन्ध में बड़ी चेतावनी देते हुए कहा है —

मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात् ॥

—पाणिनीय शिक्षा

अर्थात् स्वर या वर्ण के उच्चारण दोष के कारण मत्र अपने वास्तविक अर्थ को नही प्रकट करता और इस प्रकार वह वाग्वज्र बन कर उसी प्रकार यजमान का सत्यानाश करता है जैसे वृत्रासुर का हुआ था। स्वभावोक्ति अलकार।

सप्तभेदकरकल्पितस्वरं साम सामविदसङ्गमुज्जगौ।
तत्र सूनृतगिरश्च सूरयः पुण्यमृग्यजुषमध्यगीषत ॥२१॥

अर्थ—यज्ञ मे सामवेद मे निष्णात उद्गाता लोग कर विन्यास द्वारा निषाद आदि सातों स्वरों को व्यजित करते हुए परस्पर अस्खलित स्वर से अथवा स्पष्ट स्वर से सामवेद का गान करने लगे। इसी प्रकार सर्वदा प्रीतिकर एव सत्य वचन बोलनेवाले होता तथा अध्वर्यु लोग ऋग्वेद और यजुर्वेद का पाठ करने लगे।

टिप्पणी—वृत्यनुप्रास अलकार।

बद्धदर्भमयकाञ्चिदामया वीक्षितानि यजमानजायया।
शुष्मणि प्रणयनादिसंस्कृते तैर्हवींषि जुहवाम्बभूविरे ॥२२॥

अर्थ—कुशो की मंजु मेखला पहने हुए यजमान की पत्नी द्रौपदी देवी हवनीय पदार्थों का (घूम-घूम कर) निरीक्षण कर रही थीं। उनके द्वारा निरीक्षित द्रव्यों को पुरोहित लोग शास्त्रीय विधानों से भली भाँति सस्कृत अग्नि मे होम कर रहे थे।

टिप्पणी—अनुप्रास अलकार।

नाञ्जसा निगदितुं विभक्तिभिर्व्यक्तिभिश्च निखिलाभिरागमे।
तत्र कर्मणि विपर्यणीनमन् मन्त्रमूहकुशलाः प्रयोगिणः ॥२३॥

अर्थ—लिंग, वचन इत्यादि के भेद से शब्दो के अर्थों को बदलने में निपुण पुरोहित लोग उस यज्ञ मे वेदोक्त समस्त विभक्ति, वचन, और लिंगों द्वारा कठिन मत्रों के अर्थों मे बड़ी कुशलता से उक्त फेर-बदल कर देते थे।

टिप्पणी—प्रसग के भेद से काव्यलिंग अलकार।

संशयाय दधतोः सरूपतां दूरभिन्नफलयोः क्रियां प्रति।
शब्दशासनविदः समासयोर्विग्रहं व्यवससुः स्वरेण ते ॥२४॥

अर्थ—मत्रों में जहाँ-कहीं ऐसे सदेह उत्पन्न करने वाले समास आ जाते थे जिनका विग्रह कई प्रकार से हो सकता था तो ऐसे स्थलों पर व्याकरण शास्त्र के विद्वान् पुरोहित लोग उनका उदात्तादि स्वर बदल कर अपने यजमान के प्रकृत कर्म के अनुकूल अर्थ का निश्चय, विग्रह द्वारा कर रहे थे।

टिप्पणी—तात्पय यह है कि सन्दिग्ध समासो से विपरीत अर्थ निकलने की सभावना बनी रहती थी। जैसे वृत्रासुर के यज्ञ म पुरोहितो ने 'इन्द्रशत्रु' शब्द के लिए षष्ठी तत्पुरुष समास तथा बहुव्रीहि समास में स्वर भेद करके अपने यजमान का ही विनाश कर दिया था। अत व्याकरण शास्त्र के पण्डित पुरोहित लोग अपने यजमान राजा युधिष्ठिर के अनुकूल पडने वाले अर्थ के अनुसार स्वर का पाठ कर रहे थे। काव्य लिंग अलकार।

लोलहेतिरसनाशतप्रभामण्डलेन लसता हसन्निव।
प्राज्यमाज्यमसकृद्वषट्कृतं निर्मलीमसमलीढ पावकः ॥२५॥

अर्थ—प्रकाशमान चचल ज्वाला-रूपी सेकड़ों जिह्वाओं के प्रभा-मण्डल से मानो हसती हुई यज्ञाग्नि प्रचुर परिमाण में विशुद्ध एव मत्रपूर्वक आहुति किये गये घृत का बार-बार आस्वादन कर रही थी।

तत्र मन्त्रपवितं हविः क्रतावश्नतो न वपुरेव केवलम्।
वर्णमपदमतिस्फुटां दधन्नाम चोज्ज्वलमभूद्धविर्भुजः ॥२६॥

अर्थ—उस राजसूय यज्ञ मे मत्रो द्वारा पवित्र किए गए हवनीय द्रव्यों को खाने वाली अग्नि न केवल अपनी अत्यन्त प्रकाशमान स्वरूप सम्पत्ति से युक्त शरीर को ही धारण कर रही थी प्रत्युत अपने स्पष्ट अक्षरों वाले 'हविर्भुक्' अर्थात् हवि को खाने वाले इस नाम को भी चरितार्थ कर रही थी।

टिप्पणी—काव्यलिंग अलकार।

स्पर्शमुष्णमुचितं दधच्छिखी यद्ददाह हविरद्भुतं न तत् ।
गन्धतोऽपि हुतहव्यसंभवाद्देहिनामदहदोघमंहसाम् ॥२७॥

अर्थ—स्वभावतः उष्णस्पर्शगुण को धारण करनेवाली अग्नि हवनीय द्रव्यों को जो भस्म कर रही थी, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। किन्तु वह हवनीय पदार्थों के जलाने से उत्पन्न सुगन्धि से ही जो प्राणियों के पाप-समूहों को जला रही थी—यही आश्चर्य की बात थी।

टिप्पणी—काव्यलिंग तथा अतिशयोक्ति का संकर।

उन्नमन्सपदि धूम्रयन्दिशः सान्द्रतां दधदधःकृताम्बुदः।
द्यामियाय दहनस्य केतनः कीर्तयन्निव दिवौकसां प्रियम् ॥२८॥

अर्थ—हवन करने के साथ ही उठा हुआ, दिशाओं को धूमिल करता हुआ एवं उत्तरोत्तर सघनता को प्राप्त कर मेघों को तिरस्कृत करता हुआ अथवा मेघों को नीचे करता हुआ अग्नि का पताका अर्थात् धूम, मानों आकाश में रहने वाले देवताओं को प्रीतिकर संवाद सुनाने के लिए ही आकाश में ऊपर की ओर जा रहा था।

टिप्पणी—फलोत्प्रेक्षा अलंकार।

निर्जिताखिलमहार्णवौषधिस्यन्दसारममृतं ववल्गिरे।
नाकिनः कथमपि प्रतीक्षितुं हूयमानमनले विषेहिरे ॥२९॥

अर्थ—देवताओं ने मन्थन के समय महासमुद्र में उतराई हुई दिव्य औषधियों के सार-रूप में उत्पन्न अमृत को भी पराजित करने वाले घृत का भोजन किया। अग्नि में हवन करने में होने वाले विलंब की प्रतीक्षा वे बड़ी कठिनाई से कर रहे थे।

टिप्पणी—अतिशयोक्ति और काव्यलिंग का संकर।

तत्र नित्यविहितोपहूतिषु प्रोषितेषु पतिषु द्युयोषिताम्।
गुम्फिताः शिरसि वेणयोऽभवन्न प्रफुल्लसुरपादपस्रजः ॥३०॥

अर्थ—उस यज्ञ में नित्य ही आवाहित होने के कारण इन्द्रादि देवताओं के प्रवासी होने से स्वर्ग की इन्द्राणी आदि देवियों के शिरों

पर जटाएँ ही बँधी रहती थीं, मन्दार के पुष्पों की मालाएं नहीं सजाई जाती थीं।

टिप्पणी—पति के प्रवासी होने पर प्राचीन काल में स्त्रियाँ प्रोषितभर्तृका का निम्नलिखित धर्म पालन करती थीं, इन्द्राणी आदि भी उसी का पालन कर रही थी।

क्रीडा शरीरसंस्कारं समाजोत्सवदर्शनम्।
हास्यं परगृहे यानं त्यजेत् प्रोषितभर्तृका॥

अतिशयोक्ति अलंकार।

प्राशुराशु हवनीयमत्र यत्तेन दीर्घममरत्वमध्यगुः।
उद्धतानधिकमेधितौजसो दानवांश्च विबुधा विजिग्यिरे॥३१॥

अर्थ—देवता लोग उस यज्ञ में शीघ्रतापूर्वक हुने गये पदार्थों का जो भक्षण कर रहे थे उसी से चिरकाल व्यापी अमरत्व की प्राप्ति उन्हें हुई, उनका पराक्रम बहुत बढ गया तथा उन्होंने गर्वीले एवं उपद्रवी दानवों को पराजित किया।

टिप्पणी—अतिशयोक्ति, काव्यलिंग तथा समुच्चय का संकर।

नापचारमगमन्क्वचित्क्रियाः सर्वमत्र समपादि साधनम्।
अत्यशेरत परस्परं धियः सत्रिणां नरपतेश्च संपदः॥३२॥

अर्थ—उस राजसूय यज्ञ में जितनी भी क्रियाएँ सम्पन्न हुई, किन्हीं में कोई दोष नहीं हुआ तथा यज्ञ की सभी सामग्रियाँ पूरी पड गयीं। यही नहीं, यज्ञकर्ता पुरोहितों की बुद्धि तथा राजा युधिष्ठिर की समृद्धि—ये दोनों भी एक दूसरे के संयोग से बहुत बढ़ गयी।

टिप्पणी—काव्यलिंग और तुल्ययोगिता का संकर।

दक्षिणीयमवगम्य पङ्क्तिशः पङ्क्तिपावनमथ द्विजव्रजम्।
दक्षिणः क्षितिपतिर्व्यशिश्रणद्दक्षिणाः सदसि राजसूयकीः॥३३॥

अर्थ—तदनन्तर परम उदारता से युक्त राजा युधिष्ठिर ने, दक्षिणा के उपयुक्त पात्र, पंक्तियों में बैठे हुए पंक्ति पावन ब्राह्मणों के समीप पहुँच कर उन्हें राजसूय यज्ञ के उपयुक्त उचित दक्षिणाएँ प्रदान कीं।

टिप्पणी—वृत्यनुप्रास अलंकार।

वारिपूर्वमखिलासु सत्क्रियालब्धशुद्धिषु धनानि बीजवत् ।
भावि बिभ्रति फलं महद्‌द्विजक्षेत्रभूमिषु नराधिपोऽवपत् ॥३४॥

अर्थ—राजा युधिष्ठिर ने अभिषेक आदि संस्कारों से शुद्ध उस ब्राह्मण-रूपी भूमि में भविष्य में स्वर्गादि-रूप महान् फल देने वाली धनराशि को, बीज की भाँति, जल दान पूर्वक बो दिया।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि अंजलि में संकल्प का जल देने के साथ ही राजा ने स्वर्ग की कामना से विपुल धन-राशि की प्रचुर दक्षिणा उन ब्राह्मणों को दी। रूपक और उपमा का संकर।

किं नु चित्रमधिवेदि भूपतिर्दक्षयन्द्विजगणानपूयत ।
राजतः पुपुविरे निरेनसः प्राप्य तेऽपि विमलं प्रतिग्रहम् ॥३५॥

अर्थ—राजा युधिष्ठिर यज्ञवेदी पर ब्राह्मणों को विपुल दक्षिणा से सन्तुष्ट करके पवित्र हो गये। इसमें आश्चर्य की क्या बात थी? किन्तु वे ब्राह्मण लोग भी निष्पाप राजा से विशुद्ध दान प्राप्त कर जो पवित्र हो गये—यह सचमुच आश्चर्य की बात थी।

टिप्पणी—काव्यलिंग अलंकार।

स स्वहस्तकृतचिह्नशासनः पाकशासनसमानशासनः ।
आशशाङ्कतपनार्णवस्थितेर्विप्रसादकृत भूयसीर्भुवः ॥३६॥

अर्थ—पाकशासन अर्थात् इन्द्र के समान शासन करने वाले राजा युधिष्ठिर ने अपने हस्ताक्षर से युक्त नियम अर्थात् दस्तावेज के पत्रों पर लिखकर चन्द्रमा तथा सूर्य की स्थिति पर्यन्त स्थिर रहने वाली विपुल भूमि ब्राह्मणों को दान में दी।

टिप्पणी—उपमा और अनुप्रास की संसृष्टि।

शुद्धमश्रुतिविरोधि बिभ्रतं शास्त्रमुज्ज्वलमवर्णसंकरैः ।
पुस्तकैः सममसौ गणं मुहुर्वाच्यमानमशृणोद्‌द्विजन्मनाम् ॥३७॥

अर्थ—राजा युधिष्ठिर ने पवित्र आचरण वाले (पक्ष में, अपशब्द रहित) वेद सम्मत शास्त्रों को धारण करने वाले, (सुनने में मधुर) वर्ण संकरता से रहित होने के कारण कुलीन (वर्णों के परस्पर न मिलने

से स्पष्ट अर्थ युक्त) बारबार परिचितों द्वारा वेश एवं गुण का वर्णन किए जाते हुए (बांचे जाते हुए) ब्राह्मणों के समूहों को (उपर्युक्त विशेषणों से युक्त) पुस्तकों के साथ ही देखा।

टिप्पणी—दृष्टान्तोपम महृति अलंकार।

तत्प्रणीतमनसामुपेयुषां द्रष्टुमाहवनमग्रजन्मनाम्।
आतिथेयमनिवारितातिथिः कर्तुमाश्रमगुरुः स नाश्रमत् ॥३८॥

अर्थ—अतिथियों को कभी न लौटाने वाले तथा ब्रह्मचर्यादि आश्रमों के नियन्ता राजा युधिष्ठिर ने यज्ञ देखने के लिये आये हुए प्रसन्न-चित्त ब्राह्मणों का आतिथ्य करते हुए तनिक भी थकावट का अनुभव नहीं किया।

टिप्पणी—काव्यलिंग अलंकार।

मृग्यमाणमपि यद्दुरासदं भूरिसारमुपनीय तत्स्वयम्।
आसतावसरकाङ्क्षिणो बहिस्तस्य रत्नमुपदीकृतं नृपाः ॥३९॥

अर्थ—जो (रत्न) बहुत ढूँढ़ने पर भी कठिनाई से मिलते थे, एवं जिनका मूल्य अत्यधिक था, उन भेंट किए हुए रत्नों को स्वयं लेकर राजा लोग महाराज युधिष्ठर की सेवा के अवसर की प्रतीक्षा करते हुए (यज्ञमण्डप से) बाहर खडे थे।

टिप्पणी—पारणाम एवं उदात्त अलंकार।

एक एव वसु यद्ददौ नृपस्तत्समापकमतर्क्यत क्रतोः।
त्यागशालिनि तपःसुते ययुः सर्वपार्थिवधनान्यपि क्षयम् ॥४०॥

अर्थ—एक ही राजा ने (भेंट रूप में) जो धन दिया था, वही उस राजसूय यज्ञ को सविधि सम्पन्न करने में समर्थ था—ऐसा लोग समझ रहे थे। किन्तु त्यागी राजा युधिष्ठिर के द्वारा समस्त आगत राजाओं द्वारा दिया गया सम्पूर्ण धन भी (उस यज्ञ में) व्यय हो गया।

टिप्पणी—यहाँ पर क्षय क्रिया विशेषण उचित नहीं था व्यय ही उचित था। अतिशयोक्ति अलंकार।

प्रीतिरस्य ददतोऽभवत्तथा येन तत्प्रियचिकीर्षवो नृपाः।
स्पर्शितैरधिकमागमन्मुदं नाधिवेश्म निहितैरुपायनैः ॥४१॥

अर्थ—राजा युधिष्ठिर को भेंट में पाये हुए समग्र धन को ब्राह्मणों में दान करते समय इतनी अधिक प्रसन्नता हुई कि उतनी प्रसन्नता कोष में रखने पर न होती। इसी प्रकार उनके हितैषी राजाओं को, उन्हें (युधिष्ठिर को) दिए गए भेंट से ही अधिक प्रसन्नता हुई, उस धन को अपने कोश में रखने से उन्हें उतनी प्रसन्नता नहीं हो सकती थी।

टिप्पणी—परिसंख्या अलंकार।

यं लघुन्यपि लघूकृताहितः शिष्यभूतमशिषत्स कर्मणि।
सस्पृहं नृपतिभिर्नृपोऽपरैर्गौरवेण ददृशेतरामसौ ॥४२॥

अर्थ—शत्रुओं को तिरस्कृत करने वाले राजा युधिष्ठिर ने शिष्य की भाँति जिस किसी राजा को छोटे-से छोटे कार्य में भी नियुक्त किया, उस राजा को दूसरे राजा लोग बड़े गौरव के साथ स्पर्द्धा की दृष्टि से देखते थे।

टिप्पणी—अतिशयोक्ति अलंकार।

आद्यकोलतुलितां प्रकम्पनैः कम्पितां मुहुरनीदृगात्मनि।
वाचि रोपितवताऽमुना महीं राजकाय निपया विभेजिरे ॥४३॥

अर्थ—आदि वराह द्वारा सृष्टि के आरम्भ में उद्धार किये जाने पर भी जिस पृथ्वी को हिरण्याक्ष आदि उपद्रवियों ने वैसी स्थिर नहीं रहने दिया था, उसी धरती को राजा युधिष्ठिर ने अपने वचन से स्थिर करते हुए राजाओं के समूहों में (तुम्हारा राज्य यहाँ तक है—उनका राज्य वहाँ तक है—इस प्रकार सीमा बताते हुए) बाँट दिया।

टिप्पणी—व्यतिरेक अलंकार।

आगतानुद्व्यवसितेन चेतसा सत्त्वसंपदविकारिमानसः।
तत्र नाभवदसौ महाहवे शात्रवानिव पराङ्मुखोऽर्थिनः ॥४४॥

अर्थ—ज्ञान की समृद्धि से अविकृत चित्तवाले राजा युधिष्ठिर, इस महान् राजसूय यज्ञ में निश्चित ही पर्याप्त धन का लाभ होगा—ऐसा चित्त में निश्चय करके आनेवाले याचकों से उसी प्रकार पराङ्मुख नहीं हुए जिस प्रकार, इस महान् युद्ध में निश्चय ही शत्रुओं का विनाश

होगा—इस प्रकार का निश्चय चित्त मे करके आनेवाले शत्रुओं से वे कभी पराङ्मुख नहीं हुए थे।

टिप्पणी—श्लेषसंकीर्ण उपमा अलकार।

नैचतार्थिनमवज्ञया मुहुर्याचितस्तु न च कालमाक्षिपत्।
नादिताल्पमथ न व्यकत्थयद्दत्तमिष्टमपि नान्वशेत सः ॥४५॥

अर्थ— राजा युधिष्ठिर याचना करने वालों को तनिक भी अनादर की दृष्टि से नहीं देखते थे और न मांगने पर देर लगाते थे। उन्हें न तो वे थोड़ा ही देते थे, न अपनी प्रशंसा ही करते थे, और न अपनी प्रिय से प्रिय वस्तु देकर भी पश्चात्ताप करते थे।

टिप्पणी—विशेषोक्ति अलकार।

निर्गुणोऽपि विमुखो न भूपतेर्दानशौण्डमनसः पुरोऽभवत्।
वर्षुकस्य किमपः कृतोन्नतेरम्बुदस्य परिहार्यमूषरम् ॥४६॥

अर्थ—दान शूर चित्त वाले उन राजा युधिष्ठिर के सामने से तपस्या, विद्या आदि गुणों से हीन भी याचक निष्फल नहीं गया। (ठीक ही था, क्योंकि) जल बरसाने वाला उमड़ा हुआ बादल क्या कभी ऊसर भूमि को छोड़कर बरसता है?

टिप्पणी—दृष्टान्त अलकार।

प्रेम तस्य न गुणेषु नाधिकं न स्म वेद न गुणान्तरं च सः।
दित्सया तदपि पार्थिवोऽर्थिनं गुण्यगुण्य इति न व्यजीगणत् ४७

अर्थ—राजा युधिष्ठिर को गुणों से प्रेम नहीं था, ऐसी बात नहीं थी (उन्हें गुणों से प्रेम था)। ऐसा भी नहीं था कि वह किसी विशेष गुण को न जानते हों। किन्तु ऐसा होने पर भी पृथ्वी के पति राजा युधिष्ठिर ने केवल दान करने की इच्छा से याचकों मे गुणी और गुणहीन होने का विचार नहीं किया।

टिप्पणी—विशेषोक्ति अलकार।

दर्शनानुपदमेव कामतः स्वं वनीवकजनेऽधिगच्छति।
प्रार्थनार्थरहितं तदाभवद्दीयतामिति वचोऽतिसर्जने ॥४८॥

अथ—याचक लोग राजा युधिष्ठिर का दर्शन करने के बाद (बिना माँगे ही) जब यथेच्छ धन प्राप्त कर लेते थे तब 'दीयताम्' अर्थात् 'मुझे दीजिए' यह शब्द याचना के अर्थ में नहीं रह जाता था प्रत्युत वह त्याग के अर्थ में (अर्थात् इतना अधिक धन का क्या होगा? दूसरों को दे दीजिए, याचकों में भी ऐसा विचार) हो जाता था।

टिप्पणी—परिसंख्या अलंकार।

नानवाप्तवसुनार्थकाम्यता नाचिकित्सितमदेन रोगिणा।
इच्छताशितुमनाशुषा न च प्रत्यगामि तदुपेयुषा सदः ॥४६॥

अथ—उस सभा (यज्ञ) में धन-प्राप्ति की इच्छा से आने वाले बिना धन के नहीं लौटे, रोगग्रस्त बिना नीरोग हुए नहीं लौटे, भूखे बिना भर पेट खाये नहीं लौटे। तात्पर्य यह कि, जो जिस इच्छा को लेकर आया उसकी वह सब इच्छा पूरी हुए बिना न रही।

टिप्पणी—तुल्ययोगिता अलंकार।

स्वादयन्रसमनेकसंस्कृतप्राकृतैरकृतपात्रसंकरैः।
भावशुद्धिसहितैर्मुदं जनो नाटकैरिव बभार भोजनैः ॥५०॥

अथ—अनेक प्रकार के हींग मिर्च आदि मसाला डालकर बनाये गये पदार्थ तथा स्वतः प्रकृति से पके हुए फलादि से युक्त (पक्ष में, अनेक प्रकार की संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओं से युक्त) तथा अनेक बर्तनों में रखने के कारण परस्पर न मिले हुए अथवा एक साथ भोजन करने के लिए न परोसे गये तथा निर्मल चित्त एवं भाव से परोसे गये (रति आदि स्थायी भावों की शुद्धि से संयुक्त) भोजनों से (पूर्वोक्त विशेषणों से युक्त) नाटकों की भाँति उस यज्ञ के लोगों ने मधुर आदि छहों रसों का (शृंगार आदि नवों रसों का) विधिवत् आस्वादन किया।

टिप्पणी—श्लेष सकाण उपमा अलंकार।

रक्षितारमिति तत्र कर्मणि न्यस्य दुष्टदमनक्षमं हरिम्।
अक्षतानि निरवर्तयत्तदा दानहोमयजनानि भूपतिः ॥५१॥

अथ—इस प्रकार राजा युधिष्ठिर ने अपने उस राजसूय यज्ञ में दुष्टों

का दमन करने में समर्थ भगवान् श्री कृष्ण को रक्षक नियुक्त कर विधि पूर्वक दान-हवनादि यज्ञादि कर्मों का अनुष्ठान किया।

टिप्पणी—पदार्थहेतुक काव्यलिंग।

एक एव सुसखैष सन्वतां शौरिरित्यभिनयादिवोच्चकैः।
यूपरूपकमनीनमद्भुजं भूश्चपालतुलिताङ्गलीयकम् ॥५२॥

अर्थ—उस यज्ञ मण्डप के मध्य में चपाल रूपी अगुलियों से युक्त, यूप रूपी बाहु को ऊंचा उठाकर मानों अभिनय-सा करते हुए महाराज युधिष्ठिर यह कह रहे थे कि—'सोमयाज करने वालों के एकमात्र सच्चे सखा भगवान् श्रीकृष्ण ही है।'

टिप्पणी—उपमा तथा उत्प्रेक्षा का सकर।

इत्थमत्र विततक्रमे क्रतौ वीक्ष्य धर्ममथ धर्मजन्मना।
अर्घदानमनु चोदितो वचः सभ्यमभ्यधित शन्तनोः सुतः ॥५३॥

अर्थ—इस प्रकार विस्तारपूर्वक होने वाले उस राजसूय यज्ञ की समाप्ति के अनन्तर राजा युधिष्ठिर ने जब धर्मशास्त्र का विचार करते हुए अर्घ्य दान के सम्बन्ध में पूछा, तब शन्तनु के पुत्र भीष्म ने उस सभा के अनुकूल यह उत्तर दिया—

टिप्पणी—वृत्त्यनुप्रास अलकार

[अब सर्ग की समाप्ति तक भीष्म की वाणी की ही चर्चा चलेगी—]

आत्मनैव गुणदोषकोविदः किं न वेत्सि करणीयवस्तुषु।
यत्तथापि न गुरून्न पृच्छसि त्वं क्रमोऽयमिति तत्र कारणम् ५४

अर्थ—समग्र गुणों और दोषों के जानने वाले तुम करणीय वस्तुओं में क्या नहीं जानते? किन्तु सब जानते हुए भी गुरु जनों से न पूछो, यह भी तुमसे नहीं हो सकता, क्योंकि सदाचार की यह परिपाटी ही है (कि जानते हुए भी गुरुजनों से पूछना उचित है)।

टिप्पणी—परिसंख्या अलकार।

[भीष्म अब युधिष्ठिर के प्रश्न का उत्तर दे रहे हैं—]

स्नातकं गुरुमभीष्टमृत्विजं संयुजा च सह मेदिनीपतिम्।
अर्घभाज इति कीर्तयन्ति षट् ते च ते युगपदागताः सदः ॥५५॥

अर्थ—हे राजन् ! स्नातक, गुरु, बन्धु, पुरोहित, जामाता तथा राजा पण्डितों ने इन्हीं छहों को अर्घ्य का पात्र अर्थात् पूज्य बतलाया है, और ये सब के सब तुम्हारी सभा में यहाँ एक साथ ही आए हुए हैं।

टिप्पणी—तुल्ययोगिता अलङ्कार ।

शोभयन्ति परितः प्रतापिनो मंत्रशक्तिविनिवारितापदः ।
त्वन्मखं मुखभुवः स्वयंभुवो भूभुजश्च परलोकजिष्णवः ॥५६॥

अर्थ—और शत्रुओं को सन्तप्त करने वाले (तेजस्वी) वेद मंत्रों की शक्ति से (विचार शक्ति से) दैवी और मानुषी विपत्तियों को दूर करने वाले, परलोक को जीतने वाले (शत्रुओं को पराजित करने वाले) स्वयम्भू भगवान् ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न ब्राह्मण तथा राजा लोग तुम्हारे इस यज्ञ को चारों ओर से सुशोभित कर रहे हैं।

टिप्पणी—तुल्ययोगिता अलङ्कार ।

आभजन्ति गुणिनः पृथक्पृथक्पार्थ सत्कृतिमकृत्रिमाममी ।
एक एव गुणवत्तमोऽथवा पूज्य इत्ययमपीष्यते विधिः ॥५७॥

अर्थ—हे युधिष्ठिर ! इन पूर्वोक्त छः पूजनीयों में से प्रत्येक स्नातक आदि पृथक्-पृथक् निष्कपट सत्कार के उचित पात्र हैं (अर्थात् इन सब की एक साथ ही पूजा करनी चाहिए) अथवा इनमें से अत्यन्त गुणयुक्त किसी एक की ही पूजा करनी चाहिए—यह भी एक विधि है।

टिप्पणी—[illegible] अलङ्कार ।

अत्र चैष सकलेऽपि भाति मां प्रत्यशेषगुणबन्धुरर्हति ।
भूमिदेवनरदेवसङ्गमे पूर्वदेवरिपुरर्हणां हरिः ॥५८॥

अर्थ—इस समय भूमिदेव ब्राह्मणों और नरदेव राजाओं के इस सम्पूर्ण समागम में भी, मुझे तो सम्पूर्ण गुणों के आगार, देवताओं के शत्रुओं अर्थात् असुरों के विनाशक भगवान् श्रीकृष्ण ही एकमात्र पूजा के अधिकारी दिखायी पड़ते हैं।

टिप्पणी—[illegible] । इस कथन का कवि का तात्पर्य है कि [illegible] और [illegible] भी ऐसा कोई नहीं है जो तुम्हारी पूजा ग्रहण करने की क्षमता रखता हो । परिसंख्या अलङ्कार ।

[अब सर्ग की समाप्ति तक श्रीकृष्ण की पूज्यता को सिद्ध करने के प्रसग में भीष्म उनकी स्तुति कर रहे हैं —]

मर्त्यमात्रमवदीधरद्भवान्मैनमानमितदैत्यदानवम् ।
अंश एष जनतातिवर्तिनो वेधसः प्रतिजनं कृतस्थितेः ॥५९॥

अर्थ—दैत्यों और दानवों को झुकाने वाले इन भगवान् श्रीकृष्ण को तुम केवल मनुष्य मत मानो । यह समस्त जगत से परे एव सभी प्राणियों के अन्तर्यामी परमात्मा के अंशभूत हैं ।

टिप्पणी—काव्यलिंग ।

ध्येयमेकमपथे स्थितं धियः स्तुत्यमुत्तममतीतवाक्पथम् ।
आमनन्ति यमुपास्यमादराद्दूरवर्तिनमतीव योगिनः ॥६०॥

अर्थ—योगपरायण नारदादि इन्हें एकमात्र प्रधान पुरुष, सर्वश्रेष्ठ, ध्यान करने योग्य, बुद्धि से अगोचर, स्तुति करने योग्य, वाणी की शक्ति से परे, आदरपूर्वक उपासना करने योग्य किन्तु अतीव दुष्प्राप्य बतलाते हैं । (अत इन्हें केवल मनुष्य मत मानो ।)

टिप्पणी—विरोधाभास अलंकार ।

पद्मभूरिति सृजञ्जगद्रजः सत्त्वमच्युत इति स्थितिं नयन् ।
संहरन्हर इति श्रितस्तमस्त्रैधमेष भजति त्रिभिर्गुणैः ॥६१॥

अर्थ—यही भगवान् रजोगुण का आश्रय लेकर जब सृष्टि की रचना करते हैं तब ब्रह्मा कहे जाते हैं, सत्त्व गुण का आश्रय लेकर जब सृष्टि का पालन करते हैं तब अच्युत अर्थात् विष्णु कहे जाते हैं, एव तमोगुण का आश्रय लेकर जब जगत् का संहार करते हैं तब हर कहे जाते हैं—इस प्रकार यही अकेले इन तीनों गुणों के आश्रय से उक्त तीनों रूप धारण करते हैं ।

टिप्पणी—काव्यलिंग अलंकार ।

सर्ववेदिनमनादिमास्थितं देहिनामनुजिघृक्षया वपुः ।
क्लेशकर्मफलभोगवर्जितं पुंविशेषममुमीश्वरं विदुः ॥६२॥

अर्थ—इन सर्वज्ञ भगवान् श्रीकृष्ण को पण्डित लोग जन्म और मृत्यु रहित, प्राणियों पर अनुग्रह करने की इच्छा से मनुष्य शरीर धारण करने वाले, पाचों क्लेशों तथा पाप पुण्य के फलों से रहित, ईश्वर एव परम पुरुष बतलाते हैं।

टिप्पणी—अविद्या अस्मिता (अपनपन का अभिमान) राग द्वेष और अभिनिवेश (अर्थात मृत्यु आदि स बचने का आग्रह अथवा किसी काम में हठ) ये पाच क्लेश कहे जाते ह । विरोधाभास और काव्यलिंग का सकर।

भक्तिमन्त इह भक्तवत्सले संततस्मरणरीणकल्मषाः ।
यान्ति निर्वहणमस्य संसृतिक्लेशनाटकविडम्बनाविधेः ॥६३।

अर्थ—भक्तों पर दयालु इन भगवान् श्रीकृष्ण मे अनुराग रखने वाले लोग निरन्तर इनका स्मरण कर अपने समस्त पापों का विनाश कर देते हैं और ससार रूपी दु खान्त नाटक में अभिनय करने के व्यापार से छुटकारा पा जाते हैं।

टिप्पणी—रूपक अलकार ।

ग्राम्यभावमपहातुमिच्छवो योगमार्गपतितेन चेतसा ।
दुर्गमेकमपुनर्निवृत्तये यं विशन्ति वशिनं मुमुक्षवः ॥६४॥

अर्थ—मोह को त्यागने के इच्छुक अर्थात् मुमुक्षु लोग इस ससार मे पुन आगमन से छुटकारा पाने के लिए योग मार्ग में अपने चित्त को लगा कर इन्हीं अद्वितीय, दुष्प्राप्य एव स्वतन्त्र भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान करते हैं।

आदितामजननाय देहिनामन्ततां च दधतेऽनपायिने ।
बिभ्रते भुवमधः सदाथ च ब्रह्मणोऽप्युपरि तिष्ठते नमः ॥६५॥

अर्थ—प्राणियों की उत्पत्ति के आदि कारण एवं संहार के हेतु, स्वय अजन्मा एव नाशरहित तथा सर्वदा पाताल में रहकर कूर्म रूप में पृथ्वी को धारण करने वाले तथा ब्रह्मलोक के ऊपर भी निवास करने वाले इन भगवान् श्रीकृष्ण को हमारा नमस्कार है।

टिप्पणी—व्यतिरेक अलकार ।

केवलं दधाति कर्तृवाचिनः प्रत्ययानिह न जातु कर्मणि ।
धातवः सृजतिसंहृशास्तयः स्तौतिरत्र विपरीतकारकः ॥६६॥

अर्थ—सृजन करना, संहार करना तथा शासन अर्थात् पालन करना—ये तीनों ही क्रियाएँ इन भगवान् श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में केवल कर्तृवाच्य मे ही प्रयुक्त होती हैं, कर्मवाच्य मे नहीं। किन्तु इनके विषय मे 'स्तुति करना' यह क्रिया सदैव कर्मवाच्य में ही प्रयुक्त होती है।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि भगवान् श्रीकृष्ण के साथ सदा सृजति, संहरति शासति—यह क्रियाएँ लगती हैं, जिसका अर्थ यह होता है कि यही एक मात्र स्वय सृजन करते हैं, संहार करते हैं तथा पालन करते हैं। अर्थात् यही ब्रह्मा, हर तथा विष्णु स्वरूप हैं। किन्तु 'स्तुति करना' यह क्रिया कर्मवाच्य में अर्थात् इनके साथ 'स्तूयते' ही क्रिया पद उचित होता है जिसका अर्थ है कि सभी इनकी स्तुति करते हैं, और यह किसी की स्तुति नहीं करते।

पूर्वमेष किल सृष्टवानपस्तासु वीर्यमनिवार्यमादधौ ।
तच्च कारणमभूद्धिरण्मयं ब्रह्मणोऽसृजदसाविदं जगत् ॥६७॥

अर्थ—इन्हीं भगवान श्रीकृष्ण ने आदि मे जल की सृष्टि की थी और उसमें अपना अनिवार्य अर्थात् अमोघ वीर्य छोडा था। वही वीर्य हिरण्मय अण्ड के रूप मे अर्थात् ब्रह्माण्ड होकर ब्रह्मा की उत्पत्ति का कारण हुआ था, जिससे उत्पन्न होकर ब्रह्मा ने इस जगत् की सृष्टि की थी।

टिप्पणी—अर्थात् इस समस्त चराचर जगत के मूल कारण यही हैं। मनुस्मृति में भी कहा गया है—

सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ।
अप एव ससर्जादौ तासु वीर्यमवासृजत् ॥
तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम् ॥
तस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ॥

टिप्पणी—वृत्यनुप्रास अलंकार।

मत्कुणाविव पुरा परिप्लवौ सिन्धुनाथशयने निषेदुषः ।
गच्छतः स्म मधुकैटभौ विभोर्यस्य नैद्रसुखविघ्नतां क्षणम् ॥६८॥

अथ—पूर्वकाल मे दो खटमलों के समान मधु और कैटभ नाम के दो असुर इधर-उधर घूमते हुए समुद्र रूपी शैया में शयन करते हुए इन्हीं भगवान् (श्री कृष्ण) के निद्रा-सुख मे क्षण भर के लिए बाधा डालने के कारण मृत्यु को प्राप्त हुए थे।

श्रौतमार्गमुखगानकोविदब्रह्मषट्चरणगर्भमुज्ज्वलम् ।
श्रीमुखेन्दुसविधेऽपि शोभते यस्य नाभिसरसीसरोरुहम् ॥६९॥

अथ—श्रोत मार्ग अर्थात् वेदों क सुखकर गान के पण्डित ब्रह्मा रूपी भ्रमर द्वारा मध्य म निवास करने से निर्मल इन भगवान् के नाभि-रूपी सरोवर का कमल, लक्ष्मी के मुख-चन्द्र के समीप में भी प्रफुल्ल ही रहता है।

टिप्पणी—विरोध और रूपक अलकार का सकर।

सत्यवृत्तमपि मायिन जगद्वृद्धमप्युचितनिद्रमर्भकम् ।
जन्म बिभ्रतमजं नव बुधा यं पुराणपुरुष प्रचक्षते ॥७०॥

अथ—पण्डित लोग इनके बारे मे कहते हैं कि यह सत्य-वृत्ति होने पर भी मायायुक्त हैं, जगत् मे सबसे वृद्ध होने पर भी निद्रा में निमग्न बालमुकुन्द कहलाते हैं, जन्म धारण करने पर भी अजन्मा हैं और नित्य नूतन रहने पर भी पुराण पुरुष कहलाते हैं।

टिप्पणी—विरोधाभास अलकार।

[अब आग क सालह श्लोकों म भगवान् क दसा अवतारो का वणन करत हुए सवप्रथम वराहावतार का वणन किया गया ह।]

स्कन्धधूननविसारिकेसरक्षिप्तसागरमहाप्लवामयम् ।
उद्धृतामिव मुहूर्तमैक्षत स्थूलनासिकवपुर्वसुन्धराम् ॥७१॥

अथ—स्थूल नासिका से युक्त वराह का शरीर धारण कर इन्हीं भगवान ने क्षण भर के लिए उस वसुन्धरा की ओर [मानों उद्धार की हुई समझ कर देखा था, जो इनके कन्धों के कँपाने से फैली हुई केसरों (कन्धे के बालो) की चोट स महासमुद्र की सम्पूर्ण जल राशि के इधर-उधर लहरान पर, दिखाई पडन लगी थी।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलंकार ।

[दो श्लोकों में नरसिंहावतार का वर्णन किया गया है—]

दिव्यकेसरिवपुः सुरद्विषो नैव लब्धशममायुधैरपि ।
दुर्निवाररणकण्डु कोमलैर्वक्ष एष निरदारयन्नखैः ॥७२॥

अर्थ—दिव्य केसरी का शरीर धारण कर इन्हीं भगवान् ने अपने कोमल नखों से हिरण्यकशिपु नामक देवताओं के प्रचण्ड शत्रु की छाती की उस दुर्निवार रणदर्प रूपी खुजली को दूर किया था, जो देवेन्द्र के वज्रादि भीषण हथियारों से भी शान्त नहीं हो सकी थी।

टिप्पणी—विरोधाभास अलंकार ।

वारिधेरिव कराग्रवीचिभिर्दिङ्मतङ्गजमुखान्यभिघ्नतः ।
यस्य चारुनखशुक्तयः स्फुरन्मौक्तिकप्रकरगर्भता दधुः ॥७३॥

अर्थ—समुद्र के समान विशाल आकार वाले नरसिंह भगवान् के, लहरों की भाँति (दिगन्तव्यापी) चचल भुजाओं से दिग्गजों के मस्तकों पर रोष से आक्रमण करने पर, सुन्दर सीपी के समान नखों के भीतर, चमकती हुई दिग्गजों के मस्तक की मुक्ताएँ सुशोभित हुई थीं।

टिप्पणी—उपमा अलंकार ।

[चार श्लोकों में वामनावतार का वर्णन किया गया है—]

दीप्तिनिर्जितविरोचनादयं गा विरोचनसुतादभीप्सतः ।
आत्मभूरवरजाखिलप्रजः स्वर्पतेरवरजत्वमाययौ ॥७४॥

अर्थ—स्वयम्भू एवं सर्वश्रेष्ठ होकर भी इन्हीं महाप्रभु ने तेज से सूर्य की कान्ति को भी पराजित करने वाले विरोचन के पुत्र बलि से पृथ्वी को प्राप्त करने की इच्छा से इन्द्र का अनुज होना स्वीकार किया था।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि लोक के कल्याण के लिए यह कुछ भी करने को तैयार रहते हैं । विरोधाभास अलंकार ।

किं क्रमिष्यति किलैष वामनो यावदित्थमहसन्न दानवाः ।
[illegible]

अर्थ—"यह बौना मनुष्य अपने पैरों से कितनी भूमि लेगा —" यह कहते हुए दानव लोग जब तक परस्पर परिहास भी नहीं कर पाये थे कि उसके पहिले ही चन्द्रमा एवं सूर्य के मण्डलों को डाँककर इनके पैर आकाश मण्डल में भी पूरे नहीं अमा सके।

टिप्पणी—अधिक अलंकार।

गच्छतापि गगनाग्रमुच्चकैर्यस्य भूधरगरीयसाङ्घ्रिणा।
क्रान्तकंधर इवाबलो बलिः स्वर्गभर्तुरगमत्सुबन्धुताम् ॥७६॥

अर्थ—पर्वत से भी गभीर एवं विशाल तथा आकाश में अत्यन्त ऊपर उठे हुए इन्हीं भगवान श्रीकृष्ण के पैर जब मानो उसके कंठ पर ही आकर लग गये तब वह बेचारा बलि देवराज इन्द्र द्वारा सुगमता से बाँध लिया गया।

टिप्पणी—उपमा और उत्प्रेक्षा का संकर।

क्रामतोऽस्य ददृशुर्दिवौकसो दूरमूरुमलिनीलमायतम्।
व्योम्नि दिव्यसरिदम्बुपद्धतिस्पर्धयेव यमुनौघमुत्थितम् ॥७७॥

अर्थ—ऊपर आकाश में पैर उठाते समय इन्हीं भगवान् वामन के अत्यन्त विशाल एवं भ्रमरों के समान नीले उरु-प्रदेश को देवताओं ने (आकाश में) इस प्रकार देखा मानो गंगा के जल-प्रवाह की स्पर्द्धा से यमुना के जल का प्रवाह ऊपर उठकर आकाश में फैल गया है।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा और उपमा का संकर।

[आगे दूसरे अवतारों का वर्णन है—]

यस्य किंचिदपकर्तुमक्षमः कायनिग्रहगृहीतविग्रहः।
कान्तवक्त्रसदृशाकृतिं कृती राहुरिन्दुमधुनापि बाधते ॥७८॥

अर्थ—अमृत बाँटने के समय शरीर के काट देने के कारण वैर रखने वाला, कुशल राहु, इन्हीं भगवान का कुछ भी अनुपकार करने में असमर्थ होकर, इनके सुन्दर मुख के समान आकृति वाले चन्द्रमा को आज भी पीड़ा पहुँचाता है।

टिप्पणी—प्रत्यनीक अलंकार।

[आगे दत्तात्रेय अवतार का वर्णन है—]

सम्प्रदायविगमादुपेयुषीरेप नाशमविनाशिविग्रहः।
स्मर्तुमप्रतिहतस्मृतिः श्रुतीर्दत्त इत्यभवदत्रिगोत्रजः ॥७६॥

अर्थ—अविनश्वर शरीर एवं अप्रतिहत स्मरण शक्ति वाले इन्हीं भगवान ने क्रमपूर्वक अध्ययन-अध्यापन के न होने से विनष्ट होने वाली श्रुतियों का स्मरण रखने के लिए (वेदों के अध्ययन-अध्यापन के प्रवर्त्तन के लिए) अत्रि के गोत्र में 'दत्त' अर्थात् 'दत्तात्रेय' नाम से अवतार ग्रहण किया था।

टिप्पणी—शाब्दलिंग अलंकार

[परशुराम के अवतार का वर्णन :—]

रेणुकातनयतामुपागतः शातितप्रचुरपत्रसंहतिः।
लूनभूरिभुजशाखमुज्झितच्छायमर्जुनवनं व्यधादयम् ॥८०॥

अर्थ—इन्हीं भगवान् ने रेणुका के पुत्र के रूप में उत्पन्न होकर कार्त्तवीर्य अर्जुन-रूपी वन को, उसके अनेक वाहन-रूपी पत्र समूह को उच्छिन्न कर, उसकी सहस्रबाहु-रूपी शाखाओं को काट कर एवं उसकी सुन्दर शोभा-रूपी छाया को दूर कर एक बार ही विनष्ट कर दिया था।

टिप्पणी—श्लेष प्रतिभोत्थापित अभेदातिशयोक्ति से अनुप्राणित सांगरूपक अलंकार।

[अब आगे रामावतार का वर्णन है—]

एष दाशरथिभूयमेत्य च ध्वंसितोद्धतदशाननामपि।
राक्षसीमकृत रक्षितप्रजस्तेजसाधिकविभीषणां पुरीम् ॥८१॥

अर्थ—प्रजा की रक्षा करने वाले इन्हीं भगवान् ने दशरथ के पुत्र रामचन्द्र के रूप में उत्पन्न होकर, गर्व से उद्धत दशानन का विनाश कर, अपने तेज से राक्षसों की नगरी लंका में विभीषण को राजा बनाया था।

टिप्पणी—विरोधाभास अलंकार।

[अब पांच श्लोकों में कृष्णावतार का वर्णन किया गया है—]

निग्रहन्तुमसुरेशविद्विषामर्थितः स्वयमथ स्वयंभुवा।
संप्रति श्रयति सूनुतामयं कश्यपस्य वसुदेवरूपिणः ॥८२॥

अर्थ—रामावतार के अनन्तर यह भगवान देवताओं के शत्रुओं का विनाश करने के लिए, स्वयं भगवान् ब्रह्मा के प्रार्थना करने पर सम्प्रति वसुदेव रूप धारी कश्यप के पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए हैं।

टिप्पणी—काव्यलिंग अलंकार।

तात नोदधिविलोडनं प्रति त्वद्विनाथ वयमुत्सहामहे।
यः सुरैरिति सुरौघवल्लभो वल्लवैश्च जगदे जगत्पतिः ॥८३॥

अर्थ—सुरगणों के प्यारे एवं सम्पूर्ण जगत् के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण को जहाँ देवता लोग—"हे तात ! तुम्हारे विना हम समुद्र-मन्थन में समर्थ नहीं हो सकते"—ऐसा कहते थे वहीं अब गोपालवृन्द—"हे प्रियवर ! तुम्हारे विना हम दधिमथन नहीं कर सकते"—ऐसा कहते हैं।

टिप्पणी—तुल्ययोगिता अलंकार।

नात्तगन्धमवधूय शत्रुभिश्छायया च शमितामरश्रमम्।
योऽभिमानमिव वृत्रविद्विषः पारिजातमुदमूलयद्दिवः ॥८४॥

अर्थ—शत्रु लोग देवताओं को पराजित करने के बाद जिस पारिजात की गंध तक नहीं पा सके थे, तथा जो (पारिजात) अपनी छाया से देवताओं के परिश्रम को शान्त करता था, उसी पारिजात को इन भगवान ने वृत्रासुर के शत्रु देवराज इंद्र के अभिमान की भांति स्वर्ग से उपार लिया है।

यं समेत्य च ललाटलेखया बिभ्रतः सपदि शम्भुविभ्रमम्।
चण्डमारुतमिव प्रदीपवच्चेदिपस्य निरवाद्विलोचनम् ॥८५॥

अर्थ—अपने ललाट की शोभा से शम्भु की सुन्दरता को धारण करने वाले चेदिनरेश शिशुपाल का तृतीय नेत्र प्रचण्ड वायु की भांति इन्हीं भगवान् श्रीकृष्ण को प्राप्त कर दीपक की भांति बुझ गया।

टिप्पणी—[illegible] के समय [illegible] चार भुजाएँ थी। इस प्रकार के [illegible] को मारने के लिए जब [illegible] तैयार हुए तब [illegible] आकाशवाणी हुई कि—'इसे मत मारो। यह [illegible] राजा होगा। जिसकी [illegible] भुजाएँ गिर जायगी, वही

इसको मारेगा। अन्तत जब कही उसके नेत्र तथा भुजाएँ नही गिरी तब भगवान् श्रीकृष्ण के सामने वह लाया गया। भगवान के सम्मुख आते ही उसका तीसरा नेत्र तथा अतिरिक्त दोनो भुजाएँ गिर गयी। उपमा अलकार।

यः कौलतां वल्लवतां च निभ्रद्दंष्ट्रामुदस्याशु भुजां च गुर्वीम्।
मग्नस्य तोयापदि दुस्तरायां गोमण्डलस्योद्धरणं चकार ॥८६॥

अर्थ—इन्हीं भगवान् ने वराह एव गोपाल का रूप धारण कर शीघ्र ही अपनी विशाल दाढ़ों तथा भुजाओं को उठाकर, अत्यन्त दुस्तर जल सकट मे (वराह अवतार के अवसर पर समुद्र कृत सकट तथा कृष्णावतार के समय इन्द्र कृत वर्षा सकट मे) फँसे हुए गो-मण्डल अर्थात् धरती तथा गौओं के समूह का उद्धार किया है।

टिप्पणी—श्लेष अतिशयोक्ति तुल्ययोगिता और यथासख्य का सकर। यह इन्द्रवज्रा छन्द है।

[इस प्रकार भगवान श्रीकृष्ण की स्तुति करने के अनन्तर भीष्म अब कर्तव्य का उपदेश करते है—]

धन्योऽसि यस्य हरिरेष समक्ष एवं
दूरादपि क्रतुषु यज्वभिरिज्यते यः।
दत्त्वार्घमत्रभवते भुवनेषु यावत्
संसारमण्डलमवाप्नुहि साधुवादम् ॥८७॥

अर्थ—हे युधिष्ठिर! तुम धन्य हो, जिसके सम्मुख भगवान् स्वय आकर उपस्थित हुए है। यज्ञकर्ता लोग यज्ञों मे, परोक्ष में भी इन्हीं की विधिपूर्वक पूजा करते हैं। अत ऐसे परम पूज्य भगवान् श्रीकृष्ण की विधिवत पूजा करके तुम जब तक यह ससार मण्डल रहेगा तब तक के लिए साधुवाद प्राप्त करो।

टिप्पणी—काव्यलिंग अलकार। वसन्ततिलका छद।

भीष्मोक्तं तदिति वचो निशम्य सम्य-
क्साम्राज्यश्रियमधिगच्छता नृपेण।

दत्तेऽर्घे महति महीभृतां पुरोऽपि
त्रैलोक्ये मधुभिदभूदनर्घ एव ॥८८॥

अर्थ—सम्राट् का पद और उसकी शोभा प्राप्त करनेवाले राजा युधिष्ठिर ने इस प्रकार कही गई भीष्म पितामह की बातों को भली भांति सुनकर, समस्त राजाओं के सम्मुख भगवान् श्रीकृष्ण की विधिवत् पूजा की। इस प्रकार उस विधिवत् पूजा से सत्कृत होकर (भी) भगवान् श्रीकृष्ण त्रैलोक्य में अमूल्य हो गये। (पूजारहित ही रहे।)

टिप्पणी—राजसूय यज्ञ करने के अनन्तर राजा 'सम्राट्' का पद प्राप्त करता था। उसी राजसूय यज्ञ की विधिवत् समाप्ति के अनन्तर राजा युधिष्ठिर भी सम्राट् हो गये। कहा गया है—

येनेष्टं राजसूयेन मण्डलस्येश्वरश्च यः ।
शास्ति यश्चाज्ञया राज्ञः स सम्राट् ॥

विरोधाभास अलंकार। प्रहर्षिणी छन्द।

श्री माघ कविकृत शिशुपालवध महाकाव्य में श्री कृष्णार्घदान नामक चौदहवाँ सर्ग समाप्त ॥१४॥

—:o:—

पन्द्रहवाँ सर्ग

अथ तत्र पाण्डुतनयेन सदसि विहितं मुरद्विषः ।
मानमसहत न चेदिपतिः परवृद्धिमत्सरि मनो हि मानिनाम् ॥१॥

अर्थ—पूजा के अनन्तर चेदिनरेश शिशुपाल, सभा के बीच में पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर द्वारा किए गये भगवान् श्रीकृष्ण के सम्मान को नहीं सहन कर सका, क्योंकि अहंकारियों का मन दूसरों की वृद्धि देखकर द्वेष से भर जाता है।

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलंकार। इस सर्ग में उद्गता छन्द है। लक्षण:—
सजसादिमे सलघुकौ च नसजगुरुकेऽप्यथोद्गता ।
व्यङ्घ्रिगतभजनजला गयुता सजसा जगौ चरणमेकतः पठेत् ॥

पुर एव शार्ङ्गिणि सवैरमथ पुनरमुं तदर्चया ।
मन्युरभजदवगाढतरः समदोषकाल इव देहिनं ज्वरः ॥२॥

अर्थ—पहले ही से भगवान श्रीकृष्ण पर शिशुपाल क्रोध युक्त था, और फिर युधिष्ठिर द्वारा की गयी इस पूजा से उसका वह क्रोध वैसे ही और भी गाढा हो गया जैसे कुपथ्य तथा दुर्भाग्य दोनों के साथ पड़ने से मनुष्य का ज्वर और तीव्र हो जाता है।

टिप्पणी—उपमा अलंकार।

[नीचे के आठ श्लोकों द्वारा शिशुपाल के क्रोधयुक्त शरीर का वर्णन किया गया है—]

अभितर्जयन्निव समस्तनृपगणमसावकम्पयत् ।
लोलमुकुटमणिरश्मि शनैरशनैः प्रकम्पितजगत्त्रयं शिरः ॥३॥

अर्थ—शिशुपाल ने मानों सभा में उपस्थित समस्त नृपति गणों को तर्जित करते हुए, तीनों लोकों को अत्यन्त प्रकम्पित करनेवाले

अपने शिर को धीरे से इस प्रकार कँपाया कि उसके मुकुट मे जडी हुई मणियों की किरणे चारों ओर चमक उठीं।

स वमन्रुषाश्रु घनघर्मविगलदुरुगण्डमण्डलः ।
स्वेदजलकणकरालकरो व्यरुचत्प्रभिन्न इव कुञ्जरस्त्रिधा ॥ ४ ॥

अर्थ—क्रोध से आँसू बहाता हुआ शिशुपाल अत्यन्त रोष की गर्मी से उत्पन्न पसीने से अपने विशाल कपोल-स्थलों को भिगोता हुआ एव अपने विकराल हाथों को पसीने की बूदों से युक्त करता हुआ उस मदोन्मत्त हाथी की तरह दिखाई पडा, जिसके नेत्र, कपोल तथा शुण्डा दण्ड पर मदजल चू रहे हो।

टिप्पणी—उपमा अलंकार।

स निकामघर्मितमभीक्ष्णमधुवदवधूतराजकः ।
क्षिप्तबहुलजलविन्दु वपुः प्रलयार्णवोत्थित इवादिशूकरः ॥ ५ ॥

अर्थ—राजाओं के समूहों को पराजित करने वाले उस शिशुपाल ने अत्यन्त पसीने से भीगे हुए अपने शरीर को प्रलय काल के अवसर पर समुद्र से निकले हुए आदि वराह की भाँति जब जोर से कपाया तो उससे बहुत से जल-विन्दु छिटक कर (इधर-उधर) गिर पडे।

टिप्पणी—उपमा अलकार।

क्षणमाश्लिषद्घटितशैलशिखरकठिनांसमण्डलः ।
स्तम्भमुपहितविघूतिमसावधिकावधूनितसमस्तससदम् ॥ ६ ॥

अर्थ—सुन्दरता से सघटित पर्वत शिखर की भाँति कठोर स्कंधों-वाले शिशुपाल ने एक स्तम्भ पर क्षण भर के लिए जो आलिंगन किया तो उससे वह (स्तम्भ) इतना अधिक काँप गया कि सारी सभा ही जोर से काँपने लगी।

टिप्पणी—उपमा और काव्यलिंग का सकर।

कनकाङ्गदद्युतिभिरस्य गमितमरुचत्पिशङ्गताम् ।
क्रोधमयशिखिशिखापटलैः परितः परीतमिव बाहुमण्डलम् ॥७॥

अर्थ—सुवर्ण के केयूरों (बाजू-बन्दों) की कान्ति से पिंगल वर्ण

की शिशुपाल की भुजाएं उस समय इस प्रकार दिखाई पडने लगीं मानों क्रोधाग्नि की भीषण ज्वाला उसके चारों ओर धधक रही हो।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलकार।

कृतसंनिधानमिव तस्य पुनरपि तृतीयचक्षुषा।
क्रूरमजनि कुटिलभ्रु गुरुभ्रुकुटीकठोरितललाटमाननम्॥ ८॥

अर्थ—भ्रुकुटियों के अत्यन्त टेढ़े होने के कारण भयानक ललाट से युक्त शिशुपाल का मुख इस प्रकार अत्यन्त भीषण दिखाई पड़ने लगा कि मानों उसका तीसरा नेत्र फिर से उसके ललाट में जुड गया हो।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलकार।

अतिरक्तभावमुपगम्य कृतमतिरमुष्य साहसे।
दृष्टिरगणितभयासिलतामवलम्बते स्म समया सखीमिव॥ ९॥

अर्थ—शिशुपाल की आंखें क्रोध के कारण अत्यन्त लाल वर्ण की होकर (पक्ष में, अत्यन्त अनुराग को प्राप्त कर) साहसपूर्ण कार्य के करने का निश्चय कर (अत्यन्त कठिनाई भर कार्य का निश्चय कर) शत्रु के भय से रहित हो गयीं (गुरुजनों के भय से रहित हो गयीं) और उन्होंने समीप में स्थित अपनी सखी की भांति तलवार का आश्रय लिया।

टिप्पणी—अर्थात् क्रोधान्ध एव निर्भय होकर शिशुपाल ने अपनी तलवार की ओर देखा। जिस प्रकार कोई तरुणी अपने प्रेमी के प्रति अत्यन्त अनुरक्त होकर जब उसके समीप अभिसरण-रूप के साहसपूर्ण कार्य करने का निश्चय कर लेती है तब गुरुजनों से निर्भय हो कर समीपस्थित अपनी विश्वस्त सखी का सहारा लेती है, उसी प्रकार शिशुपाल की आंखों ने भी अपनी प्यारी सखी तलवार का आश्रय लिया। अर्थात् उसकी ओर देखा। उपमा और समासोक्ति का संकर।

करकुड्मलेन निजमूरुमुरुतरनगाश्मकर्कशम्।
त्रस्तचपलचलमानजनश्रुतभीमनादमयमाहतोच्चकैः॥ १०॥

अर्थ—तदनन्तर शिशुपाल ने विशाल पर्वत की शिला की भाँति कठोर अपनी जाँघों पर अपने कर कुड्मलों से इस प्रकार ऊँचे स्वर

में आघात किया अर्थात् ताल ठोकी कि (सभा में) चलते फिरते लोग उस भीषण ध्वनि को सुनकर भय के मारे विचलित हो उठे।

इति चुक्रुधे भृशमनेन ननु महदवाप्य विप्रियम्।
याति विकृतिमपि संवृतिमत्किमु यन्निसर्गनिरवग्रहं मनः ॥११॥

अर्थ—इस प्रकार शिशुपाल अत्यन्त क्रोधित हो गया था। विकारों को छिपाने की शक्तिवाला अर्थात् धीर-गंभीर मन भी अत्यन्त अप्रिय प्रसंग उपस्थित होने पर विकृत हो ही जाता है, और जो मन स्वभाव से ही चंचल और निर्मर्याद है उसके लिए क्या कहा जाय (वह तो ऐसे अवसरों पर अत्यन्त विकार को प्राप्त होता ही है)।

टिप्पणी—काव्यलिंग अलंकार।

[अब वचन के विकार का वर्णन किया गया है—]

प्रथमं शरीरजविकारकृतमुकुलबन्धमव्यथी।
भाविकलहफलयोगमसौ वचनेन कोपकुसुमं व्यचीकमत् ॥ १२ ॥

अर्थ—तदनन्तर उस परम निर्भय शिशुपाल ने अपने क्रूर-कठोर वचनों से उस क्रोध-रूपी कुसुम को विकसित किया, जो पहले शारीरिक विकारों के प्रकट करने से कली की भाँति बंधा हुआ था तथा भविष्य में होने वाले कलह-रूपी फल को जन्म देने वाला था।

टिप्पणी—साग रूपक अलंकार।

ध्वनयन्सभामथ सनीरघनरवगभीरवागभीः।
वाच्यमवददतिरोषवशादतिनिष्ठुरस्फुटतराक्षरामसौ ॥ १३ ॥

अर्थ—सजल मेघ के गर्जन के समान गंभीर शब्द करते हुए निर्भय शिशुपाल सभा-भवन को ध्वनित करते हुए अत्यन्त क्रोध के आवेश में अत्यन्त कठोर एवं स्पष्ट अक्षरों वाली वाणी में इस प्रकार बोलने लगा :—

टिप्पणी—उपमा अलंकार

[पाँच श्लोकों द्वारा वह सर्वप्रथम युधिष्ठिर का उपहास करता है—]

यदपूपुजस्त्वमिह पार्थ मुरजितमपूजितं सताम् ।
प्रेम विलसति महत्तदहो दयितं जनः खलु गुणीति मन्यते ॥१४॥

अर्थ—हे कुन्ती के पुत्र युधिष्ठिर ! सज्जनों द्वारा अपूजित इस कृष्ण की जो तुमने इस सभा में पूजा की है, उससे तुम्हारा (इसके ऊपर) विशेष प्रेम ही प्रकट होता है (इसकी पूज्यता नहीं) क्योंकि लोग अपने प्रियजनों को गुणवान् ही मानते हैं ।

टिप्पणी—वाक्यार्थहेतुक काव्यलिंग अलंकार ।

यदराज्ञि राजवदिहार्घ्यमुपहितमिदं मुरद्विषि ।
ग्राम्यमृग इव हविस्तदयं भजते ज्वलत्सु न महीशवह्निषु ॥१५॥

अर्थ—जो राजा (भी) नहीं है, ऐसे कृष्ण के लिए तुमने जो राजोचित पूजा के पदार्थों को भेंट किया है, उसको अग्नि के समान जाज्वल्यमान राजाओं के रहते हुए (पक्ष में, राजा के समान प्रकाशमान यज्ञ की अग्नि के जलते हुए) कुत्ते द्वारा हविष्य ग्रहण करने की भाँति यह (कृष्ण) प्राप्त करने का अधिकारी नहीं है ।

टिप्पणी—उपमा अलंकार ।

अनृतां गिरं न गदसीति जगति पटहैर्विघुष्यसे ।
निन्द्यमथ च हरिमर्चयतस्तव कर्मणैव विकसत्यसत्यता ॥१६॥

अर्थ—हे पार्थ ! तुम झूठ बात नहीं बोलते हो—इस की घोषणा ढिंढोरा पीट-पीटकर संसार को दी जाती है किन्तु निन्दा के पात्र कृष्ण की इस प्रकार पूजा करने से ही तुम्हारी असत्यता प्रकट हो रही है ।

टिप्पणी—विषम अलंकार

तव धर्मराज इति नाम कथमिदमपप्नु पठ्यते ।
भौमदिनमभिदधत्यथवा भृशमप्रशस्तमपि मङ्गलं जनाः ॥१७॥

अर्थ—हे युधिष्ठिर ! तुम्हारा यह 'धर्मराज' नाम लोग झूठा ही पढ़ते हैं । अथवा ठीक ही है, लोग अत्यन्त अप्रशस्त होने पर भी भौम अर्थात् अङ्गारक वार को मंगल वार कहते हैं ।

टिप्पणी—दृष्टान्त अलंकार ।

यदि वार्चनीयतम एष किमपि भवतां पृथासुताः ।
शौरिरवनिपतिभिर्निखिलैरवमाननार्थमिह किं निमन्त्रितैः ॥१८॥

अर्थ—हे कुन्ती के पुत्रो ! यदि यह कृष्ण ही किसी कारण से तुम लोगों का विशेष पूजनीय था तो व्यर्थ ही अपमान करने के लिए निमंत्रण देकर इन समस्त राजाओं को तुम लोगों ने क्यों बुलाया था ?

टिप्पणी—काव्यलिंग अलंकार ।

[तीन श्लोकों द्वारा भीष्म को उपालम्भ दे रहा है—]

अथवा न धर्ममसुबोधसमयमवयात बालिशाः ।
काममयमिह वृथापलितो हतबुद्धिरप्रणिहितः सरित्सुतः ॥१९॥

अर्थ—अथवा तुम सबके सब महामूर्ख हो ! समय का आचार धर्म पालन करना बहुत सुगम नहीं होता और उसे तो तुम लोग बिल्कुल ही नहीं जानते । किन्तु व्यर्थ में ही बाल पका कर बूढ़ा और नष्ट बुद्धिवाला यह नदी का पुत्र भीष्म भी इस प्रसंग में खूब असावधान और मतवाला बन गया था ।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि तुम लोग अभी नवजवान थे, समयाचार से यदि अनभिज्ञ रह तो एक बात थी किन्तु यह खूसट बुड्ढा भीष्म भी मतवाला हो गया था । ऐसे अवसर पर इसने भी शिष्टाचार की शिक्षा या प्रेरणा तुम लोगों को नहीं दी । नदी का पुत्र जो ठहरा । विशेषोक्ति और काव्यलिंग का संकर ।

स्वयमेव शन्तनुतनूज यमपि गणमर्घ्यमभ्यधाः ।
तत्र मुररिपुरयं कतमो यमनिन्द्यबन्दिवदभिष्टुषे मुधा ॥ २० ॥

अर्थ—हे शन्तनु के पुत्र ! जिनको (स्नातक आदि छः को) तुमने समस्त राजाओं के बीच में पूजा का पात्र बतलाया था, बताओ उन (स्नातकों आदि) में यह कौन-सा है, जिसकी तुम ने मिथ्या ही भाटों की तरह इतनी अभिवन्दना की है ।

अवनीभृतां त्वमपहाय गणमतिजडः समुन्नतम् ।
नीचि नियतमिह यच्चपलो निरतः स्फुटं भवसि निम्नगासुतः ।२१।

अर्थ—तुम अत्यन्त मूढ (पक्ष में, अत्यन्त शीतल) और अस्थिर बुद्धि वाले (चचल) हो। क्योंकि तुम अत्यन्त उन्नत पृथ्वीपतियों (राजाओं पहाड़ों) को छोडकर इस नीच कृष्ण म स्थिर भक्ति रखते हो (वहते हो) । इस प्रकार तुम सचमुच निम्नगा (अर्थात् ऊचे ऊचे पहाडो को छोड़कर नीचे मैदान मे वहने वाली नदी) के पुत्र होने का लक्षण स्पष्ट ही दिखला रहे हो ।

टिप्पणी—काव्यलिंग अलकार ।

[अब सत्रह श्लोका द्वारा कृष्ण को उलाहना देता है—]

प्रतिपद्यमङ्ग घटते च न तव नृपयोग्यमर्हणम् ।
कृष्ण कलय ननु कोऽहमिति स्फुटमापदा पदमनात्मवेदिता ॥२२॥

अर्थ—हे कृष्ण ! राजाओ के योग्य इस पूजा को तुम्हे नहीं स्वीकार करना चाहिए था। तुम स्वय अपने सम्बन्ध मे सोचो कि 'मैं कौन हूँ ?' क्योंकि अपने सम्बन्ध में सोच-विचार न करने से स्पष्ट ही आपत्तियों में फसना पडता है।

टिप्पणी—काव्यलिंग अलकार ।

असुरस्त्वया न्यवधि कोऽपि मधुरिति कथ प्रतीयते ।
दण्डदलितसरघः प्रथसे मधुसूदनस्त्वमिति सूदयन्मधुं ॥ २३ ॥

अर्थ—मधु नाम के किसी असुर का तुमने वध किया है—इस बात पर किसी तरह विश्वास नहीं होता। मुझे तो ऐसा मालूम पडता है कि डण्डे से मधु की मक्खियों को मारकर तुम 'मधुसूदन' बने हुए हो।

टिप्पणी—काव्यलिंग अलकार ।

मुचुकुन्दतल्पशरणस्य मगधपतिशातितौजसः ।
सिद्धमनल सबलत्वमहो तव रोहिणीतनयसाहचर्यतः ॥ २४ ॥

अर्थ—हे नलहीन ! (क्या तुम्हें याद है कि) राजा मुचकुन्द की की शैय्या ही तुम्हें शरणदायिनी बन गयी थी और मगधपति जरासन्ध ने तुम्हारे तेज को ध्वस्त कर दिया था। किन्तु इतने पर भी तुम जो 'सबल' कहलाते हो वह रोहिणी के पुत्र बलराम के साथ के कारण कहलाते हो (बलेन सहित सबल)। यह कितने आश्चर्य की बात है ?

टिप्पणी—विभावना अलंकार।

छलयन्प्रजास्त्वमनृतेन कपटपटुरैन्द्रजालिकः।
प्रीतिमनुभवसि नग्नजितः सुतयेष्टसत्य इति संप्रतीयसे ॥२५॥

अर्थ—हे इन्द्रजाल करने में निपुण! प्रवचना में निपुणता प्राप्त कर तुम अपने असत्य आचरणों से प्रजावर्ग के साथ छल करते हो और उनमें 'सत्यप्रिय' के नाम से ख्याति प्राप्त करते हो। किन्तु तुम्हारा यह 'सत्य प्रिय' नाम नग्नजित राजा की कन्या सत्यभामा से प्रेम रखने के कारण है, (सत्य से प्रेम रखने के कारण नहीं)।

टिप्पणी—अतिशयोक्ति अलंकार।

धृतवान्न चक्रमरिचक्रभयचकितमाहवे निजम्।
चक्रधर इति रथाङ्गमदः सततं बिभर्षि भुवनेषु रूढये ॥२६॥

अर्थ—हे कृष्ण! युद्ध में शत्रु की सेना के भय से व्याकुल अपने चक्र (सेना) को तो तुम नहीं सभाल सकते हो किन्तु 'चक्रधर' नाम की ख्याति के लिए तुम यह रथ का चक्का (सुदर्शन चक्र) हमेशा धारण किये रहते हो।

टिप्पणी—अतिशयोक्ति अलंकार।

जगति श्रियां विरहितोपि यदुदधिसुतामुपायथाः।
ज्ञातिजनजनितनामपदां त्वमतः श्रियः पतिरिति प्रथामगाः २७

अर्थ—(ययाति के शाप के कारण) 'श्री' अर्थात् राज-लक्ष्मी से विहीन होने पर भी तुमने परिवार के लोगों द्वारा 'श्री' नाम धरायी गई समुद्र की कन्या के साथ जो विवाह कर लिया है उसी से अब ससार में 'श्रीपति' की ख्याति प्राप्त कर ली है।

टिप्पणी—वृद्धावस्था में कामपीड़ित होकर राजा ययाति ने अपने युवा पुत्र यदु से उसकी युवावस्था को कुछ दिनों के लिए उधार मांगा था, किन्तु यदु ने साफ इन्कार कर दिया था, अतः उन्होंने उसे राज-पद से वंचित कर के यह शाप दे दिया था कि यदु का कोई वंशधर कभी राज्य का अधिकारी नहीं होगा। अतिशयोक्ति अलंकार।

अभिशत्रु संयति कदाचिदनिहितपराक्रमोऽपि यत्।
व्योम्नि कथमपि चकर्थ पदं व्यपदिश्यसे जगति विक्रमीत्यतः २८

अर्थ—युद्ध में तो तुमने कभी शत्रु के सामने कोई पराक्रम नहीं दिखलाया था किन्तु चूंकि बड़ा प्रयत्न करके एक बार किसी प्रकार आकाश में अपना पैर उठा लिया था अतः संसार में उसी के कारण 'विक्रमी' अर्थात् विक्रम वाला नाम प्राप्त कर लिया है। (वस्तुतः तुम पराक्रम दिखाने के कारण विक्रमी नहीं हो।)

टिप्पणी—अतिशयोक्ति अलकार।

पृथिवीं विभर्य यदि पूर्वमिदमपि गुणाय वर्तते ।
भूमिभृदिति परहारितभूस्त्वमुदाह्रियस्व कथमन्यथा जनैः ॥२९॥

अर्थ—पहले भी यदि कभी तुम भूमि का पालन किये होते तो यह बात भी तुम्हारे लिए लाभदायक होती, किन्तु इसके विपरीत शत्रुओं द्वारा जो कुछ भूमि तुम्हारे पास थी वह भी जीत ली गयी है (जरासन्ध ने भूमि छीनकर तुम्हे जन्मभूमि मथुरा से बाहर कर दिया है।) तब फिर लोग तुम्हें 'भूमिपाल' व्यर्थ ही कहते हैं (यह तो अनुचित ही है)?

टिप्पणी—अतिशयोक्ति अलकार।

तव धन्यतेयमपि सर्वनृपतितुलितोऽपि यत्त्वणम् ।
क्लान्तकरतलधृताचलकः पृथिवीतले तुलितभूभृदुच्यसे ॥३०॥

अर्थ—यह तुम्हारे पुण्य का फल है जो समस्त राजाओं द्वारा तिरस्कृत होने पर भी तुम थोड़ी देर के लिए थके हुए हाथों की हथेली पर एक छोटे-से पर्वत (गोवर्धन) को उठाकर इस पृथ्वीतल पर 'भूभृतों' (राजाओं और पहाड़ों) के उठाने वाले बने गये हो।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि छोटे-से गोवर्धन का उठाना बलवानों के लिए कोई बड़ी बात नहीं है तथा उस छोटे से 'भूभृत्' को उठाकर तुम यह मत समझ लेना कि मुझ जैसे महावीर भूभृतों अर्थात् राजाओं का कुछ बिगाड सकते हो। विरोध और अतिशयोक्ति का सकर।

त्वमशक्नुवन्नशुभकर्मनिरत परिपाकदारुणम् ।
जेतुमकुशलमतिर्नरकं यशसेऽधिलोकमजयः सुतं भुवः ॥३१॥

अर्थ—हे पापाचार परायण! तुम्हारी दुष्ट बुद्धि सदा पापों-कर्मों में ही लगी रहती है, अतएव परिणाम में दारुण नरक को जीतने में अशक्त

होकर तुमने इस लोक मे नरक विजेता नाम प्राप्त करने की इच्छा से पृथ्वी के पुत्र नरक' को (नरकासुर) पराजित किया है।

टिप्पणी—काव्यलिंग अलकार।

सकलैर्वपुः सकलदोपसमुदितमिदं गुणैस्तव।
त्यक्तमपगुण गुणत्रितयत्यजनप्रयासमुपयासि किं मुधा ॥३२॥

अर्थ—हे निर्गुण! अवगुणों की खानि! सम्पूर्ण दोषों से युक्त यह तुम्हारा शरीर समस्त शौर्य-औदार्य आदि गुणों से विहीन है। इस प्रकार तुम व्यर्थ ही तीनों (सत्त्व, रजस्, तमस्) गुणों के त्याग में प्रयत्न शील रहते हो।

टिप्पणी—काव्यलिंग अलकार।

त्वयि पूजन जगति जाल्म कृतमिदमपाकृते गुणैः।
हासकरमघटते नितरा शिरसीव कङ्कतमपेतमूर्धजे ॥३३॥

अर्थ—हे अविवेककारी! समस्त गुणों से विहीन यह तुम्हारी की गयी पूजा इस ससार मे केशविहीन शिर में कघी करने अथवा माला सजाने के समान उपहासजनक ही होगी।

टिप्पणी—उपमा अलकार।

[अब स्वपक्षीय राजाओ को उत्साहित करने के लिए यह इस प्रकार कहता है —]

मृगविद्विषामिव,यदित्थमजनि मिपता पृथासुतैः।
अस्य वनशुन इवापचितिः परिभाव एव भवतां भुवोऽधिपाः ३४

अर्थ—हे पृथ्वी के स्वामियों! सिंहों के समान आप लोगों के देखते हुए भी इस प्रकार इन कुन्ती के पुत्रों ने गीदड़ के समान इस कृष्ण की पूजा की है— यह आप लोगों का सरासर अपमान ही है।

टिप्पणी—शिशुपाल बार-बार पाण्डवों को पथक कुन्तीपुत्र कहकर सम्बोधित करता है जिसका तात्पर्य यह है कि इनके पिता के सम्बन्ध में कुछ मालूम ही नहीं है।

अवधीजनंगम इवैप यदि हतनृपो नृप ननु।
स्पर्शमशुचिवपुरर्हति न प्रतिमानना तु नितरा नृपोचिताम् ३५

अर्थ—पुण्यनाशी इस कृष्ण ने चाण्डाल की भाँति वृषभ रूपधारी अरिष्टासुर का संहार किया है, इसीलिए यह अपवित्रात्मा स्पर्श करने योग्य भी नहीं रह गया है। ऐसी दशा में राजाओं के योग्य पूजा की पात्रता यह कैसे प्राप्त कर सकता है।

टिप्पणी—उपमा अलंकार।

यदि नाङ्गनेति मतिरस्य मृदुरजनि पूतनां प्रति।
स्तन्यमघृणमनसः पिबतः किल धर्मतो भवति सा जननयपि ३६

अर्थ—इस कृष्ण की बुद्धि अबला पूतना के प्रति यदि स्त्री होने के कारण से दयायुक्त नहीं हुई तो न होती किन्तु इस निर्दय हृदय वाले की, जिसने उसका स्तन-पान किया था, वह धर्म से माता भी तो होती थी।

टिप्पणी—अर्थात् यदि पूतना को, साधारण स्त्री समझ कर नहीं छोड़ा तो विशेष हर्ज नहीं था किन्तु वह इसकी धर्ममाता भी तो होती थी। माता के नाते तो उसका वध करना महापातकपूर्ण कार्य था, किन्तु इस निर्दयी ने इतना भी विचार नहीं किया। काव्यलिंग अलंकार।

शकटव्युदासतरुभङ्गधरणिधरधारणादिकम्।
कर्म यदयमकरोत्तरलः स्थिरचेतसां क इव तेन विस्मयः ॥३७॥

अर्थ—इस चंचल-मति कृष्ण ने अब तक शकटासुर का वध, यमलार्जुन का भंग, गोवर्धन को ऊपर उठा लेना-आदि जिन-जिन कार्यों को किया है, उनसे किसी भी धीर बुद्धि वाले, को कौन-सा विस्मय होगा? (अर्थात् कोई विस्मय नहीं होगा।)

टिप्पणी—वृत्यनुप्रास और काव्यलिंग की संसृष्टि।

अयमुग्रसेनतनयस्य नृपशुरपरः पशूनवन्।
स्वामिवधमसुकरं पुरुषैः कुरुते स्म यत्परममेतदद्भुतम् ॥३८॥

अर्थ—नर-रूप में पशु के समान इस कृष्ण ने गाय चराते हुए, जो उग्रसेन के पुत्र कंस के, संसार में साधारण लोगों द्वारा दुष्कर स्वामि-वध का कार्य किया है, वही एक बड़े आश्चर्य का कार्य है।

टिप्पणी—काव्यलिंग अलंकार।

मल्लिनाथ के मत से प्रक्षिप्त श्लोक

[आगे के चौतीस श्लोको को मल्लिनाथ ने प्रक्षिप्त मानकर उन पर अपनी टीका नही की है, किन्तु अन्य सस्कृत के टीकाकारो ने उन्हें माघकृत ही स्वीकार किया है अत वे नीचे दिये जा रहे हैं —]

ननु सर्व एव समवेक्ष्य कमपि गुणमेति पूज्यताम् ।
सर्वगुणविरहितस्य हरेः हरिपूजया कुरुनरेन्द्र को गुणः ॥१॥

अर्थ —हे कुरुनाथ ! सभी लोग किसी न किसी गुण द्वारा ही पूजनीय होते हैं । किन्तु समस्त गुणों से विहीन, वानर के समान इस कृष्ण की विशेष पूजा मे कौन-सा गुण है ? (अर्थात इसकी पूजा करके तुम्हें कोई लाभ नही हुआ ।)

टिप्पणी—कविवर माघ श्रीकृष्ण के परम भक्त थे । वे कथा के प्रसग म शिशुपाल द्वारा की जाने वाली इस भर्त्सना को भी अधिक महन नही करते थे अत इन चौतीस श्लोको में प्रतीयमान दूसरे अर्थ की भी सभावना उन्होंने रख छोडी है । इस श्लोक में प्रथमार्ध तो दूसरे अर्थ में भी पूर्ववत् रहेगा कवल द्वितीयार्ध का अर्थ इस प्रकार होगा ।"तीनो गुणो से विरहित इन भगवान् विष्णु की विधिवत् पूजा का परिणाम स्वर्ग-प्राप्ति है । अथवा यह तो तीनो गुणो से परे है अत इनकी पूजा करने से इनके प्रति कोई उपकार नही है ।" वक्रश्लेष ।

न महानयं न च बिभर्ति गुणसमतया प्रधानताम् ।
स्वस्य कथयति चिराय पृथग्जनतां जगत्यनभिमानतां दधत् ॥२॥

अर्थ—यह श्रीकृष्ण न तो सर्वोत्कृष्ट है और न गुणो के समूहो से युक्त होने के कारण ही कोई प्रमुखता रखता है । अपने को अहकार-विहीन बतला कर यह जगत मे चिरकाल तक अपनी हीनता को ही प्रकट करता है ।

टिप्पणी—(स्तुति) न तो यह महान या महत्तत्व है और न सत्त्व, रजस्, तमस् के समान होने से जो प्रधानता होती है उसे ही धारण करते है अर्थात् प्रधान भी नही है । अहकार से रहित होने के कारण यह इस जगत में साधारण जनो से पृथक् अपनी सत्ता रखते है एव पञ्चतन्मात्रा तथा पच महाभूतो से भी यह परे है । अर्थात्

न तो यह महान है, न प्रधान है, न भूत है, न तन्मात्रा है, न अहंकार है, प्रत्युत इन चौबीसों से परे पचीसवें पदार्थ परमपुरुष है।

रहितं कलाभिरखिलाभिरकृतरसभावसंविदम् ।
क्षेत्रविदमपदिशन्ति जनाः पुरबाह्यमेनमगतं विदग्धताम् ॥ ३ ॥

अर्थ—लोग इस कृष्ण की सम्पूर्ण कलाओं से विहीन, शृंगारादि रस एवं रत्यादि भावों के संवेदन से भी शून्य, एवं विदग्ध शास्त्रों के संकेत को समझने में असमर्थ, गाँव के बाहर निवास करने योग्य एक मूर्ख किसान के रूप में चर्चा करते हैं।

टिप्पणी—(स्तुति) लोग इन्हें हस्तपादादि अवयवों से रहित, क्षेत्रज्ञ अर्थात् आत्मा, रस एवं भावादि से शून्य चित्स्वरूप शरीर से बाह्य और अग्नि की दाहकता से परे कहलाते हैं।

अतिभूयसापि सुकृतेन दुरुपचर एष शक्यते ।
भक्तिशुचिभिरुपचारपरैरपि न ग्रहीतुमभियोगिभिर्नृभिः ॥ ४ ॥

अर्थ—भक्ति से पवित्र हृदय वाले, सदा पूजा-पाठ में निरत रहने वाले एवं उद्योगपरायण लोगों द्वारा अत्यन्त प्रचुर उपकार करने पर भी यह कठिनाई से वश में किया जानेवाला अकृतज्ञ कृष्ण प्रसन्न नहीं किया जा सकता।

टिप्पणी—(स्तुति) यह भगवान् योगाराधन में निरत रहने वालों से भी दुर्ज्ञेय हैं, अनेक यज्ञ-दानादि सत्क्रियाओं द्वारा भी वश में नहीं किये जा सकते। भक्ति से पवित्र हृदय वाले भक्त भी इनका पार नहीं पा सकते, अथवा उत्तम कर्म करने वाले *योगीजन इन्हें नहीं जान सकते—ऐसी बात नहीं, वे ही तो इन्हें जान ही सकते हैं।*

व्रजति स्वतामनुचितोऽपि सविनयमुपासितो जनैः ।
नित्यमपरिचितचित्ततया पर एव सर्वजगतस्तथाप्ययम् ॥ ५ ॥

अर्थ—यह कृष्ण सर्वथा अयोग्य होते हुए भी हमारा सम्बन्धी बनता है। लोग विनयपूर्वक यद्यपि इसकी सेवा करते हैं किन्तु यह तो तीनों लोकों का शत्रु है, किसी का भी हितैषी नहीं है। (सत्य तो यह है कि) लोग सदा इसकी चित्तवृत्तियों से अपरिचित होकर ही इसकी सेवा करते हैं।

टिप्पणी—(स्तुति) यह भगवान् क्षेत्रज्ञ हैं। अनभ्यस्त एवं अज्ञेय होने पर भी योगीजन विनयपूर्वक एकाग्र चित्त से इनका चिन्तन करते हैं। समस्त जगत् से परे और विलक्षण हैं। इनका चित्त, मन, बुद्धि सब अपरिचित हैं।।

उपकारिणं निरुपकारमनरिमरिमप्रियं प्रियम्।
साधुमितरमबुधं बुधमित्यविशेषतः सततमेष पश्यति ॥ ६ ॥

अर्थ—यह ऐसा व्यक्ति है कि अपने उपकारी, अनुपकारी, मित्र, शत्रु, प्रिय, अप्रिय, साधु, असाधु, मूर्ख और पण्डित—सब को सदा एक समान देखता है।

टिप्पणी—(स्तुति) परमात्मा निर्गुण हैं, समदृष्टि हैं अत उनकी दृष्टि म ये सब बराबर हैं।

उपकारकस्य दधतोऽपि बहुगुणतया प्रधानताम्।
दुःखमयमनिशमाश्रवतो न परस्य किंचिदुपकर्तुमिच्छति ॥ ७ ॥

अर्थ—अनेक गुणों से युक्त होने के कारण प्रधानता को प्राप्त करने वाले एव अपनी सेवा में रहकर रात-दिन अनेक कष्ट सहने वाले उपकारकों का भी यह व्यक्ति कुछ भी प्रत्युपकार करना नहीं चाहता।

टिप्पणी—(स्तुति) यह परमात्मा प्रधानसज्ञक बुद्धि तत्त्व का कुछ भी उपकार नहीं करना चाहते। यह बुद्धि-तत्त्व पुरुष प्रवृत्ति द्वारा उपकारक तथा तीन प्रमुख गुणों के कारण प्रधानता या प्रकृतित्व को प्राप्त करने वाला है तथा सदैव जन्म मरणादि दु खो को प्राप्त करने वाला है।

स्वयमक्रियः कुटिलमेष तृणमपि विधातुमक्षमः।
भोक्तुमविरतमलज्जतया फलमीहते परकृतस्य कर्मणः ॥ ८ ॥

अर्थ—यह कृष्ण स्वय तो एक तिनके को भी टेढ़ा करने की सामर्थ्य नहीं रखता किन्तु निर्लज्जता के कारण दूसरों द्वारा किए हुए कर्मों का फल भोगने की सदैव इच्छा करता है।

टिप्पणी—(स्तुति) यह आत्मा स्वय अक्रिय तथा निष्कर्मा है और तृण भी टेढ़ा करने में असमर्थ है। और स्वय निर्गुण होने से बुद्धि द्वारा किये गये कर्मों के फल सुख-दु खादि का भोग करता है।

य इमं समाश्रयति कश्चिदुदयविपदोर्निराकुलम् ।
तस्य भवति जगतीह कुतः पुनरुद्भवो विकरणत्वमेयुषः ॥ ६ ॥

अर्थ—मित्रों के अभ्युदय एव विपत्ति मे निश्चिन्त रहनेवाले इस कृष्ण का सहारा जो कोई मूर्ख लेता है,वह मर जाता है और उसका इस ससार मे पुनः अभ्युदय हो ही कैसे सकता है ?

टिप्पणी—(स्तुति) जो कोई योगी इन परमात्मा श्रीकृष्ण का, जो उदय एव विपत्ति में सदा एक रूप रहते हैं, सेवन करता है, वह मृत्यु के अनन्तर पुन शरीर नही धारण करता।

गुणवन्तमप्ययमपास्य जनमखिलमव्यवस्थितैः ।
याति सुचिरमतिबालतया धृतिमेक एव परिवारितो जडैः ॥१०॥

अर्थ—यह श्रीकृष्ण सभी गुणवान पुरुषों को भी, अपनी अत्यन्त मूर्खता अथवा चचलता के कारण छोडकर, अव्यवस्थित चित्त वाले मूर्खों से घिरकर बहुत दिनो तक शान्ति के सुख का लाभ करता है ।

टिप्पणी—(स्तुति) यह भगवान् सत्वादि गुणो से युक्त लोगो का सहार कर बालमुकुन्द रूप में चारो ओर से अव्यवस्थित रूप में फैली हुई जलराशि से घिर कर चिरकाल तक शान्तिपूर्वक शयन करते हैं।

सुकृतोऽपि सेवकजनस्य बहुदिवसखिन्नचेतसः ।
सर्वजनविहितनिर्विदयं सकृदेव दर्शनमुपैति कस्यचित् ॥ ११ ॥

अर्थ—सभी लोगों को कष्ट देने वाला यह कृष्ण, अपने लिए बहुत दिनों से कष्ट उठाकर खिन्न रहने वाले परम उपकारी अपने सेवक वर्गों मे से किसी एक को कभी एक बार दर्शन देता है ।

टिप्पणी—(स्तुति) यह परमात्मा, जिनका न तो कोई मित्र है, न द्वेष्य है, बहुत दिनो से दर्शन के लिए खिन्न चित्त रहने वाले, पुण्यशील अपने भक्तो में से किसी एक का कभी एक बार दर्शन देते हैं।

स्वजने सखिष्वनुगतेषु नियतमनुरागवत्स्वपि ।
स्नेहममृदुहृदयः क्षपयन्निरपेक्ष एष समुपैति निर्वृतिम ॥ १२ ॥

अर्थ—क्रूर चित्त और अविवेकी यह कृष्ण अपने ऊपर अनुराग रखने वाले स्वजनों, मित्रों तथा आश्रितों के साथ अपने स्नेह का नाश करके सदैव सुख प्राप्त करता है। अर्थात् सर्वत्र इसका वैर ही चलता है।

टिप्पणी—(स्तुति) यह परमात्मा वीतराग, निरपेक्ष तथा निःसंग है और स्वजनों मित्रों एवं आश्रितों आदि में तृष्णा दूर कर के निर्वाण की प्राप्ति करते हैं।

क्षणमेष राजसतयैव जगदुदयदर्शितोद्यतिः ।
सत्त्वहितकृतमतिः सहसा तमसा विनाशयति सर्वमावृतः ॥१३॥

अर्थ—सर्वदा अहितकर कार्यों में बुद्धि रखने वाला यह कृष्ण थोड़ी देर के लिए कभी राजसी भाव में आकर जगत के कल्याण के लिए थोड़ा-बहुत उद्यम दिखला देता है, किन्तु पुनः तमोगुण से व्याप्त होकर तुरन्त ही सब कुछ किया-धरा चौपट कर देता है।

टिप्पणी—(स्तुति) यह त्रिमूर्ति रूपधारी भगवान् रजोगुण का आश्रय लेकर ब्रह्मारूप में जगत को उत्पन्न करने का उद्योग करते हैं, सत्त्वगुण का आश्रय ले कर विष्णुरूप में जगत का पालन करने में चित्त लगाते हैं तथा तमोगुण के आश्रय से रुद्र रूप में जगत् का विनाश करते हैं।

अभिहन्यते यदभिहन्ति परितपति यच्च तप्यते ।
नास्य भवति वचनीयमिदं चपलात्मिका प्रकृतिरेव हीदृशी ॥१४॥

अर्थ—यह कृष्ण, जो दूसरों द्वारा मारा जाता है अथवा जो दूसरे लोगों को यह मारता है तथा जो यह दूसरों को कष्ट देता है अथवा दूसरे लोग जो इसके कार्यों में उपद्रव करते हैं—उसमें इसकी कोई निन्दा नहीं की जा सकती, क्योंकि इसकी चंचल प्रकृति इसी प्रकार की है ही।

टिप्पणी—(स्तुति) यह परमात्मा मारता है, मरता है, सताता है, सताया जाता है—ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए, क्योंकि यह सब कार्य तो चंचल प्रकृति करती है। परमात्मा नहीं करते।

अतिसत्त्वयुक्त इति पुंभिरयमतिशयेन वर्ण्यते ।
सूक्ष्ममतिभिरथ चापगते समुपैति नाल्पमपि सत्त्वसंकरम् ॥१५॥

अर्थ—स्वल्प बुद्धि वाले लोग इस कृष्ण को अत्यन्त धीरता युक्त बतलाकर इसकी अतिशय प्रशंसा करते हैं, किन्तु इसमें तो धनुष-बाण धारण करके शत्रु के सम्मुख आने पर पौरुष का लेशमात्र भी शेष नहीं रह जाता ।

टिप्पणी—(स्तुति) कुशाग्रबुद्धि योगी जन इन भगवान् श्रीकृष्ण को अत्यन्त सत्त्वगुण सम्पन्न बतलाते हैं। किन्तु इनके जान लेने के पश्चात् निर्वीज समाधि न सत्त्वगुण का लेश भी नहीं दिखायी पड़ता। (क्योंकि पुरुष तो गुणों से परे हैं)।

प्रलयं परस्य महतोऽपि नियतमिह निःसुखे गुणाः ।
यान्ति जगदपि सदोषमदः स्वरुचैव पश्यति गुणान्द्विषन्नयम् ॥१६॥

अर्थ—यह कृष्ण सुख से विहीन है, दूसरे महान लोगों के गुण भी इसके समीप आकर विलीन हो जाते हैं (अर्थात् यह किसी के गुणों की कद्र नहीं करता)। इतना ही नहीं, यह कृष्ण गुणों से द्वेष रखते हुए इस संसार को भी अपनी इच्छा से दोषयुक्त ही देखता है।

टिप्पणी—(स्तुति) विकार का न प्राप्त होने के कारण सुखरहित इन भगवान् श्रीकृष्ण में महान् बुद्धितत्त्व के सत्त्व, रजस्, तमस् गुण विलीन हो जाते हैं और यह परमात्मा सत्त्वादि गुणों की निन्दा करते हुए इस जगत् को अपने ज्ञान द्वारा जन्म-मरणादि दुःखों से युक्त देखते हैं अर्थात् प्रकृति को क्लेशयुक्त देखते हैं।

क्षितिपीठमम्भसि निमग्नमुदहरत यः परः पुमान् ।
एष किल स इति कैरबुधैरभिधीयमानमपि तत्प्रतीयते ॥१७॥

अर्थ-पूर्वकाल में जिन्होंने जल में निमग्न पृथ्वी-मण्डल का उद्धार किया था, वह परम पुरुष यही हैं—ऐसी बात यदि इस कृष्ण के बारे में कही जाय तो कौन ऐसा मूर्ख होगा, जो इस पर विश्वास करेगा (अर्थात् ऐसी अनर्गल बात पर कोई विश्वास नहीं कर सकता।)

टिप्पणी—(स्तुति) पृथ्वी के उद्धार के संबंध की ऊपर की बात जब विद्वान लोग कहते हैं तो उस पर मूर्ख भी विश्वास कर लेते हैं।

नरसिंहमूर्तिरयमेव दितिसुतमदारयन्नखैः ।
आप्तजनवचनमेतदपि प्रतिपत्तुमोमिति जनोऽयमर्हति ॥१८॥

अर्थ—नरसिंह रूप धारण कर इसी कृष्ण ने दिति के पुत्र हिरण्य-कशिपु को अपने नखों से फाडा था। इसके (श्रीकृष्ण के) मित्रों (व्यासादि) की इस चाटूक्ति को भी ये भीष्म आदि मूर्ख लोग 'हाँ, हाँ' कह कर सच्ची मान लेते हैं। (अर्थात् मित्र लोग तो झूठी खुशामद करते ही हैं, उस पर विश्वास करने वाले भी मूर्ख ही होते हैं)

टिप्पणी—(स्तुति) इन्ही भगवान् ने नरसिंह रूप धारण कर अपने नखो से उस दैत्यपति को फाड डाला था—इस आप्त वचन का पण्डित लोग ही सत्य मानते है। साधारण लोग तो इसे समझ भी नही पाते ।

अपहाय तुङ्गमपि मानमुचितमवलम्ब्य नीचताम् ।
स्वार्थकरणपटुरेप पुरा बलिना परेण सह संप्रयुज्यते ॥ १९ ॥

अर्थ—यह कृष्ण अपना स्वार्थ सिद्ध करने मे परम पटु है। पूर्व काल मे इसने नीचता का सहारा लेकर अपने ऊँचे एव उचित अहकार को भी त्याग कर अपने बलवान शत्रुओं के साथ सुलह कर ली थी।

टिप्पणी—(स्तुति) अपने शरीर की विशालता का त्यागकर तथा वामन रूप धारण कर पूर्वकाल में श्रेष्ठ राजा बलि के साथ इन्ही भगवान् ने मैत्री-सम्बन्ध स्थापित किया था, क्योकि अपने आत्मीयजन इन्द्र का प्रयोजन सिद्ध करने में यह परम पटु है।

क्रमते नभो रभसयैव विरचयति विश्वरूपताम् ।
सर्वमतिशयगतं कुरुते स्फुटमिन्द्रजालमिदमेप मायया ॥ २० ॥

अर्थ—यह कृष्ण माया के साथ सब कुछ इन्द्रजाल ही रचता है और सभी वस्तुओ को विशेष रूप से आश्चर्य युक्त बना देता है। (देखो न, युद्धादि में) यह वेग के साथ आकाश में ऊपर उड़ने लगता है तथा 'विश्वरूपता' अर्थात् कभी 'वि' (पक्षी) कभी 'श्व,' (कुत्ता) तथा कभी 'रूप' (मृगादि) का धर्म धारण करता है। (किन्तु इसका वास्तविक व्यवहार कुछ भी नहीं है।) ।

टिप्पणी—(स्तुति) यह स्पष्ट है कि यह सम्पूर्ण जगत् भगवान् अपनी व्यापक माया अर्थात् ऋद्धि से ही इन्द्रजाल की भाँति बनाते हैं। आकाश को उल्लंघन करते है, बलि के यज्ञ में अपना विराट स्वरूप दिखलाते है एव जगत की सभी वस्तुओं को विशिष्ट बना देते हैं।

किल रावणारिरयमेव किमिदमियदेव कथ्यते ।
सत्त्वमतिबलमधिद्युति यत्तदशेषमेष इति धृष्टमुच्यताम् ॥ २१ ॥

अर्थ—यही रावण का मारने वाला था, क्यों इतनी ही बात कहते हो ! (अर्थात् यदि झूठ ही बोलना है तो और लबी झूठ बोलो न!) (इस ससार मे) जो भी अत्यन्त बलवान्, कान्तिमान् एव महान् तेजस्वी प्राणी हैं, वह सब यही है—धृष्टतापूर्वक यह क्यों नही कहते ?

टिप्पणी—(स्तुति) यही भगवान् श्रीकृष्ण ही रावण के शत्रु थे—यही क्यो कहते हो, इस ससार में तो जो भी अत्यन्त बलवान्, कान्तिमान एव महान् तेजस्वी विभूतियाँ ह—वह सब यही है, नि सकोच ऐसा कहना चाहिए । श्री मद्भगद्-गीतामें कहा भी गया है —

> यद् यद् विभूतिमत् सत्त्व श्रीमदूर्जितमेव वा ।
> तत्तदेवावगच्छ त्व ममतेजोऽशसम्भवम् ॥

अर्थात् इस ससार में जो भी एश्वर्यवान्, श्रीमान् अथवा तेजोवान पदार्थ हैं उन सब को मरे ही अश से उत्पन्न समझना चाहिए।

चलतैप पादयुगलेन गुरु शकटमीपदस्पृशत् ।
दैवकलितमथ चोदलसद्दलितोरुभाण्डचयमात्मनैव तत् ॥ २२ ॥

अर्थ—इस कृष्ण ने अपने चपल पैरा से उस महान शकट को छू भर दिया था, वह तो दैवी प्रेरणा से स्वय ही गिर गया था जिससे वहाँ दही-घृत आदि के बड़े-बडे मटके तथा घडे आदि फूट गये थे । (उसके उलटने मे इसके पौरुष की कोई विशेपता नहीं थी) ।

टिप्पणी—(स्तुति) इन भगवान् श्रीकृष्ण ने चलते हुए अपने दोनो चरणो से उस शकट को तनिक-सा छू भर दिया था । आश्चय का विपय हैं कि इतने ही से वह उल्ट गया जिससे वहाँ दही, घृत आदि के बडे-बडे मटके तथा घडे आदि फूट गये थ । पैर के छू जाने मात्र से इतने बडे शकट का टूट जाना कितने आश्चर्य की बात है ?

स्नुवतामुना स्तनयुगेन जनितजननीजनादरा ।
स्त्रीति सदयमविधाय मनस्तदकारि साधु यदघाति पूतना ॥२३॥

अर्थ—इस कृष्ण ने, जो माता के समान स्नेह प्रकट कर दोनों स्तनों म क्षीर चुवाती हुई उपस्थित पूतना राक्षसी पर स्त्री जानकर भी

किमिवात्र चित्रमयमन्नमचलमहकल्पितं यदि ।
ग्राश निखिलमखिलेऽपि जगत्युदरं गते बहुभुजोऽस्य न व्यथा२६

अर्थ—जो इस कृष्ण ने पर्वत-महोत्सव के अवसर पर जितना अन्न वहाँ परोसा गया था, उसे सम्पूर्ण रूप से अकेला ही खा गया तो इसमें कौन-सी आश्चर्य की बात थी ? क्योंकि यह तो महान् पेटू और बहुभोजी है ही। इसके पेट में तो यदि त्रैलोक्य भर दिया जाय तब भी इसे पीड़ा नहीं होगी।

टिप्पणी—(स्तुति) पर्वत-महोत्सव के अवसर पर जितना अन्न वहाँ परोसा गया था उसे सम्पूर्ण रूप से जो इन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने अकेला ही खा लिया तो इसमें कौन सी आश्चर्य की बात है ? क्योंकि यह जगन्निवास है। इनके उदर में तो अखिल विश्व ही निवास करता है और इन्हें तनिक पीड़ा नहीं होती। यह सम्पूर्ण भुवनों के पालक है अथवा अनेक भुजाओं वाले हैं।

अमुना करेण पृथुदन्तमुसलमुदखानि दन्तिनः ।
तेन यदवधि स एव पुनर्बलशालिनां क इव तत्र विस्मयः ॥३०॥

अर्थ—इस कृष्ण ने कुवलयापीड हाथी के मूसल के समान मोटे दाँतों को, जो अपने हाथों से उपार लिया था और उसके उखाड़ लेने की पीड़ा से वह हाथी जो मर गया सो इसमें बलवान पुरुषों को क्या विस्मय हो सकता है ? (क्योंकि मार्मिक स्थानों पर चोट पहुँचाकर कोई बालक भी हाथी को मार सकता है।)

टिप्पणी—(स्तुति) भगवान् श्रीकृष्ण ने उस महाबलवान् कुवलयापीड हाथी का, मूसल के समान मोटे दाँतों को अपने हाथों से उपार कर जो वध कर दिया, वह तो सचमुच बलवानों के लिए भी आश्चर्य की बात है ? क्योंकि पागल और बलवान हाथी को मारना साधारण कार्य नहीं है। कहा जाता है कि—

'एक क्रुद्धो गजो हन्ति षट्सहस्राणि वाजिनाम्।'

अर्थात् एक ही क्रुद्ध हाथी छः सहस्र घोड़ों को मार डालता है।

शिशुरेव शिक्षितनियुद्धकरणमकृतक्रियः स्वयम् ।
मल्लमलघुकठिनांसतटं न्यवधीद्यदेष तदद्दष्टकारितम् ॥३१॥

अर्थ—इस कृष्ण ने स्वयं तनिक भी बाहुयुद्ध को न जानते हुए लड़कपन में ही जो विस्तृत एवं कठोर कन्धोंवाले तथा बाहुयुद्ध की क्रियाओं में परम अभ्यस्त चाणूर नामक मल्ल का वध कर दिया था वह दुर्दैव का ही कार्य था। (क्योंकि एक छोकरा उस भीषण मल्ल को कैसे मार सकता था ?)।

टिप्पणी—(स्तुति) ऐसे चाणूर का वध क्या दुर्दैव का ही कार्य था? नहीं, वह इन्हीं भगवान् श्रीकृष्ण की महिमा थी।

यदयुध्यमानमपि सन्तमुपहितसुरौघसाध्वसम् ।
कंसमभियमयमभ्यभवत्सुदा जनेन तदपि प्रशंस्यते ॥३२॥

अर्थ—इस कृष्ण ने जो देवताओं को आतंकित कर देनेवाले कंस को, बैठे रहने पर, उस समय जब कि वह युद्ध नहीं कर रहा था, मार डाला उसकी भी लोग प्रसन्नता के साथ प्रशंसा करते हैं। (भला निष्क्रिय बैठे व्यक्ति को मारने में कैसी प्रशंसा है यह तो घोर निन्दा की बात है।)

टिप्पणी—(स्तुति) उस अवस्था में बैठे हुए कंस को जो भगवान् श्रीकृष्ण ने मारा उसका भी सन्तोषी लोग प्रशंसा ही करते हैं क्योंकि उसके कारण देवताओं में बड़ा आतंक था।

इति निन्दितुं कृतधियापि वचनममुना यदाददे ।
स्तोतुमनिशमुचितस्य परैः स्तुतिरेव सा मधुनिघातिनोऽभवत् ३३

अर्थ—इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण की निन्दा करने की इच्छा से शिशुपाल ने जो बातें कहीं, वह सब दूसरे लोगों द्वारा सर्वथा स्तुति करने योग्य मधुसूदन के लिए 'स्तुति' ही हो गयी।

यदुवाच दुष्टमतिरेष परिविवदिपुर्मुरद्विषम् ।
द्वयर्थमपि सदसि चेदिपतेस्तदतोऽपराधगणनामगाद्वचः ॥३४॥

अर्थ—सभा में उस दुष्टबुद्धि चेदिपति शिशुपाल ने मुरारि भगवान् श्रीकृष्ण की निन्दा करने की इच्छा से जो उपर्युक्त द्वयर्थक बातें कहीं, वे सब भी उसके अपराध कोटि में ही गिनी गयीं।

—०—

इति वाचमुद्धतमुदीर्य सपदि सह वेणुदारिणा ।
सोढरिपुबलभरोऽसहनः स जहास दत्तकरतालमुच्चकैः ॥३९॥

अर्थ—शत्रुओं के परम पराक्रम को सहन करनेवाले शिशुपाल ने भगवान् के सम्मान को न सहन कर इस प्रकार उक्त निष्ठुर बातें कहने के अनन्तर तुरन्त ही नरकासुर के पुत्र के साथ परस्पर तालें ठोंकते हुए उच्चस्वर म अट्टहास किया।

टिप्पणी—स्वभावोक्ति अलंकार ।

कटुनापि चैद्यवचनेन विकृतिमगमन्न माधवः ।
सत्यनियतवचसं वचसा सुजनं जनाश्चलयितुं क ईशते ॥४०॥

अर्थ—शिशुपाल की इन कठोर बातों से, भगवान श्रीकृष्ण तनिक भी क्षुब्ध नहीं हुए। सत्य पर अडिग रहनेवाले सज्जन पुरुषों को कठोर बातें कहकर कौन व्यक्ति विचलित कर सकता है ?

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलंकार ।

न च तं तदेति शपमानमपि यदुनृपाः प्रचुक्रुधुः ।
शौरिसमयनिगृहीतधियः प्रभुचित्तमेव हि जनोऽनुवर्तते ॥४१॥

अर्थ—उस समय इस प्रकार की गालियाँ बकते हुए भी शिशुपाल पर उन यदुवंशी राजाओं ने, जो भगवान् श्रीकृष्ण के इशारे से अपने आप को रोके हुए थे, प्रकट रूप म क्रोध नहीं किया। (क्यों न हो) लोग अपने स्वामी की चित्तवृत्ति का ही अनुगमन करते हैं।

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास और काव्यलिंग का संकर ।

निहितागसो मुहुरलङ्घ्यनिजवचनदामसंयतः ।
तस्य कतिथ इति तत्प्रथमं मनसा समाख्यदपराधमच्युतः ॥४२॥

अर्थ—अपने अलंघनीय प्रतिज्ञा-पाश स बंधे हुए भगवान् श्रीकृष्ण ने, सहस्रों बार अपराध करनेवाले उस शिशुपाल के इस अपराध को ही प्रथम अपराध के रूप में, गिना।

टिप्पणी—काव्यलिंग अलंकार ।

स्मृतिवर्त्म तस्य न समस्तमपकृतमियाय विद्विषः ।
स्मर्तुमधिगतगुणस्मरणाः पटवो न दोषमखिलं खलूत्तमाः ॥४३॥

अर्थ—विद्वेषी शिशुपाल के समस्त अपकार भगवान् श्रीकृष्ण के स्मृति-पथ पर नहीं आये। क्योंकि ऐसे सज्जन, जिन्हें दूसरों के गुणों का ही स्मरण करने का अभ्यास है, दूसरों के समस्त दोषों को याद ही नहीं रख सकते।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि सज्जन लोग दूसरों के उपकारों का ही स्मरण रखते हैं अपकारों का नहीं। अर्थान्तरन्यास अलंकार।

नृपतावधिक्षिपति शौरिमथ सुरसरित्सुतो वचः ।
स्माह चलयति भुवं मरुति क्षुभितस्य नादमनुकुर्वदम्बुधेः ॥४४॥

अर्थ—इसके बाद, चेदिनरेश शिशुपाल द्वारा इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण को अपमानजनक बातें कहने पर। गंगापुत्र भीष्म, प्रलय-कालीन प्रभंजन द्वारा पृथ्वी के कंपित हो जाने पर उद्वेलित महा-समुद्र के गंभीर स्वर का अनुकरण करते हुए बोले—

टिप्पणी—'स्म' का पद के आदि में प्रयोग कवि की जबर्दस्ती है। उपमा अलंकार।

अथ गौरवेण परिवादमपरिगणयंस्तमात्मनः ।
प्राह मुररिपुतिरस्कृतिक्षुभितः स्म वाचमिति जाह्नवीसुतः ॥४५॥

अर्थ—शिशुपाल के उक्त प्रलाप के अनन्तर मुरारि भगवान् श्रीकृष्ण के तिरस्कार से क्षुब्ध गंगापुत्र भीष्म ने धैर्य के साथ अपनी निन्दा की कोई परवाह न कर इस प्रकार की बातें कहीं :—

टिप्पणी—काव्यलिंग अलंकार।

विहितं मयाद्य सदसीदमपमृषितमच्युतार्चनम् ।
यस्य नमयतु स चापमयं चरणः कृतः शिरसि सर्वभूभृताम् ॥४६॥

अर्थ—हे राजाओं! जिस किसी राजा को आज इस सभा में मेरे द्वारा की गयी भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा सह्य नहीं है, वह धनुष चढ़ा ले। यह मेरा (बाँया) पैर ऐसे सभी राजाओं के शिर पर रखा जा रहा है।

टिप्पणी—भीष्म ने अपने बाएँ पैर को धरती पर पटक कर यह संकेत किया है।

इति वाचमुद्धतमुदीर्य सपदि सह वेणुदारिणा।
सोढरिपुबलभरोऽसहनः स जहास दत्तकरतालमुच्चकैः ॥३९॥

अर्थ—शत्रुओं के परम पराक्रम को सहन करनेवाले शिशुपाल ने भगवान् के सम्मान को न सहन कर इस प्रकार उक्त निष्ठुर बातें कहने के अनन्तर तुरन्त ही नरकासुर के पुत्र के साथ परस्पर तालें ठोंकते हुए उच्चस्वर में अट्टहास किया।

टिप्पणी—स्वभावोक्ति अलकार।

कटुनापि चैद्यवचनेन विकृतिमगमन्न माधवः।
सत्यनियतवचसं वचसा सुजनं जनश्चलयितुं क ईशते ॥४०॥

अर्थ—शिशुपाल की इन कठोर बातों से, भगवान श्रीकृष्ण तनिक भी क्षुब्ध नहीं हुए। सत्य पर अडिग रहनेवाले सज्जन पुरुषों को कठोर बातें कहकर कौन व्यक्ति विचलित कर सकता है?

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलकार।

न च तं तदेति शपमानमपि यदुनृपाः प्रचुक्रुधुः।
शौरिसमयनिगृहीतधियः प्रभुचित्तमेव हि जनोऽनुवर्तते ॥४१॥

अर्थ—उस समय इस प्रकार की गालियाँ बकते हुए भी शिशुपाल पर उन यदुवंशी राजाओं ने, जो भगवान् श्रीकृष्ण के इशारे से अपने आप को रोके हुए थे, प्रकट रूप में क्रोध नहीं किया। (क्यों न हो) लोग अपने स्वामी की चित्तवृत्ति का ही अनुगमन करते हैं।

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास और काव्यलिंग का सकर।

विहितागसो मुहुरलङ्घ्यनिजवचनदामसंयतः।
तस्य कतिथ इति तत्प्रथमं मनसा समाख्यदपराधमच्युतः ॥४२॥

अर्थ—अपने अलघनीय प्रतिज्ञा-पाश से बँधे हुए भगवान् श्रीकृष्ण ने, सहस्रों बार अपराध करनेवाले उस शिशुपाल के इस अपराध को ही प्रथम अपराध के रूप में, गिना।

टिप्पणी—[illegible] अलकार।

स्मृतिवर्त्म तस्य न समस्तमपकृतमियाय विद्विपः ।
स्मर्तुमधिगतगुणस्मरणाः पटवो न दोषमखिलं खलूत्तमाः ॥४३॥

अर्थ—विद्वेषी शिशुपाल के समस्त अपकार भगवान् श्रीकृष्ण के स्मृति-पथ पर नहीं आये। क्योंकि ऐसे सज्जन, जिन्हें दूसरों के गुणों का ही स्मरण करने का अभ्यास है, दूसरों के समस्त दोषों को याद ही नहीं रख सकते।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि सज्जन लोग दूसरों के उपकारों का ही स्मरण रखते हैं अपकारों का नहीं। अर्थान्तरन्यास अलंकार।

नृपतावधिक्षिपति शौरिमथ सुरसरित्सुतो वचः ।
स्माह चलयति भुवं मरुति क्षुभितस्य नादमनुकुर्वदम्बुधेः ॥४४॥

अर्थ—इसके बाद, चेदिनरेश शिशुपाल द्वारा इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण को अपमानजनक बातें कहने पर। गंगापुत्र भीष्म, प्रलय कालीन प्रभंजन द्वारा पृथ्वी के कंपित हो जाने पर उद्वेलित महासमुद्र के गंभीर स्वर का अनुकरण करते हुए बोले—

टिप्पणी—'स्म' का पद के आदि में प्रयोग कवि की जबदस्ती है। उपमा अलंकार।

अथ गौरवेण परिवादमपरिगणयन्स्तमात्मनः ।
प्राह मुररिपुतिरस्करणक्षुभितः स्म वाचमिति जाह्नवीसुतः ॥४५॥

अर्थ—शिशुपाल के उक्त प्रलाप के अनन्तर मुरारि भगवान् श्रीकृष्ण के तिरस्कार से क्षुब्ध गंगापुत्र भीष्म ने धैर्य के साथ अपनी निन्दा की कोई परवाह न कर इस प्रकार की बात कहीं —

टिप्पणी—काव्यलिंग अलंकार।

विहितं मयाद्य सदसीदमपमृषितमच्युतार्चनम् ।
यस्य नमयतु स चापमयं चरणः कृतः शिरसि सर्वभूभृताम् ॥४६॥

अर्थ—हे राजाओ! जिस किसी राजा को आज इस सभा में मेरे द्वारा की गयी भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा सह्य नहीं है, वह धनुष चढ़ा ले। यह मेरा (बाँया) पैर ऐसे सभी राजाओं के शिर पर रखा जा रहा है।

टिप्पणी—भीष्म ने अपने बाएं पैर को धरती पर पटक कर यह संकेत किया है।

इति भीष्मभाषितवचोऽर्थमधिगतवतामिव क्षणात् ।
क्षोभमगमदतिमात्रमथो शिशुपालपक्षपृथिवीभृतां गणः ॥४७॥

अर्थ—इस प्रकार मानो भीष्म द्वारा कही गई, शिर पर पैर रखने वाली बात के अर्थ को समझते हुए शिशुपाल के पक्ष में रहने वाले राजाओं के समूह क्षण भर म ही अत्यन्त क्षोभ से भर गये।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलकार।

[आगे के दस श्लोको में रौद्र रस के स्थायी भाव क्रोध के अनुभावो का वर्णन कवि ने किया है।]

शितितारकानुमितताम्रनयनमरुणीकृत क्रुधा ।
बाणवदनमुददीपि भिये जगतः सकीलमिव सूर्यमण्डलम् ॥४८॥

अर्थ—अत्यन्त क्रोध से लाल एव काली पुतलियो से पृथक् ताम्र वर्ण की दिखायी पडने वाली आँखों से युक्त बाणासुर का मुख, पापग्रह शनिश्चर और भौम अथवा कीलाकार छाया (परिधि) से युक्त सूर्यमण्डल की भाँति ससार को भयभीत करने के लिए प्रज्वलित हो उठा।

टिप्पणी—तद्गुण और उपमा अलकार का सकर।

अविदारितारुणतरोग्रनयनकुसुमोज्ज्वलः स्फुरन् ।
प्रातरहिमकरताम्रतनुर्विषजद्रुमोऽपर इवाभवद्द्रुमः ॥४९॥

अर्थ—अत्यन्त विकास को प्राप्त होने वाले क्रोध से विशेष रक्त होने के कारण भयकर नेत्र-रूपी पुष्पों से उज्ज्वल एवं अपने तेज से जलते हुए द्रुम राजा का शरीर प्रातःकालिक सूर्य की भाँति लालवर्ण का होकर मानों विष-वृक्ष सा दिखायी पड़ने लगा

टिप्पणी—रूपक व सकीर्ण उत्प्रेक्षा अलकार।

अनिर्यान्तवैरदहनेन विरहितवतान्तरार्द्रताम् ।
कोपमरुदभिहतेन भृशं नरकात्मजेन तरुणेव जज्वले ॥५०॥

अर्थ—वैररूपी अग्नि के न बुझने के कारण नरकासुर के पुत्र वणुदारी का अन्तःकरण सरसता से विहीन हो उठा था, फिर तो वह

क्रोध-रूपी वायु से प्रेरित होकर (सूखे) वृक्ष की भाति और भी जल उठा।

टिप्पणी—उपमा अलकार।

अभिधित्सतः किमपि राहुवदनविकृतं व्यभाव्यत।
ग्रस्तशशधरमिवोपलसत्सितदन्तपङ्क्ति मुखमुत्तमौजसः ॥५१॥

अर्थ—कुछ बोलने के इच्छुक होने के कारण उज्ज्वल दत-पक्तियों से युक्त राजा उत्तमौजा का मुख मानों चन्द्रमा को ग्रसते हुए राहु के मुख के समान विकराल दिखाई पडने लगा।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलकार ॥

कुपिताकृतिं प्रथममेव हसितमशनैरसूचयत्।
क्रुद्धमशनिदलिताद्रितटध्वनि दन्तवक्रमरिचक्रभीषणम् ॥५२॥

अर्थ—(क्रोध उत्पन्न होने के) पूर्व ही जिसकी आकृति क्रोधी के समान थी, उस शत्रुओं की सेना के लिए परम भयकर राजा दन्तवक्त्र को, पर्वत पर गिरे हुए वज्र की ध्वनि की भाति उच्चस्वर से किया गया उसका अट्टहास ही, क्रोधयुक्त सूचित कर रहा था।

टिप्पणी—उपमा और अतिशयोक्ति का सकर।

प्रतिघः कुतोऽपि समुपेत्य नरपतिगणं समाश्रयत्।
जामिहरणजनितानुशयः समुदाचचार निज एव रुक्मिणः ॥५३॥

अर्थ—(इस अवसर पर यह दिखायी पड़ने वाला) क्रोध तो कहीं से आकर शिशुपाल पक्षीय अन्य राजाओं के मन में घर कर रहा था, किन्तु रुक्मी को तो उसका वही पुराना क्रोध (इस अवसर पर) जलाने लगा, जो पहले बहिन (रुक्मिणी) के अपहरण के समय ही उत्पन्न हो चुका था।

टिप्पणी—काव्यलिंग अलकार।

चरणेन हन्ति सुबलः स्म शिथिलितमहीध्रबन्धनाम्।
तीरतरलजलराशिजलामवभुग्नभोगिफलमण्डलां भुवम् ॥५४॥

अर्थ—सुबल नामक राजा ने, जब क्रोध से अपने पैर को धरती पर पटका तो उसके आघात से पर्वतों की सधियाँ शिथिलित हो गयीं,

समुद्र की जलराशि तटों पर लहराने लगी तथा (पाताल में) सर्पों के फणसमूह टेढे हो गये।

टिप्पणी—अतिशयोक्ति अलकार।

कुपितेषु राजसु तथापि रथचरणपाणिपूजया।
चित्तकलितकलहागमनो मुदमाहुकिः सुहृदिवाधिकां दधौ ॥५५॥

अर्थ—सुदर्शन चक्रधारी भगवान श्रीकृष्ण की पूजा से शिशुपाल पक्षीय अन्य राजाओं के क्रोधाभिभूत होने पर भी (उसी के पक्ष का) आहुकि नामक राजा (श्रीकृष्ण के) मित्र की भाँति अपने चित्त में भावी युद्ध के आगमन से अधिक प्रसन्न हुआ।

टिप्पणी—भगडालू लोग भगडा के आने की सम्भावना स प्रसन्न होते ही हैं। उपमा अलकार।

गुरुकोपरुद्धपदमापदसितयवनस्य रौद्रताम्।
व्यात्तमशितुमिव सर्वजगद्विकरालमास्यकुहरं विवक्षतः ॥५६॥

अर्थ—कुछ बोलने के इच्छुक कालयवन राजा का, मानों समस्त जगत् का भक्षण करने के लिए उत्सुक, फैला हुआ एव विकराल मुखविवर, अत्यन्त क्रोध से वाणी के रुक जाने क कारण और भी भयकर हो गया था।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलकार।

विवृतोरुबाहुपरिघेण सरभसपदं निधित्सता।
हन्तुमखिलनृपतीन्वसुना वसने विलम्बिनि निजे विचस्खले ॥५७॥

अर्थ—सम्पूर्ण विपक्षी राजाओं को मारने के लिए अपने विशाल बाहु-रूपी परिघों को फैलाये हुए राजा वसु न जब वेगपूर्वक अपने पैरों को आगे रखने की इच्छा की तो उछलने की शीघ्रता में नीचे गिरे हुए अपने वस्त्रों में ही उलझ कर वह गिर पड़ा।

टिप्पणी—काव्यलिङ्ग और रूपक की संसृष्टि।

इति तत्तदा विकृतरूपमभजत्तदनिभिन्नचेतसम्।
मारबलमिव भयंकरतां हरिबोधिसत्त्वमभि राजमण्डलम् ॥५८॥

अर्थ—इस प्रकार उस अवसर पर क्रोध से भीषण आकृति वाले वे (शिशुपाल पक्षीय) राजा लोग कामदेव की सेना की भाँति, अविकृत चित्त भगवान् श्रीकृष्ण-रूपी बोधिसत्त्व के सम्मुख अत्यन्त क्रोधित हो गये।

टिप्पणी—उपमा अलंकार।

रभसादुदस्थुरथ युद्धमनुचितभियोऽभिलाषुकाः।
सान्द्रमुकुटकिरणोच्छलितस्फटिकांशवः सदसि मेदिनीभृतः॥५६॥

अर्थ—तदनन्तर उस सभा में उपस्थित भय से अपरिचित एवं युद्ध के अभिलाषी, शिशुपाल पक्षीय राजा लोग वेग से उठ कर खड़े हो गये। उस समय उनके मुकुट की सघन किरणों से (सभाभवन की) स्फटिक शिला-निर्मित दीवालें चमक उठीं।

टिप्पणी—काव्यलिंग अलंकार।

स्फुरमाणनेत्रकुसुमोष्ठदलमभृत भूभृदङ्घ्रिपैः।
धूतपृथुभुजलतं चलितैर्द्रुतवातपातवनविभ्रमं सदः॥६०॥

अर्थ—चलते हुए नेत्र-रूपी पुष्पों से, फड़कते हुए ओठ-रूपी पत्तों से तथा काँपती हुई मोटी भुजा-रूपी शाखाओं से युक्त, उन चलते हुए राजा-रूपी वृक्षों के कारण उस सभा भवन ने (उस समय) शीघ्र गामी वायु से प्रकम्पित वन की शोभा धारण कर ली।

टिप्पणी—रूपक और निदर्शना अलंकार का संकर।

हरिमप्यमंसत तृणाय कुरुपतिमजीगणन्न वा।
मानतुलितभुवनत्रितयाः सरितः सुतादविभयुर्न भूभृतः॥६१॥

अर्थ—अपने अहंकार से तीनों लोकों को तिरस्कृत करने वाले वे शिशुपाल पक्षीय राजा लोग भगवान् श्रीकृष्ण को भी तृण की भाँति समझ रहे थे। राजा युधिष्ठिर को तो वे कुछ नहीं गिन रहे थे तथा गंगापुत्र भीष्म से वे तनिक भी नहीं डर रहे थे।

टिप्पणी—समुच्चय अलंकार।

गुरु निःश्वसन्नथ विलोलसदयथुवपुर्वचोविषम्।
कीर्णदशनकिरणाग्निकणः फणवानिवैष विससर्ज चेदिपः॥६२॥

अर्थ—तदनन्तर वह चेदिपति शिशुपाल] सर्प के समान बारम्बार फुफकारता हुआ, विष की भाँति बातें बोलने लगा। उस समय उसका शरीर अत्यन्त चचल और सन्ताप युक्त हो गया था तथा अग्नि की चिनगारी की भाँति उसके उज्ज्वल दांतों की किरणें चारों ओर बिखर रही थीं।

टिप्पणी—उपमा अलकार।

[शिशुपाल ने क्या विषैली बातें कहीं उन्हें नीचे के चार श्लोकों में सुनिये —]

किमहो नृपाः सममिमीभिरुपपतिसुतैर्न पञ्चभिः।
वध्यमभिहत भुजिष्यममुं सह चानया स्थविरराजकन्यया ॥६३॥

अर्थ—हे राजाओ! तुम लोग इन पाँचों जारज सन्तान पाण्डवों के साथ एव इस बूढ़ी राजकन्या के साथ वध के योग्य इस नौकर को क्यों नहीं मार रहे हो?

टिप्पणी—पाण्डव कुन्ती के क्षेत्रज सन्तान थे, अत उन्हें 'जारज सन्तान' का ताना मारा। भीष्म चिरकुमार तथा अखण्ड ब्रह्मचारी थे, अत उन्हें पुरुष न होने का ताना मारा था, क्योंकि कामुक लोग पुरुष द्वारा ब्रह्मचर्य की अखण्ड रक्षा को असम्भव मानते हैं। कृष्ण इसलिए वध के योग्य थे कि अनेक राजाओं के होते हुए भी उन्होंने उनके योग्य पूजा ग्रहण की थी। कस की गौएँ चराने वाले नन्द के घर में रहने के कारण वह 'नौकर' थे।

अथवाध्वमेव खलु यूयमगणितमरुद्गणौजसः।
नस्तु कियदिदमयं न मृधे मम केवलस्य मुखमीक्षितुं क्षमः ॥६४॥

अर्थ—अथवा यह ठीक ही है कि आप लोगों ने देवताओं को जब तेजोविहीन कर दिया है तो अब (इस तुच्छ के लिए क्यों हथियार उठायें,) चुपचाप बैठिये। इस कृष्ण का मारना कितना बड़ा कार्य है! अरे यह तो युद्ध में अकेले मेरा ही सामना करने में असमर्थ है।

विदतुर्यमुत्तममशेषपरिषदि नदीजधर्मजौ।
यातु निकषमधियुद्धमसौ वचनेन किं भवतु साध्वसाधु वा ॥६५॥

अर्थ—नदी के पुत्र भीष्म और धर्म के पुत्र युधिष्ठिर ने सम्पूर्ण सभा के बीच में जिस कृष्ण को सब से श्रेष्ठ बताया है, वह युद्ध में

आकर कसौटी पर खरा उतरे। उसी से ज्ञात होगा कि यह सर्वश्रेष्ठ है या सर्वनिकृष्ट है। व्यर्थ की बाते करने से क्या लाभ है?

अचिरान्मया सह गतस्य समरमुरगारिलक्ष्मणः ।
तीक्ष्णविशिखमुखपीतमसृक्पततां गणैः पिबतु सार्धमुर्वरा ॥६६॥

अर्थ—मेरे साथ लड़ाई मे उतरने पर इस गरुडध्वज बनने वाले कृष्ण का रक्त मेरे तीक्ष्ण बाणों के मुख पान करेंगे और उनके पान से इसका जो कुछ रक्त शेष बचेगा उसे पक्षियों के साथ अभी यह धरती पान करेगी।

अभिधाय रूक्षमिति मा स्म गम इति पृथासुतैरिताम् ।
वाचमनुनयपरां स ततः सहसावकर्ण्य निरयाय संसदः ॥६७॥

अर्थ—शिशुपाल इस प्रकार की, कड़वी बातें कहने के बाद शीघ्र ही सभा-मण्डप से बाहर निकल गया। उस समय पाण्डुपुत्र अनुनय के साथ उससे 'मत जाइये, कहाँ जा रहे हैं' आदि बाते कह रहे थे, किन्तु उसने उनकी बातों को अनादर के साथ सुना अर्थात तनिक भी ध्यान नहीं दिया।

गृहमागताय कृपया च कथमपि निसर्गदक्षिणाः ।
क्षान्तिमहितमनसो जननीस्वसुरात्मजाय चुकुपुर्न पाण्डवाः ॥६८॥

अर्थ—स्वभाव से ही चतुर एव क्षमा से पवित्र चित्तवाले पाण्डव अपने घर आये हुए अपनी मौसी के पुत्र उस शिशुपाल के प्रति, उसके असह्य अपराध को देखते हुए भी, क्रुद्ध नहीं हुए।

टिप्पणी—काव्यलिंग और परिकर का सकर।

चलितं ततोऽनभिहतेच्छमवनिपतियज्ञभूमितः ।
तूर्णमथ ययुमिवानुययुर्दमघोषसूनुमवनीशसूनवः ॥६९॥

अर्थ—तदनन्तर शिशुपाल के पक्ष के अन्यान्य राजा लोग राजा युधिष्ठिर की यज्ञ-भूमि से स्वच्छन्द मनोरथ वाले उस शिशुपाल के पीछे-पीछे अश्वमेध यज्ञ के घोड़े के पीछे की भाँति चल पड़े।

टिप्पणी—जिस प्रकार अश्वमेध यज्ञ के घोडे का अन्त में वध ही होता है उसी प्रकार इस उपमा द्वारा शिशुपाल के भावी वध की सूचना भी कवि ने दे दी है। उपमा अलकार से वस्तु की ध्वनि।

विशिखान्तराण्यतिपपात सपदि जवनैः स वाजिभिः ।
द्रष्टुमलघुरभसापतिता वनिताश्चकार न सकामचेतसः ।।७०।।

अर्थ—शिशुपाल अत्यन्त तेज दौड़ने वाले घोड़ों पर (रथ पर) चढ कर (इन्द्रप्रस्थ की) सड़कें डाँक गया । अतएव उसे देखने के लिए तीव्र वेग से दौड़ती हुई (नगर की) स्त्रियाँ सफल-मनोरथ नहीं हो सकीं ।

टिप्पणी—अत्यन्त तेजी से जाने के कारण स्त्रियाँ उसे नहीं देख सकीं । वाक्यार्थहेतुक काव्यलिंग अलंकार ।

क्षणमीक्षितः पथि जनेन किमिदमिति जल्पता मिथः ।
प्राप्य शिबिरमविशङ्किमनाः समनीनहद्द्रुतमनीकिनीमसौ ।।७१।।

अर्थ—मार्ग में तेजी से जाते हुए शिशुपाल को क्षण भर देखकर लोग आपस में कहने लगे 'यह क्या हो गया ।' और उधर शिशुपाल ने अपनी सेना के शिविर में पहुँच कर निःशंक चित्त से शीघ्र ही अपनी सेना को तुरन्त तैयार होने की आज्ञा दे दी ।

त्वरमाणशाङ्खिकसवेगवदनपवनाभिपूरितः ।
शैलकटकतटभिन्नरवः प्रणनाद सांनहनिकोऽस्य वारिजः ।।७२।।

अर्थ—शिशुपाल के सैनिकों को युद्धार्थ सुसज्जित होने के लिए जब शंख बजाने वाले ने शीघ्रता के साथ वेगपूर्वक पवन फूँककर शंख को बजाया तो उसकी तीव्र प्रतिध्वनि से (समीपवर्ती) पर्वत का नितम्ब-प्रदेश मुखरित हो उठा ।

जगदन्तकालसमवेतविपदविषमेरितारवम् ।
धीरनिजरवविलीनगुरुप्रतिशब्दमस्य रणतूर्यमावधि ।।७३।।

अर्थ—प्रलय काल के अवसर पर परस्पर मिले हुए पुष्करावर्त आदि मेघों के भयंकर गर्जन के समान विषम स्वर की रणभेरी जब बजायी गयी तो उसके शब्द अपनी ही गंभीर प्रतिध्वनि में विलीन हो उठे ।

टिप्पणी—उपमा अलंकार ।

सहसाससंभ्रमविलोलसकलजनतासमाकुलम् ।
स्थानमगमदथ तत्परितश्चलितोडुमण्डलनभःस्थलोपमाम् ।।७४।।

अर्थ—रणभेरी के बजने पर तुरन्त ही व्यग्रता के साथ भागती हुई सम्पूर्ण जनता से संकीर्ण वह शिविर-स्थल चारों ओर से चलने वाले नक्षत्र मण्डलों से युक्त आकाश के समान हो गया।

टिप्पणी—अतिशयोक्ति और उपमा अलंकार।

दधतो भयानकतरत्वमुपगतवतः समानताम्।
धूमपटलपिहितस्य गिरेः समवर्मयन्नपदि मेदिनीभृतः ॥७५॥

अर्थ—तदनन्तर राजाओं ने धूम मण्डल से आच्छादित होने के कारण अत्यन्त भयंकर दिखाई पड़ने वाले पर्वत की समानता धारण कर शीघ्र ही अपना-अपना कवच पहन लिया।

टिप्पणी—उपमा अलंकार।

परिमोहिणा परिजनेन कथमपि चिरादुपाहृतम्।
वर्म करतलयुगेन महत्तनुचूर्णपेषमपिपद्रुषा परः ॥७६॥

अर्थ – किसी राजा ने, अपने व्याकुलचित्त सेवक द्वारा देर में लाकर किसी प्रकार दिये गये विस्तृत कवच को अपनी दोनों हथेलियों से पीसकर अत्यन्त सूक्ष्म चूर्ण बना दिया।

टिप्पणी—इससे उस राजा के अतिशय बलवान् एवं क्रोधान्ध होने की सूचना के साथ-साथ अपशकुन होने की भी सूचना मिलती है। अतिशयोक्ति अलंकार।

रणसंमदोदयविकासिबलकलकलाकुलीकृते।
शारिमशकदधिरोपयितुं द्विरदे मदच्युति जनः कथंचन ॥७७॥

अर्थ—युद्ध के आरम्भ होने की प्रसन्नता से (शिशुपाल पक्षीय राजाओं की) सेना में कोलाहल बहुत बढ़ गया, अतः उस से व्याकुल होने वाले मदस्रावी गजराज पर लोग हौदा कसने में बड़ी कठिनाई से किसी प्रकार सफल हो सके।

टिप्पणी—काव्यलिङ्ग अलंकार।

परितश्च धौतमुखरुक्मविलसदहिमांशुमण्डलाः।
तेनुरतनुवपुषः पृथिवीं स्फुटलक्ष्यतेजस इवात्मजाः श्रियः ॥७८॥

अर्थ—सेना के घोड़ों के मुखों पर लगे हुए चमकते स्वर्णाभरणों पर सूर्य की किरणें प्रतिबिम्बित हो रही थीं। उसके कारण चारों ओर

से पृथ्वी पर फैले हुए वे भारी शरीर वाले घोड़े इस प्रकार दिखाई पड़ रहे थे मानों उनके भीतर का तेज ही बाहर निकलकर स्पष्ट रूप से चमक रहा हो।

टिप्पणी—घोड़े लक्ष्मी के पुत्र भी कहे जाते हैं।

प्रधिमण्डलोद्धतपरागघनवलयमध्यवर्तिनः ।
पेतुरशनय इवाशनकैर्गुरुनिःस्वनव्यथितजन्तवो रथाः ॥७९॥

अर्थ—पहियों के आघात से (पृथ्वी तल से) उठे हुए धूल-रूपी बादलों के समूहों के भीतर रथ-समूह मानों बिजली की भाँति तीव्र गति से चल रहे थे और उनके गभीर शब्दों से जीवजन्तु व्याकुल हो रहे थे।

टिप्पणी—रूपक और उत्प्रेक्षा का संकर।

दधतः शशाङ्कितशशाङ्करुचि लसदुरश्छदं वपुः ।
चक्रुरथ सह पुरन्ध्रिजनैरयथार्थसिद्धि सरकं महीभृतः ॥८०॥

अर्थ—कवच पहने हुए मृग-चिह्न से लांछित चन्द्रमा की भाँति सुशोभित शरीर धारण करने वाले राजाओं ने अपनी रमणियों के साथ प्रयोजन-सिद्धि से शून्य अर्थात् मादकता न उत्पन्न करने वाली मदिरा का पान किया।

टिप्पणी—युद्ध की उत्तेजना और भीति भरे वातावरण में मदिरा की उन्मत्तता हो ही कैसे सकती थी। उपमा अलंकार।

[अब आगे सर्ग की समाप्ति तक युद्धार्थ सज्जित वीरों का उनकी स्त्रियों के साथ जो बातचीत हुई, उसका वर्णन , कवि ने किया है —]

दयिताय सासवमुदस्तमपतदवसादिनः करात् ।
कांस्यमुपहितसरोजपतद्भ्रमरौघभारगुरु राजयोषितः ॥८१॥

अर्थ—पीने के लिए प्रियतम को देते समय कोई मदिरा युक्त प्याला, जो अधिक मत्तता के लिए छोड़े गये कमल पर मँडराते हुए भ्रमरों के

समूह रूपी बोझे से बोझिल हो रहा था, राजमहिषी के शिथिल हाथों से नीचे गिर पड़ा।

टिप्पणी—प्याले का यह गिरना भावी अमंगल का सूचक था। काव्यलिंग अलंकार।

भृशमङ्गसादमरुणत्वमविशददृशः कपोलयोः।
वाक्यमसकलमपास्य मदं विदधुस्तदीयगुणमात्मना शुचः ॥८२॥

अर्थ—(प्रियतम के भावी विरह की चिन्ता से उत्पन्न) शोक ने किसी अलसाई हुई आँखों वाली सुन्दरी के (मद पान से होने वाले) मतवाले पन को दूर कर उसके सभी कार्यों—जैसे अंगों में शिथिलता, (कपोलों पर) लालिमा, तथा टूटे-फूटे वाक्य निकालने आदि कार्यों—को स्वयं ही अतिमात्रा में सम्पन्न कर दिया।

टिप्पणी—विभावना अलंकार।

सुदृशः समीकगमनाय युवभिरथ संबभाषिरे।
शोकपिहितगलरुद्धगिरस्तरसागताश्रुजलकेवलोत्तराः ॥८३॥

अर्थ—तदनन्तर सुन्दर नेत्रों वाली उन रमणियों ने, जिनकी वाणी शोक के कारण भारी गले में ही रुक गयी थी तथा वेग के साथ गिरती हुई आँसुओं की लंबी धारा को ही जो प्रत्युत्तर के स्थान में गिरा रही थी, अपने युवक प्रियतमों से संग्राम में जाने के लिए सम्भाषण किया।

टिप्पणी—आँसुओं की यह धारा अपशकुन की सूचना दे रही थी।

विपुलाचलस्थलघनेन जिगमिषुभिरङ्गनाः प्रियैः।
पीनकुचतटनिपीडदलद्दरवारबाणमुरसालिलिङ्गिरे ॥८४॥

अर्थ—(युद्धार्थ) गमन करने वाले प्रियतमों ने रमणियों का जब अपने पर्वत के समान विस्तृत एवं कठोर वक्षस्थल से गाढ़ आलिंगन किया तब उनके कठोर स्तनतटों के दबाव से प्रियतमों के नये विशाल कवच चूर-चूर हो गये।

टिप्पणी—अतिशयोक्ति अलकार।

न मुमोच लोचनजलानि दयितजयमङ्गलैषिणी।
यातमवनिमवसन्नभुजान्न गलद्विवेद वलयं विलासिनी ॥८५॥

अर्थ—प्रियतम के विजय एव मगल की अभिलाषिणी किसी सुन्दरी ने आंसू तो नहीं गिराये; किन्तु शोक से शिथिलित उसकी एक भुजा से जब उसका कंकण धरती पर गिर पड़ा तब भी उसे वह नहीं जान सकी।

टिप्पणी—कोई प्रयत्न करके भी होनहार को नही रोक सकता। काव्यलिंग अलकार।

प्रविवत्सतः प्रियतमस्य निगडमिव चक्षुरक्षिपत्।
नीलनलिनदलदामरुचि प्रतिपादयुग्ममचिरोढसुन्दरी ॥८६॥

अर्थ—किसी नवविवाहिता सुन्दरी ने, प्रवास के लिए जाते हुए अपने प्रियतम के दोनों पैरों में नीले कमल की बनी हुई माला के समान सुशोभित अपने नेत्रों को मानों जंजीर की भाँति डाल दिया।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि उसका प्रियतम उसकी आज्ञा से एक पग भी दूर नहीं जा सका। नवोढा होने के कारण वह पति के पैरों पर ही दृष्टि जमाये रही। यात्रा के समय स्त्री का इस प्रकार देखना उसके अमगल की सूचना थी। उपमा और उत्प्रेक्षा का सकर।

व्रजतः क तात वजसीति परिचयगतार्थमस्फुटम्।
धैर्यमभिनदुदितं शिशुना जननीनिभर्त्सनविवृद्धमन्युना ॥८७॥

अर्थ—(अपशकुन से डरी हुई) माता की फटकार से जिसका क्रोध बढ़ गया था, उस बालक ने जब (युद्धार्थ गमनोद्यत) अपने पिता से 'पितः! क वजसि' अर्थात् पिता जी! कहाँ जा रहे हैं, इस प्रकार की अस्पष्ट बात कह दी तब भी अभ्यास से उसका अभिप्राय समझने के कारण, इतने ही से उसके पिता के प्रयाण का उत्साह भंग हो गया।

टिप्पणी—गमन के समय किसी का टोकना अमगल का सूचक होता है, विशेषकर राजाओं की यात्रा तो बहुत ही सोच-समझ कर होती थी, जैसा कि योगयात्रा में कहा गया है —

यानातुरा निरसन वृहतीव काचिद् गर्भेण भारवृहनी स्वपुरःस्थिता स्त्री ।
आगच्छ तिष्ठ कुत इत्यसमर्थवाचिशब्दाश्च राजगमने प्रतिषेधकाः स्युः ॥

अर्थात् प्रयाण के पूर्व किसी वस्तु का गिरना या स्वय गिरना तथा आगे किसी गर्भवती स्त्री का उपस्थित होना एव आओ, बैठो, कहा से—आदि शब्द राजाओं की यात्रा के प्रसग मे निषिद्ध माने गये हैं। अपने बालक की टूटी-फूटी बात से भी परिचित होने से उस राजा को उसके अभिप्राय का पता लग गया अत वह अपशकुन के भय से हतोत्साहित हो गया ।

शठ नाकलोकललनाभिरविरतरतं रिरंससे ।
तेन वहसि मुदमित्यवदद्रणरागिणं रमणमीर्ष्ययाऽपरा ॥८८॥

अर्थ—एक सुन्दरी अपने युद्ध के उत्साही पति से ईर्ष्या के साथ कहने लगी—'हे वंचक ! तुम स्वर्ग की अप्सराओं के साथ निरन्तर भोग-विलास करने की इच्छा रखते हो—इसी से लडाई में जाने के लिए बड़े प्रसन्न हो रहे हो ।'

टिप्पणी—स्त्री का यह वाक्य भी पति के भावी अमगल की सूचना दे रहा था ।

प्रियमाणमप्यगलदश्रु चलति दयिते नतभ्रुवः ।
स्नेहमकृतकरसं दधतामिदमेव युक्तमतिमुग्धचेतसाम् ॥८९॥

अर्थ—अपने प्रियतम के प्रयाण के समय नम्र भौंहों वाली सुन्दरी की अमगल से रोकी गयी भी आँसू गिरने ही लगी । सच्चे अनुराग से युक्त तथा अत्यन्त सरल बुद्धि वाली उन रमणियों के लिए यही उचित था।

टिप्पणी— यहा भी आँसू का गिरना अमगल का सूचक ही था। अर्थान्तरन्यास अलकार ।

सह कज्जलेन विरराज नयनकमलाम्बुसंततिः ।
गण्डफलकमभितः सुतनोः पदवीव शोकमयकृष्णवर्त्मनः ॥९०॥

अर्थ—किसी सुन्दरी के दोनों कपोल-स्थलों पर उसके नेत्र-कमलों से निकली हुई आंसुओं की धारा काजल के साथ हृदय की शोकाग्नि के निकलने के मार्ग की भाँति शोभा पा रही थी।

टिप्पणी—यहा भी अश्रुपात भावी अमंगल का सूचक है। उत्प्रेक्षा अलंकार।

क्षणमात्ररोधि चलितेन कतिपयपदं नतभ्रुवः।
स्रस्तभुजयुगगलद्वलयस्वनित प्रति क्षुतमिवोपशुश्रुवे ॥६१॥

अर्थ—युद्धार्थ दो-चार पग आगे चलकर एक पति ने क्षणमात्र के लिए प्रतिबन्ध स्वरूप, अपनी कुटिल भौंहों वाली सुन्दरी के शिथिलित दोनों भुजाओं से गिरे हुए कंकण की झनत्कार को, मानों छींक के समान सुना।

टिप्पणी—यहाँ भी अमंगल का सूचना हुई। भ्रान्तिमान् अलंकार।

अभिवर्त्म वल्लभतमस्य विगलदमलायतांशुका।
भूमिनभसि रभसेन यती विरराज काचन समं महोल्कया ॥६२॥

अर्थ—प्रियतम के मार्ग में अगों के शिथिल होने से गिरते हुए श्वेतवस्त्रों वाला, (अन्यत्र बिखरी हुई उज्ज्वल और लंबी किरणों से युक्त) आकाश के समान धरती पर वेग के साथ चलती हुई कोई सुन्दरी एक बड़ी उल्का के समान सुशोभित हुई।

टिप्पणी—उल्का के समान कह कर कवि ने यहा भी प्रियतम के अपशकुन का सूचना दी है। उपमा अलंकार।

समरोन्मुखे नृपगणेऽपि तदनुमरणोद्यतैकधीः।
दीनपरिजनकृताश्रुजलो न भटीजनः स्थिरमना विचक्लमे ॥६३॥

अर्थ—राजाओं के युद्धार्थ सुसज्जित होने पर भी, उनके साथ गमन के लिए उद्यत (सहमरण अर्थात सती होने के लिए तत्पर) होने से एकाग्रचित्त एवं स्थिर मनवाली रमणियाँ, सेवकों के आँसू बहाने पर भी, तनिक विह्वल नहीं हुई।

टिप्पणी—सहमृत्यु का स्वेच्छा से वरण करने वाली रमणियों को विह्वलता नहीं होती है। काव्यलिंग अलंकार।

विदुषीव दर्शनममुष्य युवतिरतिदुर्लभं पुनः ।
यान्तमनिमिषमतृप्तमनाः पतिमीक्षते स्म भृशमा दृशः पथः ॥६४॥

अर्थ—कोई सुन्दरी (अपने प्रियतम के) दर्शन को मानों पुनः अत्यन्त दुर्लभ समझती हुई अति अतृप्त चित्त से, युद्धार्थ जाते हुए अपने प्रियतम को, जब तक वह दृष्टिगोचर होता रहा तब तक निर्निमेष नयनों से खूब देखती रही।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा।

संप्रत्युपेयाः कुशली पुनर्युधः सस्नेहमाशीरिति भर्तुरीरिता ।
सद्यः प्रसह्य द्वितयेन नेत्रयोः प्रत्याचचक्षे गलता भटस्त्रियाः ६५

अर्थ—तुम अभी कुशलपूर्वक युद्धभूमि से फिर वापस आओगे—इस प्रकार का, स्नेहपूर्वक पति को दिया गया आशीर्वाद, तुरन्त ही बलपूर्वक आंसू गिराते हुए वीर की पत्नी के दोनों नेत्रों से खण्डित कर दिया गया।

टिप्पणी—काव्यलिंग अलंकार।

काचित्कीर्णा रजोभिर्दिवमनुविदधे भिन्नवक्त्रेन्दुलक्ष्मी-
रश्रीकाः काश्चिदन्तर्दिश इव दधिरे दाहमुद्भ्रान्तसत्त्वाः ।
भ्रेमुर्वात्या इवान्याः प्रतिपदमपरा भूमिवत्कम्पमापुः
प्रस्थाने पार्थिवानामशिवमिति पुरो भावि नार्यः शशंसुः ॥६६॥

अर्थ—किसी स्त्री के रजस्वला हो जाने से चन्द्रमा के समान उसकी मुख-शोभा दूर हो गयी थी और वह (उस) आकाश का अनुकरण कर रही थी (जो उत्पातसूचक धूल के व्याप्त हो जाने के कारण सुन्दरी के मुख के समान शोभाविहीन चन्द्रमा को धारण करता है), कुछ स्त्रियाँ (उन) दिशाओं की भाँति शोभाविहीन होकर उद्भ्रान्त चित्त बन गयी थीं और उनके हृदय में जलन हो रही थी (जो उद्भ्रान्त जन्तुओं से व्याप्त और उत्पातसूचक अग्नि की ज्वालाओं से युक्त होने के कारण शोभाविहीन होती हैं।) कुछ अन्य स्त्रियाँ ववडर की भाँति प्रत्येक दिशा में घूम रही थीं, और कुछ दूसरी रमणियाँ धरती के

समान काँप रही थी। इस प्रकार (शिशुपाल पक्षीय) राजाओं के (युद्धार्थ) प्रयाण के अवसर पर उनकी स्त्रियाँ भावी अमंगल की सूचना दे रही थीं।

टिप्पणी—ये सभी उत्पात की घटनाएं शिशुपाल पक्षीय राजाओं के भावी अमंगल की सूचना दे रही थी। काव्यलिंग अलंकार। स्रग्धरा छन्द। लक्षण—
'म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितयम् ॥

श्री माघकविकृत शिशुपालवध महाकाव्य में
पन्द्रहवाँ सर्ग समाप्त।

सोलहवाँ सर्ग

[इस सर्ग में भगवान् श्रीकृष्ण के साथ शिशुपाल के दूत के संवाद का वर्णन किया गया है —]

दमघोषसुतेन कश्चन प्रतिशिष्टः प्रतिभानवानथ ।
उपगम्य हरिं सदस्यदः स्फुटभिन्नार्थमुदाहरद्वचः ॥१॥

अर्थ—(रण-यात्रा की तैयारी हो जाने के) अनन्तर शिशुपाल द्वारा भेजे गये एक दूत ने, जो ठीक अवसर पर उचित उत्तर देने में निपुण था, सभा में भगवान् श्रीकृष्ण के समीप आकर स्पष्ट रूप में दो अर्थों वाली (प्रिय तथा अप्रिय) बातें इस प्रकार से कहीं।

टिप्पणी—इस सर्ग में वैतालीय छन्द है। जिसका लक्षण है —

षड् विषमेऽष्टौ समे कलास्ताश्च समे स्युर्नो निरन्तराः ।
न समात्र पराश्रिता कला वैतालीयऽन्ते रलौ गुरुः ॥

[जैसा कि ऊपर बताया गया है दूत ने आगे के १४ श्लोकों में प्रिय तथा अप्रिय दोनों प्रकार की बातें कही। इनमें स्तुतिजनक प्रिय अर्थ को पहले तथा निन्दाजनक अप्रिय अर्थ को बाद में दिया गया है —]

अभिधाय तदा तदप्रियं शिशुपालोऽनुशयं परं गतः ।
भवतोऽभिमनाः समीहते सरुषः कर्तुमुपेत्य माननाम् ॥२॥

प्रिय अर्थ—शिशुपाल उस समय आपके अर्घ्य-दान के अवसर पर उन अप्रिय बातों को कह कर अत्यन्त पश्चात्ताप कर रहा है। वह उत्कण्ठित चित्त से, यहाँ आकर आप के क्रोध को शान्त करने के लिए आप की (स्वयं) पूजा करना चाहता है।

अप्रिय अर्थ—उस समय केवल उन अपमानजनक बातों को कह कर शिशुपाल इस बात का पश्चात्ताप कर रहा है कि मैंने उन्हें (आप को) मारा

क्या नही ? लबे काल से उसके हृदय में आपके प्रति द्वेष भरा हुआ है अतएव वह निर्भीक चित्त से स्वय आकर शाठयुक्त आपका वध करना चाहता है।

टिप्पणी—इन १४ द्वयर्थक श्लोको में प्रकृतमात्र गोचर श्लेष अलकार है।

विपुलेन निपीड्य निर्दयं मुदमायातु नितान्तमुन्मनाः ।
प्रचुराधिगताङ्गनिर्वृतिं परितस्त्वां खलु विग्रहेण सः ॥३॥

प्रिय अर्थ—उत्सुक चित्त शिशुपाल अपने पुलकित शरीर से आपका प्रगाढ आलिंगन कर के सब ओर से आप के शरीर को अत्यन्त आनन्द देता हुआ स्वय परम आनन्द प्राप्त करेगा ।

अप्रिय अर्थ—वह शिशुपाल अत्यन्त मनस्वी है। इधर अनेक प्रकार की मनो व्यथाओ से तुम्हारा शरीर सुखरहित है। युद्ध म निर्दयतापूर्वक वह तुम्हारा सहार कर आनन्दित होगा।

प्रणतः शिरसा करिष्यते सकलैरेत्य समं धराधिपैः ।
तव शासनमाशु भूपतिः परवानद्य यतस्त्वयैव सः ॥४॥

प्रिय अर्थ—वह शिशुपाल अपने पक्ष के समस्त राजाओं के साथ (आपके सम्मुख)।मस्तक झुकाकर आपको प्रणाम करेगा और आपकी आज्ञा को शिर पर धारण करेगा । (क्योंकि) इस समय तो वह (सब प्रकार से) आप के अधीन हैं।

अप्रिय अर्थ—(धरती के) समस्त राजा जिसे नमस्कार करते है, वह शिशुपाल अपने पक्ष के समस्त राजाओ के साथ आकर अभी तुम्हे खूब शिक्षा देगा, क्योंकि इस समय तो एकमात्र तुम्ही उसके परम शत्रु हो।

अधिरह्वि पतङ्गतेजसो नियतस्वान्तसमर्थकर्मणः ।
तव सर्वविधेयवर्तिनः प्रणतिं बिभ्रति केन भूभृतः ॥५॥

प्रिय अर्थ—आप तेज मे अग्नि और सूर्य के समान हैं; सयत चित्त तथा समर्थ कार्य करने वाले है। (पृथ्वी के) सभी (राजा) लोग आपकी आज्ञा के अनुसार चलते है। फिर भला कौन ऐसा राजा है जो आपको आकर प्रणाम न करे !

अप्रिय अर्थ—अग्नि र सामने जैसे पतिंगे का तेज होता है, वैसे (शिशुपाल प रिव) तुम्हारा तेज है, तुम इस समय ऐसा अविवेक वाला काम कर रहे हो। अतः निश्चय ही तुम्हारा सत्यानाश हो जायगा। तुम तो सब के आज्ञा-

कारी विकर हो। भला तुममें ऐसी कौन-सी सामर्थ्य है, जिससे राजा लोग आकर तुमसे प्रणाम करेंगे।

जनतां भयशून्यधीः परैरभिभूतामवलम्बसे-यतः ।
तव कृष्ण गुणास्ततो नरैरसमानस्य दधत्यगण्यताम् ॥६॥

प्रिय अर्थ—हे कृष्ण ! आप बड़े ही निर्भीक चित्त वाले हैं और शत्रुओं द्वारा आक्रान्त जनता की रक्षा करने वाले हैं। वास्तव में आप में इतने अधिक गुण हैं कि उनका गिनना भी कठिन है। साथ ही आप मे ऐसे भी गुण हैं, जो साधारण मनुष्यों में कदापि नहीं पाये जा सकते।

अप्रिय अर्थ—हे काले कृष्ण ! भय से मूढ बुद्धिवाले कंस के सेवक ! तुम अभी तक चरवाहे का जो काम करते रहे हो, उसे सभी लोग निन्दनीय समझते हैं। इसलिए सचमुच तुम बडे पतित हो और तुम्हारी सभी बातें अनादर अर्थात् निन्दा की वस्तु है।

अहितादनपत्रपस्सन्नतिमात्रोज्झितभीरनास्तिकः ।
विनयोपहितस्त्वया कुतः सदृशोऽन्योगुणवानभिस्मयः ॥७॥

प्रिय अर्थ—आप अधर्म से डरते है, आप लज्जावान तथा निर्भय चित्त वाले हैं। आप विनय से युक्त, गर्वविहीन तथा पूर्ण रूप से आस्तिक हैं। सचमुच आपके समान गुण युक्त पुरुष (इस पृथ्वी पर दूसरा) कौन है ?

अप्रिय अर्थ—तुम शत्रुओं से डरनेवाले तथा बिल्कुल निलज्ज हो। अथवा तुम अपने शत्रुओं से प्रणाम कर के उन्हें अपने वश में कर लेते हो अतएव उनसे भय नहीं खाते। तुम विनयशीलता तथा लोककल्याण की कामना से विहीन हो, निरे नास्तिक हो। सचमुच, तुम्हारे समान दूसरा और कौन निगुणा पुरुष होगा।

कृतगोपवधूरतेर्घ्नतो वृषमुग्रे नरकेऽपि संप्रति ।
प्रतिपत्तिरधःकृतैनसो जनताभिस्तव साधु वर्ण्यते ॥८॥

प्रिय अर्थ—गोपियों के साथ क्रीड़ा करने वाले, वृषरूपधारी अरिष्टासुर नामक दैत्य तथा महा भयानक नरकासुर का संहार करने वाले, निष्पाप ! आपके पुरुषार्थ का सर्वत्र सब के मुख से प्रशंसा होती है।

अप्रिय अर्थ—पराई स्त्री गोप-वधुओं से प्रीति करनेवाले तथा बैल को मारने वाले पाप रूप तुमको दारुण नरक में सब से नीचे स्थान मिलेगा। तुम्हारे सम्बन्ध में सर्वत्र सब के मुख से इसी बात की चर्चा सुनी जाती है।

विहितापचितिर्महीभृतां द्विषतामाहितसाध्वसो बलैः ।
भव सानुचरस्त्वमुच्चकैर्महतामप्युपरि क्षमाभृताम् ॥९॥

प्रिय अर्थ—अनुचरों समेत राजा शिशुपाल से सुपूजित होकर आप अपनी सेनाओं से शत्रुओं को आतंकित कर देंगे और आप (इस प्रकार) बड़े बड़े महाराजाओं के ऊपर हो जायेंगे।

अप्रिय अर्थ—राजा शिशुपाल द्वारा हानि उठा कर तुम शत्रुओं की सेना से बिल्कुल भयग्रस्त हो जाओगे और बड़े-बड़े ऊँचे पर्वतों के ऊपर जाकर छिपोगे।

घनजालनिभैर्दुरासदाः परितो नागकदम्बकैस्तव ।
नगरेषु भवन्तु वीथयः परिकीर्णा वनजैर्मृगादिभिः ॥१०॥

प्रिय अर्थ—तुम्हारे नगर में सडके और गलियाँ मेघसमूहों के समान जङ्गली हाथियों तथा बैल-पशुओं से चारों ओर घिर कर कठिनाई से प्रवेश करने योग्य बन जायगी। (अर्थात् राजा शिशुपाल से सुलह करने पर तुम्हारे ऐश्वर्य की बडी वृद्धि होगी)।

अप्रिय अर्थ—सघन जालों के समान काले रंग के सर्पसमूहों तथा जंगली सिंह आदि पशुओं से तुम्हारे नगर की सडकें और गलियाँ कठिनाई से प्रवेश करने योग्य बन जायगी।

सकलापिहितस्वपौरुषो नियतव्यापदवर्धितोदयः ।
रिपुरुन्नतधीरचेतसः सततव्याधिरनीतिरस्तु ते ॥११॥

प्रिय अर्थ—आप उदार तथा धीर चित्त वाले हैं। आप के शत्रु के पुरुषार्थ का सर्वत्र सब लोगों के द्वारा तिरस्कार हो, उसे नित्य नयी-नयी विपत्तियाँ घेरें, वह कभी समृद्धिशाली न बने तथा सदैव रोगग्रस्त एवं नीतिज्ञान से विहीन हो।

अप्रिय अर्थ—तुम बुद्धि या चेतना से विहीन हो और तुम्हारे शत्रु शिशुपाल के पराक्रम को कोई भी तिरस्कृत न कर सके, उसे कभी कोई विपत्ति न घेरे, उसका

सतत अभ्युदय होता रहे, वह उदार बुद्धिवाला बने, मनोव्यथा रहित हो तथा उसके राज्य में अतिवृष्टि और अनावृष्टि आदि उत्पात न हो।

विकचोत्पलचारुलोचनस्तव चैद्येन घटामुपेयुषः ।
यदुपुंगव बन्धुसौहृदात्त्वयि पाता ससुरो नवासवः ॥१२॥

प्रिय अर्थ—हे यदुवश पुगव ! यदि आप शिशुपाल से गाढ़ी सन्धि कर लेगे तो वह मैत्री भाव से आपके साथ बैठकर विकसित कमल से सुगन्धित सुरायुक्त नूतन आसव का पान करेगा।

अप्रिय अर्थ—हे यदुवशिरोमणिरूप कृष्ण ! तुम जब महाराज शिशुपाल के साथ युद्ध म प्रवृत्त होगे तो विकसित कमल के समान नेत्रो वाले इन्द्र भी, समस्त देवताओ के साथ, भ्रातृ-स्नेह से प्रेरित होकर यदि तुम्हारी रक्षा करने आएगे तो भी तुम बच नही सकोगे।

चलितानकदुन्दुभिः पुरः सबलस्त्वं सह सारणेन तम् ।
समितौ रभसादुपागतं सगदः संप्रतिपत्तुमर्हसि ॥१३॥

प्रिय अर्थ—हे भगवन् ! आपको चाहिए कि हर्षपूर्वक सुलह के लिए अपने पास आते हुए उस शिशुपाल से, वसुदेव को आगे करके तथा (भाई) बलराम, गद एव (पुत्र) सारण को साथ लेकर आदर पूर्वक मिल ल।

अप्रिय अर्थ—वेग स रणभूमि में आते हुए उस शिशुपाल के साथ पटह तथा दुन्दुभियो स युक्त अपनी सेना लेकर तथा हाथ में गदा ले कर तुम शीघ्र ही युद्ध करने लगा।

प्रमरेषु रिपून्विनिघ्नता शिशुपालेन समेत्य सम्प्रति ।
सुचिरं सह सर्वसात्वतैर्भव विश्वस्तविलासिनीजनः ॥१४॥

प्रिय अर्थ—युद्धभूमि मे शत्रुओं के प्रबल सहारक उस शिशुपाल के साथ यदुवशियो की मित्रता होजाने से चिरकाल तक यदुवशी रानियाँ वैधव्य भय से पीड़ित नहीं होगी।

अप्रिय अर्थ—शत्रुहन्ता शिशुपाल के साथ अभी समस्त यदुवंशियो को लेकर यदि तुम युद्ध में प्रवृत्त होते हो तो फिर निश्चय है कि चिरकाल के लिए समस्त यदुवशी स्त्रियो को विधवा बना लोगे।

विजितक्रुधमीत्नतामसौ महतां त्वामहितं महीभृताम् ।
असकृज्जितसंयतं पुरो मुदितः सप्रमदं महीपतिः ॥१५॥

प्रिय अर्थ—आप बड़े-बड़े राजाओं के पूज्य हैं और अनेक युद्ध जीत चुके हैं। शिशुपाल से सन्धि होजाने पर आपका क्रोध दूर हो जायगा और आप प्रसन्न हो जायगे। और इस प्रकार का शुभ अवसर आने पर हमारे राजा शिशुपाल प्रसन्न चित्त से आपका दर्शन करेंगे।

अप्रिय अर्थ—तुम सभी बड़े-बड़े राजाओं के शत्रु हो और अनेक बार लड़ाइयां में हार हार चुके हो। इससे यह सिद्ध हो चुका है कि तुम बिलकुल पराक्रमविहीन हो। चाहे जितना भी तुम्हारा अनादर हो तुम्हें क्रोध नहीं आता। ऐसे कायर तुमको रणभूमि में जीतकर तथा तुम्हारी स्त्रियों को बन्धन में डाल कर प्रसन्न चित्त हमारा राजा शिशुपाल तुम्हें देखेगा।

इति जोपमवस्थितं द्विषः प्रणिधिं गामभिधाय सात्यकिः।
वदति स्म वचोऽथ चोदितश्चलितैकभ्रु रथाङ्गपाणिना ॥१६॥

अर्थ—इस प्रकार की बातें कह कर जब शिशुपाल का दूत चुप हो गया तब भगवान् श्रीकृष्ण ने उसको उत्तर देने के लिए सात्यकि को एक आंख से इशारा किया। तदनन्तर सात्यकि ने ये बातें कहीं—

[सात्यकि ने क्या बात शिशुपाल के दूत से कही, आगे के २१ श्लोकों में इसी की चर्चा की गयी है—]

मधुरं बहिरन्तरप्रियं कृतिनाऽवाचि वचस्तथा त्वया।
सकलार्थतया विभाव्यते प्रियमन्तर्बहिरप्रियं यथा ॥१७॥

अर्थ—हे दूत! तुम बड़े ही निपुण हो। तुमने बाहर से प्रिय लगने वाली तथा यथार्थ में भीतर से अप्रिय बातें इस प्रकार से कही है कि यदि उनके तात्पर्य को सम्पूर्ण रूप से ग्रहण किया जाय तो वे भीतर से प्रिय तथा बाहर से अप्रिय मालूम पड़ती हैं। अर्थात् भीतर से अप्रिय और बाहर से प्रिय लगनेवाली तुम्हारी बातें हमारे लिए, बाहर से अप्रिय और भीतर से प्रिय मालूम पड़ रही हैं।

[अथवा बाहर हो से प्रिय है, भीतर अप्रिय है, तथापि उसे ग्रहण नहीं करना चाहिए—]

अतिकोमलमेकतोऽन्यतः सरसाम्भोरुहवृन्तकर्कशम् ।
वहति स्फुटमेकमेव ते वचनं शाकपलाशदेश्यताम् ।।१८।।

अर्थ—तुम्हारा एक ही वाक्य बाहर से अत्यन्त कोमल है तो भीतर से अत्यन्त सरस कमलनाल की भाँति बहुत कठिन है। इसलिए तुम्हारे ये वाक्य स्पष्ट रूप से वरदारु या शाकपलाश अर्थात् सागवान की समानता धारण करते हैं अर्थात् भीतर की ओर से कठोर और बाहर से कोमल हैं।

टिप्पणी—उपमा अलकार।

[बात भीतर से भले ही अप्रिय हो तब भी गुणग्राही लाग हसा के नीर-क्षीर विवेक की भाँति उसका प्रिय अर्थ ही ग्रहण करत है —]

प्रकटं मृदु नाम जल्पतः परुषं सूचयतोऽर्थमन्तरा ।
शकुनादिव मार्गवर्तिभिः पुरुषादुद्विजितव्यमीदृशः ।।१९।।

अर्थ—जिस प्रकार पिंगल पक्षी की वाणी प्रकट रूप मे अर्थात् सुनने में मधुर तथा भीतर से अर्थात् परिणाम म अनिष्ट की सूचना देनेवाली है, अतएव उसे सुनकर पथिक लोग उद्विग्न हो जाते हैं उसी प्रकार तुम्हारे जैसी वाणी बोलनेवाले पुरुष से भी सन्मार्गगामी अर्थात् सज्जन पुरुष भी उद्विग्न हो उठे हैं।

टिप्पणी—विष मिल अन्न की भाति एसी वाणी अनयकारिणी होती है, अत सज्जनो को ऐसे धोकेबाजो की वाणा से बचना ही चाहिए। उपमा अलकार।

[इस प्रकार सात्यकि ने दूत की भत्सना करने के अनन्तर शिशुपाल को भी खूब खरी-खोटी सुनाई।]

हरिमर्चितवान्महीपतिर्यदि राज्ञस्तव कोऽत्र मत्सरः ।
न्यसनाय ससौरभस्य कस्तरुसूनस्य शिरस्यसूयति ।।२०।।

अर्थ—यदि राजा युधिष्ठिर ने भगवान श्रीकृष्ण की पूजा की तो इस पर राजा शिशुपाल को क्यो द्वेष होता है। यदि कोई मनुष्य सुगन्धित वृक्ष के पुष्प को अपने शिर पर चढ़ाता है तो उस पुष्प से डाह कौन करता है? (अर्थात् कोई नहीं। जो करता है, वह पागल है गुणज्ञ लोग अच्छी वस्तु का समादर तो करते ही हैं।)

टिप्पणी—दृष्टान्त अलंकार।

[यदि यह कहो कि महान् लोग अपने प्रतिस्पर्धी की पूजा से अवश्य सतप्त होते ह तो यह बात भी यहाँ नहीं है। भगवान् श्रीकृष्ण और शिशुपाल में कोई प्रतिस्पर्द्धा हो ही नहीं सकती, क्योंकि दोनों में बहुत अन्तर है। सज्जन और दुर्जन का अन्तर इन चार श्लोकों में बताया गया है —]

सुकुमारमहो लघीयसां हृदयं तद्गतमप्रियं यतः।
सहसैव समुद्गिरन्त्यमी जरयन्त्येव हि तन्मनीषिणः ॥२१॥

अर्थ—छोटे लोगों का हृदय भी तुच्छ होता है, इसी से उसमें अप्रिय लगनेवाली बात नहीं समाती, उन्हें वे तुरन्त ही भीतर से निकाल देते हैं। बुद्धिमान् लोग तो ऐसी बातों को भीतर ही भीतर जीर्ण कर डालते हैं अर्थात् पचा डालते हैं।

टिप्पणी—अप्रस्तुतप्रशसा अलंकार।

उपकारपरः स्वभावतः सततं सर्वजनस्य सज्जनः।
असतामनिशं तथाप्यहो गुरुहृद्रोगकरी तदुन्नतिः ॥२२॥

अर्थ—सज्जन पुरुष स्वभाव से ही सर्वदा दूसरों का उपकार करने वाले होते हैं किन्तु कितने आश्चर्य की बात है कि उनकी उन्नति भी दुष्टों के हृदयों में भारी रोग पैदा कर देती है।

टिप्पणी—अप्रस्तुतप्रशसा अलंकार।

परितप्यत एव नोत्तमः परितप्तोऽप्यपरः सुसवृतिः।
परवृद्धिभिराहितव्यथः स्फुटनिर्भिन्नदुराशयोऽधमः ॥२३॥

अर्थ—उत्तम लोग दूसरों की उन्नति देखकर सन्तप्त होते ही नहीं, मध्यम लोग उससे मनमें कुछ सन्तप्त होने पर भी अपनी व्यथा को भली भाँति छिपाये रहते हैं किन्तु अधम लोग तो दूसरों की उन्नति देखकर ईर्ष्या से जल जाते हैं और अपने दुष्ट मनोभावों को दूसरों से प्रकट भी कर देते हैं।

टिप्पणी—अप्रस्तुतप्रशसा अलंकार।

[स्वाभिमानियों का दूसरों की उन्नति से सन्तप्त होना भूषण है दूषण नहीं अतः शिशुपाल का सन्तप्त होना ठीक था—ऐसा नहीं समझना चाहिए क्योंकि]

अनिराकृततापसंपदं फलहीनां सुमनोभिरुज्झिताम् ।
खलतां खलतामिवाऽसतीं प्रतिपद्येत कथं बुधो जनः ॥२४॥

अर्थ—सन्ताप को तनिक भी दूर न करने वाली (छायाविहीन) उपकारी गुणों से रहित (फलविहीन) तथा सज्जन पुरुषों से तिरस्कृत (पुष्परहित) असती अर्थात् नीच दुष्टता को आकाशवेलि की भाँति भला बुद्धिमान् लोग किस प्रकार अपना सकते हैं।

टिप्पणी—अर्थात् जिस प्रकार आकाशवेलि से न तो किसी को छाया मिलती है, न उसमें फूल होते हैं न फल होते हैं उसी प्रकार नीच दुष्टता से भी न किसी को शान्ति मिलती है न उपकार होता है और न सज्जन लोग उसे चाहते ही हैं इस कारण से कोई भी बुद्धिमान् उसका आश्रय नहीं ले सकता। उपमा अलंकार।

[भगवान् श्रीकृष्ण ने शिशुपाल की बात कायरता के कारण नहीं प्रत्युत उपेक्षाभाव से सुनी—]

प्रतिवाचमदत्त केशवः शपमानाय न चेदिभूभुजे ।
अनुहुंकुरुते घनध्वनिं न हि गोमायुरुतानि केसरी ॥२५॥

अर्थ—भगवान् श्रीकृष्ण ने राजसभा में गाली-गलौच बकते हुए शिशुपाल को कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया। सिंह बादलों का गर्जन सुनकर ही दहाड़ता है, शृगालों की हुआँ-हुआँ सुनकर नहीं।

टिप्पणी—दृष्टान्त अलंकार।

[भगवान् श्रीकृष्ण और शिशुपाल का विरोध भी उचित नहीं है—]

जितरोषरया महाधियः सपदि क्रोधजितो लघुर्जनः ।
विजितेन जितस्य दुर्मतेर्मतिमद्भिः सह का विरोधिता ॥२६॥

अर्थ—बुद्धिमान् लोग अपने क्रोध के वेग को जीत लेते हैं, किन्तु तुच्छ बुद्धिवालों को तुरन्त क्रोध ही जीत लेता है। इस प्रकार बुद्धिमान लोग जिस क्रोध को जीत लेते हैं उसी क्रोध के द्वारा हराये गये मूर्खों के साथ उनकी (बुद्धिमान् लोगों की) भला क्या प्रतिस्पर्द्धा हो सकती है ?

टिप्पणी—अप्रस्तुतप्रशसा अलकार।

[शिशुपाल के प्रलापो से भगवान् श्रीकृष्ण की कोई अप्रतिष्ठा भी नहीं हुई—]

वचनैरसतां महीयसो न खलु व्येति गुरुत्वमुद्धतैः ।
किमपैति रजोभिरौर्वरैरवकीर्णस्य मणेर्महार्घता ॥२७॥

अर्थ—दुष्टों की निष्ठुर वाणी से महान पुरुषों का गौरव निश्चय ही नष्ट नहीं होता। क्या पृथ्वी की धूल से ढकी हुई मणि की महामूल्यता कहीं चली जाती है ? (कहीं नहीं जाती।)

टिप्पणी—दृष्टान्त और अप्रस्तुतप्रशसा का सकर।

[दुष्टो के लिए इस प्रकार की गाली-गलौच बकना उचित ही है—]

परितोषयिता न कश्चन स्वगतो यस्य गुणोऽस्ति देहिनः ।
परदोषकथाभिरल्पकः स्वजनं तोषयितुं किलेच्छति ॥२८॥

अर्थ—जिसके भीतर दूसरों को सन्तुष्ट करने योग्य कोई गुण नहीं होता वह नीच पुरुष सचमुच दूसरों के अवगुण की कथाओं से ही अपने लोगों को सन्तुष्ट करने की इच्छा करता है।

टिप्पणी—अप्रस्तुतप्रशसा अलकार।

[अपने निर्दोष होने के अभिमान से भी इस प्रकार की बहकी बहकी बातें करना ठीक नहीं है—]

सहजान्धदृशः स्वदुर्नये परदोषेक्षणदिव्यचक्षुषः ।
स्वगुणोच्चगिरो मुनिव्रताः परवर्णग्रहणेष्वसाधवः ॥ २९॥

अर्थ—दुष्ट लोग अपना दोष देखने में स्वभावतः अन्धे होते हैं और दूसरों के छोटे से छोटे अवगुणों को निकालने में दिव्यदृष्टि वाले बन जाते हैं। अपने गुणों का बखान वे उच्च स्वर में करते हैं किन्तु दूसरों की प्रशसा के अवसर पर मौन व्रत धारण कर लेते हैं।

टिप्पणी—अप्रस्तुतप्रशसा अलकार।

[किन्तु सज्जन पुरुष ऐसे नहीं होते—]

प्रकटान्यपि नैपुणं महत्परवाच्यानि चिराय गोपितुम् ।
विवरीतुमथात्मनो गुणान्भृशमाकौशलमार्यचेतसाम् ॥३०॥

अर्थ—आर्यचेता सज्जन लोग दूसरों के प्रकट दोषों को भी बहुत दिनों तक अपने भीतर छिपा रखने मे परम निपुण होते हैं, और अपने गुणों को प्रकट करना तो वे बिल्कुल जानते ही नहीं।

टिप्पणी—अप्रस्तुतप्रशसा अलकार।

किमिवाऽखिललोककीर्तितं कथयत्यात्मगुणं महामनाः ।
वदिता न लघीयसोऽपरः स्वगुणं तेन वदत्यसौ स्वयम् ॥३१॥

अर्थ—महान् पुरुष लोग अपने आप ही समस्त लोकों में प्रख्यात अपने गुणों को क्यों कहते फिरें (अर्थात् उनके गुणों का बखान तो दूसरे करते ही है) किन्तु तुच्छ लोगों के गुणों का कोई बखान नहीं करता अत वह अपने गुणों को स्वय सब से कहते फिरते हैं।

टिप्पणी—वाक्यलिंग और अप्रस्तुतप्रशसा का सकर।

[महान् पुरुष क्रुद्ध होकर अवसर पडने पर पराक्रम दिखलाते हैं किन्तु कायर तो केवल प्रलाप ही करते ह—]

विसृजन्त्यविकत्थिनः परे विषमाशीविषवन्नराः क्रुधम् ।
दधतोऽन्तरसाररूपतां ध्वनिसाराः पटहा इवेतरे ॥३२॥

अर्थ—महान् पुरुष अपनी प्रशसा न कर क्रूर सर्प के विष छोड़ने की भाँति अपने क्रोध को चुपचाप प्रकट करते हैं किन्तु कायर लोग भीतर से नि सार और बाहर से ढके हुए नगाडे की भाँति केवल वाक्शूर होते हैं।

टिप्पणी—अप्रस्तुतप्रशसा अलकार।

[दूत ने जो प्रिय और अप्रिय बातें कही, उनका उत्तर देते हुए सात्यकि ने कहा—]

नरकच्छिदमिच्छतीक्षितुं विधिना येन स चेदिभूपतिः ।
द्रुतमेतु न हापयिष्यते सदृशं तस्य विधातुमुत्तरम् ॥३३॥

अर्थ—तुम्हारा राजा वह शिशुपाल जिस प्रकार से भी चाहे (युद्ध करके अथवा सन्धि करके) यदि नरकासुर के मारने वाले भगवान श्रीकृष्ण को देखने का इच्छुक है तो आकर देख ले, उसे उचित उत्तर देने मे भगवान् विलम्ब नहीं करेंगे।

[यदि यह कहो कि तुमने प्रिय बातें ही कही हैं तो —]

समनद्ध किमङ्ग भूपतिर्यदि संधित्सुरसौ सहाऽमुना ।
हरिराक्रमणेन संनतिं किल विभीत मियेत्यसंभवः ॥३४॥

अर्थ—भाई ! यदि यह तुम्हारा राजा शिशुपाल भगवान् श्रीकृष्ण के साथ संधि करने का इच्छुक है तो यह युद्ध की तैयारी उसने किस लिए की है ? (यदि यह कहो कि श्रीकृष्ण को डराने के लिए यह सेना तैयार करायी गयी है तो—) भगवान् (सिंह) पराजय के भय से (आक्रमण के भय से) विनम्र हो जायँ यह असम्भव बात है ।

टिप्पणी—दूसरे अर्थ में अर्थान्तरन्यास अलंकार होगा।

[प्रत्युत आक्रमण करने में तो उसका अनर्थ ही होगा —]

महतस्तरसा विलङ्घयन्निजदोषेण कुधीर्निनश्यति ।
कुरुते न खलु स्वयेच्छया शलभानिन्धनमिद्धदीधितिः ॥३५॥

अर्थ—दुष्टबुद्धि लोग (विनाश के समीप होने के कारण विपरीत बुद्धि होकर) महानुभावों पर बलपूर्वक आक्रमण कर अपने ही अपराध से नष्ट हो जाते हैं । (देखो न,) प्रज्ज्वलित अग्नि पतिंगों को अपनी इच्छा से नहीं जलाती बल्कि वे अपने आप ही उसमें आकर जल मरते हैं।

टिप्पणी—दृष्टान्त अलंकार।

[यदि यह कहो कि भगवान् श्रीकृष्ण शिशुपाल के सौ अपराधों को क्षमा करने का वचन दे चुके हैं और अब यदि उसकी गालियों को नहीं सहन करते तो प्रतिज्ञा से च्युत होंगे, तो ऐसी बात नहीं है—]

यदपूरि पुरा महीपतिर्न मुखेन स्वयमागसां शतम् ।
अथ सम्प्रति पर्यपूपुरत्तदसौ दूतमुखेन शार्ङ्गिणः ॥३६॥

अर्थ—अभी तक तुम्हारे राजा शिशुपाल ने अपनी वाणी से भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति वह सौ अपराध अवश्य ही नहीं पूरे किए थे किन्तु अब तो दूत के मुख से उसने वह सौ अपराध भी पूरे कर लिये।

टिप्पणी— चार पर्यन्ति राजानः राजा लोग दूतों के द्वारा ही देखते हैं।

यदनर्गलगोपुराननस्त्वमितो वक्ष्यसि किंचिदप्रियम् ।
विवरिष्यति तच्चिरस्य नः समयोद्वीक्षणरक्षितां क्रुधम् ॥३७॥

अर्थ—अर्गला अर्थात् अगारी अथवा जंजीर रहित फाटक की भांति अपने मुख से, जो ही मन में आया वह सब अनर्गल बातें करने वाले तुम अब यदि कुछ भी अप्रिय बातें कहोगे तो फिर इस प्रकार तुम बड़ी देर से अवसरकी प्रतीक्षा में रुके हुए हमारे क्रोध को ही जाग्रत करोगे।

टिप्पणी—अर्थात् अब यदि कोई अप्रिय बात कहोगे तो तुम्हें दण्ड मिलेगा।

निशमय्य तदूर्जितं शिनेर्वचनं नप्तुरनाप्तुरेनसाम् ।
पुनरुज्झितसाध्वसं द्विषामभिधत्ते स्म वचो वचोहरः ॥३८॥

अर्थ—पाप को तनिक भी न स्पर्श करने वाले शिनि के पौत्र सात्यकि की इन सब मर्मभरी बातों को सुनकर वह शिशुपाल का दूत पुनः अपना भय त्याग कर यह बात बोला।

विविनक्ति न बुद्धिदुर्विधः स्वयमेव स्वहितं पृथग्जनः ।
यदुदीरितमप्यदः परैर्न विजानाति तदद्भुतं महत् ॥३९॥

अर्थ—बुद्धि शून्य पामर लोग यदि स्वयं अपने कल्याण की बातें नहीं जानते तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है, किन्तु वह दूसरों के उपदेश देने पर भी जो अपना कल्याण नहीं देखते, यही महान आश्चर्य है।

विदुरेष्यदपायमात्मना परतः श्रद्दधतेऽथवा बुधाः ।
न परोपहितं न च स्वतः प्रमिमीतेऽनुभवादृतेऽल्पधीः ॥४०॥

अर्थ—बुद्धिमान् लोग अपनी भावी विपत्ति को स्वयं जान लेते हैं अथवा दूसरे लोगों के कहने पर विश्वास कर लेते हैं। किन्तु बुद्धिहीन लोग स्वयं अनुभव किये बिना न तो स्वयं अपनी विपत्ति को जान पाते हैं और न दूसरों के कहने पर ही विश्वास करते हैं।

टिप्पणी—अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार।

कुशलं खलु तुभ्यमेव तद्वचनं कृष्ण यदभ्यधामहम् ।
उपदेशपराः परेष्वपि स्वविनाशाभिमुखेषु साधवः ॥४१॥

अर्थ—हे कृष्ण! मैंने (अभी) जो बातें कहीं हैं वे तुम्हारे ही कल्याण के लिए हैं। सज्जन लोग अपने विनाश के पथ पर अग्रसर अपने शत्रुओं को भी उपदेश देते हैं।

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलंकार।

[उन दो अर्थों वाली बात में क्या ग्रहण किया जाय इसके लिए दूत कहता है —]

उभयं युगपन्मयोदितं त्वरया सान्त्वमथेतरच्च ते ।
प्रविभज्य पृथङ्मनीषया स्वगुणं यत्किल तत्करिष्यसि ॥४२॥

अर्थ—मैंने सुलह करने की तथा विग्रह करने की जो बातें एक साथ ही आप से कही हैं, उनमें आप अपनी बुद्धि द्वारा पृथक् रूप से विवेचन कर के जो भी अपने लिए कल्याणकारी समझें, उसे शीघ्रता से करें।

[आप हमारे उपदेश पर ध्यान ही क्यों देने लगे—]

अथवाऽभिनिविष्टबुद्धिषु व्रजति व्यर्थकतां सुभाषितम् ।
रविरागिषु शीतरोचिषः करजालं कमलाकरेष्विव ॥४३॥

अर्थ—अथवा दुराग्रह से ग्रस्त चित्तवाले व्यक्ति के लिए हित अथवा उपदेश की बात, सूर्य से अनुराग रखनेवाले कमलों से युक्त सरोवरों पर चन्द्रमा की किरणों के समूह की भांति व्यर्थ हो जाती है।

टिप्पणी—उपमा अलंकार।

[दुराग्रही व्यक्ति को भी सज्जन पुरुष को उचित मार्ग पर लाना चाहिए—ऐसा भी यहाँ नहीं है क्योंकि—]

अनपेक्ष्य गुणागुणौ जनः स्वरुचिं निश्चयतोऽनुधावति ।
अपहाय महीशमार्चिचत्सदसि त्वां ननु भीमपूर्वजः ॥४४॥

अर्थ—(मूर्ख) लोग गुण और दोषों का विचार न करके अपनी ही रुचि के अनुसार कार्य करते हैं। देखिए न! राजा युधिष्ठिर ने हमारे महाराज शिशुपाल को छोड़कर भरी सभा में तुम्हारी पूजा की।

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलंकार।

त्वयि भक्तिमता न सत्कृतः कुरुराजा गुरुरेव चेदिपः ।
प्रियमासमृगाधिपोज्झितः किमवद्यः करिकुम्भजो मणिः ॥४५॥

अर्थ—तुम्हारे ऊपर प्रेम रखने वाले कुरुराज युधिष्ठिर द्वारा पूजित न होकर भी राजा शिशुपाल महान् ही हैं। क्योंकि मांसलोभी सिंह द्वारा छोड़ी गयी हाथी के मस्तक की मुक्तामणि क्या निन्दनीय हो जाती है ? (कदापि नहीं, मूर्खों के अनादर से बड़े लोगों की कोई छुटाई नहीं होती।)

टिप्पणी—दृष्टान्त अलकार।

क्रियते धवलः खलूच्चकैर्धवलैरेव सितेतरैरधः ।
शिरसाघमधत्त शंकरः सुरसिन्धोर्मधुजित्तमङ्घ्रिणा ॥४६॥

अर्थ—निर्मल को निर्मल व्यक्ति ही ऊचा उठाते हैं और मलिन लोग तो उसे नीचा ही दिखाते हैं। (धवल शरीर) शंकरजी गंगा (की धवल धारा) को तो शिर पर धारण करते हैं किन्तु (मलिन अर्थात् नील कान्ति वाले) विष्णु उसे चरण मे धारण करते हैं।

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलकार।

[जिस प्रकार युधिष्ठिर के अनादर से राजा शिशुपाल का गौरव नहीं घटा उसी प्रकार युधिष्ठिर के आदर से तुम्हारा गौरव भी नही बढा।]

अबुधैः कृतमानसंविदस्तव पार्थैः कुत एव योग्यता ।
सहसि प्लवगैरुपासितं न हि गुञ्जाफलमेति सोष्मताम् ॥४७॥

अर्थ—मूर्ख पाण्डवों द्वारा पूजित एव सत्कृत हो जाने से तुम्हारी कहाँ से योग्यता बढ़ गयी ? (अर्थात् कहीं से भी नहीं।) क्योंकि अगहन के महीने में वानरों द्वारा सेवित घुघची के फल गरम नहीं हो जाते।

टिप्पणी—अर्थात् मूर्खों द्वारा गौरव पाकर कोई सचमुच पूज्य नहीं हो जाता। अगहन के महीने में वानर अग्नि के भ्रम से घुघुचियों को बटोर कर उनसे आग की चिनगारियों की भांति गरमी प्राप्त करने की आशा करते हैं किन्तु इससे क्या लाभ ? दृष्टान्त अलकार।

[जो तो अपराधों में क्षमा करने की बात श्रीकृष्ण ने कहा है उसका उत्तर—]

अपराधशतक्षमं नृपः क्षमयाऽत्येति भवन्तमेकया ।
हृतवत्यपि भीष्मकात्मजां त्वयि चक्षाम समर्थ एव यत् ॥४८॥

अर्थ—हमारे राजा शिशुपाल ने सौ अपराधों को क्षमा करने वाले आपका अतिक्रमण अपनी केवल एक ही क्षमा से कर दिया है। भीष्मक की कन्या रुक्मिणी का अपहरण करने पर भी प्रतीकार में समर्थ होते हुए उन्होंने तुम्हें (एक वार) क्षमा किया है।

[यदि यह कहो कि राजाओं को इस प्रकार अपहरण करके विवाह करने की विधि शास्त्रानुमोदित है, अत रुक्मिणीहरण में कौन-सा अपराध हुआ, और उसके लिए फिर क्षमा कैसी, तो दूत कहता है —]

गुरुभिः प्रतिपादितां वधूमपहृत्य स्वजनस्य भूपतेः।
जनकोऽसि जनार्दन स्फुटं हतधर्मार्थतया मनोभुवः ॥४६॥

अर्थ—हे कृष्ण ! पिता आदि द्वारा (हमारे राजा के लिये) दी गयी अपने (मौसेरे) भाई शिशुपाल की पत्नी रुक्मिणी का अपहरण करके तुमने अपने धर्म एव अर्थ का विनाश कर दिया है और इस प्रकार तुम निश्चय ही कामदेव के (भी) पिता हो गये हो।

टिप्पणी—दूत के कहने का तात्पर्य यह है कि रुक्मिणी का यह आहरण राक्षस विवाह नहीं प्रत्युत परस्त्री-हरण है। क्योंकि राक्षस विवाह में तो—

हत्वा छित्त्वा च भित्त्वा च क्रोशन्तीं रुदतीं तथा।
प्रसह्य कन्याहरणं राक्षसो विधिरुच्यते॥

अर्थात् यदि जबरदस्ती से पिता आदि को मारकर, बन्धन काटकर अथवा डराकर रोती हुई, गाली देती हुई कन्या का अपहरण किया जाय तो वह राक्षस विवाह है। रुक्मिणी तो हमारे राजा शिशुपाल की वाग्दत्ता पत्नी थी। परस्त्री-हरण निर्लज्ज कामदेव के पिता ही कर सकते हैं जिन्हें लाज लज्जा का कोई भय नहीं है।

अनिरूपितरूपसंपदस्तमसो वान्यभृतच्छदच्छवेः।
तव सर्वगतस्य संप्रति क्षितिपः क्षिप्नुरभीशुमानिव ॥५०॥

अर्थ—नट की भाँति अनेक रूप धारण करने के कारण जिसके रूप-विशेष का ज्ञान किसी को नहीं होता ऐसे अथवा वाणी एव मन से अगोचर रूपवाले (अन्धकार के पक्ष में, तेज के अभाव के रूप में अथवा द्रव्य के रूप में जिसके स्वरूप का कोई निश्चय नहीं होता) कोकिल के पंख की भाँति काले रंग की कान्तिवाले एवं सर्वत्र

व्याप्त अन्धकार की भाँति तुम्हारा अब सूर्य की तरह राजा शिशुपाल शीघ्र ही विनाश कर देगा।

क्षुभितस्य महीभृतस्त्वयि प्रशमोपन्यसनं वृथा मम।
प्रलयोल्लसितस्य वारिधेः परिवाहो जगतः करोति किम् ॥५१॥

अर्थ—तुम्हारे ऊपर अत्यन्त क्रुद्ध राजा शिशुपाल के सामने उन्हें शान्त करने का मेरा उपदेश देना अब व्यर्थ ही होगा। क्योंकि प्रलय-काल में अत्यन्त क्षुभित समुद्र का मनुष्य द्वारा बनायी गई जल निकलने की नालियाँ भला क्या कर सकती हैं? (अर्थात् कुछ नहीं कर सकतीं)।

टिप्पणी—दृष्टान्त अलंकार।

[यदि ऐसा ही था तो राजा शिशुपाल ने मुझे क्यों भेजा इसका कारण बतलाते हुए दूत कहता है—]

प्रहितः प्रधनाय माधवानहमाकारयितुं महीभृता।
न परेषु महौजसश्छलादपकुर्वन्ति मलिम्लुचा इव ॥५२॥

अर्थ—तुम्हारे पक्ष के यदुवंशियों को युद्धार्थ ललकारने के लिए राजा ने मुझे भेजा है। क्योंकि पराक्रमी लोग चोरों की भाँति छिप करके शत्रुओं का अहित नहीं करते।

टिप्पणी—उपमा और वाक्यार्थहेतुक काव्यलिंग का संकर।

तदयं समुपैति भूपतिः पयसां पूर इवाऽनिवारितः।
अविलम्बितमेधि वेतसस्तरुवन्माधव मा स्म भज्यथाः ॥५३॥

अर्थ—अतएव युद्ध के लिए उद्यत हमारा राजा शिशुपाल प्रबल जल प्रवाह की भांति अनिवार्य रूप से आनेवाला है। हे माधव! (मैं तुम्हें हित की बात बताता हूँ कि) तुम शीघ्रही बेंत के समान नम्र बनकर अपनी रक्षा करो और विशाल वृक्ष के समान बनकर टूट मत जाओ।

टिप्पणी—उपमा अलंकार।

परिपाति स केवलं शिशूनिति तन्नामनि मा स्म विश्वसीः।
तरुणानपि रक्षति क्षमी स शरण्यः शरणागतान्द्विषः ॥५४॥

अर्थ—हमारे राजा 'शिशुपाल' के नाम से यह विश्वास न करो कि वह केवल शिशुओं की रक्षा करते हैं। वह तो अत्यन्त क्षमाशील और शरणागतों की रक्षा करने वाले हैं अत. अपनी शरण में आये हुए युवक शत्रुओं की भी वह रक्षा करते हैं। (अतएव बिना किसी संशय के उनकी शरण में चलो।)

न विदध्युरशङ्कमप्रियं महतः स्वार्थपराः परे कथम्।
भजते कुपितोऽप्युदारधीरनुनीतिं नतिमात्रकेण सः ॥५५॥

अर्थ—साधारणतः स्वार्थी शत्रु अवसर आने पर निःशंक होकर अपने बड़े शत्रु का अनुपकार क्यों न करते हों किन्तु उदार बुद्धि हमारे राजा शिशुपाल अति क्रुद्ध होने पर भी केवल नमस्कार मात्र करने से प्रसन्न हो जाते हैं।

हितमप्रियमिच्छसि श्रुतं यदि संधत्स्व पुरा न नश्यसि।
अनृतैरथ तुष्यसि प्रियैर्जयताज्जीव भवाऽवनीश्वरः ॥५६॥

अर्थ—यदि आप सुनने में अप्रिय किन्तु कल्याणकारी मेरी बात सुनने की इच्छा करते हैं तब तो राजा शिशुपाल से सन्धि कर लें और विनष्ट मत हों। और यदि सुनने में प्रिय किन्तु मिथ्या और अकल्याणकारी बात सुन कर सन्तुष्ट होना चाहते हों तो चिरजीवि और सार्वभौम सम्राट् बन जायँ।

प्रतिपक्षजिदप्यसंशयं युधि चैद्येन विजेष्यते भवान्।
ग्रसते हि तमोपहं मुहुर्ननु राहाह्वमहर्पतिं तमः ॥५७॥

अर्थ—अनेक शत्रुओं का विनाश करने वाले होकर भी आप युद्ध-भूमि में शिशुपाल से निश्चय ही पराजित होंगे। (देखो न) सम्पूर्ण अन्धकार-राशि को नष्ट करने वाले दिनपति सूर्य को राहु नामक एक अन्धकार बार-बार निगलता है।

टिप्पणी—दृष्टान्त अलंकार।

अचिराञ्जितमीनकेतनो विलसन्वृष्णिगणैर्नमस्कृतः।
क्षितिपः क्षयितोद्धताऽन्धको हरलीलां स विडम्बयिष्यति ॥५८॥

अर्थ—हमारा राजा शिशुपाल शीघ्र ही मीनकेतन अर्थात् प्रद्युम्न (शकर पक्ष में, कामदेव) को जीतकर तथा यदुवंशियों से नमस्कृत तथा सुशोभित होकर (प्रमथ गणों से नमस्कृत एव वृषभ पर आरूढ होकर) एव अपने बल का अभिमान करने वाले अन्धक नामक तुम्हारे पक्ष के राजाओं का (अन्धकासुर) का विनाश कर के महादेव के चरित्र का अनुकरण करेगा।

टिप्पणी—श्लेष से सकीर्ण निदर्शना अलकार।

निहतोन्मदद्दुष्टकुञ्जराद्दधतो भूरि यशः क्रमार्जितम्।
न बिभेति रणे हरेरपि क्षितिपः का गणनाऽस्य वृष्णिषु ॥५९॥

अर्थ— हमारा राजा शिशुपाल मतवाले दुष्ट हाथी कुवलयापीड को मारने वाले एव इस प्रकार प्रचुर यश अर्जन करने वाले हरि (सिंह अर्थात् तुम) से जब रण में भय नहीं खाता तो उस परम पराक्रमशाली के सामने भेंड के समान इन यदुवंशियों की क्या गिनती है।

न तदद्भुतमस्य यन्मुखं युधि पश्यन्ति भिया न शत्रवः।
द्रवतां ननु पृष्ठमीक्षते वदनं सोऽपि न जातु विद्विषाम् ॥६०॥

अर्थ—शत्रु लोग युद्ध में हमारे राजा शिशुपाल का जो मुख नहीं देखते, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है, आश्चर्य तो यह है कि वह भी भय से भागते हुए शत्रुओं की पीठ ही देखता है, कभी मुख नहीं देखता।

टिप्पणी—काव्यलिंग अलकार।

प्रतनूल्लसिताऽचिरद्युतः शरदं प्राप्य विखण्डितायुधाः।
दधतेऽरिभिरस्य तुल्यतां यदि नासारभृतः पयोभृतः ॥६१॥

अर्थ—शरत् काल में खण्डित इन्द्रधनुष तथा बहुत कम चमकती हुई बिजली वाले मेघ यदि वृष्टि न करें तो वे हमारे राजा शिशुपाल की बराबरी कर सकते हैं क्योंकि बाण वृष्टि करने वाले हमारे राजा शिशुपाल को सामने देखकर उनके शत्रुओं के भी धनुष खण्डित हो जाते हैं और उनकी भी कान्ति मलिन तथा अस्थिर हो जाती है।

टिप्पणी—प्रतीप तथा अतिशयोक्ति अलंकार का संकर।

मलिनं रणरेणुभिर्मुहुर्द्विषतां क्षालितमङ्गनाश्रुभिः ।
नृपमौलिमरीचिवर्णकैरथ यस्याऽङ्घ्रियुगं विलिप्यते ॥६२॥

अर्थ—बारम्बार रण की धूल से मलिन हमारे राजा शिशुपाल के दोनों पैर शत्रुओं की रमणियों की आँसुओं से धोये जाते हैं और अवनत हुए राजाओं के मुकुट-मणियों के किरण-रूपी विलेपन से लीप जाते हैं।

टिप्पणी—समासोक्ति अलंकार।

समराय निकामकर्कशं क्षणमाकृष्टमुपैति यस्य च ।
धनुषा सममाशु विद्विषां कुलमाशङ्कितभङ्गमानतिम् ॥६३॥

अर्थ—और अत्यन्त दुर्धर्ष शत्रुगण हमारे राजा शिशुपाल द्वारा (कठिन) समर के लिए ललकारे जाने पर (पक्ष में, खींचे जाने पर) क्षण भर में ही अपने पराजय की आशंका से (टूटने की आशंका से) अपने धनुष के झुकाने के साथ ही झुक जाते हैं।

टिप्पणी—अतिशयोक्ति मूलक सहोक्ति अलंकार।

तुहिनांशुममुं सुहृज्जनाः कलयन्त्युष्णकरं विरोधिनः ।
कृतिभिः कृतदृष्टिविभ्रमाः स्रजमेके भुजगं यथाऽपरे ॥६४॥

अर्थ—इस प्रकार उस अत्यन्त बलशाली हमारे राजा शिशुपाल को सुहृद लोग चन्द्रमा के समान मानते हैं और विरोधी लोग सूर्य मानते हैं। ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार ऐन्द्रजालिकों द्वारा दृष्टि विपर्यय होने पर एक ही वस्तु को कुछ लोग माला और कुछ लोग सर्प समझने लगते हैं।

टिप्पणी—उल्लेख और उपमा का संकर।

दधतोऽसुलभक्षयागमास्तनुमेकान्तरतामभानुषीम् ।
भुवि सम्प्रति न प्रतिष्ठिताः सदृशा यस्य सुरैररातयः ॥६५॥

अर्थ—(रणभूमि में पहुँच कर) शिशुपाल के शत्रुओं का घर पहुँचना दुर्लभ हो जाता है, (देवता पक्ष में, जिनके नाश का योग होता ही

नहीं) भय के कारण एकान्त निर्जन स्थान मे वास करने लगते हैं, शरीर अत्यन्त कृश और मलिन पड जाता है और वे पिशाच की भांति मालूम पडने लगते हैं (जो नित्य भोग करने योग्य दिव्य शरीर धारण करते हैं।) उन्हे धरती तल पर कहीं भी स्थिति नही मिलती अर्थात् मारे-मारे घूमते रहते हैं (धरती पर पैर नहीं रखते), इस प्रकार वे सचमुच देवताओं के समान हो जाते हैं।

टिप्पणी—देवताओ के सम्बध में भी यही पौराणिक प्रसिद्धिया ह। श्लेष सवाण उपमा अलकार।

अतिविस्मयनीयकर्मणो नृपतेर्यस्य विरोधि किंचन ।
यदमुक्तनयो नयत्यसावहिताना कुलमक्षयं क्षयम् ॥६६॥

अर्थ—हमारे राजा शिशुपाल का पौरुष अत्यन्त विस्मयजनक है। उनका शत्रु इस ससार मे कोई बचा ही नहीं है। वह कभी नीति मार्ग को छोडने वाले नहीं हैं, अत वह अपने उन शत्रुओं को भी मार डालते हैं, जिन्हे कोई नहीं मार सकता।

टिप्पणी—विरोधाभास अल्कार।

चलितोर्ध्वकबन्धसंपदो मकरव्यूहनिरुद्धवर्त्मनः ।
अतरत्स्वभुजौजसा मुहुर्महतः सङ्गरसागरानसौ ॥६७॥

अर्थ—वह हमारे राजा शिशुपाल शिरविहीन चलते हुए कबन्धों के समूह रूपी जलराशि स युक्त, मकराकार सैनिक व्यूह रूपी घड़ियालो से भरे हुए होने के कारण अवरुद्ध मार्ग वाले, भयानक युद्ध रूपी विशाल समुद्रों को अपनी भुजाओं के बल से अनेक बार पार कर चुके हैं।

टिप्पणी—श्लिष्ट परम्परित रूपक अलकार।

न चिकीर्षति यः स्मयोद्धतो नृपतिस्त्वच्चरणोपगं शिरः ।
चरणं कुरुते गतस्मयः स्वमसावेव तदीयमूर्धनि ॥६८॥

अर्थ—अभिमान स उद्धत जो कोइ राजा अपने शिर को शिशुपाल के चरणों पर रखने की इच्छा नहीं करता, उसके शिर पर गर्वविहीन हमारे राजा शिशुपाल स्वय ही अपने चरण रख देते हैं।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि उद्धत एवं दुर्धर्ष राजाओं को वह तुरन्त ही दब देते हैं।

स्वभुजद्वयकेवलायुधश्चतुरङ्गामपहाय वाहिनीम् ।
बहुशः सह शक्रदन्तिना स चतुर्दन्तमगच्छदाहवम् ॥६६॥

अर्थ—हमारे राजा शिशुपाल अपनी चतुरंगिणी सेना को छोड़कर अनेक बार केवल अपने भुजा-रूपी आयुधों द्वारा इन्द्र के चार दाँतों वाले हाथी ऐरावत के साथ चतुर्दन्त युद्ध में भाग ले चुके हैं।

टिप्पणी—हाथियों का युद्ध चतुर्दन्त कहा जाता है। शिशुपाल तो हाथी से लम्बा था अतः चार दाँत वाले ऐरावत के साथ युद्ध करने में भी उसका वह युद्ध चतुर्दन्त हो जाता था।

अविचालितचारुचक्रयोरनुरागादुपगूढयोः श्रिया ।
युवयोरिदमेव भिद्यते यदुपेन्द्रस्त्वमतीन्द्र एव सः ॥७०॥

अर्थ हे कृष्ण! तुममें और हमारे राजा शिशुपाल में यही इतना भेद है कि तुम उपेन्द्र हो अर्थात् इन्द्र के छोटे भाई हो और वह इन्द्र का विजेता है। (शेष बातों में तो तुम उसके समान ही हो, क्योंकि जिस प्रकार) तुम्हारे (सुदर्शन) चक्र को कोई अन्य व्यक्ति नहीं चला सकता उसी प्रकार शिशुपाल के चक्र अर्थात् उसकी सेना या राष्ट्र को कोई विचलित नहीं कर सकता। जिस प्रकार लक्ष्मी प्रेम के वश में होकर तुम्हारा आलिंगन करती है उसी प्रकार राजलक्ष्मी शिशुपाल का भी अनुराग के साथ आलिंगन करती है।

टिप्पणी—व्यतिरेक अलंकार।

भृतभूतिरहीनभोगभाग्जितानेकपुरोऽपि विद्विषाम् ।
रुचिमिन्दुदले करोत्यजः परिपूर्णेन्दुरुचिर्महीपतिः ॥७१॥

अर्थ—विभूति विभूषित शेष नाग को धारण करने वाले एवं त्रिपुरासुर को जीतने वाले महादेव जी भी चन्द्रमा के एक टुकड़े को धारण करते हैं किन्तु भूति अर्थात् प्रचुर समृद्धियों वाला, अत्यन्त सुख भोग का अनुभव करने वाला तथा अनेक शत्रु नगरों को जीतने वाला हमारा राजा शिशुपाल सम्पूर्ण चन्द्रमा की शोभा धारण करता है।

टिप्पणी—श्लेष मूलातिशयोक्ति से सकीर्ण व्यतिरेक अलकार।

नयति द्रुतमुद्धतिश्रितः प्रसभ भङ्गमभङ्गुरोदयः ।
गमयत्यवनीतलस्फुरद्भुजशाख भृशमन्यमुन्नतिम् ॥७२॥
अधिगम्य च रन्ध्रमन्तरा जनयन्मण्डलभेदमन्यतः ।
खनति क्षतसंहति क्षणादपि मूलानि महान्ति कस्यचित् ॥७३॥
घनपत्रभृतोऽनुगामिनस्तरसाऽऽकृष्य करोति काश्चन ।
दृढमप्यपरं प्रतिष्ठितं प्रतिकूलं नितरां निरस्यति ॥७४॥
इति पूर इवोदकस्य यः सरितां प्रावृषिजस्तटद्रुमैः ।
क्वचनापि महानखण्डितप्रसरः क्रीडति भूभृतां गणैः ॥७५॥

अर्थ—जिस प्रकार वर्षा काल में बढ़ी हुई नदी का जल-प्रवाह बिना किसी रोक-टोक के तटवर्ती वृक्षों के साथ मनमाना व्यवहार करता है, उसी प्रकार स्थिर उन्नति शाली हमारा राजा शिशुपाल भी बिना किसी अवरोध के नृप-समूहों के साथ मनमानी रीति से खिलवाड़ करता है। जिस प्रकार वह जल-प्रवाह ऊँचे-ऊँचे वृक्षों को शीघ्र ही भग कर देता है एव धरती तल पर झुकी हुई शाखाओं वाले बेंतों आदि को निरन्तर ऊँचा करता है, उसी प्रकार राजा शिशुपाल भी उद्धत राजाओं को तो तुरन्त नष्ट कर देता है तथा पृथ्वी तल पर गिरकर हाथ जोड़ कर नमस्कार करने वाले राजाओं को उन्नत करता है। जिस प्रकार उक्त जल-प्रवाह उन वृक्षों की क्यारियों में पहुँच कर उनको आश्रय देने वाली पृथ्वी को विदीर्ण कर देता है, जड़ों की परस्पर एकता को तोड़-ताड कर उन्हें काट गिराता है, उसी प्रकार राजा शिशुपाल भी शत्रु के मन्त्रिमंडलों में भेद डालकर उन्हें अलग-थलग कर देता है, उनकी एकता को नष्ट करके क्षण भर में ही शत्रु राष्ट्र के मुख्य-मुख्य अधिकारियों को दूर हटा देता है। जिस प्रकार नदी का वह जल प्रवाह घने पत्तों वाले कितने ही वृक्षों को वेग से अपने साथ खींचकर अपना अनुचर बना लेता है तथा अन्य दृढ प्रतिकूल वृक्षों को भी एकाएक उखाड़ कर तट पर फेंक देता है उसी प्रकार राजा शिशुपाल भी हाथी घोड़ा आदि विविध वाहनों की सम्पत्ति वाले कुछ राजाओं को बलपूर्वक खींचकर उन्हें

अपना अनुचर बना लेता है तथा अन्य दूसरे भली भाँति प्रतिष्ठित प्रतिपक्षी राजाओं के उखाड़ कर फेंक देता है। (इस प्रकार हमारा राजा शिशुपाल परम प्रतापी, बलशाली तथा नीतिमान है।)

अलघूपलपङ्क्तिशालिनीः परितो रुद्धनिरन्तराम्बराः ।
अधिरूढनितम्बभूमयो न विमुञ्चन्ति चिराय मेखलाः ॥७६॥
कटकानि भजन्ति चारुभिर्नवमुक्ताफलभूषणैर्भुजैः ।
नियतं दधते च चित्रकैरवियोग पृथुगण्डशैलतः ॥७७॥
इति यस्य ससंपदः पुरा यदवापुर्भवनेष्वरिस्त्रियः ।
स्फुटमेव समस्तमापदा तदिदानीमवनीध्रमूर्धसु ॥७८॥

अर्थ—हमारे राजा शिशुपाल के शत्रुओं की रमणियों को कहीं भी आश्रय नहीं मिलता और उन्हें पर्वतों पर इधर-उधर घूम फिर कर अपने (भारी) दिन काटने पड़ते हैं। पहले (जब वे अपने पति के समृद्धि शाली भवनों में निवास करती थीं तब) बड़ी-बड़ी मणियों से जटित अधोवस्त्र को आवृत करने वाली तथा नितम्ब स्थल पर पड़ी हुई मेखला को कभी नहीं छोड़ती थीं, किन्तु अब हमारे राजा के हाथों से अपने पतियों के मारे जाने के बाद वे ही बड़-बड़े पत्थरों की पंक्ति वाली तथा घने आकाश को आच्छादित करने वाली पर्वत की मेखलाओं अर्थात् मध्य भूमियों को नहीं छोड़ती हैं अर्थात् उन्हीं में छिपकर निरन्तर वास करती हैं। पहले वे अपनी सुन्दर भुजाओं में नवीन मुक्ताओं के आभूषण पहनती थीं पर अब नूतन वैधव्य के कारण आभूषण रहित हाथों वाली बनकर पर्वत-तटों का आश्रय लेती हैं। पहले उनके सुडौल कपोल-स्थल सदैव पत्र-रचना से शृङ्गार युक्त रहते थे परन्तु अब उन्हें गिरे हुए स्थूल पत्थरों पर चित्रक नामक मृगों के साथ रहना पड़ता है। इस प्रकार सचमुच पहले वे अपने पतियों के समृद्धिशाली भवनों में मे जिन-जिन वस्तुओं का अनुभव करती थीं, उन्हीं-उन्हीं वस्तुओं का इस आपदा काल में भी वे पर्वतों के शिखरों पर अनुभव करती हैं।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि शिशुपाल के शत्रुओं के जीवित रहने की अथवा [illegible] होने की आशा नहीं छोड़नी चाहिए।

महतः कुकुरान्धकद्रुमानतिमात्रं दववद्दहन्नपि ।
अतिचित्रमिदं महीपतिर्यदकृष्णामवनीं करिष्यति ॥७९॥

अर्थ—हे कृष्ण ! यह अत्यन्त विचित्रता की बात होगी जो राजा शिशुपाल दावाग्नि की भाँति उन विशाल कुक्कुर एवं अन्धक वशीय यदुवशी रूपी वृक्षों को जलाकर भी धरती को अकृष्णा ही अर्थात् कृष्ण रहित ही रखेगा।

टिप्पणी—विरोधाभास अलकार।

परितः प्रमिताक्षराऽपि सर्वं विषयं व्याप्तवती गता प्रतिष्ठाम् ।
न खलु प्रतिहन्यते कुतश्चित्परिभाषेव गरीयसी यदाज्ञा ॥८०॥

अर्थ—जिस प्रकार व्याकरण शास्त्र के 'इको गुणवृद्धि' इत्यादि परिभाषा सूत्र यद्यपि थोडे अक्षरों वाले होते हैं तथापि उनका अर्थ बहुत होता है, उसकी सभी परवर्ती सूत्रों में अनुवृत्ति होती है और उसकी सर्वत्र प्रतिष्ठा होती है और कहीं उसका अवरोध नहीं होता उसी प्रकार हमारे राजा शिशुपाल की आज्ञा यद्यपि स्वल्पाक्षरों वाली होती है तथापि उसका अर्थ बहुत प्रभावकारी होता है, समूचे राष्ट्र की समस्त दिशाओं मे एवं सब स्थानों में वह प्रतिष्ठा पाती है और कहीं भी प्रतिहत नहीं होती।

टिप्पणी—उपमा अलकार। औपच्छन्दसिक छन्द।

यामूढवानूढवराहमूर्तिर्मुहूर्तमादौ पुरुषः पुराणः ।
तेनोह्यते सांप्रतमक्षतैव क्षतारिणा सम्यगसौ पुनर्भूः ॥८१॥

अर्थ—जिस धरती को सर्वप्रथम पुराणपुरुष भगवान विष्णु ने वराह रूप धारण कर थोडी देर के लिए धारण किया था, उसी धरती को समस्त शत्रुदलों के विनाश करने वाले हमारे राजा शिशुपाल ने शत्रुओं द्वारा तनिक भी परेशान न होकर अब बहुत अधिक समय से भली भाँति धारण कर रखा है।

टिप्पणी—जिस प्रकार किसी नवयौवना रमणी का कोई वृद्ध पुरुष वर रूप धारण कर पहले ब्याह कर तो लाता है, किन्तु फिर उसकी असामर्थ्य के कारण

उस अक्षतयोनि कुमारी का विवाह शौर्यादि गुण सम्पन्न किसी अन्य नवयुवक के साथ कर दिया जाता है। इस छन्द मे यही ध्वनि है।

भूयांसः क्वचिदपि काममस्खलन्त-
स्तुङ्गत्वं दधति च यद्यपि द्वयेऽपि ।
कल्लोलाः सलिलनिधेरवाप्य पारं
शीर्यन्ते न गुणमहोर्मयस्तदीयाः ॥८२॥

अर्थ—जिस प्रकार समुद्र की लहरे बहुत ऊची होती है और कहीं नहीं रुकतीं उसी प्रकार हमारे राजा शिशुपाल के गुणों की लहरें भी बहुत ऊंची हैं और कहीं नहीं रुकतीं। किन्तु दोनों में एक बडा अन्तर भी है। समुद्र की महान् लहरे तो किनारे पर पहुँच कर विलीन हो जाती हैं किन्तु शिशुपाल के गुणों की ऊची लहरें कहीं भी विलीन नहीं होतीं।

टिप्पणी—व्यतिरेक अलकार। प्रहर्षिणी छन्द।

लोकालोकव्याहतं घर्मरश्मेः
शालीनं वा धाम नालं प्रसर्तुम्
लोकस्याग्रे पश्यतो धृष्टमाशु
क्रामत्युच्चैर्भूभृतो यस्य तेजः ॥८३॥

अर्थ—हमारे राजा शिशुपाल इतने महान् तेजस्वी हैं कि सूर्य भी उनकी समानता नहीं कर सकते। सूर्य जब लोकालोक पर्वत के पीछे रहते हैं उस समय उनका तेज इतना कम हो जाता है कि जान पड़ता है, मानों संसार के जीवों से अत्यन्त देखे जाने के कारण वे लज्जित हो रहे हों। उस समय सूर्य का तेज ऊंचे भूभृतों अर्थात् पर्वतों को व्याप्त करने मे असमर्थ हो जाता है; किन्तु हमारे राजा शिशुपाल का तेज समस्त ससार की दृष्टि के सामने भी अप्रतिहत रहता है और बडे-बड़े भूभृतों अर्थात राजाओं को आक्रान्त करने में (सर्वदा) समर्थ है।

टिप्पणी—रुजगमूलातिशयोक्ति से उत्थापित उत्प्रेक्षा मे सकीर्ण व्यतिरेक अलकार।

विच्छित्तिर्नवचन्दनेन वपुषो भिन्नोऽधरोऽलक्तकै-
रच्छाच्छे पतिताञ्जने च नयने श्रोण्योऽलसन्मेखलाः ।
प्राप्तो मौक्तिकहारमुन्नतकुचाभोगस्तदीयद्विषा-
मित्थं नित्यविभूषणा युवतयः संपत्सु चापत्स्वपि ॥८४॥

अर्थ—हमारे राजा शिशुपाल के शत्रुओं की रमणियाँ सम्पत्ति के समय अर्थात् अपने पति की जीवितावस्था में अपने शरीरों में चन्दन का लेप करती थीं, होठों में लाख रस के रंग लगाती थीं, नेत्रों में काजल लगाती थीं, कटि प्रदेश में मेखलाएं पहनती थीं तथा वक्षस्थल में मोतियों के हार पहनती थीं किन्तु अब विपत्ति के समय अर्थात् अपने पति के मर जाने पर उनके शरीर से नूतन चन्दन का लेप छूट गया होंठ लाख रस से विहीन हो गया, निर्मल नेत्र-युगल काजल-रहित हो गये, कटि प्रदेश पर से मेखलाएँ दूर हो गयीं और उन्नत स्तन प्रदेशों से मुक्ता की मालाएँ दूर हो गयीं। इस प्रकार सम्पत्ति और विपत्ति दोनों ही अवस्थाओं में वे नित्यविभूषणा रहती थीं अर्थात् सम्पत्ति के समय विशेष भूषणों से युक्त तथा विपत्ति के समय भूषणों से विहीन रहती हैं।

टिप्पणी—शार्दूलविक्रीडित छन्द। श्लेष अलंकार।

विनिहत्य भवन्तमूर्जितश्रीर्युधि सद्यः शिशुपालतां यथार्थाम्।
रुदतां भवदङ्गनागणानां करुणान्तःकरणः करिष्यतेऽसौ ॥८५॥

अर्थ—हमारे राजा शिशुपाल इस प्रकार के अतुल पराक्रमी हैं और उनका ऐश्वर्य इस प्रकार का है। वह युद्धभूमि में शीघ्र ही तुम्हारा वध करेंगे और तुम्हारी रोती हुई स्त्रियों पर दया करके (उनके शिशुओं की रक्षा करता हुआ) अपने 'शिशुपाल' नाम को सार्थक करेंगे।

टिप्पणी—औपच्छन्दसिक वृत्त और काव्यलिंग अलंकार।

श्री माघकविकृत शिशुपालवध महाकाव्यमें दूत-सवाद नामक
सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥१६॥

—○—

सत्रहवाँ सर्ग

इतीरिते वचसि वचस्विनामुना युगान्तचण्डमरुदुग्रगरीयसि ।
प्रचुक्षुभे सपदि तदम्बुराशिना समं महाप्रलयसमुद्यतं सदः ॥१॥

अर्थ—इस प्रकार बोलने मे निपुण एव धीर उस शिशुपाल के दूत के, कल्पान्त अर्थात् प्रलय के समय की प्रचण्ड वायु के समान गभीर वचन कहने पर, प्रलयकालिक समुद्र की भाँति समस्त ससार का सहार करने के लिए उद्यत भगवान् श्रीकृष्ण की वह सभा तुरन्त ही अत्यन्त क्षुब्ध हो उठी।

टिप्पणी—उपमा अलकार। इस सर्ग में रुचिरा छन्द है। लक्षण—'चतुर्ग्रहैरिह रुचिरा जभस्जगा"।

[आगे के अठारह श्लोको में सभा में व्याप्त क्षोभ का वर्णन किया गया है—]

सरागया स्रुतघनघर्मतोयया कराहतिध्वनितपृथूरुपीठया ।
मुहुर्मुहुर्दशनविखण्डितोष्ठया रुषा नृपाः प्रियतमयेव भेजिरे ॥२॥

अर्थ—(सभा मे उपस्थित) राजा लोग क्रोध के कारण लालिमा से युक्त होकर अत्यन्त पसीने से लथपथ अपनी हथेलियों से अपनी जांघों को पीटते हुए तथा बारम्बार दाँतों से ओंठों को काटते हुए अनुरागवती नायिका की भाँति दिखाई पड़ने लगे।

टिप्पणी—उपमा अलकार।

[राजाओ के क्रोध के अनुभाव का वर्णन आगे के सत्रह श्लोको म है—]

अलक्ष्यत क्षणदलिताङ्गदे गदे करोदरप्रहितनिजांसधामनि ।
समुल्लसच्छकलितपाटलोपलैः स्फुलिङ्गवान्स्फुटमिव कोपपावकः ३

अर्थ—हथेलियो द्वारा अपने कँधे को पीटने पर जब श्रीकृष्ण के छोटे भाई गद की बाहु का केयूर (बाजूबन्द) नीचे गिर गया तो उससे पद्मरागमणियों के छोटे-छोटे टुकड़े निकलकर धरती पर बिखर गये।

उस समय ऐसा मालूम पड़ने लगा मानों उसकी क्रोधाग्नि की चिन-गारियाँ ही स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ रही हों।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलंकार।

अवज्ञया यदहसदुच्चकैर्बलः समुल्लसद्दशनमयूखमण्डलः।
रुषारुणीकृतमपि तेन तत्क्षणं निजं वपुः पुनरनयन्निजां रुचिम्॥४॥

अर्थ—बलराम ने जब दूत की अवज्ञा करने के भाव से अट्टहास किया तो उनके दाँतों की किरणें चारों ओर फैल गयीं। अतः उस समय क्रोध से लाल होने पर भी उनका शरीर फिर से अपनी गोराई को प्राप्त हो गया।

टिप्पणी—तद्गुण अलंकार।

यदुत्पतत्पृथुतरहारमण्डलं व्यवर्तत द्रुतमभिदूतमुल्मुकः।
बृहच्छिलातलकठिनांसघट्टितं ततोऽभवद्भ्रमितमिवाखिलं सदः॥५॥

अर्थ—उल्मुक नामक राजा ने अपने मोतियों के विशाल हार को उछालते हुए उसी समय दूत के मुख की ओर जब अपना मुख किया तो उससे सम्पूर्ण सभा का मुख उसी ओर इस प्रकार घूम गया मानों (राजाओं के) विशाल शिला के समान कठिन स्कन्धों के परस्पर टकरा जाने से ऐसा हुआ हो।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलंकार।

प्रकुप्यतः श्वसनसमीरणाहतिस्फुटोष्मभिस्तनुवसनान्तमारुतैः।
युधाजितः कृतपरितूर्णवीजनं पुनस्तरां वदनसरोजमस्विदत्॥६॥

अर्थ—युधाजित् नाम का राजा अत्यन्त क्रोध से युक्त होकर यद्यपि अपने मुखमण्डल पर सूक्ष्म वस्त्र के अग्रभाग से जल्दी-जल्दी हवा कर रहा था किन्तु क्रोध के कारण चलनेवाली गरम निःश्वासों से उसके उस वस्त्र में भी गर्मी प्रकट हो रही थी जिससे उसके मुख कमल से खूब पसीना चू रहा था।

टिप्पणी—काव्यलिंग अलंकार।

प्रजापतिक्रतुनिधनार्थमुत्थितं व्यतर्कयज्ज्वरमिव रौद्रमुद्धतम्।
समुद्यतं सपदि वधाय विद्विषामतिक्रुधं निषधमनौषधं जनः॥७॥

अर्थ—सभा में उपस्थित लोगों ने तुरन्त ही शत्रु के संहार के लि उद्यत, अत्यन्त दुर्धर्ष, प्रचंड क्रोधी एवं दुर्निवार निषध नामक राज को दक्ष प्रजापति के यज्ञ को विध्वंस करने के लिए उद्यत रुद्र गण वीरभद्र के समान भयानक रूप में देखा।

टिप्पणी—उपमा अलंकार।

परस्परं परिकुपितस्य पिंषतः क्षतोर्मिकाकनकपरागपङ्किलम् ।
करद्वयं सपदि सुधन्वनो निर्जरनारतस्रुतिभिरधाव्यताम्बुभिः ॥८॥

अर्थ—अत्यन्त क्रोधयुक्त होकर सुधन्वा नामक राजा अपने दोनों हथेलियों को मींजने लगा, इससे उसकी सुवर्ण की अँगूठियाँ रगड़ खाकर पिस गयीं और उसके दोनों हाथ सुवर्ण के चूर्ण से रञ्जित हो गये। किन्तु अत्यन्त क्रोध के कारण उसके हाथों से जब खून पसीना निकला तो इससे धुलकर वे फिर स्वच्छ हो गये।

टिप्पणी—अतिशयोक्ति अलंकार।

निरायतामनलशिखोज्ज्वलां ज्वलन्नखप्रभाकृतपरिवेषसंपदम् ।
विभ्रमद्भ्रमदनलोल्मुकाकृतिं प्रदेशिनीं जगदिव दग्धुमाहुकिः ९

अर्थ—आहुकि नामक राजा फैली हुई प्रचंड अग्नि की ज्वाला की भाँति उज्ज्वल, चमकती हुई नख की किरणों से परिवेष्टित तथा जलती हुई लुआठी की भाँति दिखाई पड़नेवाली अपनी तर्जनी अँगुली को मानो समस्त संसार को जलाने के लिए घुमा रहा था।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलंकार।

दुरीक्षतामभजत मन्मथस्तथा यथा पुरा परिचितदाहधाष्टर्यया ।
ध्रुवं पुरः शरममुं तृतीयया हरोऽपि न व्यसहत वीक्षितुं दृशा ॥१०॥

अर्थ—कामदेव का अवतारधारी प्रद्युम्न क्रोध से इस प्रकार दुर्दर्शनीय हो गया कि पूर्वजन्म में (केवल आँख दिखाकर) भस्म करनेवाले साहसी शंकर भी आज उस धनुषधारी को निश्चय ही फिर से अपने तीसरे नेत्र द्वारा देखने में असमर्थ हो गये।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा द्वारा वस्तु की ध्वनि।

निचिन्तयन्नुपनतमाहवं रसादुरः स्फुरत्तनुरुहमग्रपाणिना ।
परामृशत्कठिनकठोरकामिनीकुचस्थलप्रमुषितचन्दनं पृथुः ॥११॥

अर्थ—पृथु नामक राजा इस उपस्थित युद्ध का विचार कर रण के उत्साह से रोमांचित अपने उस वक्षस्थल को, जिस पर का चन्दन सुन्दरी रमणी के कठोर कुच मण्डलों से (आलिंगन के कारण) छूट गया था, अपने हाथों के अग्रभाग से सहलाने लगा।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि युद्ध की चर्चा सुन कर जहाँ दूसरे लोग दुबकने लगते हैं वहाँ यह राजा पृथु उत्साह से अपनी छाती सहलाने लगा।

विलङ्घितस्थितिमभिवीक्ष्य रूक्षया
रिपोर्गिरा गुरुमपि गान्दिनीसुतम् ।
जनैस्तदा युगपरिवर्तवायुभि-
र्विवर्तिता गिरिपतयः प्रतीयिरे ॥१२॥

अर्थ—स्वभाव से ही अत्यन्त गभीर गान्दिनी के पुत्र अक्रूर जी भी जब शत्रु के उस दूत की कठोर वाणी से अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपने आपे से बाहर हो गये तो यह देखकर लोगों ने विश्वास कर लिया कि सचमुच प्रलयकालीन वायु से पर्वत भी विचलित हो जाते हैं।

टिप्पणी—निदर्शना अलंकार। इससे अक्रूर के अलौकिक धैर्य की नैसर्गिकता की ध्वनि होती है।

निवर्तयन्मदकलुषीकृते दृशौ कराहतक्षितिकृतभैरवारवः ।
क्रुधा दधत्तनुमतिलोहिनीमभूत्प्रसेनजिद्गज इव गैरिकारुणः १३

अर्थ—मद के विकार से (पक्ष में, मदजल से) मतवाली आँखों को घुमाते हुए, तथा हाथ से (शुण्डा दण्ड से) पृथ्वी पर भयंकर ध्वनि करते हुए, क्रोध के कारण अत्यन्त लाल रंग का शरीर धारण करनेवाला राजा प्रसेनजित् उस समय गेरू से लाल रंग में रंगे हुए हाथी की भाँति (भयंकर) दिखाई पड़ने लगा।

सकुङ्कुमैरविरलमम्बुबिन्दुभिर्गवेषणः परिणतदाडिमारुणैः ।
स मत्सरस्फुटितवपुर्विनिःसृतैर्बभौ चिरं निचित इवासृजा लवैः १४

अथ—गवपण नामक राजा, समस्त शरीर में लिप्त केसर के लेप से मिश्रित होने के कारण पके हुए अनार के दानों के समान लाल वर्ण की पसीनो की बूंदों से व्याप्त होकर देर तक इस प्रकार दिखाई पड़ने लगा मानों क्रोध के कारण उसका शरीर फट गया हो और समस्त रक्त बिन्दु बाहर निकल रहे हों।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलकार।

ससंभ्रमं चरणतलाभिताडनस्फुटन्महीविवरनितीर्णवर्त्मभिः ।
रवैः करैरनुचिततापितोरग प्रकाशता शिनिरनयद्रसातलम् ॥१५॥

अथ—सात्यकि के पितामह शिनि ने क्रोध के कारण वेग से पृथ्वी पर जो अपना पैर पटका तो वहां की धरती के फट जाने से एक गड्ढा हो गया और उसी मार्ग से सूर्य की किरणें पाताल में पहुँच गयीं जिससे पाताल लोक सुप्रकाशित हो गया तथा धूप से अपरिचित वहां के नाग गण सन्तप्त होने लगे।

टिप्पणी—अतिशयोक्ति अलकार

प्रतिक्षणं विधुवति शारणे शिरः शिखिद्युतः कनककिरीटरश्मयः ।
अशङ्कित युधमधुना विशन्त्वमी क्षमापतीनिति निरराजयन्निव१६

अथ—क्रोध के कारण राजा शारण के प्रतिक्षण सिर कपाते रहने पर अग्नि के समान चमकती हुई उसके सुवर्ण के मुकुट की किरणें इस प्रकार जगमगाने लगीं मानों वे इस अभिप्राय से कि राजा लोग इसी क्षण युद्ध के लिए प्रस्थान करेंगे उनकी (राजाओं की) प्रस्थान कालोचित आरती उतार रही हों।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलकार।

दधौ चलत्पृथुरसनं विवक्षया निदारितं विततबृहद्भुजालतः ।
विदूरथः प्रतिभयमास्यकदरं चलत्फणाधरमिव कोटरं तरुः ॥१७॥

अथ—विदूरथ नामक राजा की विशाल भुजाएं लबी लताओं की भाँति फैल गयीं। उस समय कुछ कहने की इच्छा से जब उन्होंने क्रोध से भयानक अपना मुख खोला तो उनका विशाल जीभ चल रही थी। अत उस मुख को धारण कर वे उस वृक्ष की भाँति दिखाई पड़ने लगे जिसके कोटर में सर्प प्रवेश कर रहा हो

टिप्पणी—पूर्णोपमा।

समाकुले सदसि तथापि विक्रियां मनोऽगमन्न मुरभिदः परोदितैः।
घनाम्बुभिर्बहुलितनिम्नगाजलैर्जलं न हि व्रजति विकारमम्बुधेः १८

अर्थ—शत्रु के दूत की कठोर बातों से पूरी सभा के अत्यन्त क्षुब्ध हो जाने पर भी मुरारि श्रीकृष्ण भगवान् का चित्त तनिक भी क्षुब्ध नहीं हुआ। (क्यों न ऐसा होता) वर्षाकालीन मेघ के जल से नदियों के भर कर उबरा जाने पर भी समुद्र का जल उद्वेलित नहीं होता।

टिप्पणी—दृष्टान्त अलकार।

परानमी यदपवदन्त आत्मनः स्तुवन्ति च स्थितिरसतामसाविति।
निनाय नो विकृतिमविस्मितः स्मितं मुखं शरच्छशधरमुग्धमुद्धवः॥१९

अर्थ—जो दुष्ट लोग होते हैं उनकी आदत ही ऐसी होती है कि वे दूसरों की तो निन्दा करते हैं तथा अपने लोगों की प्रशंसा करते हैं—ऐसा मानकर उद्धव जी शिशुपाल के दूत की कठोर बातों से विस्मित नहीं हुए, और उनका हास्ययुक्त शरत्कालिक चन्द्रमा की भाँति सुन्दर मुख तनिक भी विकृत नहीं हुआ।

निराकृते यदुभिरिति प्रकोपिभिः स्पशे शनैर्गतवति तत्र विद्विषाम्।
मुरद्विषः स्वनितभयानकानकं बलं क्षणादथ समनह्यताजये॥२०॥

अर्थ—इस प्रकार उस सभा में अत्यन्त क्रुद्ध यदुवंशी राजाओं द्वारा खूब धिक्कारे एवं फटकारे जाने पर वह शत्रु (शिशुपाल) का दूत जब धीरे से खिसक गया तब भगवान् श्रीकृष्ण की सेना में तुरन्त ही युद्ध की तैयारी होने लगी और भयानक नगाड़े बजने लगे।

मुहुः प्रतिस्खलितपरायुधा युधि स्थवीयसोऽचलनितम्बनिर्भराः।
अदंशयन्नरहितशौर्यदंशनास्तनूरयं नय इति वृष्णिभूभृतः॥२१॥

अर्थ- अनेक युद्धों में जिन (शरीरों) पर शत्रुओं के हथियार विफल हो चुके थे, जो अत्यन्त विशाल तथा पर्वत के तट-प्रान्त की भाँति कठोर थे और जिन पर कभी न छोड़ी हुई शूरता ही सदा कवच रूप में रहती थी, अपने उन शरीरों पर यदुवंशी राजाओं ने यह मान-

कर कवच धारण किया कि युद्ध की यह परम्परा है (कवच धारण करना ही चाहिए। तात्पर्य यह है कि उन्हे तो वास्तव में कवच पहनने की कोई जरूरत ही नहीं थी।)

टिप्पणी—परिकर अलकार।

दुरुद्वहाः क्षणमपरैस्तदन्तरे रणश्रवादुपचयमाशु बिभ्रति ।
महीभुजा महिमभृता न सममुर्मुदोऽन्तरा वपुषि बहिश्च कञ्चुकाः २२

अर्थ—उन ऐश्वर्यशाली राजाओं ने जब युद्ध होने का (सुखद) सवाद सुना तब वे इतने प्रसन्न हुए कि उनके शरीर प्रसन्नता से फूल उठे। उनकी यह प्रसन्नता उनके विशाल शरीरों के भीतर नहीं समा सकी, और उधर बाहर उनके कवच भी उनके शरीर पर पूरे नहीं आ सके।

टिप्पणी—तुल्ययोगिता अलकार।

सकल्पन द्विरदगण वरूथिनस्तुरङ्गिणो जयनयुजश्च वाजिनः ।
त्वरायुजः स्वयमपि कुर्वतो नृपाः पुनः पुनस्तदधिकृतानतत्वरन् २३

अर्थ—हाथियों पर उनके योग्य भूल और हौदा चढाते हुए, रथों मे घोड जोतते हुए तथा घोड़ो पर जीन रखते हुए, स्वय शीघ्रता करने-वाले अपने-अपने कार्यो पर नियुक्त हाथीवानों आदि को वे राजा लोग बार बार जल्दी करने के लिए कहने लगे।

युधे परैः सह दृढबद्धकक्षया कलक्वणन्मधुपकुलोपगीतया ।
अदीयत द्विपघटया मुरारिभिः करोदरैः स्वयमथ दानमक्षयम् २४

अर्थ—तदनन्तर शत्रुदल के हाथियों के साथ युद्ध करने के लिए दृढता से जिनके मध्यभाग बाँध दिए गये थे (दूसरे पक्ष में, दृढ उद्योग के लिए जिन्होंने कमर कस ली थी) तथा मधुर ध्वनि में गूँजते हुए मधुपों से युक्त (स्तुति करने वाले मागधों से युक्त) हाथियों के समूहों ने जलयुक्त अपने शुण्डा दण्ड के अग्र भागों से (हाथ में जल लेकर) अपरिमित मद जल फेंका (अपरिमित धन का दान किया)।

टिप्पणी—समासोक्ति अलकार।

सुमेखलाः सिततरदन्तचारवः समुल्लसत्तनुपरिधानसंपदः ।
रणैषिणां पुलकभृतोऽधिकंधरं ललम्बिरे सदसिलताः प्रिया इव २५

अर्थ—सुन्दर चन्धनसूत्रों से युक्त (पक्ष मे, सुन्दर करधनी से सुशोभित) अत्यन्त श्वेत हाथी दांतों की मूठों (अत्यन्त श्वेत दांतों) से मनोहर, चमकती हुई सूक्ष्म म्यानों से समृद्ध (चमकते हुए श्वेत वस्त्र से आभूषित) एव रोमाञ्च पैदा करने वाली सुन्दर तलवारों को रण के उत्साही सैनिकों ने प्रियतमा की भाँति अपने अपने कन्धों पर लटका लिया ।

टिप्पणी—श्लेष से सकीर्ण उपमा अलकार।

मनोहरैः प्रकृतिमनोरमाकृतिर्भयप्रदैः समितिषु भीमदर्शनः ।
सदैवतैः सततमथानपायिभिर्निजाङ्गवन्मुरजिदसेव्यतायुधैः ।।२६।।

अर्थ—तदनन्तर स्वभाव से ही परम मनोहर आकृति वाले भगवान् श्रीकृष्ण, जो युद्ध भूमि में परम भयकर दिखाई पड़ते थे, स्वभाव सुन्दर किन्तु युद्ध मे भयकर एव अधिष्ठातृ देवताओं से युक्त अनिवार्य अस्त्रों से इस प्रकार लैस हो गये जैसे व अस्त्र उनके शरीर के अविभाज्य अग ही हों ।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलकार।

अवारितं गतमुभयेषु भूरिशः क्षमाभृतामथ कटकान्तरेष्वपि ।
मुहुर्युधि क्षतसुरशत्रुशोणितप्लुतप्रधि रथमधिरोहति स्म सः ।।२७।

अथ—तदनन्तर भगवान श्रीकृष्ण अपने उस स्यन्दन पर समारुढ हुए जो दोनों ही क्ष्माभृतों अर्थात पर्वतों तथा राजाओं के कटकों (पर्वतों के मध्यवर्ती भागों तथा राजाओं के सैन्य-शिविरों मे) अनेक बार बिना रोक टोक के जा चुका था तथा युद्ध में मारे गये असुरों के रक्त से जिसके चक्रों की हाल (बहुत बार) भीग चुकी थी ।

उपेत्य च स्वनगुरुपक्षमारुतं दिवस्त्विषा कपिशितदूरदिङ्मुखः ।
अकम्पितस्थिरतरयष्टि तत्क्षणं पतत्पतिः पदमधिकेतनं दधौ ।।२८।।

अथ—पक्षियों के राजा गरुड अपने शरीर की कान्ति से दूर-दूर तक दिशाओं को पिंगल वर्ण की बनाते हुए तथा अपने शब्दायमान

पखों से प्रबल वायु के झोंके के समान शब्द करते हुए, स्वर्ग से उतर-कर भगवान् श्रीकृष्ण के स्यन्दन की ध्वजा पर आकर बैठ गये। उनके बैठ जाने से वह अति स्थिर ध्वज की यष्टि पताका की छड़ी कॉप उठी।

गभीरताविजितमृदङ्गनादया स्वनश्रिया हतरिपुहंसहर्षया ।
प्रमोदयन्नथ मुखरान्कलापिनः प्रतिष्ठते नवघनवद्रथः स्म सः २९

अर्थ—(गरुड के बैठ जाने के) अनन्तर वह स्यन्दन नूतन घन के गर्जन के समान गभीर शब्दों से मृदग की ध्वनि को पराजित करने वाली तथा हसों के समान शत्रुओं के हर्ष को समाप्त करने वाली अपनी ध्वनि-सम्पत्ति अर्थात् आवाज से गूजते हुए मयूरों को आन-न्दित करत हुए चल पड़ा।

टिप्पणी—पूर्णोपमा अलकार।

निरन्तरस्थगितदिगन्तरं ततः समुच्चलद्बलमवलोकयञ्जनः ।
विकौतुकः प्रकृतमहाप्लवेऽभवद्विश्रृङ्खलं प्रचलितसिन्धुवारिणि ३०

अर्थ—भगवान् श्रीकृष्ण के स्यन्दन के चल पड़ने के अनन्तर समस्त दिशाओं एव दिगन्तरों को सघनता से आच्छादित करनेवाले उनके सैन्य-समूह को देख कर लोग जगत् को डुबाने के लिए प्रवृत्त एव बिना किसी रुकावट के बढ़ती हुई भीषण रूप से क्षुब्ध (प्रलय-कालिक) समुद्र की जलराशि को देखने के कौतूहल को भूल-सा गये।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि भगवान् श्रीकृष्ण की सेना प्रलयकालिक समुद्र की भाति उमड़ती हुई चल पड़ी। निदर्शना अलकार।

ववृंहिरे गजपतयो महानकाः प्रदध्वनुर्जयतुरगा जिहेषिरे ।
असंभवद्गिरिवरगह्वरैरभूत्तदा रवैर्दलित इव स्व आश्रयः ॥३१॥

अर्थ—बड़े-बड़े गजराज दहाड़ने लगे, बड़े-बड़े नगाड़े बजने लगे। विजयी घोड़े हिनहिनाने लगे। इस प्रकार उस समय (युद्ध भूमि के वे) भीषण शब्द जब पर्वतों की भारी गुफाओं में नहीं समा सके तो मानों इसी कारण से वे अपने आश्रय आकाश-मण्डल को विदीर्ण-सा करने लगे।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलकार।

अनारतं रसति जयाय दुन्दुभौ मधुद्विपः फलदलघुप्रतिस्वनैः ।
विनिष्पतन्मृगपतिभिर्गुहामुखैर्गताः परां मुदमहसन्निवाद्रयः ॥३२॥

अर्थ—मधुसूदन भगवान् श्रीकृष्ण की रणभेरी जब निरंतर बजने लगी तब उसकी भीषण प्रतिध्वनि पर्वतों की गुफाओं मे गूँज उठा। इससे उनके भीतर रहने वाले सिंह बाहर निकल पड़े। उस समय ऐसा मालूम पड़ने लगा मानों भगवान् श्रीकृष्ण की सेना को देखकर हर्ष से उन्मत्त पर्वतों के समूह प्रतिध्वनि-पूर्ण गुफा-रूपी अपने मुखों से हँस रहे हों।

टिप्पणी—सिंहो के श्वेत होने तथा प्रतिध्वनि होने के कारण यह हँसी की विचित्र उत्प्रेक्षा की गयी है।

जडीकृतश्रवणपथे दिवौकसां चमूरवे विशति सुराद्रिकंदराः ।
अनर्थकैरजनि विदग्धकामिनीरतान्तरक्कणितविलासकौशलैः ॥३३॥

अर्थ—सेना का भीषण कोलाहल जब देवताओं के कानों को बधिर करता हुआ सुमेरु पर्वत की गुफाओं मे प्रविष्ट हुआ तो उनकी (देवताओं की) प्रौढ़ रमणियों के सुरत-कालिक मनोहर शब्द करने की निपुणता व्यर्थ हो गयी।

टिप्पणी—क्योंकि उस भीषण शोर के कारण देवताओ के बधिर हो जाने पर देवांगनाओ के शब्द उन्हे तनिक भी नही सुनाई पडे। काव्यलिंग और अतिशयोक्ति का संकर।

अरातिभिर्युधि सहयुध्वनो हताञ्जिघृक्षवः श्रुतरणतूर्यनिःस्वनाः ।
अकुर्वत प्रथमसमागमोचितं चिरोज्झितं सुरगणिकाः प्रसाधनम् ३४

अर्थ—युद्ध मे प्रतिद्वन्द्वियो के साथ भिड़ जाने पर उनके हाथों मारे जाने वाले सुन्दर वीरों को वरण करने की अभिलाषिणी अप्सराओं ने जब इस रणभूमि मे बजने वाली तुरुहियो की ध्वनि सुनी तो वे प्रथम समागम के योग्य वह शृंगार करने लगीं, जो बहुत दिनो से छोड चुकी थीं।

टिप्पणी—काव्यलिंग अलंकार।

प्रचोदिताः परिचितयन्तृकर्मभिर्निषादिभिर्विदितयताङ्कुशक्रियैः ।
गजाः सकृत्करतललोलनालिकाहता मुहुः प्रणदितघण्टमाययुः ३५

अर्थ—गजशास्त्र में पारगत और पैर की चोट मारने तथा अंकुश द्वारा हाथी चलाने में सिद्धहस्त महावतों ने अपने हाथों में अंकुश लेकर जब उनके द्वारा हाथियों को एक बार मार दिया तो वे हाथी अपने घण्टों को बजाते हुए द्रुत गति से चल पड़े।

टिप्पणी—स्वभावोक्ति अलंकार।

सविक्रमक्रमणचलैरितस्ततः प्रकीर्णकैः क्षिपत इव क्षितेः रजः।
व्यरंसिषुर्न खलु जनस्य दृष्टयस्तुरंगमादभिनवभाण्डभारिणः ॥३६॥

अर्थ—विविध प्रकारके पाद-विन्यास करते हुए घोड़े जब चलने लगे तब उनकी चँवर के समान पूँछें मानों पृथ्वी पर अपनी खुरों से उठाई गई धूलों को इधर-उधर छींटती हुई चलने लगीं। इस प्रकार उन नूतन आभूषण धारण करनेवाले घोड़ों पर से (देखने वाले) लोगों की दृष्टियाँ नहीं हट रही थीं।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा और स्वभावोक्ति।

चलाङ्गुलीकिसलयमुद्धतैः करैरनृत्यत स्फुटकृतकर्णतालया।
मदोदकद्रवकटभित्तिसङ्गिभिः कलस्वरं मधुपगणैरगीयत ॥३७॥
असिच्यत प्रशमितपांशुभिर्मही मदाम्बुभिर्धृतनवपूर्णकुम्भया।
अवाद्यत श्रवणसुखं समुन्नमत्पयोधरध्वनिगुरु तूर्यमाननैः ॥३८॥
उदासिरे पवनविधूतवाससस्ततस्ततो गगनलिहश्च केतवः।
यतः पुरः प्रतिरिपु शार्ङ्गिणः स्वयं व्यधीयत द्विपघटयेति मङ्गलम् ३९

अर्थ—मदजल से भींगे हुए हाथियों के कपोल-स्थलों पर भ्रमरों के समूह मधुर स्वर में गान कर रहे थे। हाथी अपने कानों को फटफटा कर ताल दे रहे थे, जिससे उड़ते हुए भ्रमरों को हटाने के लिए महावत चचल किसलय-रूपी अगुलियों से युक्त अपने हाथों को उठा उठा कर नचा रहे थे। हाथियों के सिर इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे मानों उनके दोनों ओर नवीन प्रकार के जलपूर्ण घड़े रखे हों। उन सुन्दर शिर वाले हाथियों ने अपने मदजल से धरती को सींच दिया जिससे धूल बैठ गयी। तदनन्तर उन्होंने अपने मुखों से उन्नत नूतन मेघों की ... के समान गंभीर ... शब्द ...

उन हाथियों के ऊपर बहुत लंबी-लंबी, वायु द्वारा फडफडाती हुई, आकाश को छूने वाली पताकाएँ इधर-उधर उड रही थीं। इस प्रकार हाथियों के समूहों ने स्वय ही शत्रुओं के ऊपर प्रयाण करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण के सम्मुख मगल-विधान सम्पन्न किया।

टिप्पणी—राजाओ की मगल यात्रा के समय ये सब शुभ शकुन समारोह पुरन्ध्रिया रचती है। हाथियो की घटा अर्थात् समूह ने स्वय ही मानो यह सब मगल कार्य सपन्न किये। समासोक्ति अलकार।

न शून्यतामगमदसौ निवेशभूः प्रभूतजां दधति बले चलत्यपि ।
पयस्यभिद्रवति भुवं युगावधौ सरित्पतिर्न हि समुपैति रिक्तताम् ४०

अर्थ—इस प्रकार युद्धार्थ विशाल सेना के प्रयाण करने पर भी वह भगवान श्रीकृष्ण का सैन्य-शिविर खाली नहीं हुआ। प्रलय काल में जब समुद्र का पानी समस्त धरतीतल पर फैल जाता है तब भी क्या समुद्र पानी से रिक्त हो जाता है ? (नहीं)।

टिप्पणी—दृष्टान्त अलकार।

यियासितामथ मधुभिद्विवस्वता जनो जरन्महिषविषाणधूसराम् ।
पुरः पतत्परबलरेणुमालिनीमलक्षयद्दिशमभिधूमितामिव ॥४१॥

अर्थ— तदन्तर भगवान् श्रीकृष्ण रूपी सूर्य सामने वाली जिस दिशा में जाना चाहते थे उसी दिशा म सामने से आती हुई शत्रु सेना से इतनी अधिक धूल उड रही थी कि वह दिशा बूढ़ी भैंस की सींग के समान धूसर वर्ण की हो गई थी और ऐसी दिखाई पड रही थी कि मानो वह दिशा चारों ओर से धूमावृत हो गई हो।

टिप्पणी—रूपक और उत्प्रेक्षा का सकर।

मनस्विनामुदितगुरुप्रतिश्रुतिः श्रुतस्तथा न निजमृदङ्गनिःस्वनः ।
यथा पुरः समरसमुद्यतद्विपद्बलानकध्वनिरुदकर्पयन्मनः ॥४२॥

अर्थ—अपनी-अपनी सना के नगाड़ों की वे ध्वनियाँ, जिनकी प्रति-ध्वनि चारो ओर सुनाई पड़ रही थीं, मनस्वी वीरो के मन में उतनी प्रसन्नता नहीं उत्पन्न कर रही थीं जितनी कि समर के लिए उद्यत उनके शत्रुओ की सेना के नगाडों की ध्वनियाँ कर रही थीं।

टिप्पणी—विरोधाभास, विशेषोक्ति और विषम अलकार का सकर।

यथा यथा पटहरवः समीपतामुपागमत्स हरिवराग्रतःसरः ।
तथा तथा हृषितवपुर्मुदाकुला द्विषां चमूरजनि जनीव चेतसा ।।४३।।

अर्थ—दामाद के समान भगवान् श्रीकृष्ण के सम्मुख बजने वाले नगाड़ों की ध्वनि बारात की ध्वनि के समान ज्यों-ज्यों शत्रुओं की सेना क समीप पहुँचने लगी त्यों-त्यों नवीन वधू के समान वह शत्रुओं की सेना आनन्द से विह्वल होकर रोमाच युक्त अगों वाली होने लगी।

प्रसारिणी सपदि नभस्तले ततः समीरणभ्रमितपरागरूषिता ।
व्यभाव्यत प्रलयजकालिकाकृतिर्विदूरतः प्रतिबलकेतनावलिः।।४४।।

अर्थ—तदन्तर तुरन्त ही आकाश मण्डल मे फैली हुई तथा वायु द्वारा उड़ाई गयी धूल से धूसरित होने के कारण प्रलय क अवसर पर प्रादुर्भूत महाकाली की विकराल आकृति के समान भीषण दिखाई पड़ने वाली शत्रु सेना की पताकाए दूर से ही दिखाई पडने लगीं।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि शत्रुओं की सेना बहुत समीप आ गयी। उपमा अलकार।

क्षणेन च प्रतिमुखतिग्मदीधितिप्रतिप्रभास्फुरदसिदुःखदर्शना ।
भयंकरा भृशमपि दर्शनीयतां ययावसावसुरचमूश्च भूभृताम् ।।४५।।

अर्थ—सम्मुख सूर्य की किरणों के प्रतिबिबित होने से चमकती हुई तलवारों के कारण कठिनाई से दिखाई पडने वाली वह शिशुपाल की भयकर सेना क्षण भर मे भगवान् श्रीकृष्ण की सेना के लिए अत्यन्त दर्शनीय बन गयी । (अर्थात् समीप से दिखाई पड़ने लगी) ।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि भगवान् श्रीकृष्ण के सैनिको ने शिशुपाल की सेना का सामने आती देख लिया। विरोधाभास अलकार।

पयोमुचामभिपततां दिवि द्रुतं विपर्ययः परित इवातपस्य सः ।
समक्रमः समविषमेष्वथ क्षणात्क्ष्मातलं बलजलराशिरानशे ।।४६।।

अर्थ—तदन्तर नीचे और ऊचे स्थानों पर समान रूप से चलने वाला वह सैन्य समुद्र अकाश मे शीघ्रता से दौडते हुए वादलों की छाया के समान शीघ्र ही चारो ओर से धरती-तल पर फैल गया।

टिप्पणी—उपमा अलकार।

ममौ पुरः क्षणमिव पश्यतो महत्तनूदरस्थितभुवनत्रयस्य तत्।
विशालतां दधति नितान्तमायते बलंद्विषां मधुमथनस्यचक्षुषि ४७

अर्थ—जिनके उदर मे तीनों लोक निवास करता है, उन मधुसूदन भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने आगे की ओर क्षण भर निहार कर अपने विशाल एव विस्तृत नेत्रों में शत्रु की सेना को समा लिया।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि भगवान् श्रीकृष्ण ने शिशुपाल की सेना को देख कर क्षण भर में ही यह अनुमान कर लिया कि वह कितनी है और कैसी है? अधिक अलकार।

भृशस्विदः पुलकविकासिमूर्तयो रसाधिके मनसि निविष्टसाहसाः।
मुखे युधः सपदि रतेरिवाभवन्सर्वभ्रमः क्षितिपचमूवधूगणाः ४८

अर्थ—वधू के समान राजाओं की सेना, रमण काल के आरम्भ की भाँति युद्ध का आरम्भ होते ही तुरन्त ही पसीने मे शराबोर हो गयी। उसके सैनिकों के शरीरों मे सघन रोमाच हो आये, जिससे शरीर की शोभा और बढ़ गयी तथा वीर रस (शृगार रस) पूर्ण उनके चित में साहस और शीघ्रता का उदय होने लगा।

टिप्पणी—रति के आरम्भ में रमणियों को भी यही सब अनुभव होते हैं। ऐसी ही उत्कण्ठा रहती है। उपमा अलकार।

ध्वजांशुकैर्ध्रुवमनुकूलमारुतप्रसारितैः प्रसभकृतोपहूतयः।
यदूनभिद्रुततरमुद्यतायुधाः क्रुधा परं रयमरयः प्रपेदिरे ॥४९॥

अर्थ—अनुकूल वायु के कारण फैले हुए अपनी पताका के वस्त्रों से मानों जबर्दस्ती क्रोध करके ललकारपूर्वक बुलाये गये शिशुपाल पक्ष के सैनिकगण यदुवंशी राजाओं की ओर तुरन्त ही अपने हथियारों को खींच कर अत्यन्त वेग के साथ दौड़ पड़े।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलकार।

हरेरपि प्रति परकीयवाहिनीरधिस्यदं प्रवव्रतिरे चमूचराः ।
विलम्बितु न खलु सहा मनस्विनो विधित्सतःकलहमवेक्ष्य विद्विषः

अर्थ—भगवान् श्रीकृष्ण के सैनिक भी शत्रु सेना की ओर और अधिक वेग से दौड पड़े। क्योंकि स्वाभिमानी लोग युद्धाभिलापी शत्रुओं को देखकर देर नहीं करते।

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलकार।

उपाहितैर्वपुषि निवातवर्मभिः स्फुरन्मणिप्रसृतमरीचिसूचिभिः ।
निरन्तरं नरपतयो रणाजिरे रराजिरे शरनिकराचिता इव ॥५१॥

अर्थ—रणाङ्गण मे उपस्थित राजा लोग जो विना छिद्र का कवच पहने हुए थे, वे (उनके) आभूषणो में जडी हुई चमकती मणियों की चारो ओर फैली हुई किरण-रुपी सूइयो से व्याप्त हो रहे थे, अत. उस समय वे राजा लोग ऐसे मालूम पड रहे थे मानों उनके समस्त शरीर बाणों से ऐसे विधे हुए हैं कि उनमे तनिक भी स्थान बाकी नहीं है।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलकार।

अथोच्चकैर्जरठकपोतकंधरातनूरुहप्रकरविपाण्डुरद्युति ।
बलैश्चलच्चरणविधूतमुच्चरद्घनावलीरुदचरत चमारजः ॥५२॥

अर्थ—तदनन्तर ऊची उठी हुई, बूढ़े कबूतर के कधे की रोमावली के समान मटमैले रंग की, चलती हुई सेना के चरणों से प्रेरित पृथ्वी की धूल बादलो की पंक्तियों को भी डाक कर और ऊपर चली (फैल) गयी।

टिप्पणी—अतिशयोक्ति और उपमा का संकर।

विपङ्क्तिभिर्भृशमितरेतरं क्वचित्तुरंगमैरुपरि निरुद्धनिर्गमाः ।
चलाचलैरनुपदमाहताः खुरैर्विनभ्रमुश्चिरमध एव धूलयः ॥५३॥

अर्थ—घोड़ो के प्रत्येक पग म उनकी चचल खुरों से उठी हुई धूल, उनके परस्पर सटे रहने से, ऊपर स वेग के रोक जान क कारण, बहुत देर तक नीचे ही नीचे घूमती रही।

टिप्पणी—स्वाभोक्ति और विरोधाभास का संकर।

गरीयसः प्रचुरमुखस्य रागिणो रजोऽभवद्व्यवहितसत्त्वमुत्कटम् ।
सिसृक्षतः सरसिजजन्मनो जगद्बलस्य तु क्षयमपनेतुमिच्छतः॥५४

अर्थ—समस्त लोक के पितामह होने के कारण पूजनीय, चार मुख वाले तथा रक्तवर्ण ब्रह्मा ने जब संसार रचने की इच्छा की थी तब उनमें सत्त्वगुण का तिरोभाव होकर रजोगुण का प्रादुर्भाव हुआ था किन्तु विशाल एवं प्रभूत प्रवाह वाली तथा रण में अनुरक्त भगवान् श्रीकृष्ण की इस बड़ी सेना ने जब संसार के समस्त जीव-जन्तुओं के नाश की इच्छा की तब उसमें रज की (अर्थात धूल की) अधिकता हुई।

टिप्पणी—श्लेषोत्थापित व्यतिरेक अलंकार।

पुरा शरक्षतिजनितानि संयुगे नयन्ति नः प्रसभमसृञ्जि पङ्कताम् ।
इति ध्रुवं व्यलगिषुरात्तभीतयः खमुच्चकैरनलसखस्य केतवः ॥५५॥

अर्थ—युद्ध होने पर वाणों के आघात से जो रक्त बहेगा वह बलपूर्वक हमें कीचड़ बना देगा—मानों इसी विचार से भयभीत होकर अग्नि के मित्र वायु की पताका के समान धरती की धूल ऊँचे आकाश पर चढ़ गयी।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलंकार।

क्वचिल्लसद्घननिकुरम्बकर्बुरः क्वचिद्धिरण्मयकणपुञ्जपिञ्जरः ।
क्वचिच्छरच्छशधरखण्डपाण्डुरः खुरक्षतक्षितितलरेणुरुद्ययौ॥५६॥

अर्थ—घोड़ों की खुरों की आघात से पृथ्वीतल की धूल भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न प्रकार से उड़ने लगी। कहीं पर वह नूतन मेघ के समान चितकबरी थी, कहीं सुवर्ण के चूर्ण के समान पीले रंग की थी और कहीं पर शरत्पूर्णिमा के चन्द्रखण्ड के समान श्वेत रंग की थी।

टिप्पणी—उपमा अलंकार।

महीयसां महति दिगन्तदन्तिनामनीकजे रजसि मुखानुषङ्गिणि ।
विसारितामजिहत कोकिलावलीमलीमसा जलदमदाम्बुराजयः॥५७

अर्थ—सेना द्वारा उठी हुई सघन धूल जब दिगन्त-रूपी हाथियों के अग्रभाग रूपी मुखों पर लग गयी तब कोकिल की पंक्तियों के समान मलिन वर्ण की पहले ही से विद्यमान मेघ-रूपी मदजल की रेखाएं और भी विस्तृत हो गयीं।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि सेना की धूल उड़ने पर दिशाओं में छाये हुए बादल और भी सघन हो गये। धूल उड़ाने से हाथी बहुत प्रसन्न होते हैं। श्लिष्ट परम्परित साग रूपक अलकार।

शिरोरुहैरलिकुलकोमलैरमी मुधा मृधे मृषत युवान एव मा।
बलोद्धतं धवलितमूर्धजानिति ध्रुवं जनाञ्जरत इवाकरोद्रजः ॥५८॥

अर्थ—भ्रमर पंक्तियों के समान काले बालों को देखकर ये युवक राजा युद्ध में व्यर्थ ही शत्रुओं द्वारा न मार डाले जायँ—मानो इसी विचार से सेना से उठी हुई। धूल ने उनके मनोहर काले बालों को श्वेत बनाकर उन्हें वृद्धों के समान बना दिया।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलकार।

सुसंहतैर्दधदपि धाम नीयते तिरस्कृतिं बहुभिरसंशयं परैः।
यतः क्षितेरवयवसंपदोऽणवस्त्विषां निधेरपि वपुरावरीषत ॥५९॥

अर्थ—यह निश्चित है कि यदि किसी एक काम के लिए मिलकर बहुत से छोटे लोग भी तैयार हो जायँ तो वे तेजस्वी को भी आक्रान्त कर सकते हैं। धरती की क्षुद्र कण ये धूलें तेजोनिधान सूर्य के शरीर (मण्डल) को भी आच्छादित कर लेती हैं।

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलकार।

द्रुतद्रवद्रथचरणक्षतक्षमातलोल्लसद्बहुलरजोवगुण्ठितम्।
युगक्षयक्षणनिरवग्रहे जगत्पयोनिधेर्जल इव मग्नमाबभौ ॥६०॥

अर्थ—शीघ्रता से दौड़ने वाले रथों के चक्कों के आघात के कारण धरती तल से उठी हुई सघन धूलों से ढका हुआ ससार (उस समय) ऐसा दिखाई पड़ने लगा मानों वह प्रलय के समय अप्रतिहत समुद्र के जल में निमग्न हो गया हो।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलकार।

समुल्लसदिनकरवक्त्रकान्तयो रजस्वलाः परिमलिताम्बरश्रियः।
दिगङ्गनाः क्षणमविलोकनक्षमाः शरीरिणां परिहरणीयतां ययुः ६१

अर्थ—धूल से धूसरित सूर्य-रूपी मुख की कान्ति से युक्त, रजस्वला अर्थात् सेना की धूल-रूपी रजोधर्म वाली तथा मलिन आकाश-रूपी वस्त्रों से मलिन शोभा वाली एव अदर्शन के योग्य उन दिशा-रूपी स्त्रियों को क्षण भर के लिए पुरुषों ने छोड़ दिया।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि सूर्य धूल से ढक गये। वे उस समय रजस्वला दिगगना के मुख के समान पीले दिखाई पडने लगे, आकाश मलिन हो गया लोग दिशाओं को देखने में भी असमर्थ हो गये और लोग थोडी देर के लिए उन दिशाओ में जा भी नही सके। रजस्वला स्त्री को भी पुरुष नही देखते तथा उसके साथ समागम नही करते। वह भी मैले वस्त्र पहने रहती है, तथा उसका भी मुख पीला पड जाता है। श्लेष परम्परित रूपक अलकार।

निरीक्षितुं वियति समेत्य कौतुकात्पराक्रमं समरमुखे महीभृताम्।
रजस्ततावनिमिषलोचनोत्पलव्यथाकृति त्रिदशगणैः पलाय्यत ६२

अर्थ—युद्ध के आरम्भ मे देवता लोग राजाओं का पराक्रम देखने के लिए आकाश मे कुतूहलवश एकत्र हुए थे किन्तु जब सेना से उठी हुई धूल उनके निमेषरहित नेत्र-कमलों को कष्ट देने लगी तो वे आकाश छोड़कर हट गये।

टिप्पणी—अतिशयोक्ति अलकार।

विपङ्किणि प्रतिपदमापिबत्यपो हताचिरद्युतिनि समीरलक्ष्मणि।
शनैःशनैरुपचितपङ्कभारिकाः पयोमुचः प्रययुरपेतवृष्टयः॥ ६३॥

अर्थ—सेना से उठी हुई धूल जब बादलों मे प्रविष्ट हो गयी तो उनके भीतर चमकने वाली बिजली की प्रभा क्षीण हो गयी और जब भीतर पहुँच कर वह प्रतिक्षण उनका पानी पीने लगी तो उनका बरसना बद हो गया और उनके भीतर कीचड़ ही कीचड़ हो गया। फिर तो वे इतने भारी हो गये कि बहुत धीरे-धीरे चलने लगे।

टिप्पणी—जो भारी बोझ लिए रहता है वह धीरे धीरे चलता ही है। अतिशयोक्ति अलंकार।

नभोनदीव्यतिकरधौतमूर्तिभिर्वियद्गतैरनधिगतानि लेभिरे।
चलच्चमूतुरगखुराहतोत्पतन्महीरजःस्नपनसुखानि दिग्गजैः ॥६४॥

अर्थ—आकाश-गंगा में स्नान कर निर्मल शरीर धारी आकाशगामी दिग्गजों ने इसके पहिले धूल-स्नान का अनुभव कभी नहीं किया था। उस दिन चलती हुई सेना के तुरगों की खुर की चोट से ऊपर उठी हुई पृथ्वी की धूल से उन्होंने आनन्दपूर्वक धूल-स्नान का अनुभव किया।

टिप्पणी—अतिशयोक्ति अलंकार।

गजव्रजाक्रमणभरावनम्रया रसातलं यदखिलमानशे भुवा।
नभस्तलं बहुलतरेण रेणुना ततोऽगमत्त्रिजगदिवैकतां स्फुटम् ॥६५॥

अर्थ—बड़े-बड़े हाथियों के चलने पर उनके भार से धरती इतनी नीचे दब गयी कि उसने समस्त रसातल को व्याप्त कर लिया और उधर धरती से उठी हुई सघन धूल से आकाश भी व्याप्त हो गया। फिर तो उस समय ऐसा मालूम होता था कि मानो तीनों लोक स्पष्ट रूप में एक में अर्थात् पृथ्वी लोक में ही मिल गये हैं।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलंकार।

समस्थलीकृतविवरेण पूरिता महीभृतां चलरजसा महागुहाः।
रहस्त्रपाविधुरवधूरतार्थिनां नभःसदामुपकरणीयतां ययुः ॥६६॥

अर्थ—सेना से उठी हुई पृथ्वी की धूल ने धरती तल के गड्ढों को पूर्ण कर पर्वतों की बड़ी-बड़ी गुफाओं के मुखों को भी ढक दिया और इस प्रकार उन एकान्त गुफाओं के भीतर छिपी हुई लजीली रमणियों के साथ रमण करने वाले आकाशगामी देवताओं के लिए वह उपकारक बन गयी।

टिप्पणी—पूर्ण अन्धकार होने पर [illegible] कारण रमणियों की लज्जा दूर हो [illegible]। [illegible] और काव्यलिंग का संकर।

गतेमुखच्छदपटसादृशीं दृशः पथस्तिरो दधति घने रजस्यपि ।
मदानिलैरधिमधुचूतगन्धिभिर्द्विपा द्विपानभिययुरेव रंहसा ॥६७॥

अर्थ—मुख को ढकने वाले वस्त्र के समान सघन धूल के कारण जब हाथियों के नेत्र-पथ बिलकुल अवरुद्ध हो गये तब भी उन्होंने अपने प्रतिद्वन्द्वी हाथियों के ऊपर उनकी ओर से आनेवाली मकरन्द युक्त आम की सुगन्ध के समान वायु के आधार पर वेगपूर्वक आक्रमण किया।

टिप्पणी—विरोधाभास अलकार।

मदाम्भसा परिगलितेन सप्तधा गजाङ्गनः शमितरजश्चयानधः ।
उपर्यवस्थितघनपांशुमण्डलानलोकयत्ततपटमण्डपानिव ॥६८॥

अर्थ—अपने सातों स्थानों से मद बहाते हुए सेना के गजराजों ने अपने नीचे की धूल-राशि को तो शान्त कर दिया किन्तु उनके ऊपर का धूल-जाल तो यथापूर्व बना ही रह गया। उस समय वह धूलजाल ऐसा दिखाई पड़ता था कि मानों उनके ऊपर कपडे के तम्बू तान दिये गये हों।

टिप्पणी—हाथी दोनो नेत्र, दोनो कपोल, सूड, मूत्रेन्द्रिय तथा मलेन्द्रिय से मद बहाते है। चक्षुषी च कपोलौच करो मेढ्र गुदस्तया। सप्त स्थानानि मातग-मदस्य स्रुतिहेतव ॥

अन्यूनोन्नतयोऽतिमात्रपृथवः पृथ्वीधरश्रीभृत-
स्तन्वन्तः कनकावलीभिरुपमां सौदामनीदामभिः ।
वर्षन्तः शममानयन्नुपलसच्छृङ्गारलेखायुधाः
काले कालियकायकालवपुषः पांसून्गजाम्भोमुचः ॥६९॥

अर्थ—अत्यन्त ऊँचे तथा विशाल पर्वत की शोभा धारण करने वाले वे गजराज अपने सुवर्णमय आभूषणों से बिजली की कान्ति की समानता का विस्तार कर रहे थे तथा सिन्दूर आदि से जो उनका

शृंगार किया गया था उससे वे इन्द्रधनुष की समता प्राप्त कर रहे थे। उनके शरीर कालिया नाग के समान काले थे। इस प्रकार उन मेघरूपी गजराजों ने अपने मदजल की वृष्टिकर युद्ध-स्थली की धूलराशि को शान्त कर दिया था।

टिप्पणी—रूपक अलंकार। शार्दूलविक्रीडित छन्द।

श्री माघकवि कृत शिशुपालवध महाकाव्य में यदुवंश क्षोभ नामक सत्रहवाँ सर्ग समाप्त ॥१७॥

—:o:—

अठारहवाँ सर्ग

संजग्माते तावपायानपेक्षौ सेनाम्भोधी धीरनादौ रयेण।
पक्षच्छेदात्पूर्वमेकत्र देशे वाञ्छन्तौ वा विन्ध्यसह्यौ निलेतुम्॥१॥

अर्थ– युद्धभूमि से तनिक भी हटने की न इच्छा करने वाले एवं गंभीर कोलाहल से युक्त वे दोनों सेना समुद्र एक ही स्थल पर परस्पर वेग से सम्मिलित होकर इस प्रकार दिखाई पडे मानो पक्ष कटने से पहिले सह्य और विन्ध्य पर्वत मिल रहे हों।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलंकार। शालिनी छन्द। लक्षण—'शालिन्युक्ता म्तौ तगौ गोऽब्धिलोकैः" ॥

पत्तिः पत्तिं वाहमेयाय वाजी नागं नागः स्यन्दनस्थो रथस्थम्।
इत्थं सेना वल्लभस्येव रागादङ्गेनाङ्गं प्रत्यनीकस्य भेजे॥ २ ॥

अर्थ—पैदल पैदल से, घोड़े घोड़ों से, हाथी हाथी से तथा रथी रथी से भिड़ गये। इस प्रकार वह सेना रण-राग से मत्त होकर (रतिराग से मत्त) अपने समस्त अंगों से प्रियतम की भाँति शत्रुओं की सेना के समस्त अंगों के साथ डट गयी थी।

टिप्पणी—उपमा अलंकार।

रथ्याघोषैर्बृंहणैर्वारणानामैक्यं गच्छन्वाजिनां ह्रेषया च।
व्योमव्यापी संततं दुन्दुभीनामव्यक्तोऽभूदीशितेव प्रणादः॥३॥

अर्थ—सर्वदा आकाश को व्याप्त करने वाली (सर्व यापी) रण-भेरी की गभीर ध्वनि रथों की घरघराहट, हाथियों के भीषण चीत्कार तथा घोड़ों की हिनहिनाहट में मिलकर एक होकर परमात्मा की भाँति अव्यक्त हो गयी थी।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि रणभेरी की भीषण ध्वनि सेना के महास्वर में लुप्त हो गयी। श्लेष और उपमा का संकर।

रोषावेशाद्गच्छतां प्रत्यमित्रं दूरोत्क्षिप्तस्थूलबाहुध्वजानाम् ।
दीर्घास्तिर्यग्वैजयन्तीसदृश्यः पादातानां भ्रेजिरे खड्गलेखाः ॥४॥

अर्थ—क्रोध के आवेश में शत्रुओं के ऊपर दौडते हुए पैदल वीरों की दूर तक उठाई गयी ध्वजा के स्तभ के समान स्थूल भुजाओं मे लबी-लबी तलवारे तिरछी पताका की भाति सुशोभित हो रही थीं।

टिप्पणी—उपमा अलकार ।

वध्रोनद्धा धौरितेन प्रयातामश्वीयानामुच्चकैरुच्चलन्तः ।
रौक्मा रेजुः स्थासका मूर्तिभाजो दर्पस्येव व्याप्तदेहस्य शेषाः ॥५॥

अर्थ—सरपट दौडते हुए घोडों के ऊपर उछलते हुए जीन की रस्सियों मे बधे हुए सुवर्ण के घुँघुरू इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे मानों वे घोडों के सम्पूर्ण शरीर में भरे हुए अभिमान के वर्त्तमान अश हैं जो शरीर मे न समा सकने के कारण बाहर निकले आ रहे हैं।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलकार ।

सान्द्रत्वक्कास्तल्पलाश्लिष्टकक्षा प्राङ्गीं शोभामाप्नुवन्तश्चतुर्थीम् ।
कल्पस्यान्ते मारुतेनोपनुन्नाश्चेलुश्चण्ड गण्डशैला इवेभाः ॥६॥

अर्थ—अग की चतुर्थी शोभा धारण करने वाले अर्थात् चालीस वर्ष के वय वाले वे गजराज, जिनके चमडे अत्यन्त सघन अर्थात् मोटे थे और पीठ पर बधे हुए होदे की रस्सी जिनके पेट के चारों ओर लपेटी हुई थी, प्रलयकाल के अवसर पर वायु से प्रेरित बड़ी-बड़ी शिलाओं के समान तीव्र गति से चलने लगे।

टिप्पणी—उपमा अलकार। हाथियो की पूर्ण आयु एक सौ बीस वर्ष की तथा कुल बारह दशाए होती है। इस प्रकार उनकी चतुर्थी दशा चालीस वर्ष के वय में आती है।

संक्रीडन्ती तेजिताश्वस्य रागादुग्म्यारामग्रकायोत्थितस्य ।
रंहोभाजामक्षधूः स्यन्दनानां हाहाकारं प्राजितुः प्रत्यनन्दत् ॥७॥

अर्थ—सघर्ष के कारण बोलती हुई वेग से चलने वाले रथों की धुरियाँ, आगे की ओर झुक कर बैठे हुए सारथियों द्वारा हाथ मे चाबुक लेकर घोड़ों को उत्साहित करने के लिए हा हा शब्द करने पर, मानों उसी का अभिनन्दन अर्थात् अनुमोदन कर रही थीं।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलकार।

कुर्वाणानां सांपरायान्तरायं भूरेणूनां मृत्युना मार्जनाय।
संमार्जन्यो नूनमुद्धूयमाना भान्ति स्मोच्चैः केतनानां पताकाः ॥८॥

अर्थ—ऊँचे उठे हुए ध्वज-स्तम्भो पर लगी हुई पताकाएं इस प्रकार दिखाई पडने लगीं मानो युद्ध में विघ्न उपस्थित करने वाली पृथ्वी की धूल को बटोरने के लिए यमराज द्वारा धीरे-धीरे चलाई जाती हुई झाड़ू हों।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलकार।

उद्यन्नादं धन्विभिर्निष्ठुराणि स्थूलान्युच्चैर्मण्डलत्वं दधन्ति।
आस्फाल्यन्ते कार्मुकाणि स्म कामं हस्त्यारोहैः कुञ्जराणां शिरांसि ९

अर्थ—धनुषधारी लोग दृढ, स्थूल, उन्नत और गोलाकार अपने धनुषों को चढ़ाते हुए टंकार करने लगे तथा हाथीवान भी अपने हाथियों के दृढ, स्थूल, उन्नत और गोलाकार शिरो को उत्साह देने के लिए सहलाने लगे।

टिप्पणी—तुल्ययोगिता अलकार।

घण्टानादो निस्वनो डिण्डिमानां ग्रैवेयाणामारवो बृंहितानि।
आमेतीव प्रत्यवोचन्त् गजानामुत्साहार्थं वाचमाधोरणस्य ॥१०॥

अर्थ—(हाथियों के दोनों ओर लटकते हुए) घण्टों का तीव्र शब्द होने लगा, उन पर रखे गये नगाड़ों की आवाज आने लगी, साथ ही उनके गले मे बधी हुई जजीरें भी झनझनाने लगीं। ये सब शब्द उस समय ऐसे मालूम पडने लगे मानों हाथियों का उत्साह बढाने के लिए कहे गये हाथीवानों के शब्दों का 'हाँ हाँ', ऐसा कहकर प्रत्युत्तर दे रहे हों।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलकार।

यातैश्चातुर्विध्यमस्त्रादिभेदादव्यासङ्गैः सौष्ठवाल्लाघवाच्च।
शिक्षाशक्तिं प्राहरन्दर्शयन्तो मुक्तामुक्तैरायुधैरायुधीयाः ॥११॥

अर्थ—हथियार धारी सैनिक अपने अस्त्र चलाने के अभ्यास की निपुणता दिखाते हुए, विफल न होने वाले चारों प्रकार के अस्त्रों से, छोड़कर तथा बिना छोड़े हुए अत्यन्त सुन्दरता तथा लाघव के साथ, एक दूसरे पर प्रहार करने लगे।

टिप्पणी—अस्त्रों के चार भेद होते हैं—अस्त्र, अपास्त्र, व्यस्त्र और महास्त्र। अस्त्र—धनुष आदि। अपास्त्र—फांस आदि। व्यस्त्र—परिघ, फावडा आदि और महास्त्र—आग्नेय अस्त्र आदि। अनुप्रास अलंकार।

रोषावेशादाभिमुख्येन कौचित्पाणिग्राहं रंहसैवोपयातौ।
हित्वा हेतीर्मल्लवन्मुष्टिघातं घ्नन्तौ बाहूबाहवि व्यासृजेताम् ॥१२॥

अर्थ—कोई दो योद्धा क्रोध के आवेश में वेग के साथ एक दूसरे के सम्मुख पहुँच कर हथियार छोड़ कर एक दूसरे का हाथ पकड़ कर मल्लों की भाँति मुक्केबाजी करते हुए बाहुयुद्ध करने लगे।

टिप्पणी—उपमा अलंकार।

शुद्धाः सङ्गं न क्वचित्प्राप्तवन्तो दूरान्मुक्ताः शीघ्रतां दर्शयन्तः।
अन्तःसैन्यं विद्विषामाविशन्तो युक्तं चक्रुः सायका वाजितायाः ॥१३॥

अर्थ—शुद्ध अर्थात् विष में न बुझाये हुए (शुद्ध जाति के), कहीं भी प्रतिहत न होने वाले अर्थात् अनिवार्य, दूर से ही छोड़े गये, शीघ्रता दिखाने वाले तथा शत्रुओं की सेना के भीतर प्रवेश करने वाले बाण अपने पक्षधारी होने के (अश्व होने के) योग्य ही कार्य करने लगे।

टिप्पणी—अश्व तथा बाण के समस्त विशेषण एक ही हैं। पदार्थहेतुक काव्यलिंग अलंकार।

आक्रम्याजेरग्रिमस्कन्धमुच्चैरास्थायाथो वीतशङ्कं शिरश्च।
हेलालोला वर्त्म गत्वातिमर्त्यं द्यामारोहन्मानभाजः सुखेन ॥१४॥

अर्थ—स्वाभिमानी योद्धाओं ने समरभूमि के अग्रभाग में प्रवेश करके निर्भय चित्त से शिर को ऊँचा उठाकर लीलापूर्वक अमानवीय युद्ध किया और सुखपूर्वक स्वर्ग का आरोहण किया।

टिप्पणी—जैसे कोई मनुष्य कंधे और सिर के बल से ऊपर चढकर किसी दुरारोह पर्वत तट अथवा वृक्ष के ऊपर किसी प्रकार से चढ़ ही जाता है। समासोक्ति अलकार।

रोदोरन्ध्रं व्यश्नुवानानि लोलैरङ्गस्यान्तर्मापितैः स्थावराणि।
केचिद्गुर्वीमेत्य संयन्निपद्यां क्रीणन्ति स्म प्राणमूल्यैर्यशांसि ॥१५॥

अर्थ—कुछ वीरों ने अत्यन्त गभीर इस युद्ध-रूपी बाजार में पहुँच कर देह के भीतर भ्रमाने वाले अपने चचल प्राण रूपी मूल्यों को देकर आकाश से पृथ्वी तक फैले हुए स्थिर यश को खरीद लिया।

टिप्पणी—परिवृत्ति अलकार।

वीर्योत्साहश्लाघि कृत्वावदानं सङ्ग्रामाग्रे मानिनां लज्जितानाम्।
अज्ञातानां शत्रुभिर्युक्तमुच्चैः श्रीमन्नाम श्रावयन्ति स्म नग्नाः १६

अर्थ—कुछ वीरों ने सग्राम भूमि में आगे बढ़कर वीरता तथा उत्साह भरे अनेक महान् कार्य किए किन्तु स्वाभिमान के कारण वे अपना नाम बताने में लज्जित हो रहे थे। अत· शत्रुओं से अज्ञात उन वीरों के यशस्वी नामों को बन्दी लोग उच्च स्वर में सुनाकर उचित कार्य कर रहे थे।

टिप्पणी—काव्यलिंग अलकार।

आधावन्तः संमुखं धारितानामन्यैरन्ये तीक्ष्णकौक्षेयकाणाम्।
वक्षःपीठैरात्सरोरात्मनैव क्रोधेनान्धाः प्राविशन्पुष्कराणि ॥१७॥

अर्थ—क्रोध से अन्धे होकर कुछ वीर इस प्रकार सामने की ओर दौड़ने लगे कि सामने शत्रु पक्षीय सैनिकों ने अपनी जो तेज तलवारें उसी ओर निकाल रक्खी थीं वे उनके वक्षस्थलों में मुठिया समेत अपने आप ही घुस गयीं।

टिप्पणी—काव्यलिंग अलकार।

मिश्रीभूते तत्र सैन्यद्वयेऽपि प्रायेणायं व्यक्तमासीद्विशेषः।
आत्मीयास्ते ये पराञ्चः पुरस्तादभ्यावर्ती संमुखो यः परोऽसौ १८

अर्थ—जब दोनों सेनायें परस्पर मिल गईं तब अपना और पराया पक्ष जानना बड़ा कठिन हो गया। उस समय सैनिकों ने, जो सामने की ओर पीठ किये थे, (भले ही वे शत्रु पक्षीय हों) उन्हें अपने पक्ष का समझ कर अवध्य तथा जो सामने की ओर मुख किए थे (भले ही वे अपने पक्ष के रहे हों) उन्हें शत्रु पक्ष का समझ कर मारने योग्य समझा।

सद्वंशत्वादङ्गसंसङ्गिनीत्वं नीत्वा कामं गौरवेणावबद्धा।
नीता हस्तं वञ्चयित्वा परेण द्रोहं चक्रे कस्यचित्स्वा कृपाणी १९

अर्थ—अच्छी खान से उत्पन्न होने के कारण (पक्ष में, अच्छे वंश से उत्पन्न होने के कारण) शरीर के साथ सदा सम्बन्ध रखने वाली तथा गौरवपूर्वक दृढता से बंधी हुई (सहधर्मिणी स्वीकार कर गौरवपूर्वक साथ रहने वाली) किसी वीर की अपनी ही तलवार, शत्रु द्वारा धोका देकर हस्तगत कर लिए जाने पर द्रोह कर बैठी।

टिप्पणी—अपनी कुलीन अर्धांगिनी भी कभी जार के हाथ म पड़कर व्यभिचार कर ही बैठती है। समासोक्ति अलकार।

नीते भेदं धौतधाराभिघातादम्भोदाभे शात्रवेणापरस्य।
सासृग्राजिस्तीक्ष्णमार्गस्य मार्गो विद्युद्दीप्तः कङ्कटे लक्ष्यते स्म २०

अर्थ—शत्रु की तीक्ष्ण धार वाली तलवार से किसी वीर के बादल की भांति काले कवच के काट दिए जाने पर, उस पर से जो खून की धारा निकली उसके साथ उस तीक्ष्णधार तलवार का वह प्रहार बिजली की भाँति चमकता हुआ दिखाई पड़ा।

टिप्पणी—उपमा अलकार।

आमूलान्तात्सायकेनायतेन स्यूते बाहौ मण्डुकश्लिष्टमुष्टेः।
प्राप्यासह्यां वेदनामस्तधैर्यादप्यभ्रश्यच्चर्म नान्यस्य पाणेः ॥२१॥

अर्थ—किसी वीर की एक बाहु शत्रु के विशाल बाण के लगने से यद्यपि कांख पर्यन्त कट गयी थी और उसमें असह्य वेदना हो रही थी, जिससे उसका धैर्य छूट रहा था किन्तु तब भी मुट्ठी में पकड़ी हुई ढाल को उसने नीचे नहीं गिराया।

टिप्पणी—काव्यलिंग अलकार।

मित्त्वा घोणामायसेनाधिवक्षः स्थूरीपृष्ठो गार्ध्रपक्षेण विद्धः ।
शिक्षाहेतोर्गाढरज्ज्वेव बद्धो हर्तुं वक्त्रं नाशकद्दुर्मुखोऽपि ॥२२॥

अर्थ—लोहे के बने हुए गृद्धपक्ष नामक बाण से नासिका में घायल होकर वक्षस्थल में विद्ध एक नया जवान घोड़ा इस प्रकार दिखाई पड़ने लगा जैसे सिखाने के लिए मोटी दृढ़ रस्सियों से बधकर वह वहाँ पर खड़ा हुआ हो और दुमुख होने पर भी (अशिक्षित होने पर भी) अपने मुख को इधर-उधर करने मे असमर्थ हो गया हो।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि नासिका और वक्षस्थल के विद्ध होने से वह अशिक्षित जवान घोडा जहा का तहा ढेर हो गया, अपना मुख भी इधर-उधर नही कर सका। जो घोडे शिक्षित होते हैं, वे विना बाधे भी, बधे हुए की तरह खडे रहते हैं और जो अशिक्षित होते हैं वे बधे रहने पर भी एक जगह खडे नही रहते। विरोधाभास अलकार।

कुन्तेनोच्चैः सादिना हन्तुमिष्टान्नाजानेयो दन्तिनस्त्रस्यति स्म ।
कर्मोदारं कीर्तये कर्तुकामान्किंवा जात्याः स्वामिनो ह्रेपयन्ति २३

अर्थ—एक अच्छी जाति का घोडा अपने सवार द्वारा ऊँचा भाला उठा कर, पास आने वाले हाथी को मारने की इच्छा करने पर, उस हाथी से तनिक भी नहीं डरा। क्यों न ऐसा होता, क्या कुलीन लोग यश के लिए महान् पुरुषार्थ का कार्य करने वाले स्वामियो को कभी लज्जित करते है? (अर्थात् कभी नहीं।)

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलकार।

जेतुं जैत्राः शेकिरे नारिसैन्यैः पश्यन्तोऽधो लोकमस्तेषुजालाः ।
नागारूढाः पार्वतानि श्रयन्तो दुर्गाणीव त्रासहीनास्त्रसानि ॥२४॥

अर्थ—हाथियों के सवार अपने-अपने हाथियों पर बैठे हुए इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे जैसे चलते फिरते पर्वत के दुर्ग पर बैठे सैनिक शोभा देते हों। वे सभी लोगों को नीचा देख रहे थे और निर्भय होकर शत्रुओं पर विपुल बाणों की वर्षा कर रहे थे। उन विजयी हाथी सवारों को शत्रुओं की सेना जीतने में असमथ थी।

टिप्पणी—राजाओं के लिए पर्वत का किला बहुत महत्वपूर्ण बतलाया गया है।

विष्वद्रीचीर्विक्षिपन्सैन्यवीचीराजावन्तः क्वापि दूरं प्रयातम्।
बभ्रामैको बन्धुमिष्टं दिदृक्षुः सिन्धौ वाग्रो मण्डलं गोर्वराहः २५

अर्थ—संसार-व्यापी समुद्र की लहरों के समान सेना की पंक्तियों को दूर हटाता हुआ कोई वीर उस रणभूमि में कहीं दूर चले गये अपने बन्धु को ढूढ़ने के लिए जब घूमने लगा तो पूर्वकाल में समुद्र में डूबे हुए पृथ्वी मण्डल को ढूढ़ने के लिए संसार-व्यापी लहरों को हटाते हुए आदि वराह की भाँति वह सुशोभित हुआ।

टिप्पणी—उपमा अलंकार।

यावच्चक्रे नाञ्जनं बोधनाय व्युत्थानज्ञो हस्तिचारी मदस्य।
सेनास्थानादन्तिनामात्मनैव स्थूलास्तावत्प्रावहन्दानकुल्याः ॥२६॥

अर्थ—हाथियों को उठाने में निपुण महावतों ने अभी उनके मद का उद्दीपन करने वाली सामग्रियाँ नहीं जुटायी थीं कि इतने ही में सेना का कोलाहल सुनते ही हाथियों के मद की विशाल नदियाँ बह निकलीं।

टिप्पणी—अतिशयोक्ति अलंकार।

क्रुध्यन् गन्धादन्यनागाय दूरादारोढारं धूतमूर्धावमत्य।
घोरारावध्वानिताशेषदिक्के विप्के नागः पर्यणंसीत्स्व एव ॥२७॥

अर्थ—दूर से ही मद-जल की सुगंध को सूंघने के कारण अपने प्रतिद्वन्द्वी गज के ऊपर क्रुद्ध होकर एक गजराज जब अपना शिर कपाते हुए दौड़ा तो उसने अपने महावत की कोई परवा न की और अपने दारुण स्वर से सारी दिशाओं को प्रतिध्वनित करने वाले अपने समीपस्थ तीस वर्षीय जवान पुत्र पर ही उसने तिरछे दाँतों का प्रहार कर दिया।

प्रत्यासन्ने दन्तिनि प्रातिपक्षे यन्त्रा नागः प्रास्तनकूनच्छदोऽपि।
क्रोधान्धान्तः क्रूरनिर्दारिताक्षः प्रेक्षाचक्रे नैव किंचिन्मदान्धः २८

अर्थ--शत्रुदल के हाथी के समीप आने पर किसी महावत ने यद्यपि अपने गजराज के मुख के ऊपर फैले हुए वस्त्र को हटा दिया था किन्तु क्रोध से अन्धे उस मदोन्मत्त गजराज ने अपनी आखों को फैला कर देखने पर भी कुछ भी नहीं देखा।

टिप्पणी—विरोधाभास अलङ्कार ।

तूर्णं यावन्नापनिन्ये निषादी वासश्चक्षुर्वारणं वारणस्य ।
तावत्पूर्णैरन्यनागाधिरूढः कादम्बानामेकपातैरसीव्यत् ।।२६।।

अर्थ--एक महावत अपने हाथी के मुख-वस्त्र को शीघ्रता के साथ हटा भी नहीं पाया था कि तब तक शत्रुपक्षीय हाथी के महावत ने उस पर अनेक बाणों की वृष्टि करके उसकी आँखों के साथ उसके वस्त्र को सी दिया ।

टिप्पणी—अतिशयोक्ति अलङ्कार ।

आरयद्दृष्टेराच्छदं च प्रमत्तो यन्ता यातुः प्रत्यरीभं द्विपस्य ।
मग्नस्योच्चैर्बर्हभारेण शङ्खोरावव्राते वीक्षणे च क्षणेन ।।३०।।

अर्थ--एक महावत कुछ असावधान था। उसने शत्रुपक्ष की ओर जाते हुए अपने हाथी के नेत्रावरण को ज्यों ही उठाकर दूर किया त्योंही शत्रुपक्ष के अनेक बाण उसकी आँखों में आकर लग गये, जिससे उनके पीछे लगे हुए मयूर-परों से हाथी की दोनों आँखे क्षण भर में ही एक दम ढक गयीं।

टिप्पणी—अतिशयोक्ति ।

यत्नाद्रक्षन्सुस्थितत्वादनाशं निश्चित्यान्यश्चेतसा भावितेन ।
अन्त्यावस्थाकालयोग्योपयोगं दध्रेऽभीष्टं नागमापद्धनं वा ।।३१।।

अर्थ--एक महावत अच्छी तरह सोच-विचार कर अपने हाथी को ऐसे स्थान पर ले गया जहाँ उसके मारे जाने का अधिक भय नहीं था। वहाँ उसे ले जाकर वह उसी प्रकार अपने उस प्यारे हाथी की रक्षा करने लगा जैसे विनाश के समय में कोई अपने अभीष्ट धन की रक्षा करता है।

टिप्पणी—उपमा अलकार।

अन्योन्येषां पुष्करैरामृशन्तो दानोद्भेदानुच्चकैर्भुग्नवालाः।
उन्मूर्धानः संनिपत्यापरान्तैः प्रायुध्यन्त स्पष्टदन्तध्वनीभाः ॥३२॥

अर्थ—हाथियों का समूह दूसरे के मदजल के उद्गम स्थलों को अपनी सूंडों से सूँघ-सूँघ कर, अपनी पूँछों को ऊंची तथा टेढी करके, अपने मस्तकों को खूब ऊँचा उठाकर तथा अपने दाँतों से खूब कटाकट करते हुए अपने प्रतिद्वन्द्वियों के साथ भीषण युद्ध करने लगा।

टिप्पणी—स्वभावोक्ति अलकार।

द्राघीयांसः संहताः स्थेमभाजश्चारूदग्रास्तीक्ष्णतामत्यजन्तः।
दन्ता दन्तैराहताः सामजानां भङ्गं जग्मुर्न स्वयं सामजाताः ॥३३॥

अर्थ—हाथियों के लंबे-लंबे, सुसंघटित, दृढ, सुन्दर, उन्नत तथा तीक्ष्ण दाँत प्रतिद्वन्द्वी हाथियों के दाँतों से आहत होकर टूट गये, किन्तु फिर भी वे पराजित नहीं हुए, अर्थात् दांत टूट जाने पर भी वे परस्पर भिडे ही रह गये।

मातङ्गानां दन्तसंघट्टजन्मा हेमच्छेदच्छायचञ्चच्छिखाग्रः।
लग्नोऽप्यग्निश्चामरेषु प्रकामं माञ्जिष्ठेषु व्यज्यते न स्म सैन्यैः ।३४।

अर्थ—हाथियों के दांतों के संघर्षण से उत्पन्न, सुवर्ण की धूल के समान लाल रंग की चंचल ज्वालाओं से युक्त अग्नि, मंजीठ के रंग के समान लाल चामरों में लग जाने पर भी सैनिकों द्वारा नहीं जानी जा सकी। अर्थात् सैनिकों के अनजाने ही उनके चामरों में आग लग गयी।

टिप्पणी—काव्यलिंग और सामान्य का संकर।

ओपामासे मत्सरोत्पातवाताश्लिष्यद्दन्तक्ष्मारुहां घर्षणोत्थैः।
यौगान्तैर्वा वह्निभिर्वारणानामुच्चैर्मूर्धव्योम्नि नक्षत्रमाला ॥३५॥

अर्थ—वैर रूपी उत्पात वायु के वेग से प्रेरित, हाथियों के दाँतों रूपी वृक्षों में होने वाले संघर्षण से उत्पन्न अग्नि, प्रलय काल की अग्नि के समान, हाथियों के ऊंचे ऊंचे मस्तक रूपी आकाश में पहुँचकर मुक्तामालाओं (नक्षत्र गणों) को जलाने लगी।

टिप्पणी—रूपक और श्लेष से सकीर्ण उपमा अलंकार।

सान्द्राम्भोदश्यामले सामजानां वृन्दे नीताः शोणितैः शोणिमानम्।
दन्ताः शोभामापुरम्भोनिधीनां कन्दोद्भेदा वैद्रुमा वारिणीव ॥३६॥

अर्थ—अत्यन्त काले बादलों के समान हाथियों के उस समूह में उनके रक्त से लाल दाँत, समुद्र के जल में विद्रुम के अंकुरों की छोटी चट्टानों की शोभा धारण कर रहे थे।

टिप्पणी—उपमा अलंकार।

आकम्प्राग्रैः केतुभिः संनिपातं तारोदीर्णग्रैवनादं व्रजन्तः।
मग्नानङ्गे गाढमन्यद्विपानां दन्तान्दुःखादुत्खनन्ति स्म नागाः ३७

अर्थ—अत्यन्त काँपते हुए ध्वजस्तम्भों के संघर्ष से आकुल गजराजों ने, गले में बँधी हुई जंजीर आदि को उच्च स्वर से बजाते हुए अपने प्रतिद्वन्द्वी गजराजों के शरीर में गहराई तक धँसाये गये अपने दाँतों को बड़े कष्ट से उखाड़ा।

टिप्पणी—काव्यलिंग अलंकार।

उत्क्षिप्योच्चैः प्रस्फुरन्तं रदाभ्यामीषादन्तः कुञ्जरं शात्रवीयम्।
शृङ्गप्रोतप्रावृषेण्याम्बुदस्य स्पष्टं प्रापत्साम्यमुर्वीधरस्य ॥३८॥

अर्थ—हल की हरिस अर्थात् डंडे के समान पतले और लंबे दाँतों वाले एक गजराज ने छटपटाते हुए अपने प्रतिद्वन्द्वी हाथी को अपने दाँतों से ऊपर उठाकर सचमुच ही उस पर्वत की शोभा धारण की जिसके शिखर पर वर्षाकालीन बादल छाये हुए हों।

भग्नेऽपीभे स्वे परावर्त्य देहं योद्धा सार्धं व्रीडया मुञ्चतेषून्।
साकं यन्तुः संमदेनानुबन्धी द्विपोऽभीक्ष्णं वारणः प्रत्यरोधि ॥३९॥

अर्थ—अपने हाथी के पराङ्मुख हो जाने पर भी अपने अंगों को पीछे फिराकर लज्जा के साथ बाणों को छोड़ते हुए उस पर सवार योद्धा ने प्रतिद्वन्द्वी हाथी को उसके सवार योद्धा के विजय के आनन्द के साथ ही आगे बढ़ने से रोक दिया।

टिप्पणी—अतिशयोक्ति और सहोक्ति का संकर।

व्याप्तं लोकैर्दुःखलभ्यापसारं संरम्भित्वादेत्य धीरो महीयः।
सेनामध्यं गाहते वारणः स्म ब्रह्मेव प्रागादिदेवोदरान्तः ॥४०॥

अर्थ—कोई हाथी अत्यन्त क्षुब्ध और निर्भीक होकर विपुल लोगों से व्याप्त (अनेक लोकों से युक्त) होने के कारण कष्टपूर्वक पार पाने योग्य शत्रु-सेना के बीच मे इस प्रकार प्रविष्ट हो गया जैसे पूर्व काल में (सृष्टि के देखने की इच्छा से) ब्रह्मा (अथवा मार्कण्डेय ऋषि ने) आदि देव भगवान् विष्णु के (उक्त सभी विशेषणों से युक्त) उदर में प्रवेश किया था।

टिप्पणी—उपमा अलंकार।

भृङ्गश्रेणीश्यामभासां समूहैर्नाराचानां विद्धनीरन्ध्रदेहः।
निर्भीकत्वादाहवेनाहतेच्छो हृष्यन्हस्ती हृष्टरोमेव रेजे ॥४१॥

अर्थ—भ्रमर पंक्तियों के समान काले रंग के लोहे के बाणों से एक हाथी इस प्रकार बिंध गया था कि उसके शरीर में तनिक भी स्थान छूटा नहीं था। फिर भी निर्भीक होने के कारण युद्ध मे उसका उत्साह भंग नहीं हुआ और वह उस समय इस प्रकार दिखाई पड़ रहा था मानों परम प्रसन्नता के कारण उसे रोमांच हो आया है।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलंकार।

आताम्राभा रोषभाजः कटान्तादाशूत्खाते मार्गणे धूर्गतेन।
निश्च्योतन्ती नागराजस्य जज्ञे दानस्याहोलोहितस्येव धारा ॥४२॥

अर्थ—किसी अत्यन्त क्रुद्ध गजराज के कपोलस्थल से पहले ही मे चूती हुई मद जल की जो धारा थी वह क्रोध के कारण लाल रंग की हो गई थी अथवा महावत द्वारा लगे हुए बाण के शीघ्रतापूर्वक खींच लेने पर रक्त की ही धारा थी—इसका कुछ भी निश्चय नहीं हो सका।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि लोग समझ नहीं सके कि वह धारा किस चीज का थी मदजल की थी अथवा रक्त की थी। संशय अलंकार।

क्रामन्तौ दन्तिनः साहसिक्यादीपादण्डौ मृत्युशय्यातलस्य ।
सैन्यैरन्यस्तत्क्षणादाशङ्के स्वर्गस्यौच्चैरर्धमार्गाधिरूढः ॥४३॥

अर्थ—यमराज की शैय्या (पलँग) की पाटी के समान लबे हाथी के दाँतों को आक्रान्त करते समय कोई वीर साहसी होने के कारण उस समय स्वर्ग के आधे मार्ग पर आरुढ के समान सैनिकों द्वारा सशङ्क नेत्रों से देखा गया।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलकार।

कुर्वञ्ज्योत्स्नानिघ्नां तुल्यरूपस्तारस्ताराजालसारामिव द्याम् ।
खड्गाघातैर्दारितादन्तिकुम्भादाभाति स्म प्रोच्छलन्मौक्तिकौघः॥४४

अर्थ—तलवार के आघात से कटे हुए हाथियों के कुम्भ-स्थल से उछलते हुए चन्द्रिका के बिन्दु के समान शुभ्र श्वेत वर्ण की मुक्ताओं के समूह आकाश को मानों नक्षत्रों से सुशोभित करते हुए दिखाई पड रहे थे।

दूरोत्क्षिप्तक्षिप्रचक्रेण कृत्तं मत्तो हस्तं हस्तिराजः स्वमेव ।
भीमं भूमौ लोलमानं सरोषः पादेनासृक्पङ्कपेषं पिपेष ॥४५॥

अर्थ—एक मतवाले गजराज ने, दूर से ही तीक्ष्ण चक्र द्वारा फेंक कर काटे गये और धरती पर गिरकर छटपटाते हुए अपने ही भयकर शुण्ड को क्रुद्ध होकर अपने ही पैरों से रक्त मिश्रित कीचड के साथ पीस डाला।

टिप्पणी—क्रोधी और मतवाले को अपने-पराये का विवेक नहीं रहता। अतिशयोक्ति अलकार।

आपस्कारात्लूनगात्रस्य भूमि निःसाधारं गच्छतोऽवाङ्मुखस्य ।
लब्धायामं दन्तयोर्युग्ममेव स्वं नागस्य प्रापदुत्तम्भनत्वम् ॥४६॥

अर्थ—मूल भाग से ही जाघों के कट जाने के कारण कोई गजराज जब निराधार होकर पृथ्वी पर गिर रहा था तो उसके अपने विशाल दोनों दाँत ही अवलम्बन हो गये।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि जाघों के समूल कट जाने पर भी वह गजराज धराशायी नहीं हुआ। स्वभावोक्ति और अतिशयोक्ति की संसृष्टि।

लब्धस्पर्शं भूम्यधादव्यथेन स्थित्वा किंचिद्दन्तयोरन्तराले ।
ऊर्ध्वाधीमिच्छिन्नदन्तप्रवेष्टं जित्वोत्तस्थे नागमन्येन सद्यः ॥४७॥

अर्थ—कोई योद्धा जो, क्रुद्ध गजराज के दांतों के भूमि पर अड जाने के कारण उसका लक्ष्य नहीं बन सका था, [illegible] वद्ध न होकर उसके दांतों के बीच म ही कुछ देर तक खडा रह गया और वहीं से वह ऊपर की ओर फैलाई हुई अपनी तलवार से उस गजराज के दांतों के आवरण (अर्थात् सूड़ के नीचे के चमडा) को काटकर गजराज को पराजित कर शीघ्र ही उठकर खडा हो गया।

टिप्पणी—अतिशयोक्ति अलकार।

हस्तेनाग्रे वीतभीतिं गृहीत्वा कश्चिद्व्यालः क्षिप्तवानूर्ध्वमुच्चैः ।
आसीनानां व्योम्नि तस्यैव हेतोःस्वर्गस्त्रीणामर्पयामास नूनम् ॥४८॥

अर्थ—एक दुष्ट गजराज ने (अपने सम्मुख स्थित) किसी निर्भय वीर को अपने सूड से उठाकर ऊपर की ओर इस प्रकार फेंक दिया मानों उसे उसने आकाश में विचरण करने वाली स्वर्ग की अप्सराओ को समर्पित कर दिया।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलकार।

कश्चिद्दूरादायतेन द्रढीयःप्रासप्रोतस्रोतसान्तःक्षतेन ।
हस्ताग्रेण प्राप्तमप्यग्रतोऽभूदनैश्वर्यं वारणस्य ग्रहीतुम् ॥४९॥

अर्थ—एक गजराज अपनी लबी सूड से, जिसम से किसी वीर के सुन्द भाले के आघात के कारण लबे-गहरे घाव के भीतर से रक्त निकल रहा था, अपने आगे आए हुए भी वीर को नहीं पकड सका।

टिप्पणी—अतिशयोक्ति अलकार।

तन्वाः पुंसो नन्दगोपात्मजायाः कंसेनेव स्फोटितायाः गजेन ।
दिव्या मूर्तिर्व्योमगैरुत्पतन्ती वीक्षामासे विस्मितैश्चण्डिकेव ॥५०॥

अर्थ—किसी गजराज द्वारा विदारित एक वीर के शरीर से निकली हुई दिव्य मूर्ति को विस्मय-विमुग्ध आकाशचारियों ने इस प्रकार देखा

जैसे कंस द्वारा नन्दगोप की कन्या का शरीर विदीर्ण करने पर उससे आविर्भूत कालिका की दिव्य मूर्ति को देखा था।

टिप्पणी—यह पौराणिक कथा अतिप्रसिद्ध है। पापात्मा कंस से एक बार नारद मुनि ने यह बताया था कि तुम्हारी मृत्यु वसुदेव के पुत्र से होगी। फिर तो उसने वसुदेव दम्पति को कारा में बन्द कर उनकी सभी सन्तानों का जन्म लेते ही क्रूरतापूर्वक वध करना शुरू कर दिया। भगवान् की प्रेरणा से कारावासी वसुदेव ने नन्द गोप की सद्योजात कन्या से अपने सद्योजात पुत्र को बदल लिया और उस को अपनी सन्तान बतलाया। हर बार की तरह इस बार कंस ने ज्यों ही बालिका को पत्थर की चट्टानों पर पटक कर कुछ दिनों के लिए सुख की नींद सोने का विचार किया कि वह दिव्यमूर्ति धारण कर आकाश में विलीन हो गयी और पापात्मा कंस को यह बताती गयी कि तेरा शत्रु जगत में जन्म ले चुका है। उपमा अलंकार।

आक्रम्यैकामग्रपादेन जङ्घामन्यामुच्चैराददानः करेण।
सास्थिस्वानं दारुवद्दारुणात्मा कञ्चिन्मध्यात्पाटयामास दन्ती ॥५१

अर्थ—एक परम क्रुद्ध गजराज ने एक वीर की एक जाँघ को अपने अगले पैर से दबाकर तथा दूसरी जाँघ को ऊपर उठाये हुए अपने सूँड़ से खींचते हुए, उसकी चटचट कर टूटती हुई हड्डियों के स्वर के साथ लकड़ी की भाँति बीच से चीर डाला।

टिप्पणी—उपमा अलंकार।

शोचित्वाग्रे भृत्ययोर्मृत्युभाजोरर्थः प्रेम्णा नो तथा वल्लभस्य।
पूर्वं कृत्वा नेतरस्य प्रसादं पश्चात्तापादाप दाहं यथान्तः ॥५२॥

अर्थ—अपने समक्ष ही मरे हुए दो सेवकों के प्रति शोक प्रकट करने वाले स्वामी ने अधिक प्रेम के कारण अपने प्यारे सेवक के प्रति हृदय में उतना अधिक सन्ताप नहीं अनुभव किया जितना कि दूसरे अप्रिय सेवक के प्रति पूर्वकाल में यथायोग्य अनुग्रह आदि न करने के कारण अधिक पश्चात्ताप का अनुभव किया।

टिप्पणी—स्वभावोक्ति अलंकार। उसके लिए प्राण देनेवाले उस सेवक के प्रति पूर्व काल का अप्रिय भावना के कारण पश्चात्ताप करना उचित ही था।

उत्प्लुत्याराद‌र्धचन्द्रेण लूने वक्त्रेऽन्यस्य क्रोधदष्टोष्ठदन्ते ।
सैन्यैः कण्ठच्छेदलीने कबन्धाद्भूयो बिभ्ये वल्गतः सासिपाणेः ५

अर्थ—शत्रु पक्ष के अर्धचन्द्र बाण द्वारा छिन्न होने पर भी किसी वीर का मुख क्रोध के कारण दांतों से ओंठ को पीसते हुए अपने कबन्ध पर से थोडी दूर ऊपर उछलकर फिर उसी कण्ठ देश पर आ लगा। उस समय उसकी भुजा की तलवार भी नाचने लगी। इस प्रकार उस समय उस वीर के कबन्ध से ही शत्रुपक्ष के सैनिक भयभीत हो उठे।

टिप्पणी—भ्रान्तिमान् अलकार।

तूर्यारावैराहितोत्तालतालैर्गायन्तीभिः काहलं काहलाभिः ।
नृत्ते चक्षुःशून्यहस्तप्रयोगं काये कूजन्कम्बुरुच्चैर्जहास ॥५४॥

अर्थ—(रणभूमि का वह भीषण दृश्य देखकर ऐसा मालूम पड़ रहा था मानो नाच-गान हो रहा हो—) काहल बाजे मानो गाना गा रहे थे, मृदंग आदि मानों हथोड़ी बजा-बजाकर ताल दे रहे थे और मस्तक रहित कबन्ध दृष्टि के बिना ही हाथों द्वारा भाव जताते हुए नाच रहे रहे थे। इस प्रकार का (बेहूदा) नाच-गान देखकर शख मानो उच्च-स्वर से अट्टहास कर रहे थे।

टिप्पणी—दृष्टिशून्य अभिनय नाट्यशास्त्र विरुद्ध है। ऐसे बेहूदे नाच-गान को देख कर तटस्थ लोग उच्चस्वर से हँसते ही हैं। नाट्यशास्त्र का सामान्य नियम यह है—

अङ्गेरालापयेत् गीत हस्तेनार्थं प्रदर्शयेत् ।
दृष्टिभ्या भावयेत् भावं पादाभ्या तालनिर्णयः ॥

अर्थात् मुख से गीत या आलाप करते हुए हाथ से अर्थ का प्रदर्शन करना चाहिए और दोनो आखों से भाव का स्फुटन करते हुए दोनो पैरों से ताल देना चाहिए।

प्रत्यासन्नं भङ्गभाजि स्वसैन्ये तुल्यं मुक्तैराकिरन्ति स्म कंचित् ।
एकौघेन स्वर्णपुङ्खैर्द्विपन्तः सिद्धा माल्यैः साधुवादैर्द्वयेऽपि ॥५५॥

अर्थ—अपनी सेना के (व्यूह के पराजित होकर) भग हो जाने पर भी जब एक वीर राजा अपने शत्रुओं की ओर बढ़ा तो शत्रुओं ने उसे सुवर्ण पख वाले बाणों से एकदम ढँक दिया, तथा देवताओं ने उसे दिव्य मालाओं से ढँक दिया और शत्रुओं तथा देवताओं—दोनों ने उसे धन्य हो, धन्य हो, आदि वाक्यों से एक साथ ही ढँक दिया।

टिप्पणी—तुल्ययोगिता अलंकार।

बाणाच्छिन्नारोहशून्यासनानां प्रक्रान्तानामन्यसैन्यैर्ग्रहीतुम्।
संरब्धानां भ्राम्यतामाजिभूमौ वारी वारैः सस्मरे वारणानाम् ॥५६॥

अर्थ—(शत्रुओं के) बाणों से महावतों को (मार कर) नीचे गिरा दिए जाने पर जिन हाथियों के होदे आदि शून्य दिखाई पड़ रहे थे उन्हें शत्रु सेना के वीरों ने जब पकड़ना शुरू किया तो वे हाथी अत्यन्त क्षुब्ध होकर रणभूमि में घूमते हुए अपने बाँधने के स्थानों का स्मरण करने लगे।

टिप्पणी—काव्यलिंग अलंकार।

पौनःपुन्यादस्रगन्धेन मत्तो गृह्णन्क्रोधात्क्रामयायोधनोर्व्याम्।
पादे लग्नामत्र मालामिभेन्द्रः पाशीकल्पामायतामाचकर्ष ॥५७॥

अर्थ उस रणभूमि में बार-बार रक्त की गंध पाकर एक गजराज पागल हो उठा और क्रोध से लोगों को कुचलते हुए अपने पैरों में लगी हुई बेडियों के समान लंबी माला को खींचने लगा।

टिप्पणी—पूर्णोपमा अलंकार।

कश्चिन्मूर्च्छामेत्य गाढप्रहारः सिक्तः शीतैः शीकरैर्वारणस्य।
उच्छ्वास प्रस्थिता त जिघृक्षुर्व्यर्थाकूता नाकनारी मुमूर्च्छ ॥५८॥

अर्थ—अत्यन्त गहरे घाव से मूर्च्छित एक वीर एक गजराज की सूँड से निकले हुए शीतल जल के छींटों के पड़ने से होश में आकर लंबी साँसें लेने लगा किन्तु (उसे इस स्थिति में देखकर) उसे वरण करने के लिए आयी हुई स्वर्ग की अप्सरा विफल मनोरथ होकर मूर्च्छित हो गयी।

टिप्पणी—अतिशयोक्ति और काव्यलिंग का संकर।

लूनग्रीवात्सायकेनापरस्य-द्यामत्युच्चैराननादुत्पतिष्णोः ।
त्रेसे मुग्धैः सैंहिकेयानुकाराद्रौद्राकारादप्सरोवक्त्रचन्द्रैः ॥५९॥

अर्थ—शत्रु के तीक्ष्ण वाण से कण्ठ के कट जाने पर जब एक वीर का मुख आकाश की ओर बड़ी ऊंचाई तक उछला तो उस समय राहु का अनुकरण करते हुए उस भीषण आकृति वाले वीर के मुख से स्वर्ग की अप्सराओं के मुख-रूपी चन्द्र भयभीत हो गये।

टिप्पणी—उपमा और रूपक का सकर।

वृत्तं युद्धे शूरमाश्लिष्य काचिद्रन्तुं तूर्णं मेरुकुञ्जं जगाम ।
त्यक्त्वा नाग्नौ देहमेति स्म यावत्पत्नी सद्यस्तद्वियोगासमर्था ॥६०॥

अर्थ—एक कोई स्वर्ग की अप्सरा युद्ध में मरे हुए वीर का आलिंगन कर उसके साथ रमण करने के लिए उसे तुरन्त ही सुमेरु पर्वत के घने कुंजों में ले गयी (और तब तक उसके साथ रही) जब तक उसकी पत्नी उसके वियोग को सहन करने में असमर्थ होकर अग्नि में शरीर त्यागकर उसके सग नहीं आ गयी।

टिप्पणी—अतिशयोक्ति अलकार।

त्यक्तप्राणं संयुगे हस्तिनीस्था वीक्ष्य प्रेम्णा तत्क्षणादुद्गतासुः ।
प्राप्याखण्डं देवभूयं सतीत्वादाशिश्लेष स्वेव कंचित्पुरंध्री ॥६१॥

अर्थ—युद्ध मे प्राणों को त्यागने वाले किसी वीर को देखकर उसकी (समीपस्थ) हथिनी पर सवार सुन्दरी स्त्री ने प्रेमवश तत्क्षण अपने भी प्राण त्याग दिये और इस प्रकार अपने पातिव्रत धर्म की महिमा से अखण्डित देवयोनि को प्राप्त कर (स्वर्ग लोक मे पहुँच कर) उसने अपने प्राणप्रिय पति का आलिंगन किया।

टिप्पणी—काव्यलिंग अलकार।

स्वर्गावासं कारयन्त्या चिराय प्रत्यग्रत्वं प्रत्यहं धारयन्त्या ।
कश्चिद्भेजे दिव्यनार्या परस्मिँल्लोके लोकं प्रीणयन्त्येह कीर्त्या॥६२॥

अर्थ—किसी वीर ने (रणस्थली मे वीरतापूर्वक अपने प्राण देकर) चिर काल तक स्वर्ग में वास करानेवाली, प्रतिदिन नूतन-नूतन रूप

धारण करनेवाली एव समस्त लोक का मन हरनेवाली अप्सरा से पर-लोक में तथा कीर्ति से इस लोक में विविध सेवाएँ प्राप्त कीं।

टिप्पणी—कीर्ति तथा अप्सरा—दोनो के विशेषण एक ही हैं। जब तक मनुष्य की कीर्ति स्वर्ग लोक तथा पृथ्वी लोक पर गायी जाती है तब तक वह स्वर्ग में निवास करता है और अमृत का भोजन करता है। कहा गया है —

यावत्कीर्तिर्मनुष्यस्य स्वर्गे लोके च गीयते।
तावद्देही वसेत्स्वर्गे कुरुतेऽमृत भोजनम्॥

तुल्ययोगिता अलकार।

गत्वा नूनं वैबुधं सद्म रम्यं मूर्च्छाभाजामाजगामान्तरात्मा।
भूयो दृष्टप्रत्ययाः प्राप्तसंज्ञाः साधीयस्ते यद्रणायाद्रियन्ते॥६३॥

अर्थ—निश्चय ही मूर्च्छित वीरों की अन्तरात्मा मन को लुभाने वाले देवलोक को जा कर वापस चली आती थी, क्योंकि वे होश मे आने पर (अपने ऊपर) दृढ विश्वास कर और अधिक तत्परता से युद्ध करने मे उत्साह दिखलाने लगते थे।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलकार।

कश्चिच्छस्त्रापातमूढोऽपयोदुर्लब्ध्वा भूयश्चेतनामाहवाय।
व्यावर्तिष्ट क्रोशतः सत्सुरुच्चैस्त्यक्तश्चात्मा का च लोकानुवृत्तिः॥६४॥

अर्थ—गहरे प्रहार से मूर्च्छित कोई वीर होश मे आ जाने पर, मूर्च्छा के समय रणभूमि से उठाकर बाहर ले जाने वाले अपने मित्र की 'लौट आओ' 'इधर चलो' आदि अनुरोध भरी बातों की अवज्ञा कर रणभूमि मे फिर से लौट आया और वहाँ (भीषण युद्ध कर) उसने अपना शरीर त्याग दिया। (सच है, कीर्ति-लाभ के सामने) मित्रता का अनुरोध क्या चीज है? (अर्थात कोई चीज नहीं।)

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलकार।

भिन्नोरस्कौ अनुणाकृष्य दुरादामन्त्र्यात्कौचिदेकेपुणैव।
अन्योन्यावष्टम्भसामर्थ्ययोगादूर्ध्वाविव स्वर्गतावप्यभूताम्॥६५॥

टिप्पणी—उपमा अलकार।

एकाक्षरपाद

अजौजोजाजिजिज्ञाजी तं ततोऽतिततातितुत् ।
भाभोऽभीभाभिभूभाभूरारारिररिरीररः ॥ ३ ॥

अर्थ—तदनन्तर योद्धाओं के तेज एव पराक्रम से होनेवाले युद्ध को जीतनेवाले, सुन्दर युद्ध करने में निपुण उद्धत वीरों को व्यथित करने वाले, नक्षत्र के समान कान्तिमान्, निर्भीक गजराजों को भी पराजित करनेवाले वलराम रथ पर सवार होकर उस वेणुदारी के सन्मुख युद्धार्थ दौड पड़े।

टिप्पणी—प्रत्येक पाद में अनुप्रास अलकार है। इसमें कवल चार अक्षरा ज, त, म और र के द्वारा चारो पदो की रचना कर कवि ने रचना-चातुरी का चमत्कार दिखाया है। सस्कृत भाषा को छोड कर किसी अन्य भाषा में इस प्रकार का चमत्कार प्रदर्शित करना वडा कठिन है। धातुओ की अनेकार्थता से संस्कृत कवियो को इस प्रयत्न में विशेष सफलता मिलती है।

भवन्भयाय लोकानामाकम्पितमहीतलः ।
निर्घात इव निर्घोषभीमस्तस्यापतद्रथः ॥ ४ ॥

अर्थ—समस्त लोक को भयभीत करते हुए एव पृथ्वीतल को कपाते हुए भयकर शब्द करने वाला वलराम का रथ वज्र की भाँति (रणभूमि मे) दौड़ने लगा।

टिप्पणी—पूर्णोपमा अलकार। सभी विशेषण वज्र के लिए भी है।

रामे रिपुः शरानाजिमहेष्वास. विचक्षणे ।
कोपादथैनं शितया महेष्वा स विचक्षणे ॥ ५ ॥

अर्थ—युद्ध रूपी उत्सव में प्रगल्भ वलराम पर वेणुदारी ने अनेक वाण चलाये तो वलराम जी ने भी क्रुद्ध होकर उस पर तीक्ष्ण एव लबे वाणों से आघात किया।

टिप्पणी—यमक अलकार।

दिशमर्कमिवावाचीं मूर्च्छागतमपाहरत् ।
मन्दप्रतापं तं सूतः शीघ्रमाजिविहायसः ॥ ६ ॥

अर्थ—उन बाणों के आघात से मूर्च्छित अल्प तेजस्वी उस वेणुदारी को उसका सारथी तुरन्त ही रणभूमि से लेकर इस प्रकार भाग गया जैसे दक्षिण दिशा में गये हुए क्षीण तेज वाले सूर्य को उनका सारथी अरुण आकाश से लेकर शीघ्र ही भाग जाता है।

टिप्पणी—उपमा अलकार।

कृत्वा शिनेः शाल्वचमूं सप्रभावा चमूर्जिताम्।
ससर्ज वक्त्रैः फुल्लाब्जसप्रभा वाचमूर्जिताम् ॥ ७ ॥

अर्थ—(उधर) शिनि (सात्यकि के पितामह) की प्रभावशाली सेना (शिशुपाल पक्षीय राजा) शाल्व की सेना को जीतकर, हर्ष से सुप्रसन्न कमल के समान कान्तियुक्त मुख से बड़ी-बड़ी डींगें हाँकने लगी।

टिप्पणी—उपमा और यमक अलकार की ससृष्टि।

उल्मुकेन द्रुमं प्राप्य संकुचत्पत्रसंचयम्।
तेजः प्रकिरता दिक्षु सप्रतापमदीप्यत ॥ ८ ॥

अर्थ—चारों दिशाओं में अपना तेज फैलाने वाला उल्मुक नामक (श्रीकृष्णपक्षीय) राजा (पक्ष में, आलात) उस राजा द्रुम (वृक्ष) को प्राप्त कर विशेष रूप से ज्वलित हो उठा जिसकी सेना के वाहन (डर से) सकुचित हो रहे थे।

टिप्पणी—चारों ओर प्रकाश फैलाने वाला आलात अर्थात् लुआठा भी पेडों को प्राप्त कर अधिक जल उठता है तथा उससे उस वृक्ष की पत्तिया सकुचित हो उठती हैं। इस श्लोक में श्लेष अलकार की ध्वनि है।

पृथोरध्यक्षिपद्रुक्मी यया चापमुदायुधः।
तयैव याचापगमं ययाचापमुदा युधः ॥ ९ ॥

अर्थ—(भीष्मक के पुत्र तथा रुक्मिणी के भाई) रुक्मी ने अपने हथियार उठाकर जिस वाणी से राजा पृथु के धनुष की (धिक्कार है तुम्हारे इस धनुष को, बेकार ही तुम इसे चलाने आये हो) निन्दा की थी (क्षणभर में ही) उसी निरुत्साहयुक्त वाणी से उसने उनसे सग्राम-स्थल से भाग जाने की प्रार्थना भी की। (अर्थात् तुरन्त ही राजा पृथु ने ऐसे बाण चलाये कि वह अपने प्राणों को छोड़ देने की प्रार्थना करने लगा)।

टिप्पणी—यमक अलकार।

समं समन्ततो राज्ञामापतन्तीरनीकिनीः ।

कार्ष्णिः प्रत्यग्रहीदेकः सरस्वानिव निम्नगाः ॥ १० ॥

अर्थ—जिस प्रकार एक समुद्र बिना किसी सहायता के अकेले ही असख्य नदियों के प्रवाह को अवरुद्ध कर लेता है उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न ने चारों ओर से एक साथ ही दौडकर आती हुई शत्रु राजाओं की सेना को अकेले ही रोक दिया।

टिप्पणी—उपमा अलकार।

दधानैर्घनसादृश्यं लसदायसदंशनैः ।

तत्र काञ्चनसच्छाया ससृजे तैः शराशनिः ॥ ११ ॥

अर्थ—शोभायुक्त लोहे के कवचों से शरीर को ढके रहने के कारण बादलों के समान कालिमा धारण करनेवाले शत्रु सैनिक भगवान् श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न पर सुवर्ण की भाँति चमकती हुई बाण-रूपी बिजली की वर्षा करने लगे।

टिप्पणी—उपमा और रूपक की ससृष्टि। इस छन्द में कोई भी ऐसा शब्द नहीं है जो ओठो स उत्पन्न होता है। इस निरौष्ठ्य चित्रबन्ध कहते हैं।

नखांशुमञ्जरीकीर्णामसौ तरुरिवोच्चकैः ।

बभौ बिभ्रद्धनुःशाखामधिरूढशिलीमुखाम् ॥ १२॥

अर्थ—मजरी के समान नख- की किरणों से व्याप्त एव बैठे हुए शिलीमुखों (भ्रमरों एव बाणों) से युक्त अपनी शाखा के समान धनुष को धारण कर भगवान् श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न (उस रणभूमि में) ऊँचे वृक्ष के समान सुशोभित हो रहे थे।

टिप्पणी—उपमा अलकार।

प्राप्य भीममसौ जन्यं सौजन्यं दधदानते ।

विव्यन्मुमोच न रिपूनरिपूगान्तकः शरैः ॥ १३ ॥

अर्थ—शत्रु-सेना का सहार करने वाले प्रद्युम्न ने उस भीषण युद्ध में लड़ने वाले शत्रु के सैनिकों की, अपने तीक्ष्ण बाणों से छेदते हुए

तनिक भी उपेक्षा नहीं की तथा उन शत्रुओं के प्रति सुजनता का व्यवहार किया, जो विनम्र हो गये थे।

टिप्पणी—यमक अलकार।

कृतस्य सर्वक्षितिपैर्विजयाशंसया पुरः।
अनेकस्य चकारासौ बाणैर्बाणस्य खण्डनम् ॥ १४ ॥

अर्थ—भगवान श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न ने अपने विजय की अभिलाषा से आगे किए हुए अनेक सहायकों से युक्त बाणासुर को (धनुष पर आगे रखे हुए शत्रुओं के अनेक बाणों को) अपने बाणों से बींध डाला।

टिप्पणी—श्लेष अलकार।

या बभार कृतानेकमाया सेना ससारताम्।
धनुः स कर्षन्रहितमायासेनाससार ताम् ॥ १५ ॥

अर्थ—(बाणासुर की) जो सेना अनेक प्रकार की माया प्रकट करके अपना पराक्रम दिखला रही थी, उसको भगवान् श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न ने अपना धनुष खींचकर अनायास ही आक्रान्त कर लिया।

टिप्पणी—यमक अलकार।

ओजो महौजाः कृत्वाधस्तत्क्षणादुत्तमौजसः।
कुर्वन्नाजावमुख्यत्वमनयन्नाम मुख्यताम् ॥१६॥

अर्थ—महान् बलशाली प्रद्युम्न ने युद्ध में उत्तमौजा नामक राजा के तेज को तत्क्षण ही पराजित कर उसके नाम की निरर्थकता सिद्ध कर दी तथा साथ ही उन्होंने अपने नाम प्रद्युम्न (प्रकृष्ट द्युम्न बल यस्य स प्रद्युम्न अर्थात् परम पराक्रमी) की सार्थकता भी दिखला दी।

दूरादेव चमूर्भल्लैः कुमारो हन्ति स स्म याः।
न पुनः सायुगी ताः स्म कुमारो हन्ति सस्मयाः ॥१७॥

अर्थ—उस तेजस्वी प्रद्युम्न ने जिन गर्वीले शत्रु सैनिकों को दूर से ही अपने भालों से आहत कर दिया था वे फिर से रणभूमि पर नहीं उठ सके।

टिप्पणी—यमक अलंकार।

निपीड्य तरसा तेन मुक्ताः काममनास्थया ।
उपाययुर्विलक्षत्वं विद्विषो न शिलीमुखाः ॥ १८॥

अर्थ—प्रद्युम्न ने बलपूर्वक दबाकर बिना किसी आदर के भी अपने जिन बाणों को वेग के साथ छोड़ा था वे लक्ष्य भ्रष्ट तो नहीं हुए किन्तु उनसे वे शत्रु विह्वल हो गये, जिन्हें उसने निरादरपूर्वक जीवित ही छोड़ दिया था।

टिप्पणी—तुल्ययोगिता और व्यतिरेक का संकर।

तस्यावदानैः समरे सहसा रोमहर्षिभिः ।
सुरैरशंसि व्योमस्थैः सह सारो महर्षिभिः ॥ १९ ॥

अर्थ—युद्ध भूमि में प्रद्युम्न के कठोर कर्मों को देखकर आकाशवर्ती देवताओं तथा महर्षियों को रोमांच हो आया और वे उसके बल की प्रशंसा करने लगे।

टिप्पणी—यमक अलंकार।

सुगन्धयद्दिशः शुभ्रमम्लानि कुसुमं दिवः ।
भूरि तत्रापतत्तस्मादुत्पपात दिवं यशः ॥ २० ॥

अर्थ—दिशाओं को सुगन्धित करते हुए अनेक श्वेत रंग के ताजे-ताजे खिले हुए प्रचुर पुष्पों की राशि प्रद्युम्न पर उधर आकाश से आकर गिरने लगी और इधर दिशाओं को सुगंधित करने वाला उसका निर्मल यश।उसके पास से उठकर आकाश की ओर चढ़ने लगा।

टिप्पणी—अन्यान्य अलंकार।

सोढुं तस्य द्विषो नालमपयोधरवारणम् ।
ऊर्णुनाव यशश्च द्यामपयोधरवारणम् ॥ २१ ॥

अर्थ—भय के कारण शत्रुपक्षीय योधाओं का सिंहनाद उधर बंद हो गया, रणभूमि में प्रद्युम्न के साथ युद्ध करने में वे असमर्थ हो गये और इधर प्रद्युम्न का यश बादलों की बाधा को दूर कर अर्थात् उन्हें ढँक कर समस्त आकाशमण्डल में व्याप्त हो गया।

टिप्पणी—यमक और वाक्यार्थहेतुक काव्यलिंग अलकार की ससृष्टि।

केशप्रचुरलोकस्य पर्यस्कारि विकासिना।
शेखरेणेव युद्धस्य शिरः कुसुमलक्ष्मणा ॥ २२ ॥

अथ—जिस प्रकार केशों की अधिकता से युक्त शिर के बीच मे अनेक लर्डों वाली खिले हुए फूलो की माला सुशोभित होती है उसी प्रकार असख्य सैनिकों से सकुल उस रणस्थली के अग्रभाग को अपनी इच्छानुसार अनेक मार्गों से चलता हुआ पुष्पधन्वा कामदेव का अवतार वह प्रद्युम्न सुशोभित कर रहा था।

टिप्पणी—उपमा अलकार।

सादर युध्यमानापि तेनान्यनरसादरम्।
सा दर पृतना निन्ये हीयमाना रसादरम् ॥ २३ ॥

अथ—आग्रह अर्थात् हठ के साथ युद्ध करने वाली शत्रुओं की सेना शीघ्र ही (प्रद्युम्न के तेज से) रण के राग से विहीन हो गयी और वह प्रद्युम्न से इस इस प्रकार भयभीत हो गयी कि उसका भय देखकर दूसरे तटस्थ लोग भी निश्चेष्ट हो गये।

टिप्पणी—विरोधाभास और यमक की ससृष्टि।

इत्यालिङ्गितमालोक्य जयलक्ष्म्या झषध्वजम्।
क्रुद्धयेव क्रुधा सद्यः प्रपेदे चेदिभूपतिः ॥ २४ ॥

अथ—इस प्रकार विजयश्री से आलिंगित कामदेव अर्थात् प्रद्युम्न को देखकर तुरन्त ही मानो क्रोध से युक्त होकर (प्रद्युम्न में स्थित) क्रोध देवी ने शिशुपाल का आश्रय ग्रहण कर लिया।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि प्रद्युम्न को विजयी होते देख कर शिशुपाल क्रोध से भर गया। कवि ने यहा क्रोधदेवी की ईर्ष्या अच्छी युक्ति से प्रकट की है। कामिनियाँ प्राय बडी ईर्ष्यालु होती है वे सपत्नी का सुख नहीं सहन कर सकती। प्रियतम को सपत्नी में आसक्त देख कर वे उसे जलाने के लिए तुरन्त ही दूसरे पुरुष का आश्रय ग्रहण कर लेती है। उत्प्रेक्षा अलकार।

अहितानभि वाहिन्या स मानी चतुरङ्गया ।
चचाल वल्गत्कलभसमानीचतुरङ्गया ॥२५॥

अर्थ—अभिमान से भरा हुआ वह शिशुपाल वलवलाते हुए हाथी के बच्चों के समान ऊँचे घोड़ों से युक्त अपनी चतुरंगिणी सेना के साथ प्रद्युम्न की ओर दौड़ पड़ा ।

टिप्पणी—उपमा और यमक की संसृष्टि ।

[नीचे के चार श्लोकों में शिशुपाल की सेना का वर्णन किया गया है —]

ततस्ततधनुर्मौर्वीविस्फारस्फारनिःस्वनैः ।
तूर्यैर्युगक्षये क्षुभ्यदकूपारानुकारिणी ॥ २६ ॥

अर्थ—तदन्तर शिशुपाल की सेना मे सैनिकों द्वारा खींचे हुए धनुष की प्रत्यञ्चा की टंकार से भीषण शब्द होने लगे तथा विविध वाद्य समूह वजने लगे । इस प्रकार वह सेना महाप्रलय के अवसर पर क्षुब्ध महासमुद्र का अनुकरण करने लगी ।

टिप्पणी—उपमा अलंकार ।

सर्वतोभद्रः

स का र ना ना र का स
का य सा द द सा य का ।
र सा ह वा वा ह सा र
ना द वा द द वा द ना ॥२७॥

अर्थ—उत्साह युक्त अनेक प्रकार के शत्रु समूहों की गति एवं उनके शरीरों के नाश करने वाले बाणों से युक्त (वह शिशुपाल की) सेना रण में अनुरक्त होकर श्रेष्ठ घोड़ों की हिनहिनाहट एवं खटपट के साथ विवाद करने वाली अपने विविध वाद्यों की ध्वनियों से व्याप्त थी ।

टिप्पणी—इस छन्द से सर्वतोभद्र चित्र बनता है । इसे चाहे जिस ओर से पढ़िये वही श्लोक बनेगा । चार कोने के चौंसठ कोष्ठों से युक्त बन्ध में क्रमशः

एक एक अक्षर लिख कर पढने से इसका सर्वतोभद्र रूप समझ में आ जायगा। देखिये सर्ग का अन्तिम पृष्ठ।

लोलासिकालियकुला यमस्यैव स्वसा स्वयम् ।
चिकीर्पुरुल्लसल्लौहवर्मश्यामा सहायताम् ॥ २८ ॥

अर्थ—चंचल तलवारें उस सेना में काले सर्पों के समान लहरा रही थीं। सभी सैनिक काले रंग का लौह कवच पहने हुए थे अतः वह श्याम रंग की हो रही थीं। इस प्रकार उस समय वह ऐसी सुशोभित हो रही थीं मानों यमराज की सहायता के लिए आयी हुई स्वयम् उनकी बहिन यमुना हो।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलंकार।

मुरजबन्धः

सा से ना ग म ना र म्भे
र से ना सी द ना र ता।
ता र ना द ज ना म त्त
धी र ना ग म ना म या ॥२९॥

अर्थ—उस सेना के वीर सैनिक गण सिंहनाद कर रहे थे। पीडा किस चीज का नाम है, इसमें यह कोई जानता नहीं था। युद्धार्थ गमन के आरम्भ में वे युद्ध के उत्साह से भरे हुए थे और उनके साथ निर्दोष किन्तु मदोन्मत्त हाथियों के समूह चल रहे थे।

टिप्पणी—इस श्लोक में मुरजबन्ध नामक चित्रबन्ध है। जिसका स्पष्टीकरण सर्ग की समाप्ति पर दिये गये चित्र से होगा।

धूतधौतासयः प्रष्ठाः प्रातिष्ठन्त क्षमाभृताम् ।
शौर्यानुरागनिकषः सा हि वेलासिजीविनाम् ॥ ३० ॥

अर्थ—राजाओं के आगे चलने वाले वीर सैनिक अपनी तलवारों को नचाते तथा कँपाते हुए आगे बढ़े क्योंकि वही वेला शस्त्रजीवी सेवकों की वीरता और स्वामी के प्रति अनुराग की परीक्षा की थी।

टिप्पणी—काव्यलिंग अलकार।

दिवमिच्छन्युधा गन्तुं कोमलामलसंपदम्।
दधौ दधानोऽसिलतां कोऽमलामलसं पदम्॥ ३१॥

अर्थ—युद्ध के द्वारा सुन्दर एवं शीतोष्णादि दोष से रहित सम्पत्तियों वाले स्वर्ग को प्राप्त करने के लिए (उस सेना में) कौन ऐसा पुरुष था जो निर्मल तलवार को धारणकर आलस्ययुक्त पद-विक्षेप करता हो अर्थात् ऐसा कोई नहीं था।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि सभी सैनिक निर्भय हो कर द्रुतगति से आगे बढ रहे थे। काव्यलिंग और यमक अलकार की ससृष्टि।

कृतोरुवेग युगपव्द्यजिगीषन्त सैनिकाः।
विपक्षं बाहुपरिघैर्जङ्घाभिरितरेतरम्॥३२॥

अर्थ—सैनिक गण परिघ के समान अपने भुजदण्डों से तो शत्रुओं को तथा जांघो से अपने ही वर्ग के वीरों को, महान यत्न करके एक साथ ही जीतने की इच्छा कर रहे थे।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि वे अपने ही साथियो म प्रतिस्पर्द्धा कर शीघ्रता पूवक दौड-दौड कर शत्रुओ से भिड रहे थे। तुल्ययोगिता अलकार।

वाहनाजनि मानासे साराजावनमा ततः।
मत्तसारगराजेभे भारीहावज्जनध्वनि॥३३॥

अथ—तदन्तर शत्रुओं के दर्प को दूर करनेवाले एव मदोन्मत्त बलवान गजराजों से युक्त उस श्रेष्ठ युद्ध मे उत्साह युक्त सैनिकों के कोलाहल से युक्त सब कार्य भलीभांति पूर्ण हुआ।

[इसी श्लोक के पादो का उलट देने से अग्रिम श्लोक बन जाता है। इसे श्लोक प्रतिलोमयमक कहते हैं—]

श्लोकप्रतिलोमयमकम्

निध्वनज्जवहारीभा भेजे रागरसात्तमः।
ततमानवजाराशा सेना मानिजनाहवा॥ ३४॥

अर्थ—उस सेना में वेग के साथ मनोहर गजराज चिग्घाड़ रहे थे। चारों ओर सैनिकों का ऐसा भारी कोलाहल मचा हुआ था मानों सैनिक गण अपने ही में एक-दूसरे से युद्ध कर रहे थे। उस समय वह सारी सेना क्रोध के वेग से अन्धी हो रही थी।

टिप्पणी—तेंतीसवें श्लोक को उलट देने से चौंतीसवाँ श्लोक बन जाता है। इसे श्लोकप्रतिलोम यमक कहते हैं। दण्डी ने कहा है —

आवृत्ति प्रातिलोम्येन पादार्धश्लोकगोचरा।
यमकं प्रतिलोमत्वात्प्रतिलोममिति स्मृतम् ॥

अभग्नवृत्ताः प्रसभादाकृष्टा यौवनोद्धतैः।
चक्रन्दुरुच्चकैर्मुष्टिग्राह्यमध्या धनुर्लताः ॥ ३५ ॥

अर्थ—युवक सैनिक लोग न. टूटने वाले (पक्ष में, अस्खलित चरित्रवाली) अपने वर्तुलाकार, धनुषों को बीच में मुट्ठी से पकड़कर उनकी प्रत्यंचा को (मुट्ठी भर कमरवाली सुन्दरी पतिव्रता के केशों को पकड़कर) बलपूर्वक खींचने लगे। इससे उन धनुषों से टंकार की गभीर ध्वनि होने लगी।

टिप्पणी—समासोक्ति और काव्यलिंग अलंकार का संकर।

करेणुः प्रस्थितोऽनेको रेणुर्घण्टाः सहस्रशः।
करेऽणुः शीकरो जज्ञे रेणुस्तेन शमं ययौ ॥ ३६ ॥

अर्थ—असंख्य हाथी (युद्ध के) लिए दौड़ पड़े जिससे उनके कण्ठ में बँधे हुए हजारों घण्टे बज उठे। उनकी सूँड़ों से पानी के बिन्दु गिरने लगे, जिससे रणभूमि की धूल शान्त हो गयी।

टिप्पणी—यमक अलंकार।

धृतप्रत्यग्रशृङ्गाररसरागैरपि द्विपैः।
सरोपसंभ्रमैर्बभ्रे रौद्र एव रणे रसः ॥ ३७ ॥

अर्थ—नूतन सिन्दूर का शृंगार धारण करने पर भी वे हाथी क्रुद्ध और रण व्यस्त होने के कारण युद्धस्थली में रौद्र रस को ही उत्पन्न कर रहे थे।

टिप्पणी—विरोधाभास अलकार।

न तस्थौ भर्तृतः प्राप्तमानसंप्रतिपत्तिपु ।
रणैकसर्गेषु भयं मानसं प्रति पत्तिपु ॥ ३८ ॥

अर्थ—स्वामियों से सम्मान एव सोमनस्य की प्राप्ति करने वाले एव युद्ध में उत्साही पैदल सेना के सैनिकों के मन मे तनिक भी भय का सचार नहीं था।

टिप्पणी—युद्ध से भयभीत होकर पराङमुख होनेवाले सैनिका की यदि शत्रु द्वारा मृत्यु हो जाती है तो उसकी वडी निन्दा की जाती है। मनु के कथनानुसार उसे अपने स्वामी के समस्त पापा का फल भोगना पडता है तथा उसके समस्त पुण्या का फल स्वामी को मिलता है। काव्यलिंग अलकार।

बाणाहिपूर्णतूणीरकोटरैर्धन्विशाखिभिः ।
गोधाश्लिष्टभुजाशाखैर्भीमा रणाटवी ॥३९॥

अर्थ—इस प्रकार उस रण-रूपी जगल में वे धनुधारी सेनिक रूपी वृक्ष अत्यन्त भयकर दिखाई पड रहे थे, जो बाण-रूपी सर्पों से भरे हुए तरकस-रूपी कोटरों तथा चमड़े रूपी गोहों से लपेटी हुई बाहु-रूपी शाखाओं से युक्त थे।

टिप्पणी—साग रूपक अलकार।

प्रतिलोमानुलोमपादः

नानाजावनजानाना सा जनौघघनौजसा ।
परानिहाऽह्वानिराप तान्वियाततयाऽन्विता ॥४०॥

अर्थ—सैनिक-समूहों से युक्त शिशुपाल की वह सेना उस अनेक प्रकार से होने वाले विचित्र युद्ध में अपने तेज द्वारा शत्रुओं की अवज्ञा कर निर्भयता एव ढिठाई के साथ अपने प्रतिद्वन्द्वियों पर जाकर जुट गयी।

टिप्पणी—इस प्रकार में एक चरण का उलट देने से दूसरा चरण बन जाता है। इस प्रतिलोमानुलोमपाद यमक कहते हैं।

विषमं सर्वतोभद्रचक्रगोमूत्रिकादिभिः ।
श्लोकैरिव महाकाव्यं व्यूहैस्तदभवद्‌बलम् ॥४१॥

अर्थ—शिशुपाल की वह सेना सर्वतोभद्र चक्र, गोमूत्रिका आदि चित्र बन्धों से युक्त (शिशुपाल वध) महाकाव्य की भाँति विविध व्यूहों से अत्यन्त दुर्गम बनी हुई थी।

टिप्पणी—उपमा अलंकार।

संहत्या सात्वतां चैवं प्रति भास्वरसेनया ।
चचले योद्धुमुत्पन्नप्रतिभा स्वरसेन या ॥४२॥

अर्थ—तेजस्वी सैनिकों से युक्त यदुवंशियों की वह सेना भी शिशुपाल की सेना पर दौड़ पड़ी जो स्वभाव से ही युद्ध के लिए तैयार रहती थी।

विस्तीर्णमायामवती लोललोकनिरन्तरा ।
नरेन्द्रमार्गं रथ्येव पपात द्विषतां बलम् ॥४३॥

अर्थ—लंबी और चंचल लोगों से संकुलित वह यदुवंशियों की सेना शत्रुओं की विस्तीर्ण सेना के साथ जाकर इस प्रकार मिल गयी जिस प्रकार लंबी और चंचल लोगों से संकुलित पगडंडी किसी विस्तीर्ण राजमार्ग (सड़क) से जाकर मिल जाती है।

टिप्पणी—उपमा अलंकार।

वरणागगभीरा सा साराऽभीगगणारवा ।
कारितारिवधा सेना नासेधा वारितारिका ॥४४॥

अर्थ—यदुवंशियों की वह सेना हाथी-रूपी पर्वतों से दुर्गम थी, उसमें अत्यन्त बलवान एवं निर्भय जन्तुओं के स्वर गूंज रहे थे, वह शत्रुओं का संहार करनेवाली थी, उसकी गति को कोई रोक नहीं सकता था और वह अपने शत्रुओं (से लड़ने की) की स्वयं इच्छा कर रही थी।

टिप्पणी—इस श्लोक में भी एक चरण को उलट देने से दूसरा चरण बन जाता है। यह अर्धप्रतिलोम यमक है।

अधिनागं प्रजविनो विकासस्तिपिच्छचारवः ।
पेतुर्नहिंस्रदेशीयाः शङ्कवः प्राणहारिणः ॥४५॥

अर्थ—वेग से युक्त, देदीप्यमान अर्थात् चमकते हुए, पूछों द्वारा मनोहर और प्राण नाशक वाण नागों पर (हाथियों पर) जाकर उसी प्रकार गिरे जैसे (पूर्वोक्त सभी विशेषणों से युक्त) मयूर नागों (सर्पों) पर गिरते हैं।

टिप्पणी—उपमा अलकार।

गोमूत्रिकाबन्धः

प्र वृ त्ते नि क स द्भ्वा नं सा ध ने प्य वि पा दि भिः ।
व वृ पे वि क स द्दा नं यु ध मा प्य वि पा णि भिः ॥

अर्थ—भीषण ध्वनि के साथ आघात होने पर भी विचलित न होने वाले हाथियों ने युद्ध भूमि में जमे रहकर प्रभूत मदजल की वर्षा की।

टिप्पणी—इस श्लाक में गामूत्रिका बन्ध है। ऊपर आर नीचे के साल्हा कोष्ठा में दोना पक्तियों के एक एव अक्षर का छोड कर वाचने से भी यही श्लोक बन जाता है। ये सभी विकट बन्ध कविकी असाधारण कवित्व शक्ति के परिचायक हैं, किन्तु इनमें वास्तविक काव्यानद नहीं है।

पुरः प्रयुक्तैर्युद्धं तच्चलितैर्लब्धशुद्धिभिः ।
आलापैरिव गान्धर्वमदीप्यत पदातिभिः ॥४७॥

अर्थ—जिस प्रकार पूर्व में गाये गये शुद्ध आलाप से गान सुशोभित होता है उसी प्रकार आगे-आगे चलने वाले कपटरहित शूरमा पैदलों के दल से वह सेना शोभा पा रही थी।

केनचित्स्वासिनान्येषां मण्डलाग्रानवद्यता ।
प्रापे कीर्तिप्लुतमहीमण्डलाग्राऽनवद्यता ॥ ४८ ॥

अर्थ—किसी वीर ने अपनी तलवार से शत्रुओं के व्यूहों के अग्र-भाग को काटकर अपने निर्मल यश से समस्त भूमंडल के ऊपरी भाग को व्याप्त कर लिया।

विहन्तुं विद्विषस्तीक्ष्णः सममेव सुसंहतेः ।
परिवारात्पृथक्चक्रे खड्गश्चात्मा च केनचित् ॥४६॥

अर्थ—एक दूसरे योद्धा ने शत्रुओं का सहार करने के लिए अपनी तीक्ष्ण तलवार को सुन्दर म्यान से और अपने को सुसघटित परिजनों के बीच से एक बार ही बाहर कर लिया।

टिप्पणी—तुल्ययोगिता अलकार।

अन्येन विदधेऽरीणामतिमात्रा विलासिना ।
उद्गूर्णेन चमूस्तूर्णमतिमात्राविलाऽसिना ॥५०॥

अर्थ—एक अन्य योद्धा ने अपनी चमचमाती हुई तलवार को उठाकर उसके द्वारा शत्रुओं की अगणित सना को तुरन्त ही व्याकुल कर दिया।

सहस्रपूरणः कश्चिल्लूनमूर्धाऽसिना द्विपः ।
ततोर्ध्व एव कावन्धीमभजन्नर्तनक्रियाम् ॥५१॥

अर्थ—सहस्र सैनिकों के ऊपर रहने वाला कोई उपसेनापति अथवा सग्राम में सहस्रो का सहार करने वाला कोई वीर अपनी तलवार से शत्रु का शिर काट कर उसी के (कबध के) समान स्वयं कबध की नत्य-क्रिया करने लगा।

टिप्पणी—तात्पर्य यह ह कि जिस प्रकार शत्रु का कबध नाचता था उसी प्रकार विजय हष से उल्लसित होकर वह स्वय नाचन लगा। निदशना अलकार।

शस्त्रव्रणमयश्रीमदलंकरणभूषितः ।
ददृशेऽन्यो रावणवदलङ्करणभूषितः ॥५२॥

अर्थ—एक दूसरा योद्धा शस्त्रास्त्रों के आघात रूपी मनोहर अलकारों से सुशोभित होकर लका से अलग रणभूमि में पडे हुए रावण के समान दिखाई पड़ रहा था।

टिप्पणी—उपमा व्यतिरक और यमक का सकर।

द्विपद्विशसनच्छेदनिरस्तोरुयुगोऽपरः ।
सिक्तश्चास्रैरुभयथा बभूवारुणविग्रहः ॥५३॥

अर्थ—शत्रु के शस्त्र-प्रहार के कारण किसी योद्धा की दोनों टांगे कट गयी थीं, उस समय रक्त से भींगा हुआ वह वीर दोनों ही प्रकार से सूर्य के सारथी अरुण के शरीर की समानता कर रहा था।

टिप्पणी—अरुण भी टांगों से रहित तथा रक्त वर्ण के हैं। काव्यलिंग, उपमा और श्लेष का संकर।

भीमतामपरोऽम्भोधिसमेऽधित महाहवे।
दाक्षे कोपः शिवस्येव समेधितमहा हवे ॥५४॥

अर्थ—कोई परम तेजस्वी वीर महासमुद्र के समान उस महान् युद्ध मे शिव के क्रोध से उत्पन्न वीरभद्र की भयंकरता को धारण कर रहा था।

टिप्पणी—उपमा और यमक की संसृष्टि।

दन्तैश्चिच्छिदिरे कोपात्प्रतिपक्षं गजा इव।
परनिस्त्रिंशनिर्लूनकरवालाः पदातयः ॥५५॥

अर्थ—शत्रुओं की तलवारों की चोट से अपनी तलवारों के टूट जाने पर पैदल वीरों ने हाथियों के समान क्रोध करके अपने दांतों से ही शत्रुओं का विनाश करना आरंभ कर दिया।

टिप्पणी—उपमा अलंकार।

रणे रभसनिर्भिन्नद्विपपाटविकासिनि।
न तत्र गतभीः कश्चिद्विपपाट विकासिनि ॥५६॥

अर्थ—उस भीषण संग्राम मे निपुण योद्धाओं की तलवारों से वेग पूर्वक हाथियों को मार कर पाट दिए जाने पर कोई भी निर्भय वीर नहीं भागा।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि सभी मोर्चे पर डटे रहे। विरोध और यमक की संसृष्टि।

यावन्न सत्कृतैर्भर्तुः स्नेहस्यानृण्यमिच्छुभिः।
अमर्पादितरैस्तावत्तत्यजे युधि जीवितम् ॥५७॥

अर्थ—अपने स्वामियों द्वारा सम्मानित होने के कारण उनके प्रेम-रूपी ऋण से उऋण होने का इच्छुक योद्धा रणभूमि में जब तक अपने

प्राण नहीं त्याग सके तब तक स्वामी के सत्कार से विहीन सैनिकों ने अपने प्राण त्याग दिये।

टिप्पणी—काव्यलिंग अलंकार।

[पूर्वोक्त श्लोक में अनादृत सैनिकों के प्राण-त्याग का कारण बताते हुए कवि कहता है—]

समुद्गयमकम्

अयशोभिदुरालोके कोपधाम रणादृते।
अयशोभिदुरा लोके कोपधा मरणादृते ॥५८॥

अर्थ—भाग्यवान् एवं तेजस्वी होने के कारण कठिनाई से देखने योग्य तथा रण-राग से क्रोधान्ध वीरों के लिए स्वामी द्वारा प्राप्त अनादर-रूपी अपयश को मिटाने के लिए (इस समय) प्राण त्यागने के सिवा और अन्य उपाय ही क्या था ?

टिप्पणी—यह समुद्ग यमकालंकार है। पूर्व पद की पर पद में आवृत्ति कर दी गयी है।

स्खलन्ती न क्वचित्तैक्ष्ण्यादभ्यग्रफलशालिनी।
अमोचि शक्तिः शक्तीशैर्लोहजा न शरीरजा ॥५९॥

अर्थ—शक्ति चलानेवाले वीरों ने अप्रतिहत गतिवाली एवं तीक्ष्ण फल वाली लोहे की बनी हुई शक्ति को अपने शत्रुओं पर छोड़ा किन्तु उन्होंने निकटवर्ती कल्याण-रूपी फल से शोभायमान शरीर की शक्ति को नहीं छोड़ा।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि अत्यन्त परिश्रम करने पर भी उनकी शारीरिक शक्ति तनिक भी क्षीण नहीं हुई। श्लेष अलंकार।

आपदि व्यापृतनयास्तथा युयुधिरे नृपाः।
आप दिव्या पृतनया विस्मयं जनता यथा ॥६०॥

अर्थ—राजा लोगों ने विपत्ति में पड़कर भी नीतिमार्ग का उल्लंघन नहीं किया। उन्होंने अपनी-अपनी सेनाओं को साथ लेकर ऐसा युद्ध किया कि आकाश में उपस्थित देव-गन्धर्वादि विस्मित हो उठे।

टिप्पणी—इसमें पादाभ्यास यमक अलकार है।

स्वगुणैराफलप्राप्तेराकृष्य गणिका इव।
कामुकानिव नालीकांस्त्रिणताः सहसामुचन् ॥६१॥

अर्थ—जिस प्रकार वेश्याएँ अपने सौन्दर्य-यौवन आदि गुणों से धन-लाभ की आशा तक कामुक पुरुषों को आकर्षित कर फिर उन्हें एक दम त्याग देती हैं, उसी प्रकार सींगों से बने हुए धनुषों ने फलों के स्पर्श तक अपनी प्रत्यचा द्वारा बाणों को खींचकर उन्हें एकदम शत्रुओं पर छोड दिया।

टिप्पणी—उपमा अलकार।

वाजिनः शत्रुसैन्यस्य समारब्धनवाजिनः।
वाजिनश्च शरा मध्यमविशन्द्रुतवाजिनः ॥६२॥

अर्थ—अपूर्व युद्ध करनेवाली शत्रु-सेना के मध्य से द्रुतगामी अश्व समूह तथा परों से युक्त बाण एकदम घुस गये।

टिप्पणी—तुल्ययोगिता और यमक की ससृष्टि।

पुरस्कृत्य फलं प्राप्तैः सत्पक्षाश्रयशालिभिः।
कृतपुङ्खतया लेभे लक्षमप्याशु मार्गणैः ॥ ६३ ॥

अर्थ—फल को आगे करके आये हुए तथा सुन्दर परोंवाले बन्धनों से युक्त बाण पुखों की कैंची से सुदृढ होने के कारण लक्ष्यों को प्राप्त करने लगे। (पक्ष में, लाभ की सभावना में सज्जनों की सहायता से युक्त याचक गण अपनी कुशलता के कारण लाखों का धन प्राप्त करते हैं।)

टिप्पणी—अन्य अर्थ की प्रतीति के कारण इस श्लोक में केवल ध्वनि है।

रक्तस्रुतिं जपाकुसुमसमरागामिपुष्व्यधात्।
कश्चित्पुरः सपत्नेषु समरागामिषु व्यधात् ॥ ६४ ॥

अर्थ—एक कोई वीर समर भूमि में आये हुए शत्रुओं पर अपने बाणों का प्रहार करके जपाकुसुम के पुष्प के समान रक्त बहाने लगा।

टिप्पणी—उपमा और यमक की ससृष्टि।

रयेण रणकाम्यन्तौ दूरादुपगताविभौ ।
गतासुरन्तरा दन्ती वरण्डक इवाभवत् ।। ६५ ।।

अर्थ—परस्पर लडने के इच्छुक दो हाथी जब वेग से एक दूसरे के विरुद्ध दूर से ही दौड पड़े तो (सयोगात्) उन दोनों के बीच में एक मरा हुआ हाथी वेदी की भांति आ गया।

टिप्पणी—हाथियों को लडाई की शिक्षा पहले किसी वेदी पर ही दी जाती है। उपमा अलकार।

द्व्यक्षरः

भूरिभिर्भारिभिर्भीरैर्भूभारैरभिरेभिरे ।
भेरीरेभिभिरभ्राभैरभीरुभिरिभैरिभाः ।। ६६ ।।

अर्थ—अत्यन्त भार से युक्त, भयानक, पृथ्वी के भार स्वरूप, भेरी की भांति भयानक शब्द करनेवाले (बादलों के समान काले एव निर्भीक हाथी प्रतिद्वन्द्वी हाथियों से भिड गये।

टिप्पणी—उपमा और अनुप्रास का सकर। इस पूरे श्लोक में केवल दो अक्षर भ और र का प्रयोग हुआ है।

निशितासिलतालूनैस्तथा हस्तैर्न हस्तिनः ।
युध्यमाना यथा दन्तैर्भग्नैरापुर्विहस्तताम् ।। ६७ ।।

अर्थ—हाथी युद्ध करते समय अपने दांतों के टूट जाने से जिस प्रकार अत्यन्त व्याकुल हुए उस प्रकार तीक्ष्ण तलवारों द्वारा सूंड़ों के कट जाने से नहीं हुए।

टिप्पणी—विरोधाभास अलकार।

असंयोगः

निपीडनादिव मिथो दानतोयमनारतम् ।
वपुषामदयापातादिभानामभितोऽगलत् ।।६८ ।।

अर्थ—चारों ओर से निर्दयतापूर्वक परस्पर आक्रान्त होने के कारण हाथियों के शरीरों से, इस प्रकार निरन्तर मदजल गिरने लगा मानों वस्त्रों के निचोडने से पानी गिरता हो।

टिप्पणी—अतिशयोक्ति और उत्प्रेक्षा का सकर। इस श्लोक में एक भी सयुक्त अक्षर नहीं है। सस्कृत भाषा में असयाग भी एक चित्रबन्ध है।

रथाङ्ग्यं मर इव ग्लानि मदवारिभिः ।
गजः प्रफुल्लकृष्टशतरम्मलोडयत् ॥ ६९ ॥

अर्थ—किसी गजराज ने अपने मदजल से रणस्थल को सींचकर अपनी विशाल सूँड द्वारा विपक्षियों के असंख्य वाहनों को (पक्ष में, कमलों को) इधर-उधर फेंक कर उसे तालाबों की भाँति क्षुब्ध कर दिया।

टिप्पणी—हाथी तालाबों में भी सूँड से पानी फेंकते हैं तथा कमलों को उजाड़ कर इधर-उधर फेंक देते हैं। श्लेष विशिष्ट उपमा अलंकार।

शरक्षते गजे भृङ्गैः सनिषादिनिषादिनि ।
रुतव्याजेन रुदितं तत्रामोदतिमोदनि ॥ ७० ॥

अर्थ—बाणों के आघात से किसी गजराज के मर जाने पर उसका महावत विषाद युक्त हो गया और उसके गण्डस्थल पर विहार करने वाले भ्रमर शब्द करने के बहाने से मानों रुदन करने लगे।

टिप्पणी—अपह्नुत और गम्योत्प्रेक्षा अलंकार।

अन्तकस्य पृथौ तत्र शयनीय इवाहवे।
दशनव्यसनार्दायुर्मत्कुणत्वं मतङ्गजाः ॥ ७१ ॥

अर्थ—यमराज के पलंग की भाँति दिखायी पड़ने वाली उस विशाल रणस्थली में हाथी अपने दाँतों के टूट जाने के कारण खटमलों की भाँति दिखाई पड़ रहे थे।

टिप्पणी—खटमलों के भी दांत नहीं होते। उत्प्रेक्षा और रूपक का संकर।

अर्धभ्रमकः

अ भी क म ति के ने द्धे
भी ता न न्द स्य ना श ने ।
क न त्स का म से ना के
म न्द का म क म स्य ति ॥ ७२ ॥

अर्थ—वह भयानक युद्ध निर्भय चित्तवाले वीरों से सुशोभित था तथा भयभीतों के आनन्द का नाश करने वाला था। विजय की भावना

से भरी हुई सेनाओं से युक्त था तथा लोगों के मन्द उत्साह को दूर करने वाला था।

टिप्पणी—यह अर्धभ्रमक बन्ध है। इसके आदि के चारों चरणों के अक्षर क्रमशः सीधे पढ़ें तथा अन्त के चारों चरणों के अक्षर उल्टे पढ़ें तो पहला पद बन जाता है और इसी प्रकार सब पद क्रमशः दूसरे, तीसरे तथा चौथे अक्षरों के पढने से बन जाते हैं। यह भी एक विकट बन्ध है।

दधतोऽपि रणे भीममभीदृशं भावमासुरम् ।
हताः परैरभिमुखाः सुरभूयमुपाययुः ॥ ७३ ॥

अर्थ—उस भयानक युद्ध में सर्वदा अत्यन्त भयंकर असुरों जैसा पुरुषार्थ प्रकट करने वाले वीर भी शत्रुओं के सामने जाकर मारे जाने के कारण देवत्व को प्राप्त हुए।

टिप्पणी—विरोधाभास अलंकार।

येनाङ्गमूहे ऽणवत्सरुचा परतोमरैः ।
समत्वं स ययौ खड्गत्सरुचापरतोऽमरैः ॥७४॥

अर्थ—जो परम पराक्रमी योद्धा दूसरों के तोमरों (शस्त्र विशेष) के आघात से आहत अंगों को धारण कर रहे थे वे तलवार की मुठिया पकड़े और धनुष धारण किये हुए शूरता से लड़कर देवताओं की बराबरी कर रहे थे।

टिप्पणी—उपमा और यमक की संसृष्टि।

निपातितसुहृत्स्वामिपितृव्यभ्रातृमातुलम् ।
पाणिनीयमिवालोकि धीरैस्तत्समराजिरम् ॥७५॥

अर्थ—जिस पर मित्र, स्वामी, चाचा, भाई तथा मामा-सभी सगे-सम्बन्धी मारे गये,—ऐसी उस रणभूमि को धीर और बुद्धिमान लोगों ने पाणिनि के उस अष्टाध्यायी व्याकरण की भाँति देखा, जिसमें 'सुहृत्', 'स्वामी', 'पितृव्य' 'भ्रातृ' तथा 'मातुल'—ये सब शब्द निपात संज्ञा से सिद्ध किये गये हैं।

अभावि सिन्धवा संध्याभ्रमदग्रुधिरतोयया ।
हते योद्धुं जनः पार्थो स दग्रधि रतो यया ॥७६॥

अर्थ—(उस भीषण युद्ध में) सन्ध्या के लाल बादलों की भाँति रक्त की नदियाँ बह रही थीं। उनके कारण दृष्टि का अवरोध करनेवाली धूल बैठ गयी थी, जिससे वीरों का उत्साह और भी बढ़ गया था।

टिप्पणी—उपमा और यमक की संसृष्टि।

विदलत्पुष्कराकीर्णाः पतच्छङ्खकुलाकुलाः ।
तरत्पत्ररथा नद्यः प्रासर्पन्रक्तवारिजाः ॥७७॥

अर्थ—हाथियों की कटी हुए सूंडों (पक्ष में, विकसित कमलों) से व्याप्त, गिरती हुई ललाट की हड्डियों से संकुलित (शंखों से संकुलित) तथा तैरते हुए वाहनों एवं रथों से युक्त (पत्तियों से युक्त) रक्त की नदियाँ (लाल रंग के पानी वाली नदियाँ) बह रही थीं।

टिप्पणी—श्लेष अलंकार।

असृग्जनोऽस्त्रक्षतिमानवमज्जरयादनम् ।
रक्षःपिशाचं मुमुदे नवमज्जवसादनम् ॥७८॥

अर्थ—अस्त्रों के प्रहार से आहत वीर-गण इधर रक्त का वमन कर रहे थे और उनका वेग बहुत क्षीण हो गया था और उधर नवीन मज्जा और वसा के खानेवाले राक्षस और पिशाच गण प्रसन्न हो रहे थे।

टिप्पणी—काव्यलिंग और यमक की संसृष्टि।

चित्रं चापैरपेतज्यैः स्फुरद्रक्तशतह्रदम् ।
पयोदजालमिव तद्वीराशंसनमाबभौ ॥७९॥

अर्थ—वह भयंकर युद्धभूमि इधर-उधर पड़े हुए प्रत्यंचा-विहीन धनुषों से विचित्र दिखाई पड रही थी और उसमें स्थान-स्थान पर रक्त उसी प्रकार चमक रहा था जिस प्रकार बिजली चमकती है। इस प्रकार वह युद्ध भूमि (प्रत्यंचा रहित इन्द्र धनुष से चित्र-विचित्र तथा बिजली की चमक से सुशोभित) मेघ समूह के समान शोभा पा रही थी।

टिप्पणी—उपमा अलंकार।

बन्धौ विपन्नेऽनेकेन नरेणेह तदन्तिके।

अशोचि सैन्ये घण्टाभिर्न रेणे हतदन्तिके ॥८०॥

अर्थ—सेनाओं में बन्धुजनों की मृत्यु हो जाने पर अनेक लोग उनके समीप आकर शोक प्रकट करते थे तथा हाथियों के मर जाने पर उनके घण्टे नहीं बजते थे।

टिप्पणी—काव्यलिंग और यमक की संसृष्टि।

कृत्तैः कीर्णा मही रेजे दन्तैर्गात्रैश्च दन्तिनाम्।

क्षुण्णलोकासुभिर्मृत्योर्मुसलोलूखलैरिव ॥८१॥

अर्थ—टूटे हुए हाथियों के दाँतों तथा (उनके विशाल) शरीरों से व्याप्त वह रण-स्थली इस प्रकार दिखाई पड़ रही थी मानों प्राणियों के प्राणों को कूटनेवाले मृत्यु अर्थात् यमराज के मूसल और उलूखलों से भरी हुई है।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलंकार।

युद्धमित्थं विधूतान्यमानवानभियो गतः।

चैद्यः परान्पराजिग्ये मानवानभियोगतः ॥८२॥

अर्थ—अभिमानी शिशुपाल ने स्वयं युद्धभूमि में पहुँच कर दूसरों का मान नाश करनेवाले निर्भीक शत्रु-सैनिकों का अवरोध करके उन्हें पराजित कर दिया।

टिप्पणी—यमक अलंकार।

[अब आगे के पाँच श्लोकों द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण के आक्रमण का वर्णन किया गया है—]

अथ वक्षोमणिच्छायाच्छुरितापीतवाससा।

स्फुरदिन्द्रधनुर्भिन्नतडितेव तडित्वता ॥८३॥

द्व्यक्षरः

नीलेनानालनलिननिलीनोल्ललनालिना।

ललनालालनेनालं लीलालोलेन लालिना ॥८४॥

ये और जो स्वर्ग में भी प्रख्यात है, उन निरामय अर्थात् रोग-दोष रहित भगवान श्रीकृष्ण का इस पृथ्वी पर अवरोध करने वाला दूसरा कौन था ? (अर्थात् कोई नहीं) ।

टिप्पणी—यह भी प्रतिलोम यमक है। इस श्लोक के वाक्यों को उलट कर पढ़ने से वही शब्द तथा वही अर्थ फिर होता है। कितना उच्चकोटि का चमत्कार है साथ ही कथा प्रवाह में भी कोई बाधा नहीं पड़ती है।

नियुज्यमानेन पुरः कर्मण्यतिगरीयसि ।
आरोप्यमाणोरुगुणं भर्त्रा कार्मुकमानमत् ॥६१॥

अर्थ—सर्व प्रथम अत्यन्त गभीर युद्ध कार्यों में नियुक्त होनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण ने चढ़ायी गयी विशाल प्रत्यचा से युक्त अपने धनुष को झुकाया।

टिप्पणी—समासोक्ति अलंकार।

तत्र बाणाः सुपरुषः समधीयन्त चारवः ।
द्विषामभूत्सुपरुषस्तस्याकृष्टस्य चारवः ॥६२॥

अर्थ—(तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण ने) उस धनुष पर सुन्दर गांठों वाले बाणों को चढ़ाकर उसकी प्रत्यचा को खींचा। इस प्रकार उनके प्रत्यचा खींचने से (जो) अत्यन्त कठोर टंकार हुई (उससे शत्रुओं के दिल दहल उठे) ।

टिप्पणी—यमक और विरोध अलंकार।

पश्चात्कृतानामप्यस्य नराणामिव पत्रिणाम्,
यो यो गुणेन संयुक्तः स स कर्णान्तमाययौ ॥६३॥

अर्थ—जिस प्रकार पहले स्वामी द्वारा अनादर करके पीछे हटाये गये लोग अपने गुण के जोर से स्वामी के समीप फिर पहुँच जाते हैं उसी प्रकार पहले जो बाण (भगवान श्रीकृष्ण के) पीछे अर्थात् पीठ पर लगे हुए तरकस के भीतर पड़े थे, वे गुण अर्थात् धनुष की प्रत्यचा के सम्पर्क से भगवान श्रीकृष्ण के कान के समीप पहुँच गये।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि भगवान् श्रीकृष्ण ने बाणो को धनुष पर चढ़ा कर और डोरी को कान तक खींच कर उन्हे छोड़ना शुरू किया। श्लेष से संकीर्ण उपमा।

द्व्यक्षरः

प्रापे रूपी पुराऽरेपाः परिपूरी परः परैः।
रोपैरपारैरुपरि पुपूरेऽपि परोऽपरैः ॥६४॥

अर्थ—पातक रहित परम पुरुष जिन भगवान् श्रीकृष्ण ने पूर्वकाल में अनेक बार मत्स्य, कूर्म आदि अवतार धारण कर अपने भक्तों की कामनाएँ पूरी की थीं, उन्हें शत्रुओं ने अवरुद्ध कर लिया तथा उन्हें अनन्त बाणों से ऊपर से लेकर नीचे तक आच्छादित कर दिया।

टिप्पणी—इस श्लोक में भी केवल दो अक्षरों 'प' और 'र' का प्रयोग किया गया है। द्व्यक्षरानुप्रास अलंकार।

दिङमुखव्यापिनस्तीक्ष्णान्ह्रादिनो मर्मभेदिनः।
चिक्षेपैकक्षणेनैव सायकानहितांश्च सः ॥६५॥

अर्थ—(तदनन्तर) भगवान् श्रीकृष्ण ने समस्त दिशाओं को आच्छादित करने वाले, अत्यन्त तीक्ष्ण तथा क्रूर पंख की ध्वनि से युक्त अथवा सिंहनाद करने वाले, उन मर्मभेदी बाणों को तथा उन शत्रुओं को एक ही क्षण में निरस्त कर दिया।

टिप्पणी—तुल्ययोगिता अलंकार।

गूढचतुर्थः

शरवर्षी महानादः स्फुरत्कार्मुककेतनः
नीलच्छविरसौ रेजे केशवच्छलनीरदः ॥६६॥

अर्थ—(उस समय) बाणों की वृष्टि करते हुए, जोर से सिंहनाद करने वाले, चमकते हुए धनुष तथा ध्वजा से सुशोभित एवं नीले रंग के शरीर वाले भगवान् श्रीकृष्ण जल की वर्षा करने वाले, जोर से गरजने वाले, चमकते हुए इन्द्र धनुष से सुशोभित नीले मेघ के समान सुशोभित हो रहे थे।

टिप्पणा—संस्कृत में 'पा' धातु के दो अर्थ हैं पान करना तथा रक्षा करना। भगवान् श्रीकृष्ण के बाणों ने दोनों अर्थों का अनुसरण किया। तुल्ययोगिता अलंकार।

[नीचे के दो श्लोकों का अर्थ एक साथ ही होगा—]

द्वयक्षरः

क्रूरारिकारी कोरेककारकः कारिकाकरः।
कोरकाकारकरकः करीरः कर्करोऽर्करुक् ॥१०४॥
विधातुमवतीर्णोऽपि लघिमानमसौ भुवः।
अनेकमरिसंघातमकरोद्भूमिभर्वनम् ॥१०५॥

अर्थ—क्रूर शत्रुओं के संहारक, पृथ्वी के एकमात्र स्रष्टा, दुष्ट जनों को दण्ड देने वाले, कमल की कलियों के समान कोमल कर वाले, रण-भूमि में हाथियों को पछाड़ने वाले, शत्रु जनों के लिए अत्यन्त क्रूर दिखाई पड़ने वाले, सूर्य के समान तेजस्वी भगवान् श्रीकृष्ण ने पृथ्वी का भार उतारने के लिए अवतार धारण करके भी अनेक शत्रु-समूहों से पृथ्वी को भारी बना दिया था। (अर्थात् उन्हें मार-मार कर धरती पर गिरा दिया था)।

टिप्पणी—१०४ वें श्लोक में वृत्यनुप्रास है। केवल 'क' और 'र' शब्द का प्रयोग हुआ है। १०५ वें श्लोक में विरोधाभास अलंकार है।

द्वयक्षरः

दारी दरदरिद्रोऽरिदारुदारोऽद्रिदुर्दरः।
दूरादरोऽद्रादददरद्रोदोरुदारुहादरी ॥१०६॥

अर्थ—अनेक पत्नियों वाले, निर्भयचित्त, उदार हृदय, पर्वत के समान दुर्भेद्य, सौम्य मूर्ति, समस्त चराचर जगत् में व्याप्त, दानशील तथा सन्मार्ग का आदर करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण ने दूर से ही शत्रु-रूपी काष्ठों को विदीर्ण कर दिया।

टिप्पणी—[illegible] 'द' और 'र' [illegible] प्रयोग हुआ है। [illegible] अलंकार।

एकेपुणा सह्वतिथान्द्विपो भिन्दन्द्रुमानिव ।
स जन्मान्तररामस्य चक्रे सदृशमात्मनः ॥१०७॥

अर्थ—उन भगवान् श्रीकृष्ण ने केवल एक ही वाण से समूहों में स्थित शत्रुओं को वृक्षों की भाँति विदीर्ण करते हुए अपने पूर्व जन्म अर्थात् रामावतार के समान कार्य किया ।

टिप्पणी—श्रीरामचन्द्रजी ने वालि-वध के प्रसंग में एक ही वाण द्वारा सात ताल वृक्षों को काट गिराया था।

द्व्यक्षरः

शूरः शौरिरशिशिरैराशाशैराशु राशिशः ।
शारुः श्रीशरीरेशः शुशुरेऽरिशिरः शरैः ॥१०८॥

अर्थ—दुष्टजनों को नियन्त्रित करनेवाले, लक्ष्मी देवी के प्राणनाथ, शूरवीर भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने तीक्ष्ण एवं दिशाओं को व्याप्त करनेवाले (असंख्य) वाणों द्वारा शीघ्र ही शत्रुओं के राशि-राशि शिरों को काट गिराया ।

टिप्पणी—इस श्लोक में केवल श और र अक्षरों का प्रयोग हुआ है। द्व्यक्षरानुप्रास अलंकार।

व्यक्तासीदरितारीणां यत्तदीयास्तदा मुहुः ।
मनोहृतोऽपि हृदये लेगुरेषां न पत्रिणः ॥१०९॥

अर्थ—उस समय भगवान् श्रीकृष्ण के शत्रुओं की शत्रुता बारम्बार प्रकट हो रही थी, क्योंकि उनके वाण मन को हरनेवाले अर्थात् मारक होने पर भी उनके हृदयों पर लगते नहीं थे। (अर्थात् वे वक्षस्थल को चीर कर पार हो जाते थे) ।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि भगवान् श्रीकृष्ण के वाण तुरत ही प्राणों को हर लेते थे तथा शत्रुओं के वक्षस्थल को चीर कर पार हो जाते थे। विरोधाभास अलंकार।

अतालव्यः

नामाक्षराणां मलना मा भूद्भर्तुरतः स्फुटम् ।
अगृह्णत पराङ्गानामघ्नसं न मार्गणाः ॥११०॥

अर्थ—हमारे प्रभु के नाम के अक्षर कहीं मलिन न हो जायँ मानो इसी कारण से भगवान् श्रीकृष्ण के बाण शत्रुओं के प्राणों को तो ले लेते थे किन्तु उनके रक्त को नहीं ग्रहण करते थे।

टिप्पणी—बाणों के फलों पर प्रयोक्ता के नाम लिखे होते थे। इस श्लोक में तालु से उत्पन्न होने वाले अर्थात् इ, च, छ, ज, झ, ञ और श अक्षरों का प्रयोग नहीं हुआ है। इसे अतालव्य नामक चित्रबंध कहते हैं।

आच्छिद्य योधसार्थस्य प्राणसर्वस्वमाशुगाः।
ऐकागारिकवद्भूमौ दूराजग्मुरदर्शनम् ॥१११॥

अर्थ—भगवान् श्रीकृष्ण के वे बाण चोरों की भाँति शत्रुपक्षीय वीर समूहों का प्राण रूपी सर्वस्व अपहरण करके दूर से ही पृथ्वी में अदृश्य हो जाते थे।

भीमास्त्रराजिनस्तस्य बलस्य ध्वजराजिनः।
कृतघोराजिनश्चक्रे भुवः सरुधिरा जिनः ॥११२॥

अर्थ—जिन अर्थात् महावीर स्वामी का अवतार धारण करनेवाले भगवान श्रीकृष्ण ने विपक्षियों की उस सेना की, जो भयंकर अस्त्र समूहों से लसी हुई थी, ध्वजा-पताकों से सुशोभित थी एवं भयंकर युद्ध कर चुकी थी, भूमि को रक्त से लथपथ कर दिया।

टिप्पणी—चतुष्पाद यमक अलंकार।

मांसव्यधोचितमुखैः शून्यतां दधदक्रियम्।
शकुन्तिभिः शत्रुबलं व्यापि तस्येषुभिर्नभः ॥११३॥

अर्थ—मांस काटने में जिनके मुख सुपरिचित थे, उन सब पक्षियों तथा भगवान् श्रीकृष्ण के बाण समूहों ने शून्य और निष्क्रिय शत्रु-सैनिकों तथा आकाश को आच्छादित कर लिया।

टिप्पणी—तुल्ययोगिता अलंकार।

एकाक्षरः

दाददो दुद्ददुद्दादी दाददो दूददीददोः।
दुद्दादं दददे दुद्दे दादाददददोऽददः ॥११४॥

अर्थ—दानशील, दुष्टों को दुःख देने वाले, संसार को पवित्र करनेवाले, दुष्टों का विनाश करनेवाली भुजाओं को धारण करनेवाले, दाता तथा अदाता—दोनों को देनेवाले तथा बकासुर एवं पूतना आदि आततायियों को नष्ट करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने शत्रुओं पर (भीषण) अस्त्र चलाना शुरू किया।

टिप्पणी—इस श्लोक में केवल एक अक्षर 'द' का प्रयोग हुआ है। इसे एकाक्षर अनुप्रास अलकार कहते हैं।

प्लुतेभकुम्भोरसिजैर्हृदयक्षतिजन्मभिः ।
आवर्तयन्नदीरस्रैर्द्विषां तद्योषितां च सः ॥११५॥

अर्थ—भगवान् श्रीकृष्ण ने हाथियों के गण्डस्थलों तथा उन्हीं के समान रमणियों के कुचमण्डलों को भिगोनेवाले एव वक्षस्थल के घावों से उत्पन्न अथवा पति की मृत्यु के कारण हृदय की पीडा से उत्पन्न शत्रुओं के रक्त तथा उनकी स्त्रियों की आंसुओं से नदियाँ बहा दीं।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि भगवान् श्रीकृष्ण ने शत्रुओं के वक्षस्थलो को फाड कर उनसे इतना रक्त बहा दिया कि रक्त की नदिया बह निकली। उन नदियो में बडे-बडे हाथियो के गण्डस्थल तक भीग जाते थे। साथ ही यह भी अर्थ है कि भगवान श्रीकृष्ण ने शत्रुपक्षीय वीर पतियों को मारकर उनकी रमणियो के हृदय में इतना दुःख पहुचाया कि उनकी आसुओं से उनके हाथी के गण्डस्थल के समान स्तनमण्डल भीग गये और नदियों की धारा बह निकली। तुल्ययोगिता अलकार।

अर्थत्रयवाची

सदामदबलप्रायः समुद्धतरसो बभौ ।
प्रतीतविक्रमः श्रीमान्हरिर्हरिरिवापरः ॥११६॥

अर्थ—सदा मस्त रहनेवाले, बलराम के प्रेमी, वाराह अवतार धारणकर पृथ्वी का भार उतारनेवाले, वामनावतार धारण कर विचित्र पदन्यास करनेवाले, लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्ण उस समय मानो दूसरे हरि अर्थात् इन्द्र या सूर्य के समान सुशोभित हुए। (इन्द्र भी

सज्जनों को दुःख देनेवाले वल नामक असुर के सहारक हैं, अमृत के प्रभाव के कारण विष के प्रभाव से रहित हैं, सुप्रसिद्ध पराक्रमशाली तथा राज्य-लक्ष्मी से युक्त है ? और सूर्य भी अपने महान् उदय द्वारा सज्जनों के रोग-दोष को नाश करने वाले, वल प्रदान करनेवाले, जल को सोखनेवाले, आकाश गामी तथा शोभा से समन्वित हैं)।

टिप्पणी—इस श्लोक के तीन अर्थ होते हैं, जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। यह भी एक प्रकार का चित्रवन्ध है। इसमें उत्प्रेक्षा अलकार है, उपमा नही। श्लेष यहा उत्प्रेक्षा का अगभूत हो गया है, अत दोनों का सकर है।

द्विधा त्रिधा चतुर्धा च तमेकमपि शत्रवः ।
पश्यन्तः स्पर्धया सद्यः स्वयं पञ्चत्वमाययुः ॥११७॥

अर्थ—शत्रु (उस युद्ध भूमि मे) एक मात्र भगवान् श्रीकृष्ण को कहीं एक, कहीं दो, कहीं तीन और कहीं चार रूपों मे देखकर स्पर्धा के कारण स्वय मानों पञ्चत्व प्राप्त करने लगे अर्थात् मरने लगे।

टिप्पणी—शत्रु की स्पर्धा सर्वदा बढने की ही होती है। भगवान् को चार रूपो में देख कर वे पाच रूप में अर्थात् पचत्व मे परिणत हो गये। गम्या उत्प्रेक्षा।

समुद्गः

सदैव संपन्नवपू रणेषु स दैवसंपन्नवपू रणेषु ।
महो दधे स्तारि महानितान्तं महोदधेऽस्तारिमहा नितान्तम् ॥११८॥

अर्थ—सदा ही सम्पूर्ण शुभ लक्षणों से युक्त शरीरवाले, एव शत्रुओं के तेज का दलन करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण ने उस दैवी सहायता से युक्त रण मे वह प्रचण्ड तेज धारण किया, जो महा-समुद्र के पार तक पहुँच गया था।

टिप्पणी—इस श्लोक का प्रथम और तृतीय चरण ही भगि से द्वितीय और चतुर्थ चरण बन जाता है। यह समुद्ग बन्ध है। उपेन्द्रवज्रा छन्द।

इष्टं कृत्वार्थं पत्रिणः शार्ङ्गपाणे-
रैत्याधोमुख्यं मानिनन्भूमिमाशु ।

शुद्धया युक्तानां वैरिवर्गस्य मध्ये
भर्त्रा क्षिप्तानामेतदेवानुरूपम् ॥११९॥

अर्थ—शार्ङ्गपाणि भगवान श्रीकृष्ण के बाण अपना अभीष्ट कार्य पूरा कर नीचे मुख किए हुए शीघ्र ही भूमि में घुस गये। सचमुच यदि शुद्ध होते हुए भी किसी को उसका स्वामी शत्रुओं के बीच में छोड़ दे तो उसके लिए यही उचित है। अर्थात् उसका इसके अतिरिक्त और क्या कर्त्तव्य हो सकता है कि वह नीचा मुख करके कहीं छिप जाय।

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलकार। वैश्वदवी वृत्त। लक्षण—"पञ्चाश्वैश्छिन्ना वैश्वदेवी ममौ यौ॥"

चक्रबन्धः

सत्त्वं मानविशिष्टमाजिरभसादालम्ब्य भव्यः पुरो
लब्धाघच्चयशुद्धिरद्धुरतरश्रीवत्सभूमिर्मुदा।
मुक्त्वा काममपास्तभीः परमृगव्याधः स नादं हरे-
रेकौघैः समकालमभ्रमुदयी रोपैस्तदा तस्तरे ॥१२०॥

अर्थ—कल्याणमूर्ति, पापों के नष्टकर्त्ता, शुद्धता को प्राप्त, श्रीवत्स चिह्न से सुशोभित, उन्नत हृदय, अत्यन्त निर्भय, शत्रु-रूपी हरिणों के लिए व्याध स्वरूप, नित्य अभ्युदयशील भगवान् श्रीकृष्ण ने पहले युद्ध के अनुराग से प्रेरित होकर अहकार युक्त बल का आश्रय लेकर तथा उत्साहपूर्वक सिंहनाद करके एक ही समय में तथा एक ही बार में बहुत से बाण फेंककर तत्काल आकाश को आच्छादित कर दिया।

टिप्पणी—यह चक्रबध है। इस चक्र के छठ गाल म "शिशुपाल वध" तथा तृतीय गाले में "माघकाव्यमिद" यह वाक्य निकलते है। यह शार्दूल विक्रीडित छन्द है। इसम रूपक और चक्रबन्ध की संसृष्टि है।

श्री माघ कविकृत शिशुपालवध महाकाव्य में उन्नीसवां सर्ग समाप्त॥१९॥

१ ॥ सर्वतोभद्र ॥

(२७ श्लोक)

स	का	र	ना	ना	र	का	स
का	य	सा	द	द	सा	य	का
र	सा	ह	वा	वा	ह	सा	र
ना	द	वा	द	द	वा	द	ना
ना	द	वा	द	द	वा	द	ना
र	सा	ह	वा	वा	ह	सा	र
का	य	सा	द	द	सा	य	का
स	का	र	ना	ना	र	का	स

२ ॥ मुरजबन्ध ॥

(२१ श्लोक)

सा से ना ग म ना र म्भे

र से ना सी द ना र ना ।

ना र ना द ज ना म न

धी र ना ग म ना म या ॥

३ ॥ गोमूत्रिकाबन्ध ॥ (४६ श्लोक)

प्र पृ त्ते वि क स द्धा न सा ध ने प्य वि णा दि भि

प पृ पं वि क स द्वा न य ध मा प्य धि पा णि भि
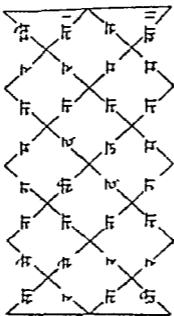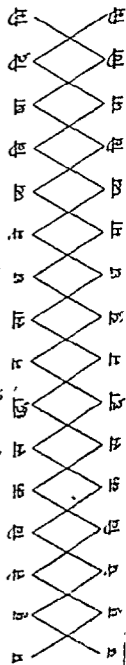
४ ॥ अर्धभ्रमक ॥ (७२ श्लोक)

अ	भी	क	म	ति	के	ने	हे
भी	ता	न	न्द	स्य	ना	श	ने
क	न	त्स	का	म	से	ना	के
म	न्द	का	म	क	म	स्य	ति

५ ॥ चक्रबन्ध ॥ (१२० श्लोक)
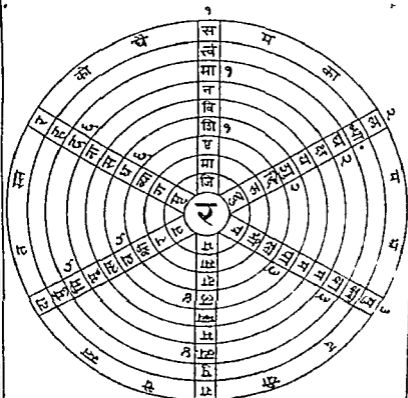
वीसवाँ सर्ग

मुखमुल्लसितत्रिरेखमुच्चैर्भिदुरभ्रूयुगभीषणं दधानः ।
समिताविति विक्रमानमृष्यन्गतभीराह्वत चेदिराण्मुरारिम् ॥१॥

अर्थ—इस प्रकार युद्ध में भगवान् श्रीकृष्ण के पराक्रम का न सहन कर सकने के कारण शिशुपाल की भ्रुकुटियाँ टेढ़ी हो गयीं, उसके उन्नत ललाट पर उठी हुई तीन टेढ़ी रेखाएँ उसके मुख को भयकर बनाने लगीं और वह निर्भय होकर भगवान् श्रीकृष्ण को युद्ध के लिए ललकारने लगा।

टिप्पणी—काव्यलिंग अलकार। औपच्छन्दसिक वृत्त।

शितचक्रनिपातसंप्रतीक्षं वहतः स्कन्धगतं च तस्य मृत्युम् ।
अभिशौरि रथोऽथ नोदिताश्वः प्रययौ सारथिरूपया नियत्या ॥२॥

अर्थ—तदनन्तर मानों तीक्ष्ण सुदर्शन चक्र के आघात की प्रतीक्षा करनेवाली मृत्यु को कन्धे पर बैठाये हुए उस शिशुपाल का रथ सारथी-रूपी दुर्भाग्य द्वारा घोड़ों के प्रेरित करने से भगवान् श्रीकृष्ण के सामने आकर खड़ा हो गया।

टिप्पणी—रूपक अलकार।

अभिचैद्यमगाद्रथोऽपि शौरेरवनिं जागुडकुङ्कुमाभिताम्रैः ।
गुरुनेमिनिपीडनावदीर्णव्यसुदेहस्रुतशोणितैर्विलिम्पन् ॥३॥

अर्थ—इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण का वह रथ भी शिशुपाल के सम्मुख दौड़ा, जो जगुड देश में उत्पन्न केशर के रंग के समान लाल एवं भारी चक्र के आघात से पीसने के कारण धरती पर पड़े हुए मृत प्राणियों के देहों से निकले हुए रक्त से धरती को रंग रहा था।

स निरायतकेतनांशुकान्तः कलनिक्वाणकरालकिङ्किणीकः ।
विरराज रिपुक्षयप्रतिज्ञामुखरो मुक्तशिखः स्वयं नु मृत्युः ॥४॥

अर्थ--(भगवान् श्रीकृष्ण के) उस रथ पर दीर्घाकार एक ध्वज गडा हुआ था जिस पर विस्तृत एव सुन्दर पताका फहरा रही थी, साथ ही उसमे मधुर ध्वनि करनेवाले घुघुरू बज रहे थे। इससे वह रथ ऐसा मालूम पड रहा था मानो साक्षात् काल ही अपनी शिखा खोलकर शत्रु के सहार की प्रतीक्षा करता हुआ सुशोभित हो रहा हो।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलकार।

सजलाम्बुधरारवानुकारी ध्वनिरापूरितदिङ्मुखो रथस्य।
अगुणीकृतकेकमूर्ध्वकण्ठैः शितिकण्ठैरुपकर्णयाम्बभूवे ॥५॥

अर्थ—भगवान् श्रीकृष्ण के उस रथ के चलने की ध्वनि जल से भरे हुए मेघो के गर्जन के समान गभीर थी और दिशाओं को पूरित कर रही थी। जिससे मयूरवृन्द अपनी गर्दन उठा उठा कर उच्च स्वर से केका ध्वनि करते हुए उसे कान लगाकर सुन रहे थे।

टिप्पणी—भ्रान्तिमान् अलकार की ध्वनि।

अभिवीक्ष्य विदर्भराजपुत्रीकुचकाश्मीरजचिह्नमच्युतोरः।
चिरसेवितयापि चेदिराजः सहसानाप रुषा तदैव योगम् ॥६॥

अर्थ—चेदिनरेश शिशुपाल यद्यपि बहुत पहले ही से क्रुद्ध था किन्तु इस समय भगवान श्रीकृष्ण के वक्षस्थल मे विदर्भराज पुत्री रुक्मिणी के स्तनों के कुकुम चिह्नो को देखकर वह इस प्रकार अत्यन्त क्रुद्ध हो गया मानों इसके पूर्व उसे कभी क्रोध आया ही नहीं था।

टिप्पणी—कामी लोग दूसरे कामी को अपनी प्रियतमा के भोग चिह्नो से चिह्नित देख कर उद्दीप्त हो ही जाते है। उत्प्रेक्षा और समासोक्ति का सकर।

जनिताशनिशब्दशङ्कमुच्चैर्धनुरास्फालितमध्वनन्नृपेण।
चपलानिलचोद्यमानकल्पक्षयकालाग्निशिखानिभस्फुरज्ज्यम् ॥७॥

अर्थ—चेदिराज शिशुपाल ने जब अपने धनुष की प्रत्यचा खींचकर भीषण टकार किया तब प्रबल वायु से बढ़ी हुई प्रलयाग्नि की ज्वाला के समान उसके धनुष की डोरी चमकने लगी तथा धनुष ने ऐसा भीषण शब्द किया कि उससे बिजली गिरने के शब्द की आशका होने लगी।

टिप्पणी—उपमा, भ्रान्तिमान् तथा काव्यलिङ्ग का सकर।

समकालमिवाभिलक्षणीयग्रहसंधानविकर्षणापवर्गैः ।
अथ साभिसरं शरैस्तरस्वी स तिरस्कर्तुमुपेन्द्रमभ्यवर्षत् ।।८।।

अथ—तदनन्तर परम बलशाली शिशुपाल एक साथ ही अनुचरों समेत भगवान् श्रीकृष्ण को अपने बाणों से अभिभूत करने के लिए धनुष पर बाणों को रखने लगा, धनुष को खींचने लगा तथा बाणों को छोडते हुए बाण वृष्टि करने लगा।

ऋजुताफलयोगशुद्धिभाजा गुरुपक्षाश्रयिणा शिलीमुखानाम् ।
गुणिना नतिमागतेन संधिः सह चापेन समञ्जसो बभूव ।।९।।

अथ—उन सरल-सीधे, फलयुक्त तथा विशाल पखों से सुशोभित बाणों का प्रत्यचायुक्त एव झुके हुए धनुष के साथ मिलना ठीक ही था। क्योंकि सरल स्वभाव वाले, कल्याणकारी एव भीतर बाहर की शुद्धता से युक्त तथा बडे लोगों मे आश्रय पाने योग्य मनुष्य का गुणवान् तथा विनम्र मनुष्य से समागम होना उचित ही है।

टिप्पणी—समासोक्ति अलकार।

अविपक्षतमे कृताधिकारं वशिना कर्मणि चेदिपार्थिवेन ।
अरसद्धनुरुच्चकैर्दधार्तिप्रसभाकर्षणवेपमानजीवम् ।।१०।।

अर्थ—स्वतत्र प्रकृति चेदिनरेश शिशुपाल अपने दृढ धनुष को बड़े ही कठोर काम में लगा रहा था और खूब बल लगाकर उसकी कोटियों को खींच रहा था। मानो इसी से व्याकुल होकर उसके धनुष की प्रत्यचा काँप रही थी और धनुष भीषण चीत्कार कर रहा था।

टिप्पणी—निरकुश राजा द्वारा दुष्कर काय म नियुक्त पराधान व्यक्ति जब जबरदस्ती घसीटा जाता ह तब वह काँपता और चिल्लाता ही है। समासोक्ति अलकार।

अनुसंततिपातिनः पटुत्वं दधतः शुद्धिभृतो गृहीतपक्षाः ।
वदनादिव वादिनोऽथ शब्दाः क्षितिभर्तुर्धनुषः शराः प्रसस्रुः ११

अथ—तदनन्तर राजा शिशुपाल के उस धनुष से निरन्तर चलने वाले, लक्ष्य सिद्ध करने की सामर्थ्य रखनेवाले, विशुद्ध लोहे के फल से युक्त एव कक पक्ष से सुशोभित बाण समूह व्याख्यान देनेवाले वादी के मुख से वचन की भाँति भट-भट निकलने लगे।

टिप्पणी—वचन के पक्ष मे भी वाण के सभी विशेषण प्रयुक्त होंगे। उनका अर्थ इस प्रकार से होगा—निरन्तर निकलने वाले, अर्थ प्रतिपादन में समर्थ, व्याकरण सम्मत, किसी न किसी पक्ष से युक्त। श्लेष विशिष्ट उपमा अलकार।

गवलासितकान्ति तस्य मध्यस्थितघोरायतवाहुदण्डनासम् ।
ददृशे कुपितान्तकोन्नमद्भ्रूयुगभीमाकृति कार्मुकं जनेन ॥१२॥

अर्थ—शिशुपाल का वह धनुप भैंसे के समान काले रग का था और उसके मध्य मे शिशुपाल का भयकर और ।विस्तृत बाहुदण्ड नासिका के समान भीषण दिखाई पड़ रहा था। इस प्रकार क्रुद्ध यमराज की ऊंची भ्रुकुटियों से भीषण मुख-मण्डल के समान वह लोगों को (अत्यन्त भयकर) दिखायी पड़ रह था।

टिप्पणी—उपमा अलकार।

तडिदुज्ज्वलजातरूपपुङ्खैः समयः श्याममुखैरभिध्वनद्भिः ।
जलदैरिव रंहसा पतद्भिः पिदधे संहतिशालिभिः शरौघैः ॥१३॥

अर्थ—बिजली क समान उज्ज्वल सुनहले परों से सुशोभित लोहे के समान श्यामल मुखयुक्त, सन-सन शब्द करते हुए वेग से दौड़नेवाले तथा परस्पर मिले हुए बाणों के समूहों ने उन मेघों के समूहों की भाँति आकाश को व्याप्त कर लिया था जो बिजली के चमकने से उज्ज्वल दिखायी पड़ते हैं, लोहे के समान काले रग के होते हैं, गरजते हुए वेग से दौड़ते चलते हैं तथा परस्पर मिले हुए होते हैं।

टिप्पणी—उपमा अलकार।

शितशल्यमुखावदीर्णमेघक्षरदम्भःस्फुटतीव्रवेदनानाम् ।
सवदस्रुततीव चक्रवालं ककुभामार्णनिपुः सुवर्णपुङ्खाः ॥१४॥

अर्थ—सुवर्ण के परवाले उन वाणों के समूहों ने समस्त दिशाओं को व्याप्त कर लिया था। उनके तीक्ष्ण फलों से विदीर्ण मेघों से जो पानी की बूंदें चू रही थीं, उससे ऐसा मालूम पड़ता था मानों दिङ्मण्डल अपनी तीव्र वदना को आँसूओं की धारा बहाते हुए प्रकट कर रहा था।

टिप्पणी—[illegible] अलकार।

अर्थ—शिखर की भाँति सुदृढ एवं उन्नत स्कन्ध से युक्त, एक दिशा को घेरे हुए तथा एक बार ऊपर की ओर फैलायी हुई भगवान श्रीकृष्ण की बाईं भुजा को सैनिकों ने पर्वत के समान भली भाँति देखा।

तमकुण्ठमुखाः सुपर्णकेतोरिषवः क्षिप्तमिषुव्रजं परेण।
विभिदामनयन्त कृत्यपक्षं नृपतेर्नैतुरिवायथार्थवर्णाः ॥२३॥

अर्थ—गरुडध्वज भगवान् श्रीकृष्ण के तीक्ष्ण मुखवाले बाणों ने शत्रुओं द्वारा फेंके गये बाणों के जाल को उसी प्रकार काट कर फेंक दिया जिस प्रकार मिथ्या एवं कपट वचन बोलनेवाले अर्थात् उभय वेतनभोगी गुप्तचर जिगीषु राजा के मंत्री आदि के बीच भेद उत्पन्न कर उन्हें छिन्न-भिन्न कर देते हैं।

दयितैरिव खण्डिता मुरारेर्निशिखैः संमुखमुज्ज्वलाङ्गलेखैः।
लघिमानमुपेयुषी पृथिव्यां विफला शत्रुशरावलिः पपात ॥२४॥

अर्थ—अंगों में स्पष्ट चित्र लेखा से (पक्ष में, नखरेखा से) युक्त प्रियतम के समान भगवान् श्रीकृष्ण के बाणों से सामने ही खण्डित (अपमानित) एवं विफल होने के कारण लघुता को प्राप्त होनेवाली शत्रुओं की बाणपंक्तियाँ (अपने आप ही) धरती पर गिर पड़ीं।

टिप्पणी—जिस प्रकार कोई नायिका सपत्नी की नखरेखा से चिह्नित प्रियतम के सामने ही अपमानित एवं खण्डित होकर शोक से मूर्च्छित होकर धरती पर गिर पड़ती है, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण के चित्रलेखा से अंकित बाणों के सामने शिशुपाल पक्षीय राजाओं की बाण-पंक्तियाँ भी खण्डित हो कर गिर पड़ीं। समासोक्ति अलंकार।

प्रमुखेऽभिहताश्च पत्रवाहाः प्रसभं माधवमुक्तवत्सदन्तैः।
परिपूर्णतरं भुवो गतायाः परतः कातरवत्प्रतीपमीयुः ॥२५॥

अर्थ—शिशुपाल के फेंके हुए बाण भगवान् श्रीकृष्ण के वत्सदन्त नामक बाणों से मुखाग्र में वेगपूर्वक टकराकर खण्डित हो गये और कायरों की भाँति जहाँ तक आये थे वहाँ से पीछे की ओर उलटे ही वापस लौट गये।

टिप्पणी—उपमा अलंकार।

इतरेतरसंनिकर्षजन्मा फलसंघट्टविकीर्णविस्फुलिङ्गः ।
पटलानि लिहन्बलाहकानामपरेषु क्षणमज्वलत्कृशानुः ॥२६॥

अर्थ—भगवान् श्रीकृष्ण और शिशुपाल के वाण समूह परस्पर टकराकर अग्नि उत्पन्न करने लगे। उनके फलों के टकराने से (रण-भूमि में) चारों ओर चिनगारियाँ फूटने लगीं। वह अग्नि बादलों के समूहों का स्पर्श करती हुई शत्रु की सेना में क्षण भर में ही प्रज्वलित हो उठी।

टिप्पणी—अतिशयोक्ति अलंकार।

शरदीव शरश्रिया विभिन्ने विभुना शत्रुशिलीमुखाभ्रजाले।
विकसन्मुखवारिजाः प्रकामं चकुराशा इव यादवध्वजिन्यः ॥२७॥

अर्थ—जिस प्रकार शरद् ऋतु में बादलों के दूर हो जाने से दिशाएँ सुशोभित हो जाती हैं और कमल प्रफुल्ल हो उठते हैं उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने शर-समूहों द्वारा शत्रुओं के बाण जालों को काट बहाया, जिससे यदुवंशियों की सेना अत्यन्त प्रसन्न हो गयी और उसके मुख खिल उठे।

टिप्पणी—उपमा अलंकार।

स दिवं समचिच्छदच्छरौघैः कृततिग्मद्युतिमण्डलापलापैः ।
ददृशेऽथ च तस्य चापयष्टयामिषुरेकैव जनैः सकृद्विसृष्टा ॥२८॥

अर्थ—सूर्य-मण्डल को आच्छादित करने वाले अपने बाण समूहों से भगवान् श्रीकृष्ण ने आकाश को एकदम ढक दिया था, किन्तु उस समय उनके धनुष पर एक ही बाण दिखायी पड़ता था और लोगों ने भी उन्हें एक ही बाण फेंकते हुए देखा था।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलंकार।

भवति स्फुटमागतो विपक्षान्न सपक्षोऽपि हि निर्वृतेर्विधाता ।
शिशुपालबलानि कृष्णमुक्तः सुतरां तेन ततापं तोमरौघः ॥२९॥

अर्थ—शत्रुओं की ओर से आया हुआ सपक्ष अर्थात् मित्र भी (पक्ष में, पंख युक्त बाण) सुखदायक नहीं होता (तो फिर भला बाणइत्यादि

के बीच में अकेले इसलिए जाग रहे थे कि वे तीनों भुवनों की रक्षा करने के लिए सदैव जागने वाले परम पुरुष थे।

टिप्पणी—विरोधाभास और काव्यलिंग का संकर।

अथ सूर्यरुचीव तस्य दृष्टावुदभूत्कौस्तुभदर्पणं गतायाम्।
पटु धाम ततो न चाद्भुतं तद्विभुरिन्दुर्कविलोचनः किलासौ ३७

अर्थ—(जिस प्रकार सूर्य के प्रतिबिम्ब के दर्पण में प्रतिफलित होने पर उसके द्वारा भी अन्धकार दूर हो जाता है उसी प्रकार) सूर्य के समान तेजस्वी भगवान् श्रीकृष्ण की दोनों आँखें दर्पण के समान कौस्तुभ मणि पर जब आकर पड़ीं, तो इससे तत्काल ही अन्धकार नाशक प्रचण्ड तेज बाहर फैल गया। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं थी क्योंकि चन्द्रमा और सूर्य-दोनों उन्हीं प्रभु के दोनों नेत्र ही तो हैं।

टिप्पणी—काव्यलिंग अलंकार।

महतः प्रणतेष्विव प्रसादः स मणेरंशुचयः ककुम्मुखेषु।
व्यक्रमद्विक्रमद्विलोचनेभ्यो ददद्रालोकमनारिलं बलेभ्यः ॥३८॥

अर्थ—जिस प्रकार महात्माओं का अनुग्रह उनके भक्तों पर स्पष्ट रूप से प्रकाशित होता है उसी प्रकार कौस्तुभ मणि का वह प्रचण्ड तेज सभी दिशाओं में फैल गया और उसके प्रकाश से भगवान् श्रीकृष्ण की सेना के समस्त सैनिकों की आँखें खुल गयीं और उन्हें संज्ञा प्राप्त हो गयी।

टिप्पणी—उपमा अलंकार।

प्रकृतिं प्रतिपादुकैश्चपादैश्चकल्पे भानुमतः पुनः प्रसर्तुम्।
तमसोऽभिभवादपास्य मूर्च्छामुपजीवत्सहसैव जीवलोक ॥३९॥

अर्थ—अपनी स्वाभाविक अवस्था [illegible] कर सूर्य की किरणें फिर विस्तृत होने में समर्थ हो गयीं और संसार के जीव-जन्तु भी अन्धकार के दूर हो जाने से एकाएक मूर्च्छा त्याग कर सावधान हो गये।

टिप्पणी—काव्यलिंग अलंकार।

घनमंतमसैर्जवेन भूयो यदुयोधैर्युधि रेचिरे द्विषन्तः।
ननु वारिधरापरोधमुक्तः सुतरामुत्तपते पतिः प्रभाणाम् ॥४०॥

अर्थ—उस घने अन्धकार के दूर हट जाने पर यदुवंशी सैनिक गण उस समय फिर वेगपूर्वक शत्रुपक्षीय सैनिकों का उसी प्रकार संहार करने लगे। क्यों न हो, मेघों के आवरण से मुक्त सूर्य और अधिक उत्ताप पैदा करता होता है।

टिप्पणी—दृष्टान्त अलंकार।

व्यवहार इवानृताभियोगं तिमिरं निर्जितवत्यथ प्रकाशे ।
रिपुरुल्बणभीमभोगभाजां भुजगानां जननीं जजाप विद्याम् ॥४१॥

अर्थ—जिस प्रकार न्याय निर्णय में मिथ्या कथन को सत्य कथन दूर हटा देता है, उसी प्रकार जब कौस्तुभ मणि के प्रकाश ने माया-जनित अन्धकार को दूर कर दिया तब शिशुपाल ने भयानक एवं दीर्घ आकार वाले सर्पों को उत्पन्न करने वाली विद्या अर्थात् मंत्र का जप किया।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि प्रस्वापन अस्त्र के विफल हो जाने पर क्रुद्ध शिशुपाल ने भुजगास्त्र का संधान किया। उपमा अलंकार।

पृथुदर्विभृतस्ततः फणीन्द्रा विषमाशीभिरनारतं वमन्तः ।
अभवन्युगपद्विलोलजिह्वा युगलीढोभयसृक्कभागमाविः ॥४२॥

अर्थ—(भुजगास्त्र का संधान करते ही) विशाल फण और भयानक दाढ़ों से युक्त निरन्तर विष का वमन करनेवाले भीषण सर्प एक साथ ही प्रकट हो गये। वे अपनी चंचल दोनों जीभों को अपने ओठों पर लपलपा रहे थे।

टिप्पणी—स्वभावोक्ति अलंकार।

कृतकेशविडम्बनैर्विहायो विजयं तत्क्षणमिच्छुभिश्छलेन ।
अमृताग्रभुवः पुरेव पुच्छं वडवाभर्तुरवारि काद्रवेयैः ॥४३॥

अर्थ—काले रङ्ग के कारण पूंछ के बालों का अनुकरण करनेवाले, कपटद्वारा विजय की अभिलाषिणी कद्रू के पुत्रों अर्थात् सर्पों ने जिस प्रकार पूर्व काल में अमृत के अग्रज एवं वडवाग्नि के पति उच्चैःश्रवा

की पूँछों को आवृत कर लिया था उसी प्रकार शिशुपाल की माया से उत्पन्न इन रणभूमि के सर्पों ने समस्त आकाश को व्याप्त कर लिया।

टिप्पणी—पुराणो की कथा के अनुसार एक बार कश्यप की पत्नी एव दक्ष प्रजापति की कन्या कद्रू और विनता में इस बात पर विवाद छिड गया कि इन्द्र के अश्व उच्चैःश्रवा की पूछ काली है या सफेद। कद्रू ने उसे काली बतलाया और विनता ने उसे सफेद। बात इतनी आगे बढ गयी कि इसके लिए एक दूसरी की दासी बनने को तैयार हो गयी। वस्तुत उच्चैःश्रवा की पूछें श्वेत थी। कद्रू को पहले ही यह बात जब मालूम हो गयी तो उन्होंने अपने पुत्रो—सर्पो—को बुला कर कहा—'वत्सो! मेरी बात यदि झूठी हो जायगी तो मैं जीवन भर के लिए सपत्नी की दासी बन जाऊगी, अत तुम लोग जैसे भी हो उच्चैःश्रवा की पूछो को काली करने का उपाय करो।' माता की इस अनुचित प्रार्थना को शेषनाग वासुकि आदि धर्मपरायण नागो ने तो अस्वीकार कर दिया, किन्तु अन्य क्षुद्र सर्पा ने अपनी माता की वचन-रक्षा के लिए उच्चैःश्रवा की पूछ को चुपके से जा कर लपेट लिया। जिससे वह काली दिखाई पडी। उपमा अलकार।

दधतस्तनिमानमानुपूर्व्या बभुरक्षिश्रवसो मुखे विशालाः।
भरतज्ञकविप्रणीतकाव्यग्रथिताङ्का इव नाटकप्रपञ्चाः ॥४४॥

अर्थ—मुख भाग (मुख-सन्धि) की ओर विस्तृत अर्थात् मोटे और पीछे की ओर क्रमशः सूक्ष्म अर्थात् पतले दिखायी पडने वाले वे सर्प—भरत के नाट्य- शास्त्र के नियमों को जानने वाले कवि द्वारा प्रणीत एव काव्य के गुणों से गुम्फित नाटक रचना की भाति सुशोभित हो रहे थे।

टिप्पणी—नाटका की मुख-सन्धिया को विस्तृत एव अन्यान्य प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श, निवर्हण सधियो को क्रमश सूक्ष्म रखना चाहिए। उपमा अलकार।

सविषश्वसनोद्धतोरुधूमव्यवधिम्लानमरीचि पन्नगानाम्।
उपरागवतेव तिग्मभासा वपुरौदुम्बरमण्डलाभमूहे ॥४५॥

अर्थ—(उन) सर्पों के मुँह से निकली हुई विषैली वायु से जो प्रचुर धूम राशि उत्पन्न हुई उससे सूर्य की किरणे मलिन पड गयीं, जिससे

सूर्य की आकृति तावें के तवे के समान लाल हो गयी और वह इस प्रकार दिखाई पड़ने लगी मानों राहु ने उसे ग्रस लिया हो।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलकार।

शिखिपिच्छकृतध्वजावचूडक्षणसाशङ्कविवर्तमानभोगाः ।
यमपाशवदाशुबन्धनाय न्यपतन्वृष्णिगणेषु लेलिहानाः ॥४६॥

अर्थ—बारम्बार अपनी जीभें लप-लपाते हुए वे सर्प गण भगवान् श्रीकृष्ण की सेना के ध्वजों के ऊपर लगी हुई मयूरों की पूछों से क्षण भर के लिए तो सशक हो कर पीछे की ओर लौट पडे किन्तु फिर यदुवंशियों की सेना को बाधने के लिए यमराज के पाश की भाँति उन पर टूट पडे।

टिप्पणी—उपमा अलकार।

पृथुवारिधिवीचिमण्डलान्तर्विलसत्फेनवितानपाण्डुराणि ।
दधति स्म भुजङ्गमाङ्गमध्ये नवनिर्मोकरुचिं ध्वजांशुकानि ॥४७॥

अर्थ—उन सर्पो के शरीर के बीच-बीच में, विस्तृत समुद्र की लहरों क मध्य में सुशोभित फेन-पुञ्ज की भाति श्वेत वर्ण की वे रथों की पताकाए, उनके नवीन केंचुल की कान्ति धारण कर रही थीं।

टिप्पणी—निदशना और उपमा का सकर।

कृतमण्डलबन्धमुल्लसद्भिः शिरसि प्रत्युरसं विलम्बमानैः ।
व्यरुचज्जनता भुजंगभोगैर्दलितेन्दीवरमालभारिणीव ॥४८॥

अर्थ—वे सर्प (भगवान् श्रीकृष्ण के) सैनिकों के शिरो पर कुण्डली बाँधकर बैठ गये और उनके वक्षस्थलों पर माला के समान लटकने लगे। उस समय उन्हें देखकर ऐसा मालूम पडता था मानों वे सैनिक फूले हुए नीले कमल की मालाएँ धारण किए हुए हों

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलकार।

परिवेष्टितमूर्तयश्च मूलादुरगैराशिरसः सरत्नपुष्पैः ।
दधुरायतवल्लिवेष्टितानामुपमानं मनुजा महीरुहाणाम् ॥४९॥

अर्थ—पैर से लेकर शिरतक रत्न रूपी पुष्पों से युक्त सर्पों से शरीर के ढक जाने के कारण वे सैनिक उन वृक्षों की शोभा धारण कर रहे थे, जिस पर नीचे से लेकर ऊपर तक कोई फूलों से लदी हुई लता लटक रही हो।

टिप्पणी—उपमा अलङ्कार।

बहुलाञ्जनपङ्कपट्टनीलद्युतयो देहमितस्ततः श्रयन्तः।
दधिरे फणिनस्तुरंगमेषु स्फुटपल्याणनिबद्धनध्रलीलाम् ॥५०॥

अर्थ—गाढे काजल की कीचड के समान काले रंग के वे सर्प गण घोडों के शरीरों पर पहुँच कर अपने शरीर को इधर उधर सरकाते हुए उनकी उज्ज्वल काठियों में बधी हुई रस्सियों की शोभा धारण कर रहे थे।

टिप्पणी—निदर्शना अलङ्कार।

प्रसृतं रभसादयोभिनीला प्रतिपाद परितोऽभिवेष्टयन्ती।
तनुरायतिशालिनी महाहेर्गजमन्दूरिव निश्चलं चकार ॥५१॥

अर्थ—लोहे के समान अत्यन्त नील वर्ण के (हाथियों के) प्रत्येक चरण को चारों ओर से लपटते हुए उन अत्यन्त लवे एव भीषण सर्पो ने जजीर के समान वेग से दौडते हुए हाथियों को निश्चल कर दिया।

टिप्पणी—उपमा अलङ्कार।

अथ सस्मितवीक्षितादवज्ञाचलितैकोन्नमितभ्रु माधवेन।
निजकेतुशिरःश्रितः सुपर्णादुदपप्तन्नयुतानि पक्षिराजाम् ॥५२॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण ने अवज्ञाभरी दृष्टि से मन्द-मन्द मुस्कराते हुए अपनी एक भौं से गरुडी पताका के ऊपर पर स्थित पक्षिराज गरुड की ओर ज्यों ही इशारा किया त्यों ही एक गरुड से हजारों गरुड उड उडकर बाहर निकल पडे।

टिप्पणी—स्वभावोक्ति अलङ्कार।

द्रुतहमरुचः खगाः खगेन्द्रादलघूदीरितनादमुत्पतन्तः।
चरमाक्षिपतोऽर्चिरग्रमूर्भिज्वलतः सप्तरुचेरिव स्फुलिङ्गाः ॥५३॥

अर्थ—समस्त सेना ने तपाये सुवर्ण के समान कान्तियुक्त एव उच्च स्वर से बोलते हुए गरुड से उत्पन्न होकर निकले उन हजारों गरुडों को क्षण भर के लिए जलती हुई अग्नि की ऊपर उठी हुई चिनगारियों की भाँति देखा।

टिप्पणी—उपमा अलकार।

उपमानमलाभि लोलपक्षक्षणविक्षिप्तमहाम्बुवाहमत्स्यैः।
गगनार्णवमन्तरा सुमेरोः कुलजानां गरुडैरिलाधराणाम् ॥५४॥

अर्थ—समुद्र के समान विशाल आकाश के मध्य में अपने चचल पखों से बडे-बडे मत्स्यों के समान विस्तृत मेघखण्डों को क्षण भर में विक्षिप्त कर देनेवाले उन गरुडों ने सुमेरु पर्वत के वशज पर्वतों की समानता धारण कर ली।

टिप्पणी—तात्पय यह है कि जिस प्रकार पूवकाल में पक्षधारी सुमरु पवत के वशज पवतो ने अपने पक्षो से समुद्र के भीतर बडे-बडे मत्स्यो को विक्षिप्त कर दिया था, उसी प्रकार इन गरुडो ने आकाश में स्थित विशाल मेघ-खण्डों को विक्षिप्त कर दिया। सुमेरु के वशज विशेषण देने का तात्पय यह है कि व सुनहले रग के थे। उपमा अलकार।

पततां परितः परिस्फुरद्भिः परिपिङ्गीकृतदिङ्मुखैर्मयूखैः।
सुतरामभवद्दुरीक्ष्यबिम्बस्तपनस्तरकिरणैरिवात्मदर्शः ॥५५॥

अर्थ—(उस समय) चारों ओर चमकती हुई एव दिशाओं को पीले वर्ण की बनानेवाली उन गरुड पक्षियों की कान्ति-किरणों से सक्रान्त होने के कारण सूर्य-मण्डल उसी प्रकार और भी दुर्दर्शनीय हो गया जिस प्रकार सूर्य की किरणों के पडने से दर्पण दुर्दर्शनीय बन जाता है।

टिप्पणी—अतिशयोक्ति अलकार।

दधुरम्बुधिमन्थनाद्रिमन्थभ्रमणायस्तफणीन्द्रपित्तजानाम्।
रुचमुल्लसमानवैनतेयद्युतिभिन्नाः फणभारिणो मणीनाम् ॥५६॥

अर्थ—उन गरुडों की पीली कान्तियाँ जब सर्पों के अत्यन्त काले शरीरों पर पड़ी तो उनकी वैसी ही शोभा हो गयी जैसी समुद्र

मन्थन के समय मन्दराचल पर्वत-रूपी मथानी के दण्ड के घुमाने से (उसमें रस्सी-रूप में) लपटे हुए वासुकि के पित्त के संसर्ग से (पर्वत में स्थित) मरकत मणियों की शोभा हुई थी।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि गरुड़ की पीली कान्ति से सर्पों की कालिमा एकदम लुप्त हो गयी। निदर्शना अलकार।

अभितः क्षुभिताम्बुराशिधीरध्वनिराकृष्टसमूलपादपौघः ।
जनयन्नभयद्युगान्तशङ्कामनिलो नागविपक्षपक्षजन्मा ॥५७॥

अर्थ—(रण भूमि में) दोनों ओर से क्षुब्ध हुए समुद्र के समान गंभीर ध्वनि वाली मूल समेत वृक्षों को उखाड़ फेंकने वाली एवं प्रलय की आशंका उत्पन्न करती हुई भयंकर आँधी के समान उन सर्प-शत्रु गरुड़ों के पंखों से निकली हुई वायु वहने लगी।

टिप्पणी—अतिशयोक्ति अलकार।

प्रचलत्पतगेन्द्रपत्रवातप्रसभोन्मूलितशैलदत्तमार्गैः ।
भयविह्वलमाशु दन्दशूकैर्विवशैराविविशे स्वमेव धाम ॥५८॥

अर्थ—उन दौड़ते हुए गरुड़ों के पंखों की भीषण वायु से बड़े-बड़े पहाड़ों के उखड़ जाने के कारण पृथ्वी के नीचे प्रवेश करने के मार्ग मिल गये, अतएव वे विवश सर्प भय-विह्वल होकर उन्हीं मार्गों द्वारा अपने लोक पाताल में प्रविष्ट हो गये।

टिप्पणी—अतिशयोक्ति अलकार।

खचरैः क्षयमक्षयेऽहिसैन्ये सुकृतैर्दुष्कृतवत्तदोपनीते ।
अयुगार्चिरिव ज्वलन्रुषाथो रिपुरादर्चिपमाजुहाव मन्त्रम ॥५९॥

अर्थ—जिस प्रकार पुण्य कर्म पातकों को नष्ट कर देते हैं उसी प्रकार उन गरुड़ों ने उन अनन्त सर्पों को नष्ट कर दिया। यह देखकर शिशुपाल ने क्रोध के कारण अग्नि के समान जलकर आग्नेय अस्त्र के मंत्र का स्मरण किया।

टिप्पणी—उपमा अलकार।

सहसा दधदुद्धताट्टहासश्रियमुत्त्रासितजन्तुना स्वनेन ।
विततायतहेतिबाहुरुच्चैरथ वेताल इवोत्पपात वह्निः ॥६०॥

अर्थ—तदनन्तर प्राणियों को भयभीत करनेवाले कठोर शब्दों से भीषण अट्टहास करते हुए एव अपनी विस्तृत बाहुओं के समान भीषण ज्वालाओं को ऊपर फैलाये हुए वह अग्नि भूत-वेताल के समान (उस रणभूमि मे) क्षणभर मे ही ऊपर पहुँच गयी।

टिप्पणी—उपमा अलकार।

चलितोद्धतधूमकेतनोऽसौ रभसादम्बररोहिरोहिताश्वः ।
द्रुतमारुतसारथिः शिखावान्कनकस्यन्दनसुन्दरश्चचाल ॥६१॥

अर्थ—ऊपर की ओर उठी चचल धूम-रूपी पताका से युक्त वेग पूर्वक आकाश पर चलनेवाले अश्व के समान अपने वाहन मृग के सुशोभित एव शीघ्रता से बहनेवाली वायु-रूपी सारथी से प्रेरित सुवर्ण के रथ अर्थात् द्रवरूप के समान मनोहर अग्नि चचल हो उठी।

टिप्पणी—उपमा अलकार।

ज्वलदम्बरकोटरान्तरालं बहुलार्द्राम्बुदपत्रबद्धधूमम् ।
परिदीपितदीर्घकाष्ठमुच्चैस्तरुवद्विश्वमुवोष जातवेदाः ॥६२॥

अर्थ—वह भीषण अग्नि कोटर के समान जलते हुए आकाश के मध्यभाग से युक्त, पत्तों के समान धूमिल जल युक्त विशाल मेघों से सुशोभित, काष्ठ के समान जलती हुई दिशाओं वाले ऊचे वृक्ष के समान समूचे जगत को जलाने लगी ॥६२॥

टिप्पणी—उपमा अलकार।

गुरुतापविशुष्यदम्बुशुभ्राः क्षणमालग्नकृशानुताम्रभासः ।
स्वमसारतया मषीभवन्तः पुनराकारमवापुरम्बुवाहाः ॥६३॥

अर्थ—अत्यन्त दाह से जल के सूख जाने के कारण मेघ (पहले सफेद रङ्ग के हो गये, फिर थोडी देर के लिए लगी हुई आग से लाल

रङ्ग के हो गये, और तदनन्तर नि सार होने से कारण वे पुन काले बन गये—इस प्रकार वे फिर अपने (नीले) रूप रग को प्राप्त हो गये।

टिप्पणी—अतिशयोक्ति अलकार।

ज्वलितानललोलपल्लवान्ताः स्फुरदष्टापदपत्रपीतभासः।
क्षणमात्रभवामभावकाले सुतरामापुरिनायतिं पताकाः ॥६४॥

अर्थ—जलती हुई आग की ऊष्मा से चमकते हुए सुवर्ण से निर्मित पीली पताकाओं के अचलों के अग्रभाग चचल होकर फड़फडाने लगे और पताकाए विनाश काल की थोडी देर रहने वाली दीर्घता को भली-भाँति प्राप्त हो गयीं। अर्थात् वे दीपक की लौ की तरह कुछ देर में बुझ गयी।

निखिलामिति कुर्वतश्चिराय द्रुतचामीकरचारुतामिव द्याम्।
प्रतिघातसमर्थमस्त्रमग्नेरथ मेघकरमस्मरन्मुरारिः ॥६५॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण ने इस प्रकार मानों समस्त आकाश मण्डल को चिरकाल के लिए तपे हुए सुवर्ण के समान विचित्र रग की बनाने वाली उस अग्नि को शान्त करने म समर्थ मघो को उत्पन्न करने वाले अस्त्र (वारुणास्त्र) का स्मरण किया।

चतुरम्बुधिगर्भधीरकुक्षेर्वपुषः संधिषु लीनसर्वसिन्धोः।
उदगुः सलिलात्मनस्त्रिधाम्नो जलवाहावलयः शिरोरुहेभ्यः ॥६६॥

अर्थ—जिनकी गभीर कुक्षि क भीतर चारों समुद्र समाये हुए हैं, और जिसके शरीर की सधियो मे समस्त नदियाँ व्याप्त हैं, उन्हीं सलिल रूप एव त्रिभुवनात्मक भगवान् श्रीकृष्ण क कशा से मघा की पक्तियाँ उत्पन्न होकर बाहर निकलने लगीं।

टिप्पणी—भगवान् के सम्बन्ध म ठीक यही बात अन्यत्र भी कही गया है—

यस्य कुक्षौ सागराः सप्त जीमूता नद्य सर्वागसन्धिषु।
कुक्षौ समुद्राश्चत्वारस्तस्मै तोयात्मने नमः॥

ककुभः कृतनादमास्तृणन्तस्तिरयन्तः पटलानि भानुभासाम् ।
उदनंसिपुरभ्रमभ्रसङ्घाः सपदि श्यामलिमानमानयन्तः ॥६७॥

अर्थ—(अस्त्र से उत्पन्न) उन मेघ समूहों ने गरजते हुए समस्त दिशाओं को अन्धादित कर लिया, सूर्य की किरणों को ढक लिया और आकाश मण्डल को श्यामल वर्ण का बना दिया। इस प्रकार वे शीघ्र ही समग्र रणभूमि में फैल गये।

टिप्पणी—स्वभावोक्ति अलकार।

तपनीयनिकर्षराजिगौरस्फुरदुच्चालतडिच्छटाट्टहासम् ।
अनुबद्धसमुद्धताम्बुवाहध्वनिताडम्बरमम्बरं बभूव ॥६८॥

अर्थ—कसौटी के पत्थर पर पडी सुवर्ण की रेखा के समान पीले वर्ण की चमकती हुई विद्युल्लता के रुप में अट्टहास करते हुए एव पक्तिबद्ध रूप में गरजते हुए उन मेघो से सम्पूर्ण आकाश मण्डल व्याप्त हो गया।

सवितुः परिभावुकैर्मरीचीनचिराभ्यक्तमतङ्गजङ्घभाभिः ।
जलदैरभितः स्फुरद्भिरुच्चैर्विदधे केतनतेव धूमकेतोः ॥६९॥

अर्थ—सूर्य की किरणों को तिरस्कृत करने वाले, तुरन्त ही तेल लगाये हाथी के शरीर की कान्ति के समान काले एव चारो ओर घूमते हुए उन विशाल मेघों ने (उस समय) मानों अग्नि के पताका पद को (धूमत्व) प्राप्त कर लिया था।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलकार।

ज्वलतः शमनाय चित्रभानोः प्रलयाप्लावमिवाभिदर्शयन्तः ।
ववृषुर्वृषनादिनो नदीनां प्रतटारोपितवारि वारिवाहाः ॥७०॥

अर्थ—उस जलती हुई भीषण अग्नि को शान्त करने के लिए मानों प्रलय काल की भीषण बाढ़ का दृश्य दिखलाते हुए, सांड़ के

समान गरजते हुए उन मेघों ने इतनी वृष्टि की कि नदियों के जल उनके तटों में नहीं समा सके (अर्थात् नदियाँ उमड़ पड़ी)।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि मघा ने प्रलयकाल के समान भीषण वृष्टि की।

मधुरैरपि भूयसा स मेघ्यैः प्रथमं प्रत्युत वारिभिर्दिदीपे ।
पवमानसखस्ततः क्रमेण प्रणयक्रोध इवाशमद्विवादैः ॥७१॥

अर्थ—जिस प्रकार प्रणय-कोप पहले मीठी मीठी बातों से और भी बढ़ जाता है, और फिर धीरे धीरे अपने आप ही शान्त हो जाता है उसी प्रकार वह अग्नि भी पहले मेघों के सुस्वादु जल के पड़ने से और प्रज्वलित हो उठी किन्तु फिर धीरे-धीरे अपने आप शान्त हो गयी।

टिप्पणी—उपमा अलंकार।

परितः प्रसभेन नीयमानः शरवर्षैरवसायमाश्रयाशः ।
प्रबलेषु कृती चकार विद्युद्व्यपदेशेन घनेष्वनुप्रवेशम् ॥७२॥

अर्थ—चारो ओर से प्रचण्ड वेग से होने वाली उस जल वृष्टि से क्षय को प्राप्त होने वाली वह अग्नि बिजली के बहाने से उन्हीं प्रबल मेघों के भीतर प्रविष्ट हो गयी।

टिप्पणी—बलवान शत्रु द्वारा पराजित होने पर नीतिमान लोग या तो परदेश भाग जाते हैं या उसी की शरण में चले जाते हैं। समासोक्ति अलंकार।

प्रयतः प्रशमं हुताशनस्य क्वचिदालक्ष्यत मुक्तमूलमर्चिः ।
बलभित्प्रहितायुधाभिघातात्त्रुटितं पत्रिपतेरिवैकपत्रम् ॥७३॥

अर्थ—नाश को प्राप्त होने वाली उस अग्नि की मूल रहित ज्वाला, बल के घातक इन्द्र द्वारा प्रयुक्त वज्र की चोट से कटे हुए गरुड़ के एक पंख के समान कहीं कहीं दिखायी पड़ रही थी ॥७३॥

टिप्पणी—पुराणों की एक कथा के अनुसार अपनी माता विनता को दासता से छुड़ाने के लिए गरुड़ ने एक बार स्वर्ग से अमृत कलश उठा कर जब भागने का यत्न किया था तो इन्द्र ने अपने वज्र से उनका एक पंख काट गिराया था। उपमा अलंकार।

व्यगमन्सहसा दिशां मुखेभ्यः शमयित्वा शिखिनं घनाघनौघाः ।
उपकृत्य निसर्गतः परेषामुपरोध न हि कुर्वते महान्तः ॥७४॥

अर्थ—वह सघन मेघों की 'मालाएँ अग्नि को शान्त कर शीघ्र ही दिशाओं में विलीन हो गयीं। क्यों न हो, महान् लोग स्वभाव से ही दूसरों का उपकार करके वहाँ अपनी स्थिति से किसी प्रकार की रोक-टोक नहीं करते। (अर्थात् वे उपकार करके फिर वहाँ रुकते नहीं)

टिप्पणी—महान् पुरुष यदि बिना किसी काम के कहीं रुकते है तो उससे दूसरे लोगों को भी वहाँ रुकना पड जाता है। अर्थान्तरन्यास अलकार।

कृतदाहमुदर्चिषः शिखाभिः परिषिक्त मुहुरम्भसा नवेन ।
विगताम्बुधरावर्णं प्रपेदे गगन तापितपायितासिलक्ष्मीम् ॥७५॥

अर्थ—पहले आकाश अग्नि की लपटों से सतप्त हो गया था फिर मेघों के नूतन जल से बारम्बार सींचने के कारण वह शीतल हो गया, फिर मेघ रूपी घावों के दूर हट जाने से वह उसी प्रकार सुशोभित होने लगा जिस प्रकार पहले तपाकर लाल करने के उपरान्त पानी में बुझा देने से तलवार सुशोभित होती है।

टिप्पणी—रूपक और निदशना का सकर।

इति नरपतिरस्त्र यद्यदाविश्चकार
प्रकुपित इव रोगः क्षिप्रकारी विकारम् ।
भिषगिव गुरुदोषच्छेदिनोपक्रमेण
क्रमविदथ मुरारिः प्रत्यहस्तत्तदाशु ॥७६॥

अर्थ—इस प्रकार शीघ्र प्रयोग करने वाले (शीघ्र विकार उत्पन्न करने वाले) शिशुपाल ने अत्यन्त कुपित होकर जिन-जिन अस्त्रों का प्रयोग किया, रोग की भाति उन-उन अस्त्रों को युद्ध के क्रम एव परिपाटी के जानने वाले वैद्य भगवान श्रीकृष्ण ने उनके प्रचड तेज को शान्त करने वाले अपने अस्त्रों का प्रयोग कर (प्रबल दोष को नष्ट करने वाली महान् औषधि का प्रयोग कर) शीघ्र ही शान्त कर दिया।

टिप्पणी—उपमा अलकार।

शुद्धि गतैरपि परामृजुभिर्निदिस्ना
वाणैरजय्यमनिघट्टितमर्मभिस्तम् ।
मर्मातिगैरनृजुभिर्नितरामशुद्धै-
र्वाक्सायकैरथ तुतोद तदा विपक्षः ॥७७॥

अथ--इस प्रकार चेदिपति शिशुपाल ने जब अपने उत्कृष्ट एवं शुद्ध लोहे के बने हुए सीधे चलने वाले बाणों को मर्मस्थल विदीर्ण करने में असमर्थ समझकर भगवान् श्रीकृष्ण को अजेय मान लिया तब वह मर्म को विदीर्ण करने वाले, कुटिल तथा अत्यन्त अपवित्र अपने वचन रूपी बाणों से भगवान् श्रीकृष्ण को व्यथित करने लगा।

टिप्पणी--तात्पर्य यह है कि अस्त्रों से जीतने में असमर्थ हो कर शिशुपाल बहुत खिसिया गया और भगवान श्रीकृष्ण को घिनौनी और मर्मभेदी गालियां सुनाने लगा। व्यतिरेक और रूपक का संकर। वसन्ततिलका छन्द

राहुस्त्रीस्तनयोरकारि सहसा येनाश्लथालिङ्गन-
व्यापारैकविनोददुर्ललितयोः कार्कश्यलक्ष्मीर्वृथा ।
तेनाक्रोशत एव तस्य मुरजित्तत्कालवलोलानल-
ज्वालापल्लवितेन मूर्धविकलं चक्रेण चक्रे वपुः ॥७८॥

अथ--जिस सुदर्शन चक्र ने (पति के) गाढ़ आलिंगन रूपी एक मात्र आनन्द के लिए अतिशय लोभी राहु की स्त्री के दोनों स्तनों की कठोरता की शोभा को व्यर्थ कर दिया था, अपने उसी सुदर्शन चक्र से भगवान् श्रीकृष्ण ने तुरन्त ही गाली बकते हुए शिशुपाल के शरीर को शिर से विहीन कर दिया। उस समय उनके उस सुदर्शन चक्र के चारों ओर चचल अग्नि की लपटें फैल रही थीं।

टिप्पणी--तात्पर्य यह है कि भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने उसी सुदर्शन चक्र से गाली बकते हुए शिशुपाल के सिर को काट गिराया जिससे पूर्वकाल में राहु के सिर को उन्होंने काट गिराया था। राहु का सिर कट जाने से सिर विहीन रुण्ड के साथ राहु की पत्नी गाढ़ आलिंगन नहीं कर सकती थी और इस प्रकार पति के गाढ़ आलिंगन रूपी एकमात्र आनन्द के लोभी उसके दोनों स्तनों की कठोरता को उस चक्र ने व्यर्थ बना दिया था। पर्यायोक्त अलंकार।

श्रिया जुष्टं दिव्यैः सपटहरवैरन्वितं पुष्पवर्षै-
र्वपुष्टश्चैद्यस्य क्षणमृषिगणैः स्तूयमानं निरीय ।
प्रकाशेनाकाशे दिनकरकरान्विक्षिपद्विस्मिताक्षै-
र्नरेन्द्रैरौपेन्द्रं वपुरथ विशद्धाम वीक्षांबभूवे ॥७९॥

अथ—(शिशुपाल का सिर कट कर जब धरती पर गिरा) तब राजाओं ने अपने विस्मित नेत्रों से देखा कि क्षणभर के लिए आकाशगामी देवताओं आदि के नगाड़ों की ध्वनियों तथा पुष्प-वर्षा के बीच एवं ऋषियों की स्तुति के साथ-साथ अपने अमन्द प्रकाश से आकाश में सूर्य की किरणों को मन्द करता हुआ एक परम दीप्तिमान तेज शिशुपाल के शरीर से निकल कर भगवान् श्रीकृष्ण के शरीर में प्रविष्ट हो गया।

टिप्पणी—मानिव अलंकार मधविस्फूर्जिता छन्द। लक्षण—

रसत्वर्त्वैय्मौ न्सौ ररगुरुयुतौ मघविस्फूर्जिता स्यात्॥

श्री माघ कवि कृत शिशुपालवध नामक महाकाव्य में शिशुपालवध नामक बीसवाँ सर्ग समाप्त ॥२०॥

कवि-वंश-वर्णन

[महाकवि ने निम्नलिखित पाच श्लोकों में अपने वंश का अति संक्षिप्त
' किया है—]

ाधिकारी सुकृताधिकारः श्रीवर्मलाख्यस्य बभूव राज्ञः।
क्तदृष्टिर्विरजाः सदैव देवोऽपरः सुप्रभदेवनामा ॥ १ ॥

अर्थ— श्रीवर्मल नामक राजा के एक सुप्रभदेव नामक सर्वाधिकारी मंत्री थे। उनका पुण्य कर्मों में सहज अधिकार था। वे परम र्थक निरासक्त दृष्टिवाले तथा रजोगुणरहित अर्थात् सात्त्विक ाव के थे उन्हे लोग दूसरे देवता के समान अर्थात् राजा के समान ानते थे।

टिप्पणी—देवता भी पुण्य-कर्मनिष्ठ, असक्त अर्थात् निर्निमेषदृष्टि एव सत्त्व युक्त होते हैं। उपजाति छन्द।

ले मितं तथ्यमुदर्कपथ्यं तथागतस्येव जनः सचेताः।
ानुरोधात्स्वहितेच्छयैव महीपतिर्यस्य वचश्चकार ॥ २ ॥

अर्थ— जिस प्रकार बुद्धिमान् लोग विना किसी दूसरे के अनुरोध ह ही स्वय अपने कल्याण के लिए तथागत भगवान बुद्ध के संक्षिप्त, तथा परिणाम मे हितकारी उपदेशों को ग्रहण करते हैं उसी र उन महामंत्री सुप्रभदेव की यथासमय संक्षिप्त, सत्य तथा ाणकारी बातों को महाराज वर्मल भी सुना करते थे।

टिप्पणी—उपमा अलंकार।

याभवद्दत्तक इत्युदात्तः क्षमी मृदुर्धर्मपरस्तनूजः।
वीक्ष्य वैयासमजातशत्रोर्वचो गुणग्राहि जनैः प्रतीये ॥ ३ ॥

अर्थ—उन्हीं सुप्रभदेव के दत्तक नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ जो र, क्षमाशील, कोमल-प्रकृति तथा धर्मनिष्ठ था। उसे देखकर लोग

युधिष्ठिर के गुणों का बखान करनेवाले वेदव्यास की बातों पर विश्वास करते थे।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि महाभारत में वेदव्यास ने अजातशत्रु युधिष्ठिर के गुणों का जो वर्णन किया है, वे सब के सब दत्तक में पाये जाते थे। इतना ही नहीं दत्तक को ही देखकर लोगों को यह विश्वास होता था कि इतने सारे गुण मनुष्य में सभव हो सकते हैं।

सर्वेण सर्वाश्रय इत्यनिन्द्यमानन्दभाजा जनितं जनेन।
यश्च द्वितीयं स्वयमद्वितीयो मुख्यः सतां गौणमवाप नाम ॥४॥

अर्थ—उन दत्तक ने स्वयं ही 'सर्वाश्रय' नामक यह दूसरा पवित्र एवं गुण के कारण उपार्जित नाम भी प्राप्त किया था, जिसे सभी लोगों ने सन्तुष्ट होकर सब का आश्रय देने के कारण उन्हें दिया था। सचमुच वे दत्तक अपने सर्वोत्कृष्ट गुणों के कारण अद्वितीय थे तथा महान पुरुषों में प्रमुख थे।

टिप्पणी—विरोध अलकार। इन्द्रवज्रा छन्द।

श्रीशब्दरम्यकृतसर्गसमाप्तिलक्ष्म
लक्ष्मीपतेश्चरितकीर्तनमात्रचारु।
तस्यात्मजः सुकविकीर्तिदुराशयादः
काव्यं व्यधत्त शिशुपालवधाभिधानम् ॥ ५ ॥

अर्थ—उन्हीं पुण्यशील दत्तक के पुत्र माघ ने, अच्छे कवियों की दुर्लभ कीर्त्ति पाने की दुराशा से केवल भगवान् श्रीकृष्ण के पावन चरित्र की चर्चा से पवित्र शिशुपाल वध नामक महाकाव्य का प्रणयन किया है, जिसके प्रत्येक सर्ग की समाप्ति में सुन्दरतापूर्वक 'श्री' शब्द का प्रयोग किया गया है, यही इस काव्य का (मनोहर) चिह्न है॥५॥

टिप्पणी—कवि ने बडे सुन्दर ढग से अपनी विनम्रता व्यक्त की है। इस महाकाव्य का आरम्भ 'श्री' शब्द से हुआ है तथा प्रत्येक सर्ग की समाप्ति वाले श्लोक में भी 'श्री' शब्द आया है। यद्यपि इसका नाम 'शिशुपाल वध' है किन्तु इसमें केवल भगवान् श्रीकृष्ण के पावन चरित्र की चर्चा की गयी है।

शिशुपालवध के श्लोकों की अकारादि-क्रम-सूची

माघ के सम्पूर्ण श्लोका की सख्या १६४५ है। पन्द्रहवे सर्ग म मल्लिनाथ के मत से ३४ श्लोक प्रक्षिप्त हैं तथा समाप्ति म ५ श्लोक कविवशवर्णन के हैं। इस प्रकार कुल १६८४ श्लोक होते हैं।